प्रथमवार : मूल्य ६)

मुद्रक : गिरिजाप्रसाद श्रीवास्तव, हिन्दी साहित्य प्रेस, प्रयाग

समर्पण

श्रीमती सौभाग्यवती चि० रानी गिरिजा देवी

भदरी—जि० प्रतापगढ (अवध)

श्री चि० रानी साहब,

हमरा ई पुस्तक के मूल प्रेरणा आजु से अठारह बरिस पहिले श्री मइआजी आ माताजी के मानस मूर्ति के सामने तब मिलल जब सीतला महरानी के हमरा पर चढ़ाई रहे। मइआजी साहब रउरा के कतना प्रेम करत रहीं ई रउरा अपने जान तानी। उहाँ के जीवने हमनी के वात्सल्य प्रेम के जीवन रहे। ओही प्रेम के पुन्य स्मृति मे ई ग्रन्थ हम रउरा के समर्पित कर तानी।

इलाहाबाद
२१-१२-४८

—राउर मझिला जेठ,
दुर्गाशंकर।

अपनी दो बातें

आज से अटारह वर्ष पूर्व भोजपुरी से मेरा प्रेम कैसे हुआ और किस तरह मुझे भोजपुरी लोक गीत संग्रह करने की प्रेरणा मिली यह देवी के गीत---

"अइली सीतलि मईया कलसवा भइली हो ठाढ़ ।
घूरि घूरि चितवेली हो मईया बलका करे ओर ।"

के अर्थ के साथ संग्रह में पृष्ठ १३४ पर दिया गया है। तब से आज तक कम अधिक रूप में गीत सदा संग्रहीत होते रहे हैं। पर पंडित रामनरेश जी त्रिपाठी की तरह केवल इसी कार्य के लिये न तो मैंने कभी भ्रमण किया और न पत्र पत्रिकाओं की सहायता ही ली। हाँ कुछ दिन एलाहाबाद में रहकर पब्लिक लायब्रेरी में भोजपुरी गीतों के सम्बन्ध में खोज करके विभिन्न अंगरेजी पत्रिकाओं में छपे गीतों की जानकारी प्राप्त की थी और भोजपुरी गीतों के सौन्दर्य तथा इसके सीमा विस्तार आदि पर गंगा, तथा काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका में लेख प्रकाशित कराये थे जिन्हे विद्वान पाठकों ने पसन्द भी किये थे। इसके अतिरिक्त इस दिशा मे प्रचार के रूप में मैंने कुछ नहीं किया। एक साहित्यिक शौक की तरह भोजपुरी के अध्ययन और उसके लोक गीत के संकलन का कार्य धीमी गति से धैर्य पूर्वक चलता रहा।

इस संकलन कार्य में पाच व्यक्तियों ने मुझे मन से पूर्ण सहायता दी है। सर्व प्रथम मेरी पूजनीया पितामही जी श्री धर्मराज कुँअरि ने, जिनका ९० वर्ष की अवस्था मे स्वर्गवास हुआ अपने कण्ठस्थ सभी गीतों को मुझे लिखाया। गीत-संग्रह का कार्य उन्हीं के गीतों से प्रारम्भ हुआ। जितने मुझे उनसे मिले वे प्राय. सभी शांत और करुण रस के गीत हैं। अन्य र... के गीतों को उन्होने जान बूझ कर नहीं लिखाया या वे उन्हें स्मरण ही नहीं थे यह मैं निश्चित रूप से नहीं कह सकता। इन गीतों की प्रौढ़ता गम्भीरता और सुन्दरता तथा अर्थ-सौष्ठव प्रशंसनीय है। अन्य तीन महिलायें जिन्होंने इस संकलन कार्य में जी तोड़ परिश्रम किया और लगभग एक हजार की

का प्रतिपादन, जन ः के हित के लिये करेंगे और कर रहे ही हैं।

सस्ता-साहित्य-मंडल के मंत्री के उत्साह से यह नया संस्करण भी किसी-किसी तरह सम्पूर्ण हो गया। ग्रंथ के अन्त में कई अनुक्रमणिया, वर्णमाला के क्रम से, उद्धृत ग्रंथों की, ग्रंथकर्त्ताओं के नामों की, [illegible] की, देने का विचार था, पर कागज और छपाई की कठिना- [illegible] यह विचार छोड़ देना पड़ा, पाठक सज्जनों से [illegible] के लिए क्षमा मांगता हूं।

९ मार्च, १९४७ ई०,
भ्रातृ-द्वितीया,
चैत्र कृ० २, २००३ वि०

भगवान्दास
बनारस

प्रस्तावना

(श्री इन्दिरारमण शास्त्री लिखित)

श्रद्धेय डाक्टर श्री भगवान्दास जी के लिये मेरे मन मे जैसी श्रद्धा है, उस का पूरा वर्णन यदि करूँ, तो वह सज्जन उस को अतिरञ्जित समझेंगे, जिन को निकट से उन का रहन-सहन, आचार-विचार, शास्त्राभ्यास और लोक-व्यवहार देखने सुनने का अवसर नही मिला है, जैसा मझ को दस बारह वर्ष मे मिला है। उन्ही के ग्रन्थ के प्रारभ मे उस सब का लिखना प्राय उचित भी न होता, किन्तु भारत-जनता के समष्टि-चित्त ने जो 'श्रद्धेय' की पदवी उन को दे रक्खी है, उस से ऐसी अनौचिती का स्यात् परिमार्जन हो जाता है।

मनीषि-प्रवर ग्रन्थकार के परिचय के लिये, उन का नाम ही पर्याप्त है। स्थानीय, दैशिक तथा सर्वमानवीय लोकसेवा के उन के कार्यों से देश-विदेश के बहुतेरे सज्जन—विशेषत विद्वान् जन—परिचित है। उन्हो ने अपने जीवन के विगत पचास वर्षों में अनेक लोकाऽभ्युदयिक व्यावहारिक काम भी किये है, पर उन सब से अधिक महत्त्वशाली और

---

१ श्री इंदिरारमण जी के और मेरे परस्पर सौहार्द के आरम्भ और वृद्धि की कथा, उन के रचे 'मानव आर्ष-भाष्य' नाम के, सद्विचार और सद्विद्या से पूर्ण ग्रन्थ के आरम्भ मे 'परिचायन' मे लिखा है। शास्त्री जी ने 'पुरुषार्थ' के लिए जो 'प्रस्तावना' लिखी है, उस मे इस सौहार्द से पक्षपात तो बहुत है, तो भी उसको यहां स्थान देना उचित जान पड़ा, सस्कृत शास्त्रो के एक बहुश्रुत उत्कृष्ट विद्वान् के चित्त पर ग्रन्थ का क्या प्रभाव पडा, चाहे पक्षपात से उस मे अतिरञ्जन भी कुछ हो, इस का जानना पाठक सज्जनो को प्राय अरुचिकर न होगा—भगवान्दास

संख्या में गीत मुझे दिया श्री लक्ष्मी देवी जी मेरे चचेरे भतीजे श्री महाराज कुमार नरसिंह प्रसादसिंह, जगदीशपुर, शाहाबाद की धर्मपत्नी हैं, मेरी धर्म पत्नी श्री जगन्नाथ कुँअरी और मेरी दूसरी कन्या श्री चि० शारदा कुमारी (जानकी) हैं। इन तीनों महिलाओं ने नजदीक पास की सभी अच्छी गानेवाली स्त्रियों को बुलवाकर स्वयं गीत लिखने का कष्ट उठाया। मेरी कन्या का यह प्रयत्न सब से ज्यादा था उसने अकेले आधे से अधिक गीत संग्रह किये थे। उसका यह कार्य सन् १९४२ तक जब मैं हजारी बाग जेल में राजनैतिक बन्दी था जारी रहा। वहां भी नये नये गीतों को वह संग्रह करके भेजती रही। इस संग्रह में सहायता देने वाले पुरुषों में एकमात्र व्यक्ति थे पंडित रामसकल चौबे। ये बैना, जिला शाहाबाद के निवासी और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के मिडिल स्कूल के योग्य शिक्षक तथा मेरे परम मित्रों में हैं। इन्होंने भी बहुत से गीतों को संग्रह करके मुझे दिया। इन सभी व्यक्तियों की इस कृपा के लिये मैं कृतज्ञ हूँ और उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

जो गीत मुझे अपनी पूजनीया पितामही जी से मिले हैं उनके ऊपर मैंने उनका नाम इसलिये लिख दिया है कि उनकी प्राचीनता और पाठ की शुद्धता प्रामाणिक है। और इनमें पुराना भोजपुरी का नमूना वर्तमान है। इनके पाठ ठीक वैसे ही रक्खे गये हैं जैसे मैंने उनके मुँह से सुना था।

गीत तो कभी के पर्याप्त संख्या में प्राप्त हो चुके थे। पर उनका संपादन और रस के अनुसार चुनाव करके यथा स्थान रखना और अर्थ और टिप्पणी लिखना महान् कठिन कार्य था। भोजपुरी के भाग्य से इस बार की जेल यात्रा इस कार्य के लिये उपयुक्त साबित हुई और वहां भोजपुरी लोकगीत में करुणरस नामक प्रस्तुत पुस्तक तैयार हुई। केवल ६ मास के समय में यह और इससे थोड़ी ही छोटी दूसरी पुस्तक 'नारी जीवन साहित्य' का अर्धांश तैयार कर लेना मुझ जैसा अत्यन्त व्यस्त आदमी के लिये आश्चर्य की बात है। मैं ईश्वर को धन्यवाद देता हूँ कि मुझे इतने परिश्रम करने की शक्ति उन्होंने उस कारावास में भी प्रदान की जहाँ मानसिक शान्ति का रहना हर प्रकार से कठिन रहता है।

गीतों के सम्पादन में मुझे बड़ी २ कठिनाइयाँ उठानी पड़ी हैं। मुख्यतः मेरा प्रयत्न आद्योपान्त यह रहा है कि गीत अपने शुद्ध और प्राचीन रूप में ही लिखे जायँ और वे पूर्ण हों आधा या खिल्त मिल्त न हों। बहुत से गीतों में दो दो तीन तीन गीत की कड़ियाँ एक ही साथ मिली हुई मुझे मिलीं जिनका अर्थ ही नहीं बैठता था। इससे इनको ठीक करने में बड़ी दिक्कत उठानी पड़ी। यह गड़बड़ी गायकों के युग युग से स्मरण शक्ति द्वारा ही काम लेते चले आने की वजह से होनी स्वाभाविक थी। गायिकाओं या गायकों से गीत लिखते समय मेरा या मेरे अन्य सहायक या सहायिकाओं का यही प्रयत्न रहा कि जैसा स्वर और शब्द गायक से सुना जाय वैसा ही लिखा जाय उसमें अपनी ओर से कोई संशोधन न किया जाय। फिर गीत के नीचे जो टिप्पणी अधिकांश स्थलों पर लिखी गई है वह केवल एक साहित्यिक विषय तक ही सीमित नहीं रह सकी। जहाँ जैसी आवश्यकता हुई या जहाँ जैसा प्रसङ्ग और विषय आया वहाँ वैसी टिप्पणी लिखी गयी है। इसी से सर्वत्र टिप्पणी साहित्य क्षेत्र की सीमा के भीतर नहीं रह सकी है। तो इन समग्र कठिनाइयों को हल करके यह 'भोजपुरी लोक-गीत में करुण रस' नामक पुस्तक हिन्दी और भोजपुरी संसार के सामने रख सका हूँ। यह कैसा उतरा है यह कहने का मेरा अधिकार नहीं। पर हाँ, मुझे अपने परिश्रम पर सन्तोष इसलिये अवश्य है कि इसके संकलन और सम्पादन में मैंने अपनी योग्यतायोग्य परिश्रम करने में न तो कोई कसर बाकी रखा है और न जी ही चुराया है। प्रेस कॉपी को बिहार के दो प्रसिद्ध विद्वान तथा साहित्यकार और मर्मज्ञ भोज-पुरी मित्रों ने देखने की कृपा की है। इससे मुझे गीतों की शुद्धता में विश्वास है। प्रथम हैं राजेन्द्र कॉलेज छपरा के प्रोफेसर बाबू शिवपूजन सहाय जी और दूसरे हैं पटना कॉलेज के हिन्दी के प्रोफेसर बाबू विश्वनाथ प्रसाद जी एम्० ए० आप दोनों विद्वान मित्रों की इस कृपा के लिये मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

इस पुस्तक में भोजपुरी के करुण रस के सभी प्रतिनिधि गीत आ गये हों सो बात नहीं है। मेरे ही संग्रह में बहुत से गीत गलती से कुछ जान बूझ कर जगह के अभाव से छूट गये हैं। कुछ गीत इस संग्रह में जान बूझ

कर ऐसे भी रखे गये हैं जो करुण रस के तो हैं पर अध्यात्म पक्ष के होने के कारण वे शान्त रस के भी कहे जा सकते हैं। यही नहीं कुछ गीत ऐसे भी रखे गये हैं कि जिनमें कई रसों को परिपुष्ट किया गया है और इससे उनकी गणना अन्य रसों के गीतों मे भी की जा सकती है। तो ऐसा करने से मेरा अभिप्राय यह दिखाने का रहा है कि भोजपुरी में करुण रस केवल शृङ्गार रस के गीतों तक ही सीमित नहीं रखा गया है बल्कि इसका समावेश दूसरे विषयों और रसों के गीतों में भी किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक के गीतों में कुछ गीत ऐसे भी हैं जो प० राम नरेश त्रिपाठी के ग्राम गीत में भी थे। उनमें कुछ के रूप तो मेरे संग्रहीतों से भिन्न भाषा के मिले, कुछ के रूप मेरे ही संग्रहीत गीतों जैसा पर गलत सम्पादन किये हुए थे, और कुछ के चरण ही कमी वेशी संख्या में थे। उनको जहाँ जैसी आवश्यकता हुई है अपने संग्रहीत गीतों से मिलान करके अपनी समझ के अनुसार मैंने ठीक कर लिया है। साथ ही शिव का ब्याह, नामक भजन मे जो बहुत बड़े गाथा के समान गीत है मुझे कुछ चरण अन्त के स्वयं रच कर जोड़ने पड़े क्योंकि गीत पूरा मुझे नहीं मिला था। यह 'शिव का ब्याह' नामक गीत इधर यू० पी० के जिला प्रतापगढ़ और इलाहाबाद में भी मुझे एक साईं द्वारा गाया जाता हुआ सुनने को मिला। परन्तु उसकी भाषा अवधी थी और उसे भी पूर्ण स्मरण नहीं था। गीत बड़ा है इसमे प्रथम के कुछ अंश भिक्षा मांगने भर के लिये साईं लोग स्मरण कर लेते हैं।

अंत में पण्डित उदय नारायण जी तिवारी एम० ए० साहित्य रत्न, दारागञ्ज, प्रयाग को धन्यवाद दिये बिना मैं नहीं रह सकता। उनका भोजपुरी का ज्ञान, खोज, अध्ययन तथा सेवा स्तुत्य है। उन्होंने भोजपुरी की सेवा में काफी परिश्रम किया है। आपने इस भूमिका के लिये मुझे काफी सामग्री प्रदान की। आपने ही मुझे धरनीदास के भोजपुरी गीत दिये तथा दो चार सोहर गीत भी लिखाया। साथ ही आपने धरनीदास के 'शब्द प्रकाश' की जो पांडु लिपि उसकी मूल पांडु लिपि से लिखा ली थी मुझे सम्पादनार्थ प्रदान किया है। उसके सम्पादन का कार्य भी चालू है। मैं आपकी इस कृपा के

लिये अत्यन्त कृतज्ञ हूँ और हृदय से उन्हें धन्यवाद देता हूँ ।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भूत पूर्व सभापति प्रयाग विश्वविद्यालय के कुलपति डा० प० अमरनाथ झा का मैं विशेष रूप से आभारी हूँ जिनकी प्रेरणा से हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा इस पुस्तक का प्रकाशन इस विकट समय में स्वीकृत हो सका । वस्तुतः भारतीय आर्य्य परिवार की समस्त जीवित बोलियों के साहित्य से झा साहब को विशेष अनुराग है और वे उनके बिखरे हुए साहित्य के सग्रह कर्त्ताओं को यथेष्ठ सहायता प्रदान करने के लिये सदा प्रस्तुत रहते हैं। सम्मेलन के प्राण माननीय बाबू पुरुषोत्तम दास जी टण्डन ने भी इसकी भूमिका एकबार देखकर मुझे कई महत्वपूर्ण परामर्श दिये जिसके लिये मैं उनका कृतज्ञ और उनको इस कृपा के लिये धन्यवाद देता हूँ ।

प्रयत्न करने पर भी मुद्रण की अशुद्धियाँ पुस्तक में रह ही गयीं हैं । दूसरे सस्करण में वे शुद्ध की जायँगी ।

दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह
अक्टूबर १६४४

परिचय

"वाग्जन्मवैफल्यमसह्यशल्यं
गुणाधिके वस्तुनि मौनिता चेत्"

—श्रीहर्ष

श्रीमान् महाराजकुमार बाबू दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह लगभग १८ वर्षों से भोजपुरी के लोकगीतों का संग्रह करने में लगे हुये हैं। जिस समय श्रीद्विवेदी अभिनन्दनग्रंथ छप रहा था उस समय आपने 'भोजपुरी ग्रामगीत में गौरी का स्थान' नामक एक अति विस्तृत लेख उसमें छपने के लिए भेजा था, किन्तु अति वृहत् होने के कारण उसको ग्रंथ सम्पादकों ने ग्रंथ में स्थान न देकर काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका में सचित्र प्रकाशित किया। उसके बाद आप बड़ी सच्ची लगन से भोजपुरी ग्रामगीतों का संकलन, अध्ययन और विश्लेषण करने लगे। आपका उत्साह इस दिशा में सर्वथा अभिनन्दनीय है। अत्यन्त हर्ष एवं सन्तोष का विषय है कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने आपके द्वारा संकलित लोकगीतों का प्रकाशन 'भोजपुरी लोकगीत में करुण रस' नाम से हो रहा है। शान्त और शृंगार रस के गीतों को दो संग्रहों में सम्पादन करने का काम आपने प्रारम्भ कर दिया है। लोकगीतों के संकलन कर्ताओं को साहित्य-सम्मेलन से ही पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त हो सकता है, क्योंकि हिन्दी संसार में लोकगीतों का वास्तविक महत्त्व समझनेवाले समर्थ प्रकाशक बहुत कम हैं।

बिहारप्रान्त के हिन्दी साहित्य सेवियों में श्रीदुर्गाशंकर प्रसादसिंहजी बहुत प्रतिष्ठित स्थान के अधिकारी हैं। लोकगीतों के संग्रह करने में तो आप ने अविश्रान्त परिश्रम किया ही है; कहानी, उपन्यास, गद्यकाव्यादि की रचना करने में भी आप सफल रूप से सतत संलग्न रहे हैं। आप देशसेवा में लगे रहने पर भी साहित्य सेवा का व्यसन नहीं छोड़ते। जेल में रहें या घर में, लोकसेवा की चिन्ता के साथ साहित्यसेवा की धुन लगी ही रहती है। मैं दर्जनों वर्षों से आपके जीवन का यही क्रम देख रहा हूँ।

बाबू कुँवर सिंह की राजधानी 'जगदीशपुर' के पास 'दिलीपपुर' गाँव में जहाँ आप के पितामह जी सन् १८५७ के राज्य विप्लव के उपरान्त जगदीशपुर छोड़ कर जा बसे अपने गढ के पास हाई स्कूल खोलकर आपने आस पास के गाँवों में शिक्षा प्रचार का भी स्तुत्य प्रयत्न किया है। शाहाबाद जिले में आपका कुल बड़े सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। अपने कुल में एक मात्र आप ही सार्वजनिक कार्यों में दत्तचित्त देख पड़ते हैं। ऊँची प्रतिष्ठा के अधिकारी होकर भी लोक सेवा में तत्पर रहना आपकी उल्लेखनीय विशेषता है। ईश्वर से यही प्रार्थना है कि साहित्य सेवा की उर्वरा भूमि में आपकी कीर्त्तिलता सदा लहलहाती रहे।

राजेन्द्र कालेज
हिन्दी विभाग
छपरा (बिहार)
श्री बसंत पंचमी, संवत् २००१

शिवपूजनसहाय

भूमिका

भोजपुरी की व्युत्पत्ति और प्राचीनता

शाहाबाद जिले में बक्सर सब डिवीजन में भोजपुर नाम का एक बड़ा परगना है। परगने के भोजपुर नाम होने की व्युत्पत्ति डुमराँव राजधानी से दो तीन मील उत्तर गंगा के निकट 'नवका भोजपुर' और 'पुरनका भोजपुर' नामक दो छोटे गाँवों से होती है। इसी भोजपुर परगने और इसके आस-पास में बोली जाने वाली भाषा का नाम भोजपुरी है जो आज बहुत दूर दूर के जिलों तक में बोली जाती है[1]।

सन् १७८१ ई० में भोजपुर जिला भी था[2]। जिला ही तक नहीं सुदूर

---

[1] इस बोली का नाम भोजपुरी प्राचीन भोजपुर नामक नगर से लिया गया है। यह नगर शाहाबाद जिले में गंगा के दक्षिण कुछ मील पर ही बसा था जिसकी दूरी पटना से ६० मील थी। आज दिन तो यह छोटा सा गाँव है किन्तु किसी समय में शक्तिशाली राजपूतों की राजधानी था। जिनके अगुआ इस समय डुमराँव के महाराज हैं और जो सन् १८५७ के क्रान्ति के नेता कुँअरसिंह के अनुगामी हैं। 'सइरुल मुताख़रीन' के पढ़ने वाले जानते हैं कि औरंगज़ेब के सूबेदारों को भी भोजपुर के राजाओं को दबाने का प्रयत्न करना पड़ा था किन्तु तिस पर भी वे नहीं दबे। भोजपुरी के क्षेत्र में प्राचीन हिन्दुओं की भावना आज भी बड़ी प्रबल है और हिन्दू जन सत्ता के सामने मुसलमानों की सत्ता काम की नहीं है। राजपूतों के साथ ब्राह्मणों और यहीं कहीं भूमिहारों की सत्ता ही प्रबल है।

[2] [illegible] एशियाटिक सोसाइटी का जरनल भाग ३ सन् १८६८ पृष्ठ संख्या २८१ ५०८ में भोजपुरी भाषा पर जान बीम्स का नोट : भोजपुरी भोजपुर की बोली है जो शाहाबाद जिले के दक्षिणोत्तर भाग में बसा है। सारन के

मूत में इस राज्य की सत्ता और पराक्रम की धाक अन्य दूर के जिलों तक ही नहीं फैली हुई थी बल्कि आज से ४०० वर्ष पूर्व अकबर की हुकूमत की शान्ति में भी इसके कारण काफी हल-चल मची हुई थी[1]। और तब से अब तक मालवा (उज्जैन और धार) से आये हुए इन पम्मार या परमार (उज्जैन) राजपूतों का क्रम बद्ध इतिहास तवारीख उज्जैनिया नामक ग्रन्थ में, जो डुमरांव राज से मु० विनायक प्रसाद द्वारा लिखवाया जाकर प्रकाशित हुआ था, अनेकानेक उद्धरणों और ऐतिहासिक प्रमाणों के साथ वर्तमान है। सन् १७५७ में जो अंग्रेजों और मीरकासिम के बीच बक्सर में लड़ाई हुई थी उसमें भी इन उज्जैनों ने मीरकासिम के पक्ष में ही लोहा लिया था। सन् १८५७ की बग़ावत में जगदीशपुर के लेहारवीर बाबू कुँअर सिंह के नायकत्व

आधुनिक इतिहास में यह महत्व का स्थान है यह डुमरांव राज की राजधानी के निकट है और बक्सर की लड़ाई इसके निकट ही हुई थी। राजनीति के विचार से इसका सम्बन्ध संयुक्त प्रान्त से होना चाहिये न कि बिहार से जो कि आज कल यह बिहार की सीमा के भीतर है। इसी के समीप बुन्देल खण्ड के प्रसिद्ध वीर आल्हा ऊदल को उनका मूल स्थान मिला था और इसका सम्पर्क सदा पश्चिम से ही मिलता है पूर्व से नहीं।

जार्ज ए० ग्रियर्सन—लिंगुइस्टिक सर्वे आफ़ इन्डिया भाग ५

[1]दक्षिणी बिहार और बंगाल के पश्चिमी सरहद के राजाओं ने दिल्ली के बादशाहों को अधिक झंझट में डाला था। अकबर के राज्यकाल में भोजपुर के राजा दलपत पराजित होकर पकड़े गये और जब अधिक नज़राने लेकर अकबर ने उन्हें मुक्त किया तो वे फिर सेना तैयार कर विद्रोह कर बैठे। जहाँगीर के समय में उनका विद्रोह चलता रहा और शाहजहाँ ने उनके वारिस प्रताप को फाँसी दिलवा दिया।

ब्लाचमैन का छोटानागपूर के मुस्लिम इतिहास पर नोट। आर० ए० एस० बी-१८७१ पृष्ठ ३ १२६

मे इन राजपूतों न अन्तिम वार सशस्त्र स्वतन्त्रता सग्राम

इसक अतिरिक्त श्री प० उदय नारायण जी तिवारी
वर्षों स अध्ययन करके भोजपुरी भाषा और उसके व्याकरण पर
लिख रहे हैं। उसमें भी उन्होंने अग्रेज विद्वानों और आइन अकबरी
बादशाह नामा आदि मुसलमानी कागजातों क प्रमाणों का हवाला देकर
उज्जैन राजपूतों की वीरता और पराक्रम का प्रतिपादन किया है और यह
साबित किया है कि मुसलमान समय से लेकर १८५७ तक के गदर तक इस जाति
ने इस भूभाग पर अपनी सत्ता को अपने पराक्रम के बल से नष्ट नहीं होने
दिया और सदा अपना प्रभुत्व कायम रखा। इसी से यहाँ के निवासी भोजपुरी
कहे गये और इस प्रान्त की भाषा का भोजपुरी नामकरण हुआ।

फिर ग्रिअरसन साहब ने भी यही बातें बड़े जोर के साथ कही हैं और
भोजपुर की विभूति और पराक्रम को स्वीकार कर के इसके नाम पर भोजपुरी
की व्युत्पत्ति मानी है। श्री प० बलदेव जी उपाध्याय ने भी भोजपुरी ग्राम-
गीत की महत्वपूर्ण भूमिका मे उपर्युक्त बातों को दुहराया है और स्वीकार
किया है कि पिछले समय में राजपूताने (उज्जैन) से राजपूतों ने यहाँ आकर
अपना विस्तृत राज्य स्थापित किया और भोजपुर को प्रधान बनाया और इसी
भोजपुर के नाम से भोजपुरी भाषा का नामकरण किया।

छोटे से गाँव भोजपुर के नाम पर रखी हुई भोजपुरी भाषा क्यों और
कैसे यू० पी० और बिहार के १४-१५ जिलों की भाषा बन गयी और इतने
निवासियों की सस्कृति प्रायः एक समान बन गई ?

---

[1] इन राजपूतों (उज्जैन) ने देश के मध्य युग के इतिहास में
अधिक योग दिया और दक्षिणी बिहार में इनकी प्रभुता सन् १८५७ के विद्रोह
तक रही जब कुंअरसिंह ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध विद्रोह किया और इस प्रकार
इतिहास प्रसिद्ध भोजपुर राज्य का अंत हुआ। उसका चिह्न डुमरांव राज्य के
रूप में अभी भी मिल रहा है जिस पर आज भी एक उज्जैन राजा का अधिकार
है। आइन अकबरी के ब्लाचमैन का अनुवाद।

भूत
ही

श्री राहुल साकृत्यायन जी का मत

अभी महाँ पण्डित श्री राहुल साकृत्यायन जी ने इस वंश और भोजपुरी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में निम्नलिखित वक्तव्य लेखक को दिया है जो ऐतिहासिक प्रमाणों से पूर्ण और स्पष्ट है।

"शाहाबाद के उज्जैन राजपूत मूल स्थान के कारण उज्जैन पीछे की राजधानी धार के कारण धार से भी आये कहे जाते हैं। "सरस्वती कण्ठा भरण" धारेश्वर महाराज भोज के वंश के ही शान्तनशाह १४वीं सदी में धार राजधानी के मुसलमानों के हाथ में चले जाने के कारण जहाँ तहाँ होते हुए बिहार के इस भाग में पहुँचे। यहाँ के पुराने शासकों को पराजित करके महाराज शान्तनशाह ने पहले दाँवा (बीहीआ ई० आई० आर० स्टेशन के पास छोटा सा गाँव) को अपनी राजधानी बनाई। उनके वंशजों ने जगदीशपुर मठिला और अन्त में डुमरात में अपनी राजधानी स्थापित की। पुराना भोजपुर गंगा में वह चुका है। नया भोजपुर डुमराँव स्टेशन से २ मील के करीब है।

मालवा के परमार राजाओं की वंशावली निम्न प्रकार है:—

१. कृष्णराज
२. वैरि सिंह
३. सीयक
४. वाक्पतिराज
५. वैरि सिंह
६. श्री हर्ष (सीयक ९४९-७२ ई०)
७. मुंज (९७४ ९९७)
८. सिंधुराज (नव साहसांक) १००९ ?
९. भोज (त्रिभुवन नारायण १००९-४२)
१०. जय सिंह (१०५५-५९)
११. उदयादित्य (१०८०-८६)

१२. लक्ष्मदेव
१३. नर वर्मा (११०४-११३३)
१४. यशो वर्मा (११३४-११३५)
१५ जय वर्मा
१६. अजय वर्मा (११६६)
१७. विंध्य वर्मा (१२१५)
१८. सुभट वर्मा
१६ अर्जुन वर्मा (·· ··१२२३)
२०. देवपाल (·· ··१२३५)
२१. जयार्जुन देव (जैत्रम (पा?) ल १२५५-५७)
२२. जय वर्मा (२) (१२५७-६०)
२३. जय सिंह (३) (१२८८)
२४. अर्जुन वर्मा (२) (१३५२)
२५. भोज (२)
२६. जय सिंह (४) (१३०६?) (१३६०?)

जय सिंह' चतुर्थ को पराजित करके अलाउद्दीन ने मालवा को ले लिया। यद्यपि उज्जैन राज वंशावली में शानन के पिता का नाम जयदेव कहा जाता है, लेकिन पुराने राजवंशों में देव और सिंह बहुधा पर्यायवाची होते हैं। इसलिए शातनशाह के पिता धारा के अंतिम परमार राजा जयसिंह ही मालूम होते हैं। मुसल्मानी काल और कम्पनी के राज के आरंभ तक आरा जिला के बहुत बड़े भाग का नाम भोजपुर सरकार (जिला) था। आज भी बक्सर सबडिवीजन के एक परगने का नाम भोजपुर है। भोजपुर गांव के बारे में अभी हम कह चुके हैं। जान पड़ता है शातनशाह के दादा द्वितीय भोज या भारत के प्रतापी नरपति महाराज भोज प्रथम के नाम पर यह बस्ती बसाई गई। इसी भोजपुर में मुसलमानी नमूने का नौरतन किला था जिसका कितना ही भाग अब भी मौजूद है। भोजपुरी भाषा का यह नाम इसी भोजपुर

से मिला ।'

राहुल सांकृत्यायन

किताब महल

इलाहाबाद

८ १०-४४

ऐतिहासिक जगद्देव और उनके सम्बन्ध का पँवारा जो बुन्देलखण्ड में गाया जाता है या किम्वदन्ती जो शाहाबाद में प्रचलित है अन्त में इस खोज के पक्ष का सबसे नूतन प्रमाण जो लेखक को मिला है वह 'लोक वार्ता' नामक त्रैमासिक पत्रिका वर्ष १, अंक १, पृ० १७ (१९४४ ई० जून) के 'जगद्देव करौ पवारौ' शीर्षक लेख और उसमें उद्धृत पँवारा है जो बुन्देल-खण्ड में जगदेव के अन्य गीतों और पँवारों के साथ गाया जाता है। इस सम्बन्ध में विद्वान सम्पादक श्री कृष्णानद जी गुप्त ने भी लिखा है।

.. .. यहाँ पर पाठकों के मनो विनोदार्थ जगदेव का पँवारा प्रकाशित कर रहे हैं। यह वही जगदेव हैं जिसके विषय में मालवा, गुजरात और बुन्देल खण्ड में भी (शाहाबाद जिला के पम्मारों के राजभाटों तथा पवरियों के बीच या पम्मार वंश के ऐतिहासिक किम्वदन्तियों में या तवारीख उज्जैनिया नामक उर्दू ग्रन्थ में जो डुमराव राज्य से प्रकाशित कराया गया है अनेक गीत और किम्वदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं और जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसने गुजरात के सुप्रसिद्ध राज सिंदुराज जयसिंह के यहाँ जाकर नौकरी की थी। लखटकिया की भी अनेक कथाएँ हमारे यहाँ प्रसिद्ध हैं। वे प्रायः जगद्देव से संबंध रखती हैं। रास माला (टाड 'राज स्थान' की भाँति गुजरात की ऐतिहासिक कथाओं का प्रसिद्ध संग्रह ग्रन्थ) के अनुसार जगद्देव मालवा के राजा उदयादित्य (१०५९-८७ ई०) का पुत्र था। यह उदयादित्य अपने भाई भोज की मृत्यु के बाद मालवे का राजा हुआ। किसी घरेलू षड्यन्त्र के कारण जगद्देव को मालवा छोड़ कर जाना पड़ा और गुजरात के सोलंकी राजा सिंदुराज जयसिंह के यहाँ जाकर नौकरी करनी पड़ी वहाँ

वह अठारह वर्ष तक रहा। उसके बाद जब जयसिंह ने धार पर चढाई करने का उपक्रम किया तो पुनः अपने पिता के पास आ गया।

इस घटना में कितनी सच्चाई है, यह कहना कठिन है। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि जगद्देव अनेक किम्वदन्तियों और गाथाओं का नायक बना हुआ है। उसके नाम के अनेक पँवारे हमने सुने हैं। अभी तक उसके विषय में लोगों ने अनेक कल्पनायें कर रक्खी थीं और यह ठीक तौर से स्पष्ट नहीं था कि वह कौन था। किन्तु निजाम राज्य में प्राप्त एक शिला-लेख से उसकी ऐतिहासिकता सिद्ध हो गयी है।[1]

शाहाबाद जिला में भी इसी पँवारे में वर्णित गाथा से मिलता जुलता इन्हीं जगरदेव (जगद्देव या जगरदेव) के सम्बन्ध की एक दूसरी किम्वदन्ती धार के पम्मार राजपूतों में परपरा से चली आ रही है। उसमें जगरदेव को अपने पिता धारा नगरी के राजा से रूठ कर गुजरात राज्य के सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह के यहाँ जाना भी ठीक वैसे ही वर्णन किया जाता है जैसा कि ऊपर के लेख में दिया गया है। पर उसमें उनके अपने सिर काट कर देवी को प्रदान करने की दूसरी ही गाथा है। और वह यों है:— राज परपरा के अनुसार जयसिंह की राज सभा जब नित्य लग जाती थी तो देवी के आगमन की नित्य प्रतीक्षा की जाती थी। जालपा देवी नग्न रूप में आकर सभा में खड़ी होती थीं और सब लोग उनका दर्शन करते थे और तब देवी के अन्तर्धान के बाद सभा की अन्य कार्य्यवाही प्रारम्भ होती थी। जिस दिन जगद्देव उस सभा में पहुँचे उस दिन जालपा देवी वस्त्र धारण करके सभा में दर्शन देने आयीं। सदा की भाँति दर्शन देकर जब देवी अन्तर्धान होने लगीं तो राजा ने प्रश्न किया— "सदा आप नग्न पधारा करती थीं आज वस्त्र क्यों धारण किया?"

जालपा देवी ने उत्तर दिया—"तुम्हारी सभा स्त्री की सभा थी। इसलिये मैं नग्न आया करती थी क्योंकि स्त्री को स्त्री से लज्जा कैसी? पर

---

[1]उपर्युक्त पँवारे को यहीं न देकर भूमिका के अन्त में पाठकों के अवलोकनार्थ दिया जाता है।

आज एक पुरुष आ गया है इसी से वस्त्र धारण करना पड़ा।"

सभा इस उत्तर को सुनते ही आश्चर्य में पड़ गयी। राजा ने पूछा—"हम सभी योद्धा स्त्री हैं? आप ने यह कैसे जाना? वह पुरुष योद्धा कौन है?"

देवी ने कहाः—"प्रमाण चाहते हैं? अच्छा मुझे तृषा लगी है। शान्त करो"

भृत्य गण दौड़ पड़े। कोई स्वर्ण कलश में जल लाया और कोई राजसी पात्रों में जलपान के मिष्ठान। देवी ने उन्हें देखा और हँस कर कहा, "इससे तृषा नहीं तृप्त होगी। रक्त चाहिये।"

तुरन्त भेंड़े भैसे खसी मगाये गये। पर देवी ने उसे भी अगीकार करने से अस्वीकार किया। राजा के पूछने पर कहा—"मेरी तृषा नररक्त से शान्त होगी।"

इस प्रश्न के होते ही सभा भवन खाली होने लगा। तुरत ही कतिपय सामन्त और राजा स्वय तथा मन्त्री और सेनापति के अतिरिक्त वहाँ कोई नहीं खड़ा रह सका। पर ये लोग भी एक दूसरे का मुह देखने लगे। देवी ने पुनः कहा और तीन बार मागने पर भी जब कोई रक्त प्रदान नहीं रह सका तब देवी ने कहा—"इसी से तुम लोगों को मैं स्त्री समझती थी। अच्छा जगरदेव को बुलाओ।"

जब जगरदेव आकर सामने खड़े हुए तो देवी ने कहा—"मुझे तृषा लगी है तृप्त करो।"

देवी के मुख से इतना निकलना था कि जगरदेव ने म्यान से तलवार खींचीं और दाहिने हाथ से तलवार की मूठ और बाये हाथ से उसकी नोक पकड़ कर सामने से अपनी गरदन यह कह कर काटा कि इस रक्त से तृषा तृप्त कीजिये। जल यहाँ कहाँ मिलेगा?

देवी ने प्रसन्न होकर जगरदेव का मस्तक धड़ से जुटा दिया और वर माँगने को कहा। पर जगरदेव ने तीन बार अपनी गरदन काटी और तीनों बार देवी ने जिलाया।

तभी मे धारा नगरी के पम्मारों की गरदन में तीन वल्लियाँ (कम्बु-ग्रीव) होती हैं। जो असल धार का पम्मार नहीं होगा उसकी गरदन में तीन रेखायें नहीं होंगी ऐसी किम्वदन्ती है। यह किम्वदन्ती केवल शाहाबाद जिला के ही राजपूतों और अन्य जातियों में नहीं प्रचलित है बल्कि निकट के अन्य जिलों के राजपूत भी इसे जानते हैं और कहते हैं।

यह जगर देव वह जगरदेव (या जयसिंह (४)) नहीं वे जो भोज (२) के पुत्र थे और जो ईसवी सन् १३६० में धार के अलाउद्दीन द्वारा परास्त होने पर वहाँ से चल कर आरा (शाहाबाद) जिला में आकर अपना राज्य अपने पुत्र शान्तनशाह के साथ कायम किये (देखिये राहुल जी का वक्तव्य और पंडा माधवप्रसाद दारागंज एलाहाबाद के यहाँ से पम्मार (उज्जैन) राजपूतों की प्राप्त वंशावली में) बल्कि यह जगर देव इस जगरदेव या जैसिंह (४) के पूर्वज भोज प्रथम (१००६-८४) के भाई उदयादित्य के (१०५६-८७) पुत्र थे। इनके सम्बन्धमें हेम चन्द्र राय की दी डाइनिस्टिक हिस्टरी आव् नार्दर्न इण्डिया के पृ० ८७७ में विशेष रूप से इन शब्दों में प्रमाणित इतिहास कहा गया है।

"परन्तु जगदेव की ऐतिहासिकता उस शिलालेख से प्रतिघटित है जो हाल ही मे निजाम राज्य के उत्तर पूर्व प्रदेश में पाया गया है। यह जयनाद या जयनाथ शिलालेख है जो आदिलाबाद के ६ मील दक्षिण मिला है। इसमें २८ पंक्तियाँ हैं और आरम्भ 'ओ३म् नमः सूर्याय' से होता है। आरम्भिक दो पद सूर्य और शिव की स्तुति हैं और फिर प्रमारों की उत्पत्ति की सूचना वशिष्ट के तप से विश्वामित्र के नाश के लिए दी हुई है। इसी वंश में राजा जगद्देव पैदा हुए थे। वे उदयादित्य के पुत्र और भोज के भतीजे थे"।

परन्तु राहुल जी के वक्तव्य में जयसिंह (जगद्देव) का पुत्र उदयादित्य कहे गये हैं जो इस शिला लेख के सम्मुख गलत ज्ञात होता है। उदयादित्य, का पुत्र ही जगदेव (या जैसिंघ (१)) वास्तव में सही है।

तो इस ऐतिहासिक दृष्टि से तथा आगे वर्णित पम्मार वंशावली की

-गाथाओं से यह सम्भव हो सकता है कि भोज (२) के पुत्र जगद्देव (जयसिंह (४) १३६०) के यहाँ (शाहाबाद में) आने के पूर्व उदयादित्य के पुत्र उपर्युक्त जगद्देव (१०५६-८७ ई०) यहाँ अपने प्रवास काल में आये हों और अपने प्रतापी और विद्वान् राजा भोज (१) के नाम पर डुमराँव के पास गंगा तट पर भोजपुर बसाये हों जो आज पुरनका भोजपुर के नाम विख्यात है और फिर यहाँ से गुजरात या धार वापिस चले गये हों। २०३ वर्ष बाद ही फिर सन् १३६० या उसके कुछ वर्ष बाद जगद्देव (जय सिंह (४)) या उनके पुत्र शान्तन शाह ने उसी पुराने भोजपुर के पास दूसरा भोजपुर अपने पितर या पिता भाई भोज (२) के नाम पर बसाया जो नवका भोजपुर के नाम से विख्यात है और जहाँ नवका नामक किला टूटे फूटे रूप में आज भी वर्तमान है। इस मत को यदि माना जाय जिसके पीछे निसन्देह ऐतिहासिक समर्थन है तो भोजपुर के केन्द्रस्थान भोजपुर का इतिहास २०३ वर्ष और आगे बढ जाता है। और तब हमको इस प्रश्न को सुलझाने में अधिक सहायता मिलती है कि भोजपुरी नाम क्यों उन अन्य जिले की भाषाओं को भी मान्य हो गया जो इस भोजपुर से दूर की भाषायें थीं और जहाँ भोजपुर का कोई राजनैतिक प्रभाव नहीं था।

शाहाबाद जिला के एक छोटे से गाँव के नाम पर रखी हुई भोजपुरी भाषा क्यों और कैसे यू० पी० और बिहार के १४-१५ जिलों की मातृ भाषा बन बैठी और इतने जिल के निवासियों के संस्कार और संस्कृति में एक समान हो गयी?

इस दिशा में पं० उदय नारायण जी तिवारी का अनुसंधान बहुत सप्रमाण खोज है पर तब भी भोजपुरी के इस प्रश्न पर आकर वे उलझ गये हैं कि इतने से छोटे परगना की वीरता जो तद्देशीय थी पच्छिमी दक्षिणी और उत्तरी सुदूर तम जिलों के निवासिओं को अपनी निजी भाषा और संस्कार को त्याग कर इतनी दूर के छोटे से परगने की बोली और संस्कार अपनाने के लिये बाध्य कैसे कर सकी? माना कि धार के पम्मारों (उज्जैनों) का शाहाबाद जिले पर ४६७ वर्षों तक (यानी १३९० से १८५७)

आधिपत्य रहा पर इससे यह सिद्ध नहीं होता कि इस आधिपत्य का प्रभाव बलिया, छपरा, गोरखपुर, राँची, मोतीहारी तथा गोड़ाँ, बहराइच, जिलों तक इस तीव्रता से पहुँच जाय कि वहाँ वाले भी अपनी भाषा और संस्कार छोड़कर इसकी भाषा और सस्कार को अपना लें। इस जटिल प्रश्न का उत्तर इन तीनों में से किसी भी विद्वान ने देने का प्रयत्न नहीं किया है। पाठक यदि भोजपुरी भाषा भाषी जिलों के विस्तृत मान चित्र पर ध्यान देंगे तो ज्ञात होगा कि भोजपुरी शाहाबाद, बलिया, छपरा, मोतिहारी, राँची, पलामू, गाजीपुर, बनारस, मिरजापुर, आजमगढ़, बस्ती, गोरखपुर के जिलों में ही नहीं बोली जाती बल्कि गोड़ा, बहराइच और नेपाल की तराई थारू तक में भी इसने मातृ भाषा के रूप में स्थान प्राप्त कर लिया है। यही नहीं कि खाली भाषा भर ही वहाँ बोली जाती हो बल्कि वहाँ के निवासियों के संस्कार और स्वभाव तथा चाल ढाल और रहन सहन या जीवन के दृष्टिकोण भी कमी बेशी मात्रा में ठीक वैसे ही होते हैं जिसके लिये भोजपुर परगना के निवासी विख्यात हैं। किसी प्रान्त की ख्याति से आकर्षित होकर उसके अनुसार अपना नाम रख लेना एक बात है और प्रान्त के उन गुणों को जिनसे उसकी ख्याति सिद्ध है अपना कर उसी के अनुसार अपने को अपने सस्कार, चाल, ढाल, रहन सहन, स्वभाव और बोली आदि को बना लेना बिलकुल दूसरी बात है। यह तभी सम्भव हो सकता है जब उस प्रान्त से उसका घनिष्ठ सामाजिक और राजनैतिक सम्बन्ध बहुत काल तक स्थापित रहा हो।

तो जब हम ऊपर कथित पुराने भोजपुर के बसने का समय दो शताब्दी और पीछे तक जिसका ऐतिहासिक प्रमाण कुछ कुछ मिलता है मान लेते हैं तब इस जटिल प्रश्न की गुत्थी बहुत कुछ खुल जाती है। फिर इसके अतिरिक्त जगदीशपुर डुमराव के (पम्मार) राजपूतों की राज वंशावली से तथा इन पंक्तियों के लेखक के विद्वान पितामह परम्परा श्रुत गाथाओं से भोजपुर का इतिहास कई शताब्दी और पीछे चला जाता है पर उसके लिये लेखक के पास कोई लिखित मान्य प्रमाण नहीं। फिर भी जो कुछ है उसे भविष्य की जानकारी के लिये लिख देना भी आवश्यक प्रतीत होता है।

उसकी मान्यता के लिये अभी लेखक आग्रह नहीं कर सकता।

इन पङ्क्तियों के लेखक क पूज्य पितामह महाराज कुमार, नर्मदेश्वर प्रसाद सिंह कविवर 'ईश' अपने समय के संस्कृत अरबी और फ़ारसी तथा हिन्दी और इतिहास के बहुत बड़े विद्वान ही नहीं थे बल्कि आध्यात्मिक क्षेत्र में भी पहुँचे हुए व्यक्ति माने जाते थे। उनकी विद्वता और अध्ययन उनके चार ग्रन्थों से ज्ञात होता है। उनके धर्म-प्रदर्शनी नामक नीति ग्रन्थ के सम्बन्ध मे बाबू शिवपूजन सहायजी का कहना है कि हिन्दी साहित्य में यह अपना जोड़ नहीं रखता। इनकी अवस्था गदर काल में लगभग २०-२५ वर्ष की थी। वे अपने वंश परंपरागत की गाथा सदा हम लोगों को सुनाया करते थे। उनके अनुसार पम्मारों का शाहाबाद में अन्तिम बार पदार्पण करने का समय १३६८ ईसवी था। अभी उस दिन राय माधव प्रसाद पांडे, पंडा, दारागंज, प्रयाग के यहाँ जो उज्जैन राजपूतों के एक मात्र पंडा हैं, २०६ वर्ष पूर्व तक की दी हुई सनदें और उज्जैन वंश की वंशावली जिसमें लेखक के पितामह जी तक का नाम दर्ज है मिली है उसमें भी धार से पम्मारों का दावा (शाहाबाद) में जगरदेव शाह के (जैसिंह) (१३६०) आने का समय यही ८११ फसली मिलता है (यानी धार के ऐतिहासिक जगदेव (जयसिंह (४) के ऐतिहासिक निधन के १३ वर्ष पूर्व)। इसी काल में महाराज जय देव के पुत्र शान्तन शाह या स्वयं महाराज जयदेव (जयसिंह) (४) धार से शाहाबाद में बिहीआ स्टेशन के पास दावा गाँव जो जगदीशपुर से सात मील उत्तर और गंगा से ५ ६ मील दक्षिण बिहीआ ई० आई० आर स्टेशन के पास है अपने सत्ताइस तालुकेदारों और १४ अमनैक उज्जैन राज वंशावली और तवारीख उज्जैनिया तथा वंश परंपरागत गाथायें और लोक विश्वास सामन्तों के साथ आये[1] और महान मुसलमान

---

[1]जयदेव शाह ने उज्जैन से प्रवास कर भोजपूर में निवास किया। उनके तीन पुत्र थे देव, दुल्लह और प्रताप। दुल्लह (ब्लाचमैन के दल पत) डुमरॉव के राजाओं के पूर्वज हैं। नवरत्न निस्सन्देह मुसलमानी निर्माण

सन्त मकदूम शाह का जिनके दरगाह पर आज भी विहीआ में मेला लगता है आशीर्वाद पाकर यहाँ अपनी सलतनत कायम किये (देखिये 'तवारीख उज्जैनिया' तथा 'उदयन्त प्रकाश' जो बाबू उदवन्तसिंह के समय मे सम्वत् १७६६ में रचा गया था, जिसकी मूल प्रति बाबू रण विजय बहादुर सिंह दलीपुर शाहाबाद के पास आज भी वर्तमान है) उन्हीं के वरदान के स्मरण में उज्जैनो ने बायाबन्दी पहनना स्वीकार किया जो आज तक जारी है। जयदेव के पुत्र शान्तन शाह ने दावा अपना किला बनाया जो आज भी अपने भग्नावशेष में वहा पड़ा है। वहा से जगदीशपुर इनके वशज आये। जगदीशपुर ने महाराज नारायणमल्ल के समय में बिहटा और बिहटा मे मठिला और मठिला से अपने पूर्वजों की राजधानी भोजपुर के पास डुमराव में समय समय से उज्जैनो की राजगद्दी परिवर्तित होती रही। जगदेव या जयसिंह (४) से लेकर वर्तमान समय तक की क्रमबद्ध वशावली तो शाहाबाद के प्राय. सभी प्रमुख उज्जैन घरानों में प्राप्त है और उनके नाम भी सर्वत्र एक ही हैं। यह तवारीख उज्जैनिया में भी विशेष रूप मे दी हुई है। उनमे जयदेव का विक्रम वश के ३३८ वीं पीढी में होना प्रमाणित है। ता इस प्राचीन वशावली में २८० राजाओं के नाम आज भी बच रहे हैं जिसमे राजा भोज मही का नाम ६० वीं पीढ़ी में आया है और २७४ वीं पीढी मे राजा गधर्व सेन हैं जिनके ज्येष्ठ पुत्र का नाम महाराज विक्रमादित्य और छोटे का नाम राजा भरथहरी है। यही इतिहास प्रसिद्ध शकारि वीर महाराज विक्रमादित्य कहे जाते हैं। और इन्हीं का चलाया हुआ विक्रम सम्वत् भी कहा जाता है। पम्मार वश मात्र अपने को विक्रम (शकारि) का वशज कहता है। राजा भरथहरी (भर्तृहरि) का गोरखपुर जिला में होना आज भी किम्वदन्ती से हमें ज्ञात है। और भरथहरी गीत आज भी वहीं से शुरू होकर सर्वत्र भोजपुरी भाषी जिलों में गाया जाता है। जान पड़ता है

ही इस जगह की सब से पुरानी इमारत है। इंडिया एन्टीकेटरी भाग २ ब्लाचमैन्न महम्मडन हिस्टोरियन्स आन छोटा नागपूर।

भर्तृहरि गोरखपुर में आकर अपना राज अपने भाई महाराज विक्रमादित्य के आधीन ही कायम किये थे या विक्रम राज्य के इस प्रान्त के शासक यही बनाये गये थे। यद्यपि विक्रम सम्वत् के तथा स्वयं विक्रमादित्य के सम्बन्ध में आज इतिहास कार कई मत रखते हैं पर इन पम्मारों के इतिहास से वही प्रतिपादित है जो जन साधारण का युग युग का विश्वास है।

लेखक के पूज्य पितामह जी का कहना था कि उज्जैन के राजा शकारि महाराज विक्रमादित्य के समय में ही राजा भर्तृहरि गोरखपुर में अपनी राजधानी कायम करके इन प्रदेशों के शासक थे। यही बात लोक परपरागत विश्वास में भी आज तक चली आ रही है फिर इसके बाद भोज धार के महाराज प्रथम (१००६-४२ ई०) जो यहाँ शाहाबाद में आकर या अपने सामन्तों द्वारा भोजपुर नाम का शहर बसाया और उसे इस पूर्वीय प्रदेश की अपनी राजधानी बनाया। यही भोजपुर पुरनका भोजपुर के नाम से विख्यात है और इसी के नाम पर एक समय जिला था तथा वर्तमान समय में भी भोजपुर नाम का परगना मौजूद है। परन्तु महाराज भोज प्रथम (या उनके भतीजा जगरदेव) यहाँ आकर बसे नहीं थे इससे उनके उपरान्त भोजराज्य यहाँ अधिक दिनों तक नहीं कायम रह सका और सत्ता यहाँ के मूल निवासी चेरो और भुइया के हाथ चली गई। इसके बाद शान्तन शाह ने जो द्वितीय भोज के पौत्र थे उसी पुराने भोजपुर के पास अपने पितामह के नाम पर दूसरा भोजपुर मुसलमानी काल में बसाया जो आज नयका भोजपुर के नाम से विख्यात है। इसी में नवरत्न नाम का किला है। इन धार के पम्मारों ने महाराज जयदेव पुत्र शान्तनशाह के अधिनायकत्व में जो धार के पम्मार राज वंशावली के ३३८ वीं पीढी के राजा थे धार के पतन के बाद इस भू-भाग पर आक्रमण किया और यहीं दावाँ में गढ बना कर बस गये। तब से आज तक का ५४१ वर्षों का क्रमबद्ध इतिहास 'तवारीख उज्जैनिया' में वर्तमान है।

शकारि विक्रमादित्य से लेकर जयदेव शाह तक ६१ पीढियाँ और जयदेव शाह से लेकर वर्तमान महाराज डुमराँव के राजकुमार तक १९ पीढियाँ वंशावली के हिसाब से होती हैं यानी कुल ८० पीढ़ियाँ होती हैं। तो मोटे

तौर पर हिसाब लगाने से (फी शताब्दी चार पीढ़ी के हिसाब से) विक्रमादित्य से वर्तमान समय तक की ८० पीढ़ियों का समय २००० वर्ष आता है। और विक्रम सम्वत् का समय भी यही है। फिर जयदेव के ८११ फसली में शाहाबाद में आने के समय से आज तक इस वश की राज-पीढियों की संख्या १९ आती है और सम्वत् भी ५४० आता है। तो इस हिसाब से भी प्रति शताब्दी चार पुस्त के होने का मोटा हिसाब निकल आता है। इस काल के ऐतिहासिक और प्रमाणिक समय होने के कारण इस हिसाब की मान्यता सही कही जा सकती है।

तो इस इतिहास का पृष्ट-पट बना कर भोजपुरी भाषा का इतिहास अध्ययन करने से भोजपुरी के इतने जिलों में मातृ भाषा बनने तथा वहाँ वालों की रहन सहन संस्कृति और जीवन के दृष्टि-कोणों के सम समान होने की बात सहज ही समझ में आ जाती है। और भोजपुरी के सुदूर तम जिलों तक में अपनाये जाने का रहस्य भी खुल जाता है। इसमें वास्तविक तथ्य क्या है यह तो भगवान जाने। इन पंक्तियों का लेखक कोई पुरा तत्ववेत्ता नहीं है कि वह किसी खास बात को सप्रमाण सिद्ध करने का प्रयत्न करे पर इस सम्बन्ध की जितनी बातें उसे ज्ञात थीं वह पाठकों की जानकारी के लिये दे देना आवश्यक था।

कुछ भी हो यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि भोजपुरी और भोजपुर का सम्बन्ध किसी न किसी दिन इन १४-१५ जिलों के साथ घनिष्ट अवश्य रहा होगा तभी इसकी बोली और संस्कार को लोगों ने अपना लिया। साथ ही यह भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि शाहाबाद ज़िले में हरिश्चन्द्र पुत्र रोहित के बाद,जिनका रोहितास्व गढ़ का किला आज भी ससराम सब डिविजन में वर्तमान है और महाभारत के बाणासुर के उपरान्त जिसका आरा के पास मसाढ़ में आज भी गढ़ का ध्वंश वर्तमान हैं; दूसरी कोई जाति सिवाय धार के पम्मारों के (उज्जैनों) अपना आधिपत्य बहुत काल तक नहीं जमा सकी। बौद्ध काल के विहार भी शाहाबाद में कहीं नहीं मिलते गो कि शाहाबाद बनारस, गया और पटना के बीच का जिला है। फिर इस जिले में

मुसलमानों के प्रभुत्व के ह्रास का प्रतिपादन विगत पृष्ठों पर कर ही चुके हैं। तो इन बातों से भी जो सर्व मान्य ऐतिहासिक बातें हैं पूर्व कथित बातों का ही समर्थन होता है।

यहाँ यह कहना भी आवश्यक है कि इस पूर्व कथित मत को जब मैंने श्री राहुल साकृत्यायन जी को सुनाया तो उन्होंने इसे ऐतिहासिक रूप में मानने से इसलिये अस्वीकार किया कि इसके अभी पूर्ण ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिले हैं। उनकी धारणा है कि भोजपुरी भाषा बहुत पहले से यहाँ (इन जिलों में) वर्तमान थी पर जब भोजपुरी की इधर साढे पाँच सौ वर्षों तक प्रधानता एक समान अक्षुण बनी रही और वही इस बोली का केन्द्र स्थान भी पड़ता था इससे उस स्थान के नाम पर ही इतने जिलों की बोली का नाम भोजपुरी पडा। सस्कार एक होने के प्रश्न पर उन्होंने कहा कि इस भोंजपुरी भाषी प्रदेश की वीरता बौद्धकाल से ही एक समान सर्वत्र विख्यात थी। यहाँ के लोग मल्ल कहे जाते थे अतः इस प्रदेश के निवासियों के सस्कार और भाषा दोनों में साम्य होना स्वाभाविक है।

भोजपुरी भाषा का विस्तार

भोजपुरी भाषा के विस्तार और सीमा के सम्बन्ध में मि० जी० ए० ग्रिअरसन ने बहुत वैज्ञानिक और सप्रमाण अन्वेषण किया है अपनी लिंगुइस्टिक सर्वे आफ इन्डिया भाग ५ में लिखते हैं :—

"गगा से उत्तर इस भाषा (भोजपुरी) की सीमा मुजफ्फरपुर जिला के पश्चिमी भाग की मगही है। फिर उस नदी के दक्षिण इसकी सीमा गया और हजारीबाग की मगही से मिल जाती है। वहाँ से यह सीमान्त रेखा दक्षिण-पूर्व की ओर हजारी बाग की मगही भाषा के उत्तर उत्तर घूम कर सम्पूर्ण राँची पठार और पलामू तथा राँची जिले के अधिकाश भागों मे फैल जाती है। दक्षिण की ओर यह सिंधभूमि की उरिया और गगपुर स्टेट की तद्देशीय भाषा से परिसीमित होती है। यहाँ से भोजपुरी की सीमा जासपुर रियासत के मध्य से होकर राँची पठार के पश्चिमी सरहद के साथ

साथ दक्षिण की ओर जाती है जिससे सुरगुजा और पश्चिमीय जासपुर के छत्तीस गढी भाषा से इसका विभेद होता है। पलामू के पश्चिमीय प्रदेश से गुजरने के बाद भोजपुरी भाषा की सीमा मिर्जापुर जिला के दक्षिणीय प्रदेश में फैलकर गगा तक पहुँचती है। यहाँ यह गगा के बहाव के साथ साथ पूर्व की ओर घूमती है। और बनारस के निकट पहुँच कर गगा पार कर जाती है। इस तरह मिर्जापुर जिला के उत्तरीय गागेय प्रदेश के केवल अल्प भाग पर ही इसका प्रसार रहता है। मिर्जापुर के दक्षिण में छत्तीस गढी से इसकी भेंट होती है परन्तु उस जिले के पश्चिमी भाग के साथ साथ उत्तर की ओर घूमने पर इसकी सीमा पश्चिम में पहले बघेलखड की बघेली और फिर अवध की अवधी से जा लगी है।"

"गगा को पार करके भोजपुरी की सीमा फैजाबाद के जिले में सरजू नदी के निकट टाँड़ा तक सीधे उत्तर की ओर चली जाती है। इस प्रकार इसका विस्तार बनारस जिले के पश्चिमी सीमा के साथ साथ जौनपुर जिले के बीचो बीच और आजमगढ जिले के पश्चिमीय भाग के साथ फैजाबाद जिले के आरो पार फैल जाता है। टाँड़ा तहसील में इसका विस्तार सरजू नदी के साथ साथ पश्चिम की ओर घूमता है और तब उत्तर की ओर हिमालय के नीचे के पर्वतों तक बस्ती ज़िला को अपने में शामिल कर लेता है। इस विस्तृत भूभाग के अतिरिक्त जिसमें एक भाग भोजपुरी बोली जाती है, भोजपुरी थारू की जगली जातियों द्वारा जो गोंडा और बहराइच के जिलों में बसते हैं मातृ भाषा के रूप में व्यवहृत होती है।"

"इस तरह उस भू भाग का जिसमें केवल भोजपुरी भाषा ही बोली जाती है क्षेत्र फल निकालने पर ५०००० वर्ग मील होता है। इस भू भाग के निवासियों की जनसख्या जिनकी मातृ भाषा भोजपुरी है २००००००० दो करोड़ है। पर मगही और मैथिली बोलने वालों की सख्या क्रम से ६२३५७८२ और १०००००००० है। और अवधी, बघेली, बुन्देल खण्डी तथा छत्तीस गढ़ी भाषा भाषियों की सख्या क्रम से १४१७०७५०, २६००००००, ४६१२७५६, और ३३०१७८० है।"

ये सख्यायें उस समय की हैं जब लिंगुइस्टिक सर्वे आफ इण्डिया प्रकाशित हुआ था अर्थात् सन् १९०१ के पूर्व की जन गणना १६०१ ई० की जन गणना के आधार पर ही ग्रियर्सन साहब ने ठीक आँकड़े दिये हैं। और सन् १६०१ ई० की गणना में भारत की कुल आबादी २९४३६०००० के लगभग थी इस बार की सन् १६४१ की जग गणना की सख्या लगभग ३८८०००००० है। तो इस हिसाब से वर्तमान भोजपुरी भाषियों की कुल सख्या २६४००००० आती है यानी भारत वर्ष की कुल जन सख्या का १४·५ प्रतिशत भोजपुरी भाषा भाषियों की सख्या है।

फिर इन भाषा भाषियों की सख्यायों के अलावे मराठी और ब्रज भाषा बोलने वालों की सख्या क्रम से १६२१ की जन गणना के अनुसार १८७६७-८३१ और ७८३४२७४ है। इन सख्याओं के मिलान करने से हम देखते हैं कि भोजपुरी बोलने वालों की सख्या केवल उन्हीं अपनी हमजोली निकटवर्ती भाषाओं के बोलने वालों की सख्या से, जिनका लिखित साहित्य अभी तक निर्माण नहीं हुआ है बढी चढी नहीं है बल्कि इसके बोलने वालों की सख्या उन भाषाओं के बोलने वालों की सख्यायों से भी, जिनका अपना निजका साहित्य बहुत प्राचीन काल से प्रौढ है और जिनके माध्यम से शिक्षा प्रदान होती है, बहुत बढी हुई है। तो प्रदेश विस्तार और तथा बोलनेवालों की सख्या की दृष्टि से भोजपुरी भारत के अत्यधिक मान्य आठ भाषाओं जिनमें तीन तो शिक्षा का माध्यम सरकार द्वारा स्वीकृत हो चुकी है अपना स्थान सर्व प्रथम रखती है।

अभी अक्टूबर सन् १६४३ के विशाल भारत में राहुल साकृत्यायन ने ग्रियर्सन साहब के उक्त सीमा विस्तार पर शका करते हुए लिखा था कि "ग्रियर्सन का प्रयत्न प्रारम्भिक था। इस लिये उनके भाषा तथा क्षेत्र विभाग भी प्रारम्भिक थे। उन्होंने भोजपुरी के भीतर ही काशिका और मल्लिका दोनों को गिन लिया है जो व्यवहारत. बिलकुल गलत है।"

इसका उत्तर विस्तृत रूप से किसी भोजपुरी भाई ने फरवरी सन् १६४४ के विशाल भारत में देकर यह सिद्ध किया है कि राहुल जी का यह

कहना गलत है। उन्होंने श्री जयचन्द्र जी का मत, जो इस विषय के प्रारम्भिक लेखक नहीं कहे जा सकते उधृत करके लिखा है कि राहुल जी का भोजपुरी को मल्लिका नामकरण करना और ग्रियर्सन को न मानना गलत है। श्री यचन्द्र जी का मत भारतीय इतिहास की रूप रेखा से उधृत करते हैं—"भोजपुरी गगा के उत्तर दक्षिण दोनों तरफ है। वस्ती, गोरखपुर चम्पारन, सारन, वनारस, वलिया, आजमगढ, मिर्जापुर, (इसमें गाजीपुर शायद भूल से छूट गया है इसलिये हम उसे भी रख लेते हैं) अथवा प्राचीन मल्ल और काशी राष्ट्र उसके अन्तर्गत हैं। अपनी एक शाखा नागपुरिया वोली द्वारा उसने शाहावाद से पलामू होते हुए छोटा नागपुर के दो पठारों में से दक्षिणी पठार अर्थात रांची के पठार पर कब्जा कर लिया है।" जयचन्द्र जी के इस मत का समर्थन काशी विश्व विद्यालय के हिन्दी अध्यापक श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की 'वाङ्मय-विमर्ष नामक पुस्तक से भी होता है। उन्होंने लिखा है :—"विहारी के वस्तुतः दो वर्ग हैं। मैथिली और भोजपुरिया। भोजपुरिया पश्चिमी वर्ग में है और मैथिली पूर्वी में। भोजपुरिया मैथिली से वहुत भिन्न है। भोजपुरिया··· ··संयुक्त प्रदेश के पूर्वी भाग गोरखपुर वनारस कमिश्नरी और विहार के पश्चिमी भाग, चम्पारण सारन, शाहावाद, जिलों की वोली हैं। इसके 'अन्तरगत' भोजपुरी पूरवी और नगपुरिया वोली हैं।"

प० उदय नारायण त्रिपाठी जी ने भी अपनी भोजपुरी थिसिस में ग्रियर्सन के मत का ही समर्थन किया है। अतः इन उदाहरणों से राहुल जी के ग्रियर्सन के मत न मानने वाले प्रस्ताव में कोई सार नहीं रह जाता।

भोजपुरी की विशेषतायें

सभी जीवित भाषाओं की तरह भोजपुरी भी वड़ी उदार भाषा है। यह किसी भी भाषा के शब्द और मुहावरों को अपने अनुरूप बना कर अपनाने के लिये सदा तैयार रहती है। भारत के एक विस्तृत भू भाग पर ही नहीं वल्कि अफ्रिका और वर्म्मा तथा अन्य टापुओं तक में भी प्रवासी भाइयों द्वारा वोली जाने के कारण भोजपुरी की व्यापकता वहुत वड़ी चढ़ी है। इससे इसके

शब्द-कोष की निधि बहुत विशाल है। इसके उच्चारण में एक विशेष मिठास और फ्रेञ्च भाषा की तरह लोच और संगीतमय उतार चढाव होता है जिस तरह फ्रेञ्च भाषा में अनुनासिक स्वर का प्रयोग अधिक होने और शब्दों के विलम्बित उच्चारण करने के कारण उससे संगीत मय उतार चढाव की ध्वनि निकलती है उसी तरह भोजपुरी के उच्चारण में भी जगह जगह अनुनासिक स्वर के साथ शब्दों का कुछ बंगला जैसा ढीला लम्बा उच्चारण किया जाता है और इससे इसके वाक्यों के उतार चढाव में स्वर संगीतमय हो जाता है और उसका माधुर्य्य बढ जाता है।

भोजपुरी में लोकोक्तियों की बहुलता

भोजपुरी में लोकोक्ति की निधि बहुत बड़ी है। हिन्दी की प्रायः सभी लोकोक्तियाँ भोजपुरी के रूप में भोजपुरी में व्यवहृत ही होती हैं इसके अतिरिक्त अपनी निकटवर्ती भाषाओं की लोकोक्तियों में से भी जो उसे पसन्द आता है वह अपनी बनाकर उसका रूप अपने अनुकूल कर लेती है। इसके साथ ही भोजपुरी की एक खूबी यह भी है कि वह अपनी इन पुरानी निधियों परही सदा आश्रित रहती हो सो बात नहीं है। यह नित्य समय और परिस्थिति तथा घटना विशेष को ले लेकर नयी नयी लोकोक्तियों को भी बनाया करती है जिसका व्यापक प्रयोग इसके बोलने वाले तुरन्त करने लगते है। उदाहरण के लिये भोजपुरी में "ई त गाँधी बाबा के सुराज हो गइल" का प्रयोग सन् २१ और ३० के असहयोग और भद्र अवज्ञा अन्दोलन के समय से ही होने लगा है। जब किसी बात को पूरा करने की बार बार कोई प्रतिज्ञा करके काम करता है और हर बार विफल ही रहता है तब इसका प्रयोग करते हैं। उसी तरह "इहो का जोलह लूटि हटे।" का भी प्रयोग होता है। जब कोई अन्याय पूर्वक बल का प्रयोग करना चाहता है और दूसरा इसका मुकाबला करता है तब दूसरा इस लोकोक्ति का प्रयोग करता है। आरा में जो सन् १९१६ ई० के लगभग 'आरा राएट' हिन्दू मुस्लिम दगा हुआ था उसी को लेकर यह लोकोक्ति बनी। फिर 'ई त जर्मनवा के लड़ाई हो गइल" का भी प्रयोग

किसी काम के जल्द न खतम होने और अधिक हानि उठाने पर होता है। इसके अलावे रामायण की चौपाइयाँ भी लोकोक्ति की तरह प्रयोग में आती हैं।

भोजपुरी लोकोक्तियों के सग्रह की ओर अभी काफी प्रयत्न नहीं हुआ है। सन् १८८६ में बनारस से 'हिन्दुस्तानी लोकोक्ति कोष' नामक पुस्तक जो लाला फकीरचन्द आदि ने निकाली थी उसके पृष्ट २७४ और उसके आगे भोजपुरी लोकोक्तियों का सग्रह है। फिर एक सग्रह और कोई मुझे देखने को मिला था जिसका नाम मुझे स्मरण नहीं उस में भी काफी भोजपुरी ठेठ लोकोक्तियाँ थीं। अभी कुछी दिन हुए पडित उदय नारायण त्रिपाठी जी ने भी २००० भोजपुरी लोकोक्तियों को हिन्दुस्तानी ऐकेडमी की 'हिन्दुस्तानी' नामक पत्रिका में छपवाया था। परन्तु यह सख्या भोजपुरी लोकोक्तियों की बहुत छोटी सख्या है। अगर ठीक से सग्रह किया जाय तो भोजपुरी लोकोक्तियों का सग्रह बहुत बड़ा तैयार होगा। भोजपुरी प्रदेश में आज भी ऐसे ऐसे व्यक्ति मिलेंगे, मुझे भी दो एक मिले हैं जो हर वाक्य के साथ एक लोकोक्ति कहने की पटुता रखते हैं। खेती, शोक, आनन्द, उत्सव, मातम, व्यवसाय, दवा दारू, जानवर की पहचान, लड़ाई, अध्यात्म, प्रेम, नीति, आदि जितने जीवन के उपयोगी विषय हैं सब पर प्रचुर मात्रा में भोजपुरी लोकोक्तियाँ वर्तमान हैं। उनका सग्रह कर लेना अत्यावश्यक है। उदाहरण के तौर पर कुछ लोकोक्तियाँ नीचे दी जाती हैं।

जानवरों की पहचान पर

जब देखिह तू मैना, एही पार से फेकिह बैना।

जब तुम 'मैना' बैल (जिसकी सींग पागुर करते समय हिलती हो उसे मैना बैल कहते हैं) देखना तब अधिक जाँच की आवश्यकता नहीं नदी के इसी पार से बेआना दे देना।

'कइल के दाम गइल'

कइल रग के बैल की कीमत फिर वापिस नहीं होती यह नहीं खरीदना

चाहिये।

'बयल के आठ छोट' अर्थात् छोटी सींग, छोटे पाँव, छोटी पूँछ, छोटे कान वाला बैल हल के लिये अच्छा होता है।

खेती

'गहि के धरीं नात आरी पर बइठीं' खुद खेत जोतो नहीं तो मेड़ पर बैठकर खुद जोतवाओ।

'जो ना दे सोना से दे खेत के कोना' जो सोने से नहीं मिलता वह खेत के कोन से मिलता है।

'साँवन सुकला सप्तमी छिपि के उगसु भान,
तब लगि देव बरीखिहैं जब लगि देव उठान ॥'

अर्थ साफ है।

'रोहिन में घर रोहा नाहीं।'

विविध

'राम जी के माया कहीं धूप कहीं छाया"

"भर घर देवर भतारे से ठट्टा"

"भरि हाथ चूरी नात पट दे राँड"

"चाहे सैयाँ घर रहे चाहे रहे बिदेश"

"बाग में जाये ना पाईं पाँच आम नित खाईं"

"विप्र टहलुआ चीक धन, औ बेटी की बाढ"
एहू से धन ना घटे, त करे बड़न से राढ"

"ढाल छुरा तरुआरि, गैल कुँअर के साथ।
ढोल मजीरा खाँजड़ी, रहल उजैनी हाथ ॥'

अर्थात् बाबू कुँअर सिंह के साथ बहादुरी चली गयी। अब तो उज्जैनी (राजपूत जो शाहाबाद में प्रमुख हैं।) के हाथ में ढाल छुरी और तलवार के बजाय ढोल, मजीरा और खँजड़ी ही रह गयी है।

"खेत न जोतीं राढी आ भइसँ पोसीं पाड़ी" वह खेत जिसमें राढी

घास हो नहीं जोतना चाहिये क्योंकि उसको तोड़ने में और घास निकालने में बड़ी दिक्कत पड़ती है और वैसे ही भैंस के बच्चे को पाल कर तैयार करने में भी बहुत सी कठिनाइयाँ हैं इससे इन दो कामों को नहीं करना चाहिये।

"ए बकुला का लवल दीठि कतना फाटल एही पीठि।" सिंघी या टेंगना मछली बगुला को सम्बोधन करके कह रही है कि हे बक तुम क्या दीठ लगा कर मुझे ताक रहे हो मेरी इस पीठ पर अनेक जाल फट गये अर्थात् मैं तुमसे होशियार हूँ।

भोजपुरी में पहेलियाँ

भोजपुरी पहेली में भी लोकोक्ति की तरह पूरी धनी है। आज ही से नहीं बहुत प्राचीन काल से पहेली, जिसे भोजपुरी में बुझौवल कहते हैं बहुत प्रचुर रूप में भोजपुरी में पाई जाती है। प्रहेलिका के भेद निरूपण जो संस्कृत के आचार्यों[1] ने किया है उसके अनुसार यदि भोजपुरी बुझौवल की परीक्षा की जाय तो सभी भेद के उदाहरण इसमें मिल जाँयगे। यही नहीं भोजपुरी में अध्यात्म पक्ष को लेकर भी पहेलियाँ कही गयी हैं। मुझे प्राय: तीन सौ वर्ष पूर्व के संतकवि धरनी दासके, 'शब्द प्रकाश' में भी 'पेहानी प्रसंग' शीर्षक मे भोजपुरी पहेलियाँ अध्यात्म पक्ष को लेकर लिखी हुई मिली हैं। कबीर साहब और धरम दास ने भी गीतों के रूप में बुझौवल और देशकूट कहा है। जिसकी खोज होने

---

[1] रसस्य परिपन्थित्वान्नालकारः प्रहेलिका।
उक्तिवैचित्र्यमात्रं सा च्युतदत्ताक्षरादिका॥

'साहित्यदर्पण'

क्रीडागोष्ठी विनोदेषु तज्ज्ञैराकीर्णं मन्त्रणे,
परव्यामोहने चापि सोपयोग प्रहेलिका॥

'काव्यादर्श'

पर काफ़ी प्राप्ति हो सकती है। अभी प० उदयनारायण त्रिपाठी जी ने भी अक ४ भाग १२ अक्तूबर-दिसम्बर १६४२ की 'हिन्दुस्तानी' पत्रिका में भोजपुरी पहेलियाँ शीर्षक से प्रचुर सख्या में प्रकाशित कराया है। यदि कोई धुनका पक्का भोजपुरी अपनी मातृ भाषा की इन छिपी निधिओं को खोज कर प्रकाश में लावे तो भोजपुरी की निधि किसी भी भाषा की निधि से मुकाबला करने पर कम महत्व की और लघु नहीं साबित होगी। प्रश्न है केवल परिश्रम और प्रयत्न का।

उदाहरण अध्यात्म पद्य

रुख ना बिरीछ बसे ताहाँ सूगा, अग बिराजे पहिरे लूगा।
मुँह पर मासा लच्छन मान, से बूझे से खरा सेयान॥
राउ अकेले रहे खढ माहीं, आपु सवाँरे बल से छाँही।
बूझ इयारे लागे ना चोट, भीतर खधक बाहर चोर॥
नारी एक बहुतन्ह सुखदाई, पियेना पानी पेट भरि खाई।
चार महीना ताकर चाँउ, पचवें मास रहे कि जाउँ॥
जव भरिताज न गज भरि डढी, धरनी दास पेहानी मंडी।
बिना बीज एक जामल जुआरी, नाहर चले ना पारे कुदारी॥
उपजलि सघन कियारी छोटी, सात हाँथ होली ताकर रोटी।
देख इयारे अजब तमासा, कनिया लाँगट बर बहुआसा॥
एक गज पुरुस सात गज नारी, पडित होखे से लेइ बिचारी।
जूथ एक अपने मग आव, सात पाँच मिल करेले बधाव॥
घर आगन के लीहे बुलाय, हाथन मँगिहे दाम चुकाइ।
एक बसे नगर एक बसे पानी, एक घर में एक बन से आनी॥
खेड़ा भेड़ा ओदर मूहँ, आठो मीत जानि लीह तूह।
बूझ मनोहर इहो पेहानी, कहत ही मिले दूध अरु पानी॥
हाथी चढि के मोल बिकाय, उहँवा होय त देहु पठाय॥
नारि एक ससार पिआरी पाँच भतार चाह बरिआरी।

जे ना बूझे से हारे होइ, आन अग ना वाइस गोइ ॥
धरनी देखल धरनी में, एक अजूआ बात ।
सुख सुने दुख होत है, कठिन कहिओ ना जात ॥

'शब्द प्रकाश' धरनीदास ।

अन्य बुझौवलों के उदाहरण

एक ब्राह्मण इनारे पर बैठा सत्तू खा रहा था। पनिहारिन आकर पानी भर घड़ा उठाने लगी। ब्राह्मण ने कहाः—

जेकर सोरि पताले खीले, आसमान में पारे अडा।
ई वुझौवलि बूझि के त, गोरी उठाव हडा ॥

इस पर स्त्री ने प्रश्न के रूप में इस पहेली का उत्तर देते हुए दूसरी पहेली बुझाया जिसका भी यही अर्थ है।

वाप के नाँव से पूत के नाँव, नाती के नाँव किछु अवर।
ई बुझौवल बूझि के त, पाँडे उठाव कवर ॥

पास खड़ा तीसरा व्यक्ति एक तीसरी पहेली को इसी माने में बुझाकर दोनों पहेली का उत्तर देता हैः—

जे के खाइ के हाथी माते, तेली लगावे घानी।
ए पाड़े तूँ कवर उठाव, गोरी ले जासु घर पानी ॥

तीनो पहेली का अर्थ महुआ है।

एक तिरिआ बारह के बस में, वरहा लागे त आवे रस में।
खने में गरम खने में बिआय, ओकर बालम सभे सोहाय।

मोर

एक नारी बहु रगी, घर से निकले नंगी।
ओह नारी के इहे सुभाव, सिर पर नथुनी मुह पर वार ॥

तलवार

एक नारी भँवरा अस काली, विनाकान के पहिरे बाली।
विना नाक के सूँघे फूल, जतना अरज ओतने तूल ॥

ढाल

हरदी के गाव गूब, पीतर के लोटा ।
ई बुझौवल बूझ नात बानर के बेटा ॥

बेल

करिआ छड़ी लाल पहार, दाढी नोचसु बाप तोहार ।

ताड़ और उसका फल

सब पत्तन में पत्ता बड़, हवा लगे बोले खड़खड़ ।
देख ओकर जरि पातर, बुझ बुझौवल धड़ाधड़ ॥

ताड़

करिआ कुत्ती वन में सुत्ती, लाते मारे फुरदे उट्ठी ॥

ढेंकी

गीत में बुझौवल

कजरी

प्रश्न

केइएँ जे होला रे ताजिआ घोड़वा,
से केइएँ होला असवार ।
केइएँ जे होला जुलुमी सिपहिया,
केकरा (के) पकड़ि हो ले जाय ॥

उत्तर

हुकवा जे होला ताजिआ घोड़वा,
चिलम होखे ला असवार ।
सेओटा जे होखे जुलुमी सिपाहिया,
(से) अगिया पकड़ि हो लेइ जाय ॥

भोजपुरी लोक कहानी

भोजपुरी की लोक कहानियाँ अपने ढग की विलक्षण होती हैं। हर विषय की कहानी भोजपुरी में खोज करने पर मिलेगी। चाहे वह विषय देश प्रेम का हो, शिक्षा और नीति सम्बन्धी हो, धर्म और अधर्म की विवेचना

पर हो, भूत, दानव, परी, प्रेम या संयोग वियोग का हो, सब विषयों की कहानी ढूढ़ने पर भोजपुरी में अवश्य मिलेगी। और वह भी सुन्दर मुहावरेदार अलंकारिक भाषा में। प्रायः हर गाँव में दो एक कहानी कहने वाले ऐसे होते हैं जो रात में कहानी कहकर अपने गाँव वालों का मनोरंजन कर के शिक्षा दिया करते हैं। यहीं तक नहीं सहस्र रजनी-चरित्र की कहानियाँ, गुलबकावली की कहानी, सावित्री सत्यवान, प्रहलाद हरिश्चन्द; ध्रुव आदि की पौराणिक गाथाएँ भी भोजपुरी ग्रामीण कहानीकार द्वारा अपनी शैली में कही जाती हैं। उसकी भाषा इतनी मजी हुई, लोचदार, पुष्ट और मुहावरेदार तथा अलंकारिक होती हैं कि सुनने वाले का मन प्रसन्न हो जाता है। फिर संसार के प्राचीनतम बौद्ध जातक की कहानियों का तथा संस्कृत के 'मित्रलाभ' आदि कहानी ग्रन्थ की गाथाओं का रूपान्तर भी भोजपुरी में अनेक मिलते हैं। भोजपुर से बौद्धों का सम्पर्क काफी रहा है। इससे भी भोजपुरी में इन कहानियों का अनूदित होना बिलकुल स्वाभाविक बात है। पाली की 'नाम-सिद्ध जातक' नामक बौद्ध कहानी का रूपान्तर भोजपुरी में 'ठट्टपाल की कहानी' है।

ठट्टपाल नामक शिष्य ने अपने गुरु से निवेदन किया कि मेरा नाम अच्छा नहीं है। इसका अर्थ बुरा है। आप मेरा नाम बदल दें। गुरु ने शिष्य को समझाया कि नाम से गुण नहीं प्राप्त होता है। गुण तो कार्य्य से ही मिलता है। इस पर भी जब शिष्य ने हठ किया तो गुरु ने कहा कि अच्छा जाओ सर्वत्र देखकर मेरे कथन की परीक्षा करलो और तब जो नाम कहोगे वह रख दूँगा।

शिष्य ठट्टपाल जब गुरु के पास से चला तो सर्वप्रथम उसे एक स्त्री खेत में अन्न बीनते दिखाई पड़ी। नाम पूछने पर उसने अपना नाम 'लछिमिनिया' बतलाया। फिर आगे एक हरवाहे ने अपना नाम 'धनपाल' कहा। आगे जाकर उसे एक मुर्दा मिला जिसे खाट पर लादे लोग स्मशान लिये जा रहे थे। उसका नाम पूछने पर लोगों ने 'अमर' बतलाया। तब ठट्टपाल को ज्ञान हुआ और गुरु के पास आकर उसने कहा :—

"बिनिया करत लछिमिनिया के देखलीं, हर जोतत धनपाल ।
खटिया चढल हम अम्मर देखलीं, सबसे निमन ठटपाल ॥"

अर्थात् मैंने खेत में एक एक अन्न बीनते हुये तो उस स्त्री को देखा जिसका नाम 'लक्ष्मी' था और हल वह पुरुष जोत रहा था जिसने अपना नाम धनपाल बतलाया था। हे गुरु! हमने उसको जिसका नाम अमर था मरा हुआ खाट पर लदा देखा। इससे सबसे अच्छा मेरा ठट्टपालही नाम है कि जैसा यह नाम है तैसा इसका गुण भी है।

भोजपुरी का शब्द कोष

भोजपुरी का शब्द कोष यद्यपि कोष के रूप में छपकर तैयार नहीं है और न समहीत ही है पर तब भी उसकी विशालता और व्यापकता इतनी बढी हुई है कि भोजपुरी भाषा भाषी को किसी भी विषय पर अपना मत प्रगट करते समय शब्द की कमी नहीं अनुभूत होती। भोजपुरिया का जीवन स्वभावतः वीरतापूर्ण, व्यवहारिक, पौरुषमय और विविध दृष्टिकोणों वाला जीवन होता है। इससे मानव जीवन के प्रायः प्रत्येक क्षेत्र के शब्द भोजपुरी के पास अपने निजी हैं या जो नहीं हैं उन्हें वह सस्कृत, पाली, हिन्दी, अरबी, फारसी, अङ्गरेजी, बॅगला आदि भाषाओं से उधार लेकर उसे वह अपने अनुरूप उच्चारण देकर गढ लेती है। शिकार, लड़ाई, कुश्ती, हथियार, कलाकौशल, व्यवसाय, यात्रा और गृहस्थी अथवा पक्षी और उसके विविध जीवन से सम्बन्ध रखने वाले विभिन्न विभिन्न विषयों के शब्दों से भोजपुरी का कोष भरा पड़ा है। पक्षियों और जानवरों के नामः उनकी एक एक अदा, उनके उडने के एक एक ढग उनके फँसाने और शिकार के एक साधन वस्तु विशेष के नाम भोजपुरी के पास मौजूद हैं। यदि भोजपुरी का शब्दकोष तैयार किया जाय तो उससे भोजपुरी के ही शब्द भण्डार की वृद्धि नहीं होगी बल्कि हिन्दी के कोष की भी उन क्षेत्रों मे जिनमें उसके अपने शब्द कम हैं अधिक वृद्धि होने की सम्भावना है। भोजपुरी मे शब्दों की बहुलता के सम्बन्ध में निम्नलिखित छन्द से आप अन्दाजा लगा सकते हैं कि केवल

गो माता और उसके गोहन के लिये भोजपुरी में कितने शब्द हैं ।

धरनीदास कृत महराई

बिसराम

महरा के महरया भइया, गावल धरनीदास ।
मन बच करम सकल ते भैया, मोहि महरा के आस ॥

चौपाई

एक दिन मोर मन चढ़ेला पहार, गाइ के गहरि देखि वहुत पसार ।
अगनित गइया भइया गनि ना सिराइ, दहुँ दिसि गोधन रहेला छितराय ॥
वहिला गाभिन कत सारिलहइन, मन भरि भरि दूध गाई के सदेहु ॥
वाछी आछी आछी देखों वछवा वछेल, लेरुआ, वछरुआ, मगन मन खेल ॥
लाली गोली धवरी पिअरी कत कारी, कजरि, सँवरि, कहली, कवरी टिकारी ॥
कत सिंगहरि कत देखलों मुरेर, गोरुआ चरेला सव निकट नियेर ॥
तर कइले धरती जे उपर अकास, महरा रचे ला तहाँ गाइ के गो आस ॥

बिसराम

उपजल घास लहालही, सीतलि छँहरि पनिवास ।
महरा ना देखलों ओहि ठहर, चित मोरा भइले उदास ॥

चौपाई

जब लगि ना देखल गइड़ी चरवाह, जनु मन गइले जल अवगाह ॥
सोचि सोचि मनुवा रहेला मुरझाइ, तेही अवसर केहू मुरली वजाइ ॥
मुरली सुनत मन भइले खुसिहाल, रहलों भिछुक जनु भै गैली भुआल ॥
धुनि सुनि मनुवाँ ऊपर चहि गेल, ताहाँवा देखल एक अद्भुत खेल ॥
विनु रवि ससि तहाँ होला उजियार, रिम झिम मोतिया वरिसु जल धार ॥
गरज सुघन घन सुनत सोहाइ, चहुँ दिसि बिजुली चमकि चलि जाइ ॥
झरि झरि परेला सुरँग रङ्ग फूल, फूले फूले देखल भँवर एक भूल ॥
चक्र एक घुमेला उड़ेला एक साँप, नाहि ताहाँ करम धरम पुनि पाप ॥

बिसराम

ताहि पर ठाढ़ देखल एक महरा, अवरन वरनि ना जाइ ॥

मन अनुमानि कहत जन घरनी, धनि जे हो सुनि पति आइ ॥

चौपाई

पाँव दुवो पउआ परम झलकार, हुरहुर स्याम तन लाम लहकार ।
लमहरि केसिया पतरि करिहाँव, पीअरि पिछौरी कटि बरनि ना आव ॥
चनन के खोरिया भरल सब अग, धार अनगिनत बहेला जनु गग ॥
माथे मनि मुकुट लकुट सुठि लाल, झिनवा तिलक सोभे तुलसी के माल ॥
नीक नाक पतरि ललहुँ बड़ि आँखि, मुकुट मझारे एक मोरवा के पाखि ॥
कान दुवो कँड़ल लटक लट झूल, दारही गोछि नूतन जइसन मखतूल ॥
प्रफुलित बदन मधुर मुसकान तेहि छबि उपर घरनि बलि जात ॥
मन कैला दडवत भुइआँ धरि सीस, माथे हाथे धरि प्रभु देलन्हि असीस ॥

बिसराम

महरा हाथ बिकइले मनुआ, भइलींहँ महरा के दास ।
सब दुख दुसह मेटाइ गैला, साधु सघति सुख बास ॥

भोजपुरी मुहावरा

मुहावरों के प्रयोग और निर्माण में भोजपुरी लोकोक्तियों की तरह ही उदार है । ५००० भोजपुरी मुआवरों का अच्छा सकलन अभी प० उदय नारायण त्रिपाठी जी ने हिन्दुस्तानी में प्रकाशित कराया है । इसके अतिरिक्त इस सख्या से कइ गुना अधिक सख्या में भोजपुरी मुहावरे भोजपुरी भाषियों के कठ में वर्तमान हैं ।

निम्नलिखित झूमर गीत में ठेठ मुहावरों का सुन्दर प्रयोग देखिये '

मारत बा गरिआवत बा देख इहे करिखहवा मोहि मारत बा ।
आँगन कइलीं पानी भरि लइली, ताहु ऊपर लुलुआवत बा ।
अस सौतिन के माने माई, हमरा बदही बनावत बा ।
ना हम चोरिन ना हम चटनी, झुठहुँ अछरङ्ग लगावत बा ।
सात गदहा के मारि मोहि मारे, सूअर अस घिसिआवत बा ।
देखहु रे मोर पार परोसिन, गाइ पर गदहा चढ़ावत बा ।
पिअवा गँवार कहल नहिं बूझन, पनिआ में आगि लगावत बा ।

हे अम्बिका तू बूझ करिह अब, अँचरा ओढाइ गोहरावत बा ।

भोजपुरी व्याकरण

भोजपुरी व्याकरण की उदारता, सादगी और लचीलापन बहुत सुदर है। इसके व्याकरण की सबसे खूबी यह है कि इसके नियम जटिल नहीं हैं। इसमें सामयिक प्रयोग बराबर आते रहते हैं। ग्रियर्सन साहब ने इन विशेषताओं को स्वीकार कर भोजपुरी व्याकरण की प्रशसा की है। उनका कहना है कि "इसके विशेषणों के प्रयोग में लिङ्ग का विचार वगाली भाषा की तरह वहुत कम रखा जाता है। इसकी सहायक क्रिया तीन हैं। जिनमें दो का तो प्रयोग बँगला में पाया जाता है पर हिन्दी में उनका प्रयोग नहीं मिलता। मोटे तौर पर व्याकरण के स्वरूपों को माप दण्ड मान कर बिहारी भाषा (भोजपुरी, मैथिली और मगही) पश्चिमी हिन्दी और बँगला दोनों के बीच का स्थान रखती हैं। उच्चारण में इनका रुझान अधिक हिन्दी से मिलत जुलता है। कारक के अनुसार सज्ञा के रूप भेद में यह कुछ अशों में बँगल का अनुकरण करती हैं और कुछ अशों में हिन्दी का। परन्तु सबसे बडी बात इस विहारी भाषा (भोजपुरी, मैथिली, मगही) की यह है कि इनके निर्मार का वास्तविक आधार जो इनके शब्दों के उच्चारण होने में विलम्बित स्व ध्वनि है उसमें यह एक मात्र बँगला का ही अनुकरणकरती है हिन्दी क नहीं।"

फिर आगे केवल भोजपुरी व्याकरण की मगही और मैथिली के सा तुलना करके वे लिखते हैं। कि "क्रिया का काल के अनुसार रूप परिवर्त का नियम मगही और मैथिली में जटिल है पर भोजपुरी में यह उतना ही सादा और सीधा है जितना कि बॅगला और हिन्दी में है।"

भोजपुरी व्याकरण लिखने की ओर सबसे पहला प्रयत्न मि० जान बीमस् ने किया था और सन् १८६७ ई० में रायल एसियाटिक सोसाइटी में एक निबन्ध जो सन् १८६८ के उक्त पत्रिका के पृष्ठ ४८३ से ५०८ में प्रकाशित हुआ था। इसके बाद मि० जे० आर० रेड ने आजमगढ के

समय पर पड़ता रहा है। पर सुदूर का ठेठ गद्य (भोजपुरी) जो इन संसर्गों से रिक्त हैं आज भी अपनी मिठास और लोच के लिये विख्यात है।

इसके अलावे छपा हुआ भोजपुरी गद्य वह है जो पुस्तिकाओं के रूप में सरकार द्वारा समय समय पर प्रचारार्थ छपवाया गया। ये विगत तथा वर्तमान लड़ाई के अवसर पर निकाल कर बटवाये गये थे। सन् ३० या २१ के आन्दोलन के खिलाफ भी प्रचार के लिए इनको छपवा कर सरकार ने वितरण कराया था। अभी सन् १६४२-४३ में श्री राहुल सांकृत्यायन जी ने कई नाटक कम्यूनिष्टों के मत के प्रचार में निकाला है। इसके पूर्व भिखारी ठाकुर का बिदेसिया नाटक भी छपकर बहुत सख्या में वितरित हुआ था पर पठित और संस्कृत समुदाय के लिये सुरुचि पूर्ण नहीं है।

भोजपुरी पद्य

भोजपुरी मे गद्य की तरह पद्य साहित्य भी है। भोजपुरी का पद्य साहित्य बहुत सुन्दर और विशाल है परन्तु वह अभी तक प्रकाशित नहीं किया गया है। वह आज भी २६४०००० भोजपुरी भाषी नर नारियों के कण्ठों में निवास करता है। वहा उसका अपना रग निराला है। वेद भी तो कभी इसी तरह स्मरण रखे जाते थे। भोजपुरी गीत और उसके काव्य की प्राचीनता का ठीक ठीक आकना बड़ा कठिन कार्य है। फिर भी बहुतों का समय वर्णित घटनाओं के आधार पर या विषय में दिये हुए उपमाओं से निकाला जा सकता है। पर दुःख की बात यह है भोजपुरी की यह पुरानी निधि जिसके लिये प्रत्येक भोजपुरी को गर्व है बहुत शीघ्रता पूर्वक वयोवृद्ध नर नारिओं के जीवन विशेष के साथ साथ नित्य प्रतिनित्य नष्ट होती चली जा रही हैं। इनका शीघ्राति शीघ्र सकलन यदि नहीं हो जाता तो इस विज्ञान युग की चकाचौंध मे नई पीढी की क्षमता और अभिरुचि ऐसी नहीं प्रतीत होती कि इन्हें स्मरण रख कर वे अपनी दूसरी पीढी को इसी रूप में दे सकेगी। उसके आमोद प्रमोद के तरीके और सामग्री बिल्कुल दूसरे रग के होते चले जा रहे हैं। उनकी इस परिवर्तित अभिरुचि में इस निधि की रक्षा ऐसी ही होती

रहेगी यह मानना कठिन है। अतः इस निधि को शुद्ध रूप में सकलन कर छपा लेने पर ही भोजपुरी के पद्य साहित्य की रक्षा हो सकेगी और वह विद्वानों के सामने रखी जाने लायक वस्तु समझी जायगी।

भोजपुरी कवि और काव्य

भोजपुरी भाषा भाषी प्रदेश मे सदा कवि होते आये हैं। काशी इसके लिये विख्यात है। इस क्षेत्र में उसका अपना अलग ढग है। सस्कृत और हिन्दी के वड़े वड़े विद्वानों और कवियों का जन्म और निवास स्थान भोजपुरी भाषी प्रदेश को होने का सौभाग्य प्राप्त है। हिन्दी के वडे कवियों में हम सर्व प्रथम कवीर, तुलसीदास, धरनीदास, धरमदास, दुलमदास, शिवनारायण, घाघ, मह्लुरी, रोहित, हरिश्चन्द्र, गिरधरदास आदि का नाम ले सकते हैं जिन्होंने हिन्दी और भोजपुरी दोनों में कमी वेशी मात्रा में लिखा है। इनके अतिरिक्त हिन्दी के वे कवि भी जिनका भोजपुरी से उतना सम्वन्ध नहीं था जैसे सूर, मीरा, विद्यापति आदि ने भी भोजपुरी में कहा है। इन प्राचीन वड़े प्रसिद्ध कवियों के अलावा अज्ञात कवियों ने भी अत्यधिक मात्रा में भोजपुरी के काव्य भण्डार को भरा है। इनके रचे विना नाम के छन्द, गीत, भजन, वानी, निर्गुन, जँतसार, सोहर, झूमर, सहाना, वारहमासा हजारों हज़ार की सख्या में भोजपुरी भाषी नर नारी के कण्ठों में आज वर्तमान हैं। इन वड़े प्राचीन ज्ञात और अज्ञात कवियों के अलावे मध्यम श्रेणी के ज्ञात और अज्ञात कवियों की सख्या भी कम नहीं है। पर इनमें अधिकाश के नाम तो विस्मृत हैं। उनकी रचना भर यदा कदा पाई जाती हैं। इस श्रेणी में से कुछ के नाम ये हैं:—तेग अली 'शेर' वनारस, अम्विका प्रसाद मोख्तार आरा रामोदारदास, आरा, तोफाराय, छपरा आधुनिक काल में हिन्दी के वे सभी कवि और लेखक जिनका जन्म भोजपुरी क्षेत्र में हुआ है उनकी भाषा भी यही कही जा सकती है।

भोजपुरी कवि अपनी कविता का विषय अधिकतर राष्ट्र और देश प्रेम, सत्य और धर्म या समाज को वनाया करता है। वह अपनी कवित्व शक्ति का

प्रयोग चतुर्मुखी विषयों पर करता है। कठिन और आपद के दिनों में तो न जाने कहाँ से भोजपुरी कवि की कवित्व शक्ति जाग उठती है। वह हँस हँस कर अपनी नव रचित कविता का पाठ करता है और हँसी, मजाक, व्यग, आदि में ही परिस्थिति की कठिनाई या विपत्ति या जुल्म की गुरुता को सह्य और लाघव बना देता है। पत्थर इतने जोर का पड़ा कि खड़ी फसल नष्ट हो गयी, तुफान आया और फला फलाया आम गिर कर ढेर हो गया। लोग दु:ख मनाने चले तो फौरन भोजपुरी कवि अपनी नव रचित व्यगात्मक तथा हास्य पूर्ण कविता में सान्त्वना प्रदान करने और हिम्मत बँधाने के लिये घर से बाहर निकल आया और गाने लगा। बस एक गाँव से दूसरे गाँव तक तार की तरह वह कविता बात की बात में हजारों कण्ठों से गा ली गयी। कोई लड़ाई हुई, कोई दगा हुआ, कोई स्त्री सती हुई या ऐसी ही कोई असाधारण घटना घटते देर नहीं हुई कि भोजपुरी कवि अपनी कविता उस पर उसके गुण दोष के साथ, व्यग्य और हास्य तथा करुण रस में सुनाने को तुरत तैयार मिलेगा। विगत अगस्त सन् १६४२ के गोली काण्डों के समान भीषण दमन के अवसरों पर भी सैकड़ों भोजपुरी कवितायें हास्य, व्यग्य और प्रोत्साहन के रूप में अज्ञात जन कवियों द्वारा हँसते हँसते कह डाली गयीं। '५७ के विद्रोह को लेकर भी सैकड़ों गाने रचे गये और वे आज तक भी गाये जा रहे हैं। कांग्रेस आन्दोलन के अवसरों पर भी गाँधी जी की हर लड़ाई को लेकर सैकड़ों गाने रचे गये और गाये गये। सन् २१ से ३० तक के हर कांग्रेसी जत्था को 'चलु भैया चलु भैया सब जने हिल मिल, सूतल जे भारत के भाई के जगाई जा' वाला गीत गाना फर्ज सा हो गया था। वैसे ही मनोरजन जी रचित फिरंगिया गाना भोजपुरी में बहुत प्रसिद्ध है जिसका एक चरण है :—

'भारत के छतिया पर भारत बलकवा के बहेला रकतवा के धार रे फिरँगिया ॥'

इन्हीं गुणों को देख करके ग्रियर्सन साहब ने सन् १८८६ ई० के 'ग्रेट ब्रीटेन और आएर लैण्ड' की 'रायल एशियाटिक सोसाइटी' की पत्रिका के पृष्ठ २०७ से २१४ तक में शाहाबाद के बिरहों का उद्धरण पेश करते हुए लिखा है :—

"जैसी कि आशा की जा सकती है उसके ठीक प्रतिकूल भोजपुरी काव्य में वीरत्व के आदर्श राम का वर्णन मथुरा के गोपालक कृष्ण के वर्णन से अधिक पाया जाता है। इसका एक मात्र कारण इन गायकों के चतुर्दिक का वातावरण है। शाहाबाद का जिला जिसमें ये गायक रहते हैं वीर गाथाओं और वीर गीतों की बहुलता में द्वितीय राजपुताना कहा जा सकता है। यह भूमि उस भगवती नाम्नी राजपूतिन के रक्त से पवित्र की हुई भूमि है जो मुसलमानों से अपने भाई को बचाने के लिये तालाब में डूब मरी थी और यह भूमि विख्यात महोबा वीर आल्हा ऊदल की जन्म भूमि है......इसके अन्तिम दिनों में भी वीर हृदय वृद्ध कुँअर सिंह ने शाहाबाद के राजपूतों का राज विद्रोह के दिनों में अंग्रेजों के विरुद्ध नेतृत्व किया था। यह देश वीर और लड़ाके पुरुषों का देश है और इसीलिये इस भूमि के देवता अयोध्या के राम हैं मथुरा के कृष्ण नहीं।"

भोजपुरी काव्य

भोजपुरी काव्य में कई एक गाने तो गाथा के रूप में बहुत बड़े हैं जिनको अंग्रेज विद्वानों ने जातीय काव्य का नाम दिया है। इनमें हैं लोरिकी, बनजरवा, नयकवा, आल्हा, ढोलन, भरथरी, सावन, गोपी चन्द आदि आदि। इनमें से दो एक का अनुवाद मगही में भी हुआ है। ये गीत कुछ तो संग्रहीत होकर अंग्रेज विद्वानों द्वारा छपे हैं, कुछ प्रकाशकों द्वारा भी छपकर बाजार में बिकते हैं। और कुछ अभी तक अप्रकाशित ही हैं। इनके अलावे शिवजी के व्याह, राम जी के व्याह आदि पौराणिक गाथाओं को लेकर भी 'साइयों' द्वारा सारंगी पर भिक्षाटन करते समय, अनेक गाने सुनने में लेखक के आये हैं। शिवजी का व्याह तो इस संग्रह में ही उद्धृत भी हैं। इनके अतिरिक्त भोजपुरी में छन्दों की भी रचना काफी है जिनमें गिरधर दास की लाठी वाली कुंडलिया तो प्राय. हर लट्ठ धारी भोजपुरी की जबान पर रहती है। इस कुंडलिया को उद्धृत करते हुए ग्रियर्सन ने इसको भोजपुरी राष्ट्रगान के नाम से सम्बोधित किया है। फिर वीर बाबू कुँअर सिंह पर भी अनेक छन्द और गीत लेखक को

मिले हैं। आज तक जितने काव्य प्रकाश में आ चुके हैं उनकी नामावली यहाँ दे देना अनुचित नहीं होगा।

(१) बंगाल ऐशिआटिक सोसाइटी की पत्रिका सं० ३ सन् १८८३ ई० के पृष्ठ १ और आगे पर एच० फ्रेजर ने पूर्वीय गोरखपुर जिला के कई लोक-गीतों को छपवाया था।

(२) जी० ए० ग्रियर्सन ने राएल एसिआटिक सोसाइटी की पत्रिका सं० १६ सन् १८८४ भाग १ पृष्ठ १९६ में 'चन्द बिहारी लोक गीत' शीर्षक से भोजपुरी गीतों को प्रकाशित कराया था।

जी० ए० ग्रियर्सन ने आल्हा के विवाह के गीतों को इण्डिअन ऐन्टी-क्वेरी सं० १४, १८८५ पृष्ठ २०९ और आगे प्रकाशित कराया है।

उक्त लेखक ने 'गोपीचन्द के गीत के दो पाठ' शीर्षक से बंगाल एशिआटिक सोसाइटी की पत्रिका सं० १८८५ भाग १ के पृष्ठ ३५ और आगे गोपीचन्द गीत छपवाया है।

उक्त लेखक ने जर्मन भाषा की एक विख्यात पत्रिका में सन् १८८९ में 'भोजपुरी भाषा' और 'नयका बनजरवा के गीत' नामक शीर्षकों से भोजपुरी काव्य प्रकाशित कराया था।

लाल खड्ग बहादुर मल्ल महाराजधिराज ने 'सुधाबुन्द' बाँकीपुर १८८४ में साठ कजरी गीतों का संग्रह प्रकाशित कराया था।

पण्डित देवीदत्त शुक्ल ने देवासुर चरित्र नामक नाटक में दृश्यों का वर्णन भोजपुरी गद्य में ही लिखा है जो बनारस से सन् १८८४ में प्रकाशित हुआ था।

पं० देवीदत्त शुक्ल ने 'जंगल में मंगल' नामक पुस्तक में बलिया के किसी तत्कालीन घटना का संक्षिप्त विवरण भोजपुरी में ही दिया था जो बना-रस से १८८६ में छपी थी।

पं० राम गरीब चौबे ने 'नागरी विलाप' नामक पुस्तिका भोजपुरी में ही लिखी जो सन् १८८६ में बनारस से छपी थी।

एस० डब्लू० फैलन० कैप्टन आर० सी० टम्प और लाला अमीर चन्द ने हिन्दुस्तानी लोकोक्ति कोष नामक पुस्तक में जो १८८६ में बनारस से छपी थी पृष्ठ २७४ और आगे पर भोजपुरी लोकोक्तियों का संग्रह छपाया था।

बनारस के मशहूर बदमाश तेग अली 'शेर' का-रचा हुआ 'बदमाश दर्पण' नामक काव्य पुस्तक भोजपुरी में सन् १८८९ में बनारस से प्रकाशित हुई थी।

भोजपुरी काव्य में वीर रस

भोजपुरी में वीर रस की कविता की बहुलता है। पहले के विख्यात काव्य आल्हा, लोरिक, कुअरसिंह और अन्य राज्य घरानों के पँवारा, आदि तो हैं ही, पर इनके साथ साथ हर समय में सदा नये नये गीतों, काव्यों की रचना भी होती रही है और आज भी हो रही है। विरहा छन्द जहाँ शृङ्गार और विरह के लिये विख्यात है वहाँ वीर रस के लिये भी पूरा प्रसिद्ध है। इस सम्बन्ध में ग्रियर्सन के मत का उद्धरण आगे हो ही चुका है। वीर रस के नमूने नीचे उद्धृत हैं :—

भोजपुरिओं का राष्ट्रीय गीत जो १८५७ के राज विद्रोह से आज तक गाया जाता है।

फाग

(१)

बाबू कुँअर सिंह तोहरे राज बिनु,
अब न रँगइबों केसरिया ॥
इतते अइले घेरि फिरंगी,
उतते कुँवर दुइ भाई ॥बाबू०॥
गोला बरूद के चले पिचकारी,
बिचवाँ में होत लड़ाई ॥बाबू० ॥१॥

(२)

बाबू कुँवेर सिंह के पवाँरा के कुछ अंश

बाबू कुँअर सिंह पच्छिम से जब पयित कइले,
पयना में डेरा गिरवले ना
लोहा के जामा सिअवले कुँवर सिंह,
तम्मन बन्द लगवले ना
ढाल तरुवरिआ के कवन ठिकाना,
। गोली दरजिया खाये ना
ए-ए-ए—ओही दिन सँगवा उन्हकर केहू ना दिहले,
जगदीशपुर ना होइत फिरगिया राज ।।२

(३)

दूसरा पँवारा

भर भोजपुर में कुँवर बिरजले, रीवाँ रहल सरनिया नू ।।
हाट बजरिया कवन बिसारे, के कहल सब गुनवा नू ।।
बेतिआ अवरू दरभगा बाड़े, आउर बाड़े टेकारी नू ।।
जैपुर जोधपुर दूर बसेले, छोटे राजा मझवली नू ।।
भोजपुर मे डुमराँव बसेला, उहाँ बाड़े फिरगिये नू ।।
सबे बिसेन मिलि धुसे लुकइले, बाबू परला अकेला नू ।।
जल्दी से जरि कागज मगाव, जल्दी पुरजा लिखाव नू ।।
पूरब दिसा कलकत्ता बसेला, उहाँ लाट सहेबवा नू ।।
सब दिन मनलन मोर हुकुमवा, आजु सरवे रोकलनु नू ।।
परयागजी मे उतरे सिपहिया, सब के कुरसी दिहलसि नू ।।
उहाँ से चिट्ठी जगदीस पुर अइले, सुनि ल अमर सिंह भाई नू ।।
पतिया देखि अमर सिंह रोअले, छाती मूका मरलनि नू ।।
होवे सवारी कुँअर अमर सिंह, बिज्जू घोरा कसवलनि नू ।।
उहाँ से डेरा टेकारी में दाखिल, रानी अकेल बिचारे नू ।।
बाबू साहब गुनावन करीला, अबका करीह अम्मर नू ।।

हिन्दू खातिर हम विगड़ली, हिन्दू-दिहल पचे लतिया नू ॥

इस पँवारा में उस समय की राजनीतिक परिस्थिति के दृष्य का वर्णन है जब तमाम भारत में विद्रोह शान्त हो गया था और सब राजेमहाराजे अंग्रेजों का साथ देने लगे थे और अकेले कुँअर सिंह और अमर सिंह विद्रोह जारी रखने में तल्लीन थे। उस समय की परिस्थिति इस पँवारे में है।

(४)

विरहा

बाबू बनवाँ बनवाँ खेले ले सिकरवा।
रोवे लो बनवा के हरिनिया ॥
पहिल लड़इया बाबू हेतम पुर भइली।
रजवा बहेलिया दिहले ना ॥
ए ए ए...सतरह सै सत्तासी मउजा कुछुओ न बूझले।
गढ लुटवाई दिहले ना ॥

'रजवा बहेलिया दिहले ना' डमराँव राज्य ने गदर में अँग्रेजों का साथ दिया था उसी से अर्थ है। बहेलिया = बन्दूकदार शिकारी

(५)

बाबू कुँवर सिंह के नीलका बछेड़वा,
पीअले कटोरवन दूध ॥
हाली हाली दुधवा पिआई ए कुँवर सिंह,
रयनि जाये के बाड़े दूर ॥
अबकी रयनिया जिताव नीला बछेड़वा,
सोनवें मढइबों चारू खूर ॥

(६)

देवी के गीत में भी वीर रस स्त्रियाँ गाती हैं। वीर भोजपुरी मातायें कातर बनकर देवी के सामने भी नत मस्तक होना नहीं चाहतीं।

मो पर दाया काहे ना करती ?
श्री जगदम्ब भवानी हो ! मोपर दाया काहे ना करतीं ?

बायें हाथे खप्पर बिराजे,
दहिने में तिरसूल ।।
दानव दैत दल मलमल करती,
झपट झपट के लड़ती ।। श्री जगदम्ब० ।।
जोड़ि जाड़ि के जुड़ा सँवरती,
सिंघ ऊपर लड़तीं ।
खप्पर भरि भरि लोहू पीअतीं,
जोगिन संग बिहरती ।। श्री जगदम्ब० ।।

(७)

जै जै करत महल बिखे पइसे ली,
ए भवानी हो ! राउर महिमा अगम अपार ।
ए दुखहरिन हो ! राउर महिमा०
ए गोद भरनि हो ! राउर महिमा० ।।१।।
बाये हाँथे खप्पर सोभेला, दहिना में तिरसूल,
ए भवानी हो ! राउर महिमा अगम अपार ।।२।।
छप छप कटलीं गदागद ओड़लीं,
ए भवानी हो ! राउर महिमा अगम अपार ।।३।।
बाघिनी के रूप धरि सत्रु मासु भछनी,
ए भवानी हो ! राउर महिमा अगम अपार ।।४।।

(८)

वर्तमान राष्ट्रीय आन्दोलन को लेकर भी वीर रस के सैकड़ों गीत बने हैं और आगे भी बन रहे हैं :—

चलु भैया चलु आजु सभे जन हिल मिल,
सुतल जे भारत के भाई के जगाई जा ।।१।।
अमर के कीरति बड़ाई दादा कुँवर के,
गाइ के सुतल चलु जाति के जगाई जा ।।२।।

देसवा के वासिन में नया जोस भरि भरि,
मुलुक में आजु, नया लहर चलाईं जा ॥३॥
मियाँ सिख हिन्दू जैन पारसी क्रस्तान मिलि,
लाजपत खूनवा के बदला चुकाईं जा ॥४॥
सात समुन्दर पार टापू मे फिरगी रहे,
इनका के चलु इनका घरे पहुँचाईं जा ॥५॥
गाँधी अइसन जोगी भैया जेहल में पड़ल बाटें,
मिलि जुलि चलु आजु गाँधी के छोड़ाईं जा ॥६॥
दुनिया में केकर जोर गाँधी के जेहल राखे,
तीस कोटि बीच चलु अगिया लगाईं जा ॥७॥
ओही अगिये जरे भैया जुलुमी फिरगिया,
से मुलुक में चलु फेनि राम-राज लाईं जा ॥८॥
गाँधी के चरनवाँ के मनवा में ध्यान धरि,
असहयोग व्रत चलु आजु से चलाईं जा ॥९॥
बघवा का पजवा में माई हो परल बाड़ी,
चलु बाघ हाँकि आजु माई के छोड़ाईं जा ॥१०॥
विपति के मारल माई पड़लि बा बेहोस होइ,
माई दुखवे खातिर चलु गरदन कटाईं जा ॥११॥
राज लिहले पाट लिहले धरम के नास कइले,
चलु अब फिरंगिया से इजति बचाईं जा ॥१२॥
तीस कोटि आदमी के देवता जेहल राखे,
इनका के चलु ओकर मजवा चखाईं जा ॥१३॥

यह गीत '२१ और '३० के राष्ट्रीय आन्दोलन में भोजपुरी बच्चा बच्चा द्वारा ही नहीं गाया जाता था बल्कि बिहार के अन्य भाषा भाषी जिलों में और यू० पी० के पूर्वीय जिलों में प्रायः हर जलूस के साथ इस गाने का गाया जाना अनिवार्य्य था। 'जेल में भी न रखणी सरकार जालिमै' के पंजाबी गीत की तरह हर मौका पर यह हजारों कैदियों द्वारा एक साथ एक स्वर में गाया

जाता था। इसके रचयिता हैं सरदार हरिहर सिंह शाहाबाद के। इसी तरह भोजपुरी का फिरंगिया गाना भी मशहूर है पर खेद है उसकी प्रति अभी तक मुझे नहीं मिली है उसका एक चरण है :—

"भारत का छतिया पर भारत-वलकवा के
वहेला ररतवा के धार रे फिरंगिया।"

भोजपुरी में हास्य रस और व्यंगोक्ति

भोजपुरी में व्यंग्य और हास्य रस कहने की प्रथा बहुत प्राचीन है। इस रस में भी भोजपुरी का भाण्डार सुन्दर है। भोजपुरी कवि गम्भीर से गम्भीर विषय पर और विकट से विकट परिस्थिति में भी हास्य रस कहने की सहज क्षमता रखता है और समय आने पर बिना कहे बाज़ नहीं आता। जिस लाघवता से वह विकट सकट की परिस्थिति को ग्रहण करके श्रोता को साहस प्रदान करके हँसा देता है यह उसकी कविता सुनने ही पर ज्ञात होता है। इससे उसके हृदय की निर्भीकता तथा बहादुरी साफ साफ प्रगट हो जाती है। शिवजी के दाम्पत्य जीवन को लेकर भोजपुरी मे काफी हास्य मिलेगा:—

महाकवि विद्यापति जी रचित विनोद

(१)

देखि हम अइलों गउरी तोर अँगना ॥
खेतीन पथारी सिवका गुजर एकोना।
मगनी के आस बाटे बरिसो दिना ॥
पड़ँच उधार लेवे गैलों अँगना।
सम्पत्ति देखल एक भाँग घोटना ॥
भनहिँ विद्या पति सुनुऊमना।
सकट हरन करु अइली सरना ॥

(२)

बाजत आवेला ढोल दमामा, उड़इत आवेला निसान।
सिव जी का माथे डुगडुगिया सोभे, बएल पर असवार ॥

परिछे वहर भइली सासु मदाकिन, सरप छोड़े ला फुफुकार ॥
लोर्हा पटकलिन सूप पेंवइलिन, पाछा पराइल जाइ ।
ए सिव गउरा अइसन सूनरि, सदा सिव तेकर वर वउराह ॥

× × ×

ये शिव के गीत मुझे अपनी पूजनीया पितामही जी से मिले हैं। इनकी भाषा की गम्भीरता से तथा पितामही जी के कथन से इनकी प्राचीनता प्रमाणित है।

भिखारी ठाकुर के हास्यविनोद के गीतों का भोजपुरी जनता में बहुत प्रचार है।

मोतिहारी के प० श्याम बिहारी तिवारी 'देहाती भोजपुरी' हास्य रस के वर्तमान सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। बिहार के प्राय. हर कवि सम्मेलन में आपकी उपस्थिति अनिवार्य सी समझी जाती है। श्री 'दिहाती' जी का हास्य और व्यग्य बहुत गंभीर, वामानी, कवित्व पूर्ण चुभता हुआ, महावरे दार होता है। किसी भी कवि सम्मेलन में इनके उठते ही ताली पिटने लगती है। और आपके हर छन्द पर श्रोता हँसते हँसते लोट जाते हैं। आप सदा भोजपुरी में ही और हास्य और व्यग्य को ही लेकर लिखते हैं। आपका विषय सामयिक तथा सामाजिक राजनीतिक होता है।

मोतिहारी में जो बिहार प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर कवि सम्मेलन हुआ था उसमें दिहाती जी ने निम्नशीर्षकों पर कविता सुनायी थी।

देहाती पोलाव

छुपले वा

'छुपले वा' भोजपुरी मुहावरा है। छापना=ढकने के अर्थ मे प्रयोग होता है या अन्धा वना देना भी इसका अर्थ होता है।

उनका दिमाग में त हर घरी, अन्हेर छुपलेवा।
गोलिओ कइसे मारसु ऊ, नीचे ऊपर शेर छुपलेवा ॥१॥
ए सिव गउरा अइसन सुनरि, सदा सिव तेकर वर वउराह ।

बात कइसे बुझब, अरे कुछऊ त पढ ।
मकई कइसे होई सउसे, खेत त जनेर छुपले बा ॥२॥
केहू का हुरकवला से, कहीं तितिर मिली ।
उनका मन में त हर घरी, बटेर छुपले बा ॥३॥
घर में टुइये त ठहरलीं ओही मे चलता डटा ।
हमनी के कवनो भूत घरे घेर घेर छुपले बा ॥४॥
अपने में काटा कूटी करीं नीमने नू बा ।
अरे अइसन नू हमरा घर में अन्हेर छुपले बा ॥५॥
हमरा सरकार का बदलते बदल गइल कपड़ा ।
सुराज के मोह त उनका अनेर छुपले बा ॥६॥
बाबा का ओझाइओ पर छूत के भूत ना भागल ।
बभन झोंझ होते रहे दोसर बभन फेर छुपले बा ॥७॥
बडकी कोठी मे गइनी बइठि गइनी भुँइये ।
गलइचा काहाँ सूझो ? आँख में त नरक पटेर छुपले बा ॥८॥
'लोरिका' 'मन विहुला' छोडी अब आल्हा गाई ।
हमार रोटी त आके कवनों दिलेर छुपले बा ॥९॥
भगवान करसु ऊ दिन कब देखबि ।
अजमेर काशी काशी अजमेर छुपले बा ॥१०॥
छवे महीना जो अबि धुरुव तारा नइखे लउकत ।
भाग के बात इ आँखें में उलट फेर छुपले बा ॥११॥
जल्दी चल जा घरे जा त घेरा जइब ।
देख होदे पच्छिम में घटा घनेर छुपले बा ॥१२॥
गरीब हईं एह से का ? अइसन बात मत बोलीं ।
अकेले का रउरे घर में सबेर छुपले बा ॥१३॥
चूप रहीं बात नइखीं बूझन, मत बोलीं ।
बोले के झाड़ा त रउरा अनेर छुपले बा ॥१४॥
सम्मेलन के कवि सम्मेलन के बाद 'दिहाती' जी को स्काउट कमि-

श्नरी नाम के वनेली राज्य के बँगला में वहाँ वाले ले गये। वहाँ की टी पार्टी पर आपकी कविता सुनिये .—

काका देखनी

का कही केतना देखनी, का का देखनी।
भीतरी ना देखनी, वाहर के लिफाफा देखनी ॥१॥
टिंकात नीमन रहे, खूब मजा आइल।
समेलन में त अजवे अजव तमासा देखनी ॥२॥
'छपले वा' छाप गइल सव करा मन पर।
दोसरो दिन रहनी गाली झोंझ खुलासा देखनी ॥३॥
अइला पर पूछल लोग, वोल का का देखल।
के झोंझ करो, कहि देहनी लाई अउरी वतासा देखनी ॥४॥
घिसि अवले ले गइल लोग स्काउट कमिश्नरी में।
वड़की कोठी देखनी भीतर के नकाशा देखनी ॥५॥
अरे भाई! अइसन सत्कार कतहूँ ना मिलल।
देहातिओं का साथे खाये के तकाजा देखनी ॥६॥
आगे टेवुल आइल। वूझनी यही पर नूघ के पढ़वि।
आहि वाल! ई का!! सामने छूरी अउरी काँटा देखनी ॥७॥
जे जे आइल धइले गइलीं गोलक में।
पानी मिलवे ना कइल इहे एगो घाटा देखनी ॥८॥
मन में आइल के खाउ काँटा से देरी होई।
एक ससिये मारि दहनी ना आगा देखनी ना पाछा देखनी ॥९॥

शाहावाद जिला के सरदार हरिहर सिंह की वीर रस की कविता आगे दे चुके हैं। मुजफ्फरपुर के साहित्य सम्मेलन के अवसर पर आपने एक हास्य रस कहा था। उसके कुछ चरण सुनिये। आप राजपूत हैं और उस जिले में रिस्तेदारी भी है? सम्मेलन मे कुछ सम्वन्धी प्रस्तुत थे। अतः इस रूप

में उन्होंने हास्य कहा :—

देखलीं भइया तिरहुत देस.
उजबक मरद मउगा मेस ॥
एतना दुर से चल के अइलीं,
आम दही एको ना पवलीं ॥
नचलन गवलन तुरलन तान,
ना दिहले भोजन ना जलपान ॥

'भोजपुरी में शृंगार रस'

शृङ्गार रस के गीतों का उद्धरण प्रस्तुत संग्रह में प्रचुर मात्रा में आ चुका है। भूमिका की काया वृद्धि भी काफी हो चुकी अतः इस रस के उदाहरण के गीतों को पाठक संग्रह में ही देखने का कष्ट उठावें। शृङ्गार रस के काव्य से भोजपुरी का भण्डार बहुत धनी है।

'भोजपुरी मे शान्त रस'

शान्त रस का भण्डार भी भोजपुरी का पूरा भरा है। प्रायः सभी बडे कवियों ने इस रस में भोजपुरी में अवश्य कुछ न कुछ कहा है।

अपनी पूजनीया पितामही जी से प्राप्त

(१)

जॅउ हम जनितों सीतलि अइहें अँगना, भवानी अइहें अँगना,
चनने ए लिपइतों लिपइतों घर अँगना ॥
खन खेले आँगन मैया खन खेले घर हो, घूमि घूमि हो,
ए खेले ली देवी अँगना घूमि घूमि हो ॥
गोड़ के पैजनियाँ देवी रुनु बाजे अँगना झुनु बाजे अँगना,
झूमि झूमि हो ए खेले ली देवी अँगना ॥
कथि केरा हउए रउरा खाट खटोलना अवरू मचोलना,
कथि छुने ए लागेला लागेला चारु पावना ॥

रूपे केरा हउए खाट खटोलना अवरू मचोलना सोने छुने,
ए लागेला लागेला चारु पावना ॥
तेही पर सूते ली देवी हो सीतलि मैया, घूमि घूमि ए,
सोएली सोएली देवी अँगना घूमि घूमि हो ॥

(२)

बाबू अम्बिका प्रसाद आरा में मुख्तार थे। इनके अनेक गीत हैं। शान्त रस के नमूने ये हैं।

देखलीं में सखिया एक कल के खेलवना रे,
पाँच पचीस कलवा लागल रे की ॥
तीन सौ साठि तामें लगली लकड़िया रामा,
नवसव जोडवा बाँधल रे की ॥
दुइ रे सहेलिया मिलि खेलेली खेलवना रामा,
तीनो रे खेलरुवा तेही सगवा धावेला रे की ॥
नव रे महीनवा में बनेला खेलवना रामा,
खेलवा मेटत देर ना लागेला रे की ॥
'अम्बिका' कहत है समुझि खेलु गोरिया रामा,
खेलवा के भेदवा गुरु से पावल रे की ॥

(३)

कबीर दास के शिष्य धरम दास का गाया हुआ कबीर का भजन

सोहर

जाके दुवरवा जमिरिया से कइसे सोएली हो,
ललना, महर महर करे फूल नीदरिया नाहीं आवेली हो ॥
काटों में पेड़ जमिरिया त पलँगा बिनाइबि हो,
तेहि पर सोवें मोरा साहेब त बेनिया डोलाइबि हो ॥
सासु मोरी सुतेली अटरिया ननद गज ओबरि हो,
ललना सैयाँ मोरे सुतेले धवरहरिया, मे कइसे जगाइबि हो ॥
उठ मोरी लहुरी ननदिया, तुही ठकुराइन हो,

|90|

ललना पाँच चोर घरवा मूसेलें, त दियना जगावहु हो,
एही नगरी बसले पियवा मोर, त केहू ना जगावल हो,
नइहर के लोग अभिमानी, पिया नाहीं चीन्हल हो ॥
इहवाँ के नाचल भवनवा त नीक नाहीं लागे ले हो,
घरहीं में एक छिहुनिया त नाच ताहाँ देखबि हो ॥
छोट मोर पेड़ जमिरिया त फूलवा लहर करइ हो,
तेहि तरे बाजन बाजे ले त सबद सुनावल हो ॥
साहेब कबीर के सोहर, सत जन गावल हो,
ललना सुनहू हो धरम दास, अमर पद पावल हो ॥

(४)

"शब्द"

कबीरदास जी कृत

साईं मोर बसत अगम पुरवा, जँह गम न हमार ॥
आँठ कुँआ नव बावली, सोरह पनिहार ॥
भाल घइलवा ढरकि गैले हो, धन ठाढी पछुतात ॥
छोटी मोटी डँडिया चँनन कइ हो, छोटे चार कहार ॥
आइ उतरले वोहि देसवा हो, जाँहाँ कोइ ना हमार ॥
ऊँच महलिया साहेब कइ हो, लागल बिषमी बजार ॥
पाप पुन्नि दुइ बनिया हो, हीरा लाल बिकात ॥
कहले कबीर सुनु साइयाँ हो, मोरा आव हिय देस ॥
जे गैले से बहुरले ना, के कहेला सँदेस ॥

(५)

"शब्द"

सूतल रहलूँ में नींद भरि हो, गुरु दिहलैं जगाइ ॥
चरन कँवल कइ आँजन हो, नयना लिहलों लगाइ ॥
जासे निदिआ ना आवे हो, नाहीं तन अलसाइ ॥

गुरु के वचन निज सागर हो, चलु चलीं जा नहाइ ॥
जनम जनम के पपवा हो, छिन में डारब धुवाइ ॥
वोहि तन के जगदीप कैलों हो, सुति बतिया लगाइ ॥
पाँच तत्त कइ तेल चुऐलों, ब्रह्म अगिन जगाइ ॥
सुमति गहनवाँ पहिरलौं हो, कुमति दिहलौं उतारि ॥
निरगुन मँगिया सँवरलौं हो, निर्भय सेंदुरा लगाइ ॥
प्रेम पियाला पिआइ कइ हो गुरु दिहलईं बउराइ ॥
बिरह अगिन तन तलफई हो, जियो कछु ना सुहाइ ॥
उँचकी अटरिया चढि बइठलूँ हो, जँहवाँ काल ना खाइ ॥
कहलइँ कबीर बिचारि के हो, जमवा देखि डेराइ ॥

भोजपुरी में रहस्यवाद

हिन्दी में 'छायावाद' के कहने वाले आदि कवि कबीर साहब ही कहे जाते हैं। इनकी सभी रचनाओं का भोजपुरी में होने का दावा अभी प० उदय नारायण त्रिपाठी जी ने अपने भोजपुरी ग्रामर की थीसिस में करके इसे विस्तृत और वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित किया है। तिवारी जी के इस दावे की पुष्टि कबीर साहब के निम्नलिखित दोहे से हो जाने पर किसी भी विद्वान को उसे सहसा इनकार करते समय कुछ हिचक अवश्य मालूम होगी। यह दोहा हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग से प्रकाशित 'हिन्दी के कवि और काव्य' भाग २ से उद्धृत है—

बोली हमरी पुरुब की हमें लखे नहिं कोय।
हमके तो सोई लखे, धुर पूरब के होय ॥

फिर भी उनके इस दावे की तथ्यता को विद्वानों द्वारा स्वीकृत होने में काफी समय लगेगा। परन्तु तब भी इस तथ्य को तो कोई अस्वीकार नहीं करता कि कबीर साहब ने भोजपुरी में भी 'छायावाद' के गीतों को कहा था क्योंकि 'बेलवेडीअर प्रेस' से प्रकाशित कबीर ग्रंथावली में कबीर और धरमदास जी के गीत प्रचुर मात्रा में भोजपुरी में भी वर्तमान हैं। जिनको प्रकाशक ने

ललना पाँच चोर घरवा मूसेलें, त दियना जगावहु हो,
एही नगरी बसले पियवा मोर, त केहू ना जगावल हो,
नइहर के लोग अभिमानी, पिया नाहीं चीन्हल हो ॥
इहवाँ के नाचल भवनवा त नीक नाहीं लागे ले हो,
घरहीं में एक छिहुनिया त नाच ताहाँ देखबि हो ॥
छोट मोर पेड़ जमिरिया त फूलवा लहर करइ हो,
तेहि तरे बाजन बाजे ले त सबद सुनावल हो ॥
साहेब कबीर के सोहर, सत जन गावल हो,
ललना सुनहू हो धरम दास, अमर पद पावल हो ॥

(४)

"शब्द"

कबीरदास जी कृत

साई मोर बसत अगम पुरवा, जँह गम न हमार ॥
आँठ कुँआ नव बावली, सोरह पनिहार ॥
भाल घइलवा ढरकि गैले हो, धन ठाढी पछतात ॥
छोटी मोटी डँडिया चँनन कइ हो, छोटे चार कहार ॥
आइ उतरले वोहि देसवा हो, जाँहाँ कोइ ना हमार ॥
ऊँच महलिया साहेब कइ हो, लागल त्रिषमी बजार ॥
पाप पुन्नि दुइ बनिया हो, हीरा लाल विकात ॥
कहले कबीर सुनु साइयाँ हो, मोरा आव हिय देस ॥
जे गैले से बहुरले ना, के कहेला सँदेस ॥

(५)

"शब्द"

सूतल रहलूँ में नींद भरि हो, गुरु दिहलें जगाइ ॥
चरन कँवल कइ आँजन हो, नयना लिहलों लगाइ ॥
जासे निदिआ ना आवे हो, नाहीं तन अलसाइ ॥

गुरु के वचन निज सागर हो, चलु चलीं जा नहाइ ॥
जनम जनम के पपवा हो, छिन में डारब धुवाइ ॥
वोहि तन के जगदीप कैलों हो, सुति बतिया लगाइ ॥
पाँच तत्त कइ तेल चुऐलों, ब्रह्म अगिन जगाइ ॥
सुमति गहनवाँ पहिरलों हो, कुमति दिहलों उतारि ॥
निरगुन मँगिया सँवरलों हो, निर्भय सेंदुरा लगाइ ॥
प्रेम पियाला पिआइ कइ हो गुरु दिहलईं बउराइ ॥
बिरह अगिन तन तलफइ हो, जिया कछु ना सुहाइ ॥
उँचकी अटरिया चढि बइठलूँ हो, जँहवाँ काल ना खाइ ॥
कहलइँ कबीर बिचारि के हो, जमवा देखि डेराइ ॥

भोजपुरी में रहस्यवाद

हिन्दी में 'छायावाद' के कहने वाले आदि कवि कबीर साहब ही कहे जाते हैं। इनकी सभी रचनाओं का भोजपुरी में होने का दावा अभी प० उदय नारायण त्रिपाठी जी ने अपने भोजपुरी ग्रामर की थीसिस में करके इसे विस्तृत और वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित किया है। तिवारी जी के इस दावे की पुष्टि कबीर साहब के निम्नलिखित दोहे से हो जाने पर किसी भी विद्वान को उसे सहसा इनकार करते समय कुछ हिचक अवश्य मालूम होगी। यह दोहा हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग से प्रकाशित 'हिन्दी के कवि और काव्य' भाग २ से उद्धृत है—

बोली हमरी पुरब की हमें लखे नहिं कोय।
हमके तो सोई लखे, धुर पूरब के होय ॥

फिर भी उनके इस दावे की तथ्यता को विद्वानों द्वारा स्वीकृत होने में काफी समय लगेगा। परन्तु तब भी इस तथ्य को तो कोई अस्वीकार नहीं करता कि कबीर साहब ने भोजपुरी में भी 'छायावाद' के गीतों को कहा था क्योंकि 'वेलवेडीअर प्रेस' से प्रकाशित कबीर ग्रथावली में कबीर और धरमदास जी के गीत प्रचुर मात्रा में भोजपुरी में भी वर्तमान हैं। जिनको प्रकाशक ने

अपनी शक्ति भर रूप परिवर्तन करके हिन्दी बनाने की पूरी चेष्टा कुछ तो अपने भोजपुरी भाषा के अज्ञान के कारण और कुछ हिन्दी के प्रेम के कारण किया है। अभी बा० रामकुमार वर्मा एम० ए०, ने जो 'सत कबीर' नामक ग्रथ लिखा है उसके पदों की भाषा अधिकाश में भोजपुरी ही है। परन्तु हिन्दी के विद्वानों ने इस भाषा को भोजपुरी कहने से अस्वीकार करके पूर्वी हिन्दी नाम दिया है जो भ्रमात्मक ही नहीं निरा गलत है। कबीर के भोजपुरी गीतों में सौ वर्षों से हिन्दी वालों द्वारा ऐसे परिवर्तन किये जाते रहने पर भी भोजपुरी भाषियों का ध्यान कभी उधर नहीं गया वे तो अपने में उनके गीतों के शुद्ध रूपों को ही गा गाकर अब तक सन्तुष्ट थे। उन्हें क्या पता था कि उनकी सबसे बड़ी निधि को छीनकर दूसरे लोग अपना बना रहे हैं और कबीर भोजपुरी के नहीं हिन्दी के कवि बन गये हैं। परन्तु इतना होने पर भी आज यह विवाद की बात तो हो गयी है; पर तब भी इतना अवश्य निर्विवाद है और रहेगा कि कबीर साहब ने भोजपुरी में भी छायावाद कहा है और भोज पुरी में तभी से 'छायावाद' का कहना प्रारम्भ है जब से हिन्दी में छायावाद का प्रारम्भ हुआ था, इसी को दूसरे शब्दों में भी कह सकते हैं कि जिस भोजपुरी आदि कवि ने अपनी मातृ भाषा भोजपुरी में सर्व प्रथम 'छायावाद' के गीत गाये थे उसीने हिन्दी में भी 'छायावाद' को जन्म दिया था। इस कथन की तथ्यता पर कोई दो मत नहीं रख सकता। अभी कुछ दिन पूर्व तक जब तक 'विद्यापति मैथिल कोकिल' नामक पुस्तक लिखकर आरा के वृजनन्दन बाबू ने विद्यापति जी को मैथिली कवि साबित नहीं किया था तब तक सभी 'बँगला' वाले उनको 'बँगला' कवि ही कहते थे—यहाँ तक कि उनकी जन्मभूमि भी उधर ही कहीं मानी जाने लग गयी थी। तो वैसे ही भोजपुरी के साहित्य की भाषा का सर्व मान्य माध्यम न होने का ही यह फल है कि जो इसकी सर्वश्रेष्ठ निधियाँ थीं उनको भी इसकी निकटवर्ती भाषाओं ने अपना बना कर इनको अपना कहने का दावा प्राप्त कर लिया।

छायावादी कवि केवल कबीर ही भोजपुरी के पास हों सो बात नहीं है। धरनीदास जी माझा छपरा का 'शब्द प्रकाश' नामक ग्रथ, जो अभी

अन्धकार से निकल कर लेखक को मिला है, उसमें भी भोजपुरी में बड़ी उच्च कोटि के 'छायावाद' और 'शान्त रस' के गीत हैं। निम्नलिखित सन्त कवियों के गीत भी भोजपुरी लेखक को गाये जाते ही नहीं मिले बल्कि वे उनकी तथाकथित हिन्दी के सग्रहों में भी ठीक उसी रूप में या जरा सा पाठ भेद के साथ छपे मिले हैं। लेखक की शोध इस दिशा में जारी है और इस समय तक उसके पास काफी सामग्री भी एकत्रित हो चुकी है जिसे वह 'भोजपुरी के कवि और उनके काव्य' नामक ग्रथ में सकलित कर रहा है। अन्य भोजपुरी सन्त कवियों की नामावली जो अब तक प्रकाश में लायी जा सकी है यह है:—पलटूदास, जगजीवन साहब, भीखा साहब, दरियादास, गुलाल साहब, बुल्ले शाह फिर 'अम्बिका' प्रसाद, आरा तथा धरमदास जी आदि कवियों का उद्धरण भी ऊपर दिया जा चुका है।

नीचे कुछ 'रहस्य' के गीत उधृत किये जाते हैं। इनमें कुछ को आप कबीर साहब के ग्रथों में तो इसी रूप में पावेंगे या यदि कुछ पाठ भेद होगा तो वह साफ साफ गलत और यति भग दोष पूर्ण तुरत ज्ञात हो जायगा।

"शब्द"

(१)

कॅवल से भँवरा बिछुड़ल हो, जाहाँ नेहू ना हमार।
भव जल नदिया भयावन हो, बिना जल कइ धार॥
ना देखों नाव न बेड़वा हो, कइसे उतरबि पार।
सत कइ नइया सिरजावल हो, सुकीरति करुआर॥
गुरु के शबद गोनहरिया हो, खेइ उतरबि पार।
दास कबीर निरगुन गावल हो, सतो लेहु विचार

(२)

मितऊ मड़इया सूनी कइ गैलो,
अपने वलमु परदेस निकसि गैलो।
हमरा के कुछुवो न गुना देइ गैलो।
जोगिन होइ के मैं बन बन ढूँढो,

अपनी शक्ति भर रूप परिवर्तन करके हिन्दी बनाने की पूरी चेष्टा कुछ तो अपने भोजपुरी भाषा के अज्ञान के कारण और कुछ हिन्दी के प्रेम के कारण किया है। अभी बा० रामकुमार वर्मा एम० ए०, ने जो 'सत कबीर' नामक ग्रथ लिखा है उसके पदों की भाषा अधिकाश में भोजपुरी ही है। परन्तु हिन्दी के विद्वानों ने इस भाषा को भोजपुरी कहने से अस्वीकार करके पूर्वी हिन्दी नाम दिया है जो भ्रमात्मक ही नहीं निरा गलत है। कबीर के भोजपुरी गीतों में सौ वर्षों से हिन्दी वालों द्वारा ऐसे परिवर्तन किये जाते रहने पर भी भोजपुरी भाषियों का ध्यान कभी उधर नहीं गया वे तो अपने में उनके गीतो के शुद्ध रूपों को ही गा गाकर अब तक सन्तुष्ट थे। उन्हें क्या पता था कि उनकी सबसे बड़ी निधि को छीनकर दूसरे लोग अपना बना रहे हैं और कबीर भोजपुरी के नहीं हिन्दी के कवि बन गये हैं। परन्तु इतना होने पर भी आज यह विवाद की बात तो हो गयी है, पर तब भी इतना अवश्य निर्विवाद है और रहेगा कि कबीर साहब ने भोजपुरी में भी छायावाद कहा है और भोज पुरी में तभी से 'छायावाद' का कहना प्रारम्भ है जब से हिन्दी में छायावाद का प्रारम्भ हुआ था, इसी को दूसरे शब्दों में भी कह सकते हैं कि जिस भोजपुरी आदि कवि ने अपनी मातृ भाषा भोजपुरी में सर्व प्रथम 'छायावाद' के गीत गाये थे उसीने हिन्दी में भी 'छायावाद' को जन्म दिया था। इस कथन की तथ्यता पर कोई दो मत नहीं रख सकता। अभी कुछ दिन पूर्व तक जब तक 'विद्यापति मैथिल कोकिल' नामक पुस्तक लिखकर आरा के वृजनन्दन बाबू ने विद्यापति जी को मैथिली कवि साबित नहीं किया था तब तक सभी 'बँगला' वाले उनको 'बँगला' कवि ही कहते थे—यहाँ तक कि उनकी जन्मभूमि भी उधर ही कहीं मानी जाने लग गयी थी। तो वैसे ही भोजपुरी के साहित्य की भाषा का सर्व मान्य माध्यम न होने का ही यह फल है कि जो इसकी सर्वश्रेष्ठ निधियाँ थीं उनको भी इसकी निकटवर्ती भाषाओं ने अपना बना कर इनको अपना कहने का दावा प्राप्त कर लिया।

छायावादी कवि केवल कबीर ही भोजपुरी के पास हों सो बात नहीं है। धरनीदास जी माझा छपरा का 'शब्द प्रकाश' नामक ग्रथ, जो अभी

अन्धकार से निकल कर लेखक को मिला है, उसमें भी भोजपुरी में बड़ी उच्च कोटि के 'छायावाद' और 'शान्त रस' के गीत हैं। निम्नलिखित सन्त कवियों के गीत भी भोजपुरी लेखक को गाये जाते ही नहीं मिले बल्कि वे उनकी तथाकथित हिन्दी के सग्रहों में भी ठीक उसी रूप में या जरा सा पाठ भेद के साथ छपे मिले हैं। लेखक की शोध इस दिशा में जारी है और इस समय तक उसके पास काफी सामग्री भी एकत्रित हो चुकी है जिसे वह 'भोजपुरी के कवि और उनके काव्य' नामक ग्रथ में सकलित कर रहा है। अन्य भोजपुरी सन्त कवियों की नामावली जो अब तक प्रकाश में लायी जा सकी है यह है:—पलटूदास, जगजीवन साहब, भीखा साहब, दरियादास, गुलाल साहब, बुल्ले शाह फिर 'अम्बिका' प्रसाद, आरा तथा धरमदास जी आदि कवियों का उद्धरण भी ऊपर दिया जा चुका है।

नीचे कुछ 'रहस्य' के गीत उधृत किये जाते हैं। इनमें कुछ को आप कबीर साहब के ग्रथों में तो इसी रूप में पावेंगे या यदि कुछ पाठ भेद होगा तो वह साफ साफ गलत और यति भग दोष पूर्ण तुरत ज्ञात हो जायगा।

"शब्द"

(१)

कँवल से भँवरा बिछुड़ल हो, जहाँ केहू ना हमार।
भव जल नदिया भयावन हो, बिना जल कइ धार ॥
ना देखों नाव न बेड़वा हो, कइसे उतरबि पार।
सत कइ नइया सिरजावल हो, सुकीरति करुआर ॥
गुरु के शबद गोनहरिया हो, खेइ उतरबि पार।
दास कबीर निरगुन गावल हो, सतों लेहु विचार

(२)

मितऊ मड़इया सूनी कइ गैलो,
अपने बलमु परदेस निकसि गैलो।
हमरा के कुछुवो न गुना देइ गैलो।
जोगिन होइ के मैं बन बन ढूँढो,

हमरा के बिरहा बिराग दे गैलो ॥
सगवा के सखिया सब पार उतरि गैली,
हम धनि ठाढ अकेल रहि गैलो ॥
धरम दास यह अरज करतु है,
सार सबद सुमिरन दै गैलो ॥

(३)

कोइ ठगवा नगरिया लूटल हो।
चनन काठ के बनल खटोलना, तापर दुलहिन सूतल हो।
उठु रे सखि मोर माँग सँवारहु, दुलहा मोसे रूसल हो ॥
अइले जमराज पलँग चढ़ि बइठले, नैनन अँसुवा टूटल हो ॥
चारि जना मिलि खाट उठवलें, चहुँ दिसि धूँ धूँ कठल हो ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, जगवा से नाता टूटल हो ॥

सोहर

कहवाँ से जीउ आइल कहवाँ समाइल हो।
कहवाँ कइल मुकाम, कहाँ लपटाइल हो ॥
निरगुन से जीउ आइल, सगुन समाइल हो।
काया गढ कइल मुकाम, माया लपटाइल हो ॥
एक बूँद से काया महल उठावल हो।
बूँद पर गलि जाय पाछे पछतावल हो ॥
हस कहे भइया सरवर, हम उड़ि जाइब हो।
मोरा तोरा एतना दीदार, बहुरि नाहीं पाइब हो ॥
एहवाँ बेहू नाहीं आपन, त केहि सँग बोलब हो।
बीच तरवर मैदान, अकेला हसा जेलेले हो ॥
लख चौरासी भरमि के मानुख तन पावल हो।
मानुख जनम अमोल आपन सेहू खोवल हो ॥
साहब कबीर सोहर गावल गाइ सुनावल हो।
सुन हो धरमदास सुनि चित चेतहु हो ॥

भोजपुरी में प्रकृति वर्णन

भोजपुरी में प्रकृतिवर्णन का एक उदाहरण हम पहले धरनीदास की महराई दे आये हैं—कबीर, सूर, तुलसी आदि ने भी जो जो प्रकृति वर्णन बारहमासा गीत में भोजपुरी में कहा है वह भी प्राकृत पुस्तक में उद्धृत है। यहाँ वर्तमान कवि रघुबीर नारायण जी छपरा के सुप्रसिद्ध गीत 'बटोहिया' शीर्षक हम पटना यूनिवर्सिटी के मैट्रिक क्लास के मजूर कोर्स पुस्तिका से उद्धृत करते हैं।

बटोहिया

(श्री रघुबीर नारायण)

सुन्दर सुभूमि भैया भारत के देसवा से,
मोरे प्रान बसे हिमखाते रे बटोहिया।
एक द्वार घेरे राम हिम कोतवलवा से,
तीन द्वार सिंधु घहरावो रे बटोहिया।
जाऊ जाऊ भैया रे बटोही हिन्द देखि आऊ,
जहवाँ कुहुकि कोइलो बोले रे बटोहिया।
पवन सुगन्ध मन्द अगर चननवाँ से,
कामिनी बिरहराग गावे रे बटोहिया।
विपिन अगम घनसघन बगन बीचे,
चम्पक कुसुम रंग देवे रे बटोहिया।
द्रुम वट पीपल कदम्ब निम्ब आम वृक्ष,
केतकी गुलाब फूलफूले रे बटोहिया।
तोता तोती बोलेराम बोले भँगरजवा से,
पपिहा के पी पी जिया साले रे बटोहिया।
सुन्दर सुभूमि भैया भारत के देसवा से,
मोरे प्रान बसे गंगाधार रे बटोहिया।
गंगा रे जमुनवाँ के झगमग पनियाँ से,
सरजू झमकि लहरावे रे बटोहिया।

ब्रह्मपुत्र पञ्चनद घहरत निसिदिन,
सोनभद्र मीठे स्वर गावे रे बटोहिया।
अपर अनेक नदी उमड़ि घुमड़ि नाचे
जुगन के जड़ता भगावे रे बटोहिया।
आगरा प्रयाग काशी दिल्ली कलकतवा से,
मोरे प्रान बसे सरजू तीर रे बटोहिया ॥
जाऊ जाऊ भैया रे बटोही हिन्द देखि आऊ,
जहाँ ऋषि चारो वेद गावे रे बटोहिया ॥
सीता के विमल जस राम जस कृष्ण जस,
मोरे बाप दादा के कहानी रे बटोहिया ॥
व्यास बाल्मीक ऋषि गौतम कपिल देव,
सूतल अमर के जगावे रे बटोहिया ॥
नानक कबीर दास शङ्कर श्रीराम कृष्ण,
अलख के गतिया बतावे रे बटोहिया ॥
विद्यापति कालिदास सूर जय देव कवि,
तुलसी के सरल कहानी रे बटोहिया ॥
जाऊ जाऊ भैया रे बटोही हिन्द देखि आऊ,
जहाँ सुख भूले धान खेतरे बटोहिया ॥
बुद्ध देव पृथु वीर अरजुन शिवा जी के,
फिरि फिरि हिय सुधि आवे रे बटोहिया ॥
अपर प्रदेश देश सुभग सुघर वेश,
मोरे हिन्द जग के निचोड़ रे बटोहिया ॥
सुन्दर सुभूमि भैया भारत के भूमि जेहि,
जन 'रघुवीर' सिर नावे रे बटोहिया ॥

भोजपुरी भाषा में हिन्दी के प्राय सभी संत कवियों ने कहा है।

कबीर साहब और धरमदास तथा धरनीदास आदि के भजनों के उदाहरण हमने कुछ इस संग्रह में दे दिए हैं। साथ ही इसी संग्रह मे सूरदास,तुलसी-

दास, मीरा वाई, आदि हिन्दी के स्तम्भ कवियों के गीत भी उधृत हैं। विद्यापति जी के भोजपुरी गीत पर ग्रियर्सन साहब ने जो किसी बँगला विद्वान के इस मत का खडन किया है कि भोजपुरो में विद्यापति जी के गीत नहीं गाये जाते उसकी और उसके ऊपर भी जो टिप्पणी लेखक द्वारा की गयी है उसे पाठक प्रस्तुत पुस्तक के भजन न० ४ पर देखेंगे ही। इन उद्धरणों से यह प्रतिपादित होता है कि इन कवियों ने भोजपुरी में गीतों की रचना की थी।

वैष्णव सम्प्रदाय के सन्त कवि प्रायः भ्रमण किया करते थे। जिस प्रान्त में तीर्थाटन के उद्देश से जाते थे वहाँ की तत्कालीन प्रचलित बोली में कुछ न कुछ गीत अपने विचारों के प्रचारार्थ रचते थे, क्योंकि उनका प्रेम भाषा विशेष या जाति विशेष से नहीं था वल्कि मनुष्य मात्र से था और अपना मत हर प्रान्त के मनुष्यों तक पहुँचाना वे अपना धर्म समझते थे। यही कारण है कि काशी के सन्त कवीर और घरमदास जी के गीत पंजावी भाषा तक में पाये जाते हैं तथा राजस्थान की वोली को छोड़ कर मीरा के गीत हिन्दी और भोजपुरी में भी पाये जाते हैं। सूरदास जी के छन्द तो प्रायः व्रज भाषा में ही हैं पर वे भोजपुरी और अवधी में भी मिलते हैं। आप कह सकते हैं जैसा कि ग्रियर्सन साहब ने विद्यापति जी के पक्ष में शका की है कि ये गीत उक्त कवियों द्वारा इन प्रान्तिक भाषाओं में नहीं रचे गये थे वल्कि प्रान्त के निवासिओं ने ही उनको अनूदित करके अपनी भाषा में गाना शुरू किया। इस दलील में भी किसी अश तक तथ्य मान्य हो सकता है। अवश्य कहीं कहीं ऐसा हुआ है पर सर्वत्र ऐसा ही हुआ है इसको मान लेना उचित नहीं होगा क्योंकि २६६ वर्ष पूर्व की लिखी 'शब्द प्रकाश' नामक पुस्तक जो धरनीदास जी कृत है अभी लेखक को मिली है। यह १९२६ सम्वत् को लिखी पाण्डुलिपि की प्रतिलिपि है और इसी की सन् १८८७ ई० को छपी एक कापी भी मिली है इन दोनों प्रतियों में भोजपुरी और हिन्दी तथा अवधी या खड़ी बोली के ही छन्द और गीत नहीं हैं वल्कि उनमें सुदूर पजाब प्रान्त की भाषा 'पंजावी' तथा निकटवर्ती प्रान्त की भाषा बँगला, मैथिली, तथा उर्दू राग मरसीहा तथा मोरंग देश की भाषा मोरङ्गी में भी उनकी एक नहीं कितनी

ब्रह्मपुत्र पञ्चनद घहरत निसिदिन,
सोनभद्र मीठे स्वर गावे रे बटोहिया।
अपर अनेक नदी उमड़ि घुमड़ि नाचे
जुगन के जड़ता भगावे रे बटोहिया।
आगरा प्रयाग काशी दिल्ली कलकतवा से,
मोरे प्रान बसे सरजू तीर रे बटोहिया ॥
जाऊ जाऊ भैया रे बटोही हिन्द देखि आऊ,
जहाँ ऋषि चारो वेद गावे रे बटोहिया ॥
सीता के विमल जस राम जस कृष्ण जस,
मोरे बाप दादा के कहानी रे बटोहिया ॥
व्यास बाल्मीक ऋषि गौतम कपिल देव,
सूतल अमर के जगावे रे बटोहिया ॥
नानक कबीर दास शंकर श्रीराम कृष्ण,
अलख के गतिया बतावे रे बटोहिया ॥
विद्यापति कालिदास सूर जय देव कवि,
तुलसी के सरल कहानी रे बटोहिया ॥
जाऊ जाऊ भैया रे बटोही हिन्द देखि आऊ,
जहाँ सुख झूले धान खेतरे बटोहिया ॥
बुद्ध देव पृथु वीर अरजुन शिवा जी के,
फिरि फिरि हिय सुधि आवे रे बटोहिया ॥
अपर प्रदेश देश सुभग सुघर वेश,
मोरे हिन्द जग के निचोड़ रे बटोहिया ॥
सुन्दर सुभूमि भैया भारत के भूमि जेहि,
जन 'रघुवीर' सिर नावे रे बटोहिया ॥

भोजपुरी भाषा में हिन्दी के प्राय सभी संत कवियों ने कहा है।

कबीर साहब और धरमदास तथा धरनीदास आदि के भजनों के उदाहरण हमने कुछ इस संग्रह में दे दिए हैं। साथ ही इसी संग्रह में सूरदास,तुलसी-

पृष्ट २१२ पर

कत सिख देइ हमहि कोउ भाई । गालु करब केहिकर बलु पाई ॥
हमहु कहव अब ठकुर सुहाती । नाहीं त मौन रहब दिन राती ॥

इन चौपाइओं में शब्द ही नहीं उनके प्रयोग तथा चौपाई की क्रिया भी भोजपुरी की है । लगे हाथ धरनीदास जी के पंजाबी मैथिली बँगला के भी एक एक छन्द सुन लेने से मेरी बातें अधिक स्पष्ट हो जायगी ।

राग पंजाबी

सुरंग रग सावला मुझे मोहीयाँ,
जमुना किनारे कदम दे छाहियाँ ।
पान दो विरियाँ चाख दावैं ॥
नाल छाल लाल पठ काछे, बीहँसीं बीहँसीं गले अखदा ॥
तब तेजोयेजो थेहों, जी दी तीर्थ तीर्थ दरसा दांवै ॥
मोहन सोहन गोहन डोलै सोंअत रैनी जागदा ॥
मोमन मानो रूप तो सानो नेकु न इत उत जादावै ॥
कुलदा काज लाज गुरी जन दो भोगु भवन वासरांदा ॥
लाखु लहै लाहोंदीं बानी जानी इआर सुना नावै ॥
हिये हरषदा धन बरषदा वरनी जनमन भांदा ॥

मैथिली

घनाक्षरी

सुतली अछली षनै ऐलहु गोसाई साई छली हूँ अचेत पीड
चेत मेल तेषना ॥
माथे हाथे देलछोज गाये जनु लेल छी अनेक कलाकेल
छीन वाजी आवै ऐषना ॥
जेहि गते छलीहूँ उठलीं हूं मैं तेहि गते पावन पुरुष पापनी
के मेल देषना ॥

रचनायें हैं। केवल भाषा ही नहीं बल्कि उस भाषा में जो प्रचलित छन्द उस समय जन प्रिय थे उन छन्दों में भी उन्होंने अपनी रचना उस भाषा में या भोजपुरी में की है। अब आप बतावे कि छपरा जिला के माँझी गाँव के रहने वाले और माँझी ही में अपना मठ बनाने वाले, जिसकी गद्दी परम्परा आज तक वहाँ चली जा रही है, सत कवि धरनीदास ने कैसे और क्यों इन नव भाषाओं में रचना की और अपने सर्व प्रधान ग्रन्थ 'शब्द प्रकाश' में उनको स्थान दिया ? इससे तो यही सिद्ध होता है कि उस समय प्रान्तीय भाषाओं में रचना करने के प्रचार प्रचलित थे। इसके अलावे तुलसीदास जी की मातृ भाषा यद्यपि अवधी थी और उनकी कविता में अवधी की प्रधानता है पर फिर भी रामायण तथा उनके अन्य ग्रन्थों में भोजपुरी मुहावरा, शब्द, लोकोक्ति, आदि भरे पड़े हैं गीताप्रेस से जो सब से प्रमाणिक रामायण निकली है उसकी बहुत सी चौपाइयाँ भोजपुरी भाषा को प्रस्तुत हैं। जैसे (मूल गुटका) रामायण के पृष्ठ २५७ पर निम्नलिखित चौपाइयाँ भोजपुरी भाषा में कही गयी हैं—

फिरती बार मोहि जो देबा। सो प्रसाद मैं सिर धरि लेबा ॥
सियँ सुरसरिहि कहेउ कर जोरी। मातु मनोरथ पुरउबि मोरी ॥

पृष्ट २५८ पर

तदपि देवि मैं देबि असीसा। सफलहीन हित निज बागीसा ॥
जेहि बन जाइ रहब रघुराई। परन कुटी मैं करब सुहाई ॥
तब मोहि कहँ जसि देब रजाई। सोइ करिहउँ रघुबीर दोहाई ॥

पृष्ट २५४ पर

दोहा—पितु पद गहि कहि कोटि नति बिनय करब कर जोरि।
चिन्ता कवनिहु बात कै तात करिअ जनि मोरि ॥

चौपाई—नतरु निपट अवलम्ब बिहीना। मैं न जिअब जिमि जल बिनु मीना ॥

पृष्ट २६४-६५ पर

स्वामिनि अविनय छमब हमारी। बिलगु न मानब जानि गवाँरी ॥
पारबती सम पतिप्रिय होहू। देवि न हम पर छाड़ब छोहू ॥
दरसनु देउब जानि निज दासी। •••••

पृष्ट २१२ पर

कत सिख देइ हमहि कोउ भाई। गालु करव केहिकर बलु पाई ॥

हमहु कहव अब ठकुर सुहाती। नाहीं त मौन रहब दिन राती ॥

इन चौपाइओं में शब्द ही नहीं उनके प्रयोग तथा चौपाई की क्रिया भी भोजपुरी की है। लगे हाथ धरनीदास जी के पजाबी मैथिली बँगला के भी एक एक छन्द सुन लेने से मेरी बातें अधिक स्पष्ट हो जायगी।

राग पंजाबी

सुरंग रंग सावला मुझे मोहीयाँ,
जमुना किनारे कदम दे छाहियाँ।
पान दो विरियाँ चाख दावैं ॥

नाल छाल लाल पठ काछे, वीहँसीं वीहँसीं गते अखंदा ॥
तब तेजोयेजो येहों, जी दी तीर्थ तीर्थ दरसा दांवै ॥
मोहन सोहन गोहन डोलै सोंअत रैनी जागदा ॥
मोमन मानो रूप तो सानो नेकु न इत उत जादावै ॥
कुलदा काज लाज गुरी जन दो भोगु भवन वासरांदा ॥
लाखु लहै लाहोंदीं वानी जानी इआर सुना नावै ॥
हिये हरषदा धन वरषदा वरनी जनमन भांदा ॥

मैथिली

घनाक्षरी

सुतली अछली षनै ऐलहु गोसाई साई छली हूँ अचेत पीड
चेत भेल तेषना ॥
माथे हाथे देलछोज गाये जनु लेल छी अनेक कलाकेल
छीन वाजी आवै ऐपना ॥
जेहि गते छलीहूँ उठलों हूँ मैं तेहि गते पावन पुरुष पापनी
के मेल देषना ॥

धरनी कहे छी बीसरै छीनेक नाक मोह हिग्र में छपाल
छोत्रै छी कोटि पेषना ॥

राग बँगला

सकल भुअनेर मुने जीवन अधार बधु ॥
कौन जानै कौनरे बुझै तुमरे षिआले,
जीआ जनु गाइ रै गोरा ऐकल गोवाले बदु ॥
जनम जनम हमें करमु कमाइ लो ।
अवरोक वार बदु सरन समाइलो ॥
वसी वो तुमारी वारी अनतै न जाइवो
तुमरी कीरति तजि अवर की गाइवो ॥
धरनी कथीलो जानी वानी रे बँगालो
साइ के सरस बिना विकल बीहालो ।

इन उद्धरणों से लेखक की उपर्युक्त कही बातों की पूर्ण रूप से परिपुष्टि हो जाती है। हरिश्चद जी काशी, ने भी'हमनीका' शीर्षक से भोजपुरी मे एक कविता लिखी थी। पर खेद है वह मुझे अब तक मिल नहीं सकी। यह वात मुझसे बाबू ब्रजनन्दन सहाय जी आरा, कह रहे थे। इससे इसकी सत्यता मे शका नहीं की जा सकती क्योंकि उनके तथा उनके पिता बाबू शिवनन्दन सहाय जी के प्राचीन साहित्य ज्ञान में कोई शका नहीं कर सकता।

भोजपुरी साहित्य में अन्य छन्द

यह बात नहीं है कि भोजपुरी मे केवल गीत ही आदि की रचना हुई हो और पिङ्गल के अन्य छन्दो मे काव्य न लिखा गया हो। अन्य छन्दों मे रचनायें भी लेखक को मिली हैं। इसमे 'बदमाश दर्पण' 'कुँवर पचासा' 'शब्द प्रकाश' आदि ग्रन्थों के नाम उल्लेखनीय हैं। भिखारी ठाकुर का 'बिदेसिया' नाटक भी जिसके कई प्रकाशन हो चुके गद्य पद्य दोनों में लिखा गया है। नमूने के लिये कुछ उद्धरण यहाँ दिये जाते हैं :—

(१)

कवित्त

हाथ गोड़ पेट पीठि कान आँखि नाँक नीक,
माँथ मुँह दाँत जीभि ओठ पाट ऐसना ॥
जीअन्हि सताइला कुमख भख खाईला
कुलीनता जनाईला कुसग सग वैसना ॥
चलीला कुचाल चाल उपरा फिरैला काल
साधु के सुमत बिसराइला से कैसना ॥
धरनी कहैला भैया ऐसना ना चेतीलात
जानि लेब ता दिना चिरारी गोर पैसना ॥

(२)

काहे के पुरुब जाला हरि बाटे भीतखाला,
पछिम प्रतच्छ होला देह का विधसना ॥
का चढे सुमेर सींग पूजे का पखान लिंग
काजहि गुलाज जीभी काठी कौन वैसना ॥
ठाढ़ होला काहे लागी आस पास बारे आगी
काहे काहू भावेला भुँइया खोदि पैसना ॥
'धरनी' करैला परिपच पच काहे लागी
हिये ना जपैला पुनि रामनाम कैसना ? ॥

(३)

पहले पहल जब रेल निकली उस पर भोजपुरी

घनाक्षरी

भक भक करत चलत जब हक हक,
धक धक करत में धरती धमसेला ॥
कम कम चलत में बाजि रहे झम झम,
छम छम चलत में चम चम चमकेला ॥

कहत बकस आसमान के विमान सम
सोभत जुडात असूले दाम टटकेला ॥
अइसन में चटक कहीं ना देखो अटक
कियारी देखि भटकेला आपिस प पटकेला ॥

(४)

चलल रेल गाड़ी रगरेज तेज धारी
बोझाये खूब भारी हहकार कइले जात बा ॥
वइसे सब सूबा जाहा बात हो अजूबा
रगरेज मनसूबा सब लोग का सोहात बा ॥
कहीं नदी श्रो नाला बाधे जमुना में पुल बाधे
कतना हजार लोग के होत गुजरान बा ॥
कहे कवि टाँकी बात राखी बाधि साँची
हवा के समान रेल गाड़ी चलि जाति बा ॥

(५)

कम्पनी अनजान जान नकल फे बना के सान,
पवन के छिपाइ मैदान में धरवले बा ॥
तार देत बार बार खबर लेत आर पार
चेत करू टिकटदार गाड़ी के वोलवले बा ॥
कहेला से करे काज झालर अजबदार
जे जइसन चढनहार ओइसन घर पवलेबा ॥
कहे कवि साहेब दास अजब चाल रेल के
जे अइसन चाहे तेके तैसन घर देलेबा ॥

(६)

विविध अन्नोका उनके गुण के अनुसार वर्णनः—
साँवा कहे हम पण्डित होइतों गया पिंडा पराइब हो ॥
कहे मडुआ हम जोगी होइतों जमते टोपी लगाइब हो ॥
कहे टाँगुन जे सब ले दुलरुई लटकते चिरई बुलाइब हो ।

कहे गहुन हम सब ले छतिरी जमते धूरि चढाइब हो ॥
कहे धान जे सब ले राजा जल में सभा लगाइब हो।
कहे चनेरा सब ले बोलता खपड़ी में धूम मचाइब हो ॥
कहे खेसारी मैं अति वारी कचअच फूल फुलाइब हो।
जे हमरा के अधिका खइहें उलटा टाँग चलाइब हो ॥

(७)

भिखारीठाकुर का परिचयः—
नाम भिखारी काम भिखारी, रूप भिखारी मोर।
टाट पलान मकान भिखारी, भइल चहूँ दिस सोर ॥
ना पाटी पर पढलीं भाई, नाम बहुत दुर पहुँचल जाई।
कहे भिखारी लिखलीं थोर, विद्या से बानी कमजोर ॥
हित अनहित से हाथ जोर के, माँगत भिखारी भीखि।
राम नाम के सुमिरन करिह, तुही गुरू हम सीख ॥

(८)

विदेशिया नाटक से—

विदेशी का रंडी से वार्ता

सवैया

हे सजनी जरा धीर धरू हम जइबों घरे धनि रोअति होइहें।
प्यारी के दुःख सुनल जब से दुख होत हमें कइसे जीअति होइहें ॥
दिन में भूख ना रैनि में नींद उन्हें सुख सेज न भावत होइहें।
'नाथ सरन' कहे काह कहों धनी नैना से नीर बहावति होइहें ॥

बटोही विदेशी से

घनाक्षरीमें

मान तू बतिया विदेसी चल जा घरके ॥टेक
प्यारी के दुख मोसे कहलो न जात बाटे, कवनो विधि राखति
या जीव जरमर के ॥

नैना में नींद परत एक छुन नाहीं, रात से बिहान नित करेलीकँहरके ॥
कहि कहि के रोअतिया एको के ना भैली हम, पास के ना सासु
के ना ससुरा नैहर के ॥
कहत भिखारी आज मोरा एतने बा अबहूँ त चेत दीन दुनिया से
डर के ॥

बिरहिणी का बिलाप

धुन पूर्वी

मचिया बइठल धनी मने मन समुझे से, भुइया लोटेला लामी
केस रे बिदेसिया ॥
गवना कराइ सैंया घरे बइठवले, से अपने गइले परदेस रे बिदेसिया ॥
चढली जवनिया बएरनि भैली हमरी, से केइ मोरा हरिहें कलेस
रे बिदेसिया ॥
केकरा से लिखिके में पतिया पठइबों, से केकरा से पठवों सनेस
रे बिदेसिया ॥
तोहरे कारन सैंया भभुती रमइबों, से धरबों जोगिनिया के भेख
रे बिदेसिया ॥
कवलो ले फिरिहें दइव निरमोहिया, से मोर बिरहिनिया के भाग
रे बिदेसिया ॥
हमरो सुरति सैंया तुहूँ बिसरवले, से रहेल सवति रस पागि रे बिदेसिया॥
दिनवा बितेला सैया वटिया जोहत तोर, से रतिया बीतेला जागि
जागि रे बिदेसिया ॥
घरी रात गइले पहर राति गइले, से धधके करेजवा में आगि
रे बिदेसिया ॥
अमवा मोजरि गइले लगले टिकोरवा, से दिन पर दिन पिअराय
रे बिदसिया ॥
एक दिन बहि जइहें जुलुमी बयरिया, से डाट पात जइहें भहराई
रे बिदेसिया ॥

झमकि के चढ़लों मैं अपनी अँटरिया, से चारों ओर चितवों चिहाई
रे विदेसिया ॥
कतहूँ ना देखों रामा सैयाँ के सुरतिया, से जियरा गइले मुरझाई
रे विदेसिया ॥

वटोही वार्ता प्यारी से

कइसन हउवे तोरे बारे रे वलमुआ, से हमरा के देहु ना बताई
रे सँवरिया ॥
तोहरे सनेसवा हो तोहरे बलमु जी से हमहुँ कहवि समुझाई रे सँवरिया॥

प्यारी वचन वटोही से

हमरा वलमु जी के बड़ी बड़ी अँखिया से चोखे चोखे वाड़े नैना
कोर रे वटोहिया ॥
ओठवा त वाड़े जइसे कतरल पनवा से नकिया सुगनवा के ठोर
रे वटोहिया ।
दँतवा वो सोभे जइसे चमके विजुलिया से मोछियन भँवरा गुजारे
रे वटोहिया ॥
मथवा में सोभे रामा टेढ़ी काली टोपिया से रोरी बुना सोभेला
लिलार रे वटोहिया ॥

विदेशी वटोही से वार्ता

कहवा के हवे तेहू बारे रे वटोहिया से कहवा करेले रोजगार रे
वटोहिया ॥
कइसन हउँई रामा पतरी तिरियवा से कइसे चिन्हले धनिया मोर
रे वटोहिया ॥

वटोही की वार्ता विदेशी से

पछिम के हईं हम बारे रे वटोहिया से पुरुब करीले रोजगार
रे विदेसिया ॥

तोरी घनी बाड़ी रामा अँगवा के पतरी से लचके ली छतिया के
भार रे बिदेसिया ॥

केसिया त बाड़ी जइसे रे नगनियाँ से सेनुरा से भरल लिलार
रे बिदेसिया ॥

अँखिया त हउवे जैसे अमवा के फकिया से गलवा सोहेला गुलेनार
रे बिदेसिया ॥

बोलिया त बाड़ी जइसे कुहुँकि कोइलिया से सुनि हिया फाटेला
हमार रे बिदेसिया ॥

मुंहवा त हवे जइसे कँवल के फुलवा से तोहरा बिनु गइले
कुम्हिलाई रे बिदेसिया ॥

अइसन तिरियवा के सुधि बिसरवले से तोहरा के हवे धिरिकार रे
बिदेसिया ॥

भिखारी ठाकुर अपढ़ गरीब, सभ्य समाज से दूर नाई जाति के कवि हैं। परन्तु उनकी बुद्धि की प्रतिभा को पाठक उपर्युक्त छन्दों में देखते हैं। हिन्दी के किसी भी बड़े से बड़े कवि का विरह वर्णन ले लीजिये और भोजपुरी के मूर्ख कवि भिखारी ठाकुर के इस विरहिणी वर्णन के साथ तुलना कीजिये। सरकार की ओर से किसी किसी खास जगह पर इस नाच पर प्रतिबन्ध लगाना पड़ा है। विदेसिया पुस्तक की खपत भोजपुर प्रदेश में ही नहीं अन्य भाषा भाषी प्रान्तों में भी है। फिर भी भिखारी ठाकुर से हिन्दी विद्वान ससार अनभिज्ञ है।

प० वलदेव उपाध्याय जी का 'भोजपुरी-ग्राम-गीत' की भूमिका में कहना है कि भोजपुरी साहित्य की अभिवृद्धि न होने का कारण है राजाश्रय का अभाव। भोजपुर मण्डल में किसी प्रभावशाली व्यापक प्रतापी नरेश का पता नहीं चलता। अधिक इसमें किसानों की वस्तियाँ हैं। किसी गुणग्राही नरपति के आश्रय न मिल सकने से साहित्य सम्पन्न नहीं हो सका। (पृष्ट १७)

उपाध्याय जी का ऐसा कहना भले ही दसफीसदी सही हो पर शत

प्रतिशत यह ठीक हो सो बात नहीं है। भोजपुरी भाषा भाषी प्रदेश में सर्वत्र प्रमुख और प्रभुत्व पूर्ण राज्य सदा रहे हैं और आज भी हैं। समय समय पर उनकी दशा में अवश्य उलट फेर होता रहा है पर राज्यों का अस्तित्व सदा रहा है और उन राज्यों में पण्डितो, कवियों, और विद्वानों की कदर कमी वेशी रूप में सदा रही है। यहीं तक नहीं राजे महाराजे या उनके वश के सरदार आदि भी ऊँचे दर्जे के कवि और लेखक भी हुए हैं। शाहाबाद में उज्जैनी की राजधानी डुमरांव और जगदीशपुर अपनी कला प्रियता के लिये प्रारम्भिक काल से लेकर अब तक विख्यात रहे हैं। नकछेदी तिवारी, ईश कवि दिवाकर भट्ट, महामहोपाध्याय रघुनन्दन त्रिपाठी तथा राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह तथा उनके पिता जी को कौन नहीं जानता। इनके अतिरिक्त बम्सर, नोखा, भगवानपुर, सपही, केसीठ की छोटी छोटी रियासतें भी कला प्रियता से विमुख नहीं थीं। छपरा जिला में माझी की प्राचीनता विख्यात है। माझी ही के दीवान धरनी दास जी थे। अपने पिता के देहावसान के बाद इन्हें भी दिवानी मिली थी पर उन्होंने तुरत ही फकीरी ले लिए। भूमिहारों की राजधानी हथुआ में भी सदा अपने कवि रहते आये हैं। तोफाराय जिन्होंने 'कुअर पचासा' की रचना की थी यहाँ के भी कवि थे। इनके अतिरिक्त बेरुआर और नरौरिओं की प्रभुता और साहित्य प्रियता खूब थी। बलिया जिला में हैहैवंशी राजपूतों की राजधानी हरदी आज भी अपने बुरे दिनों को गिन रहा है। इन लोगों में भी कला प्रेम और उसका सत्कार कभी काफी था। वस्ती और बाँसी राज्य वस्ती जिले में आज भी वर्तमान हैं। ये दोनों रियासतें अपनी कला प्रियता के लिये आगे थीं। गोरखपुर में मझौली, सतासी डोमन गढ़ तथा मोतीहारी में बनैलीं और बनारस राज्य थे और आज उनमें कुछ को छोड़ सभी वर्तमान हैं। बनारस के काशी राज की प्राचीनता और कला प्रियता कौन नहीं जानता। ऐसे ही अन्य जिलों की भी नामावली दी जा सकती है। अतः भोजपुरी भाषी प्रदेश में राज्यों की कमी नहीं थी और न है और न उनके यहाँ कला प्रेम तथा आश्रय का अभाव ही था।

तो इस तरह उपाध्याय जी का अनुमान सही नहीं ज्ञात होता। असल में भोजपुरी के साहित्य की भाषा पठित समुदाय द्वारा आमतौर पर स्वीकृत न होने के प्रधान कारण दो थे :—

प्रथम यह कि किसी भी भाषा को साहित्य का माध्यम बनाना राज्य के अधिकार की बात नहीं है। यह तो कोई सिद्धहस्त प्रतिभा सम्पन्न लेखक ही कर सकता है। राज्य अधिक से अधिक इस दिशा में यही कर सकता है कि वह उस भाषा के गद्य को अपने राजकीय कामों के लिये व्यवहार में लावे। सो इसको सभी राज्यों ने पूर्व काल से ही करना शुरू किया जो आज तक जारी रखे हैं। यही नहीं, वर्तमान सरकार ने भी जब जब उसे प्रचार की आवश्यकता पड़ी है इसको अपनाया है। पर तब भी भोजपुरी में न तो विद्यापति जी ऐसा मातृ भाषा प्रेमी कोई कवि ही हुआ जो अपनी प्रतिभा इसमें दिखा कर विद्वानों को भोजपुरी की ओर आकृष्ट कर सके और न हरिश्चन्द्र जी के ऐसा इसको कोई गद्य लेखक ही मिला जो इसके गद्य साहित्य की अभिवृद्धि कर सके। भोजपुरी प्रदेश के अत्यधिक संख्या में कवि और लेखक हिन्दी के प्रमुख कवि और लेखक थे और आज हैं भी, पर सब ने अपनी प्रतिभा को हिन्दी में व्यक्त किया और अपनी मातृ भाषा को उस अभिव्यक्ति का माध्यम विद्यापति जी के ऐसा नहीं बनाया। कबीरदास, धरमदास, धरनीदास, शिवनारायण आदि सन्त कवियों ने इस ओर अधिक ध्यान अवश्य दिया था।

प० उदय नारायण त्रिपाठी जी ने अपनी भोजपुरी व्याकरण के सिलसिले में यह विशद रूप से साबित किया है कि कबीर साहब की मातृभाषा भोजपुरी थी और उनकी सारी रचनायें भोजपुरी में ही हुई थीं क्योंकि वे पढ़े लिखे विद्वान पण्डित तुलसीदास जी की तरह नहीं थे। वे कहते हैं कि कबीर की रचनाओं को हिन्दी में करने का श्रेय, व्रज भाषा को ही साहित्य का एक मात्र माध्यम मानने वाले उनके भक्त और शिष्य सम्प्रदाय वालों को ही है। इन्होंने ही समय के दौरान में कबीर की रचनाओं की क्रिया और शब्द आदि का परिवर्तन करके उन छन्दों को व्रज भाषा या अवधी या पजाबी का रूप दे दिया है। मूल छन्दों को देखने से तथा उनके भोजपुरी प्रान्त मे गाये

जाने वाले हिन्दी से मिलान करने से यह साफ हो जाता है कि जो 'उपमा, मुहावरा, आदि उन छन्दों में दिये गये हैं वे सब भोजपुरी के ही हैं केवल क्रिया आदि का परिवर्तन करके उसे अन्य बोली का बना लिया गया है। अभी गया से निकलने वाली 'उषा' में बाबू शिव पूजन सहाय जी ने तुलसी दास की विनय पत्रिका के किसी गीत के अनुवाद को उदाहरणार्थ पेश करके तथा रामायण की भूमिका का उद्धरण देकर यह सिद्ध किया है कि रा० ब० बाबू श्याम सुन्दर दास जी और आचार्य्य राम चन्द्र शुक्ल जी ऐसे विद्वानों ने भी जिनकी जन्म भूमि और मातृ भाषा दोनों भोजपुरी ही है, भोजपुरी शब्दों और मुहावरों का, जो इन सन्त कवियों द्वारा व्यवहार किये गये हैं, अर्थ करते समय उन्हें व्रजभाषा का या पूर्वी हिन्दी का बताते हैं और भोजपुरी के नामोच्चारण तक से अपने को बचाते हैं। पर इससे उसके ठीक वास्तविक अर्थ का अनर्थ ही हो जाता है।

फिर इसके अलावे इस कवि का लिखा हुआ कोई रामायण या विनय पत्रिका ऐसा काव्य ग्रन्थ नहीं है। उनकी स्फुट रचनायें ही भक्तों द्वारा सकलन की गयी हैं। इससे उनमें परिवर्तन करने की अधिक सुविधा मिल सकी है और जिसने जैसा चाहा वैसा रूप उनका दे डाला।

भोजपुरी साधारण जनता द्वारा जो अधिकतर पठित नहीं है साहित्य का माध्यम भूतकाल ही में नहीं मानी गई थी आज भी मानी गई है और हजारों हजार रचनायें नित्य भोजपुरी में होती हैं और मरने वालों के साथ विलोप भी होती जाती हैं। जैसा के सभी भाषा के कण्ठ में रहनेवाले साहित्यों की दशा होती है। परन्तु जो प्रौढ निधि भोजपुरी के साहित्य में स्मरणरूप में आज भी वर्तमान है वह छपकर साहित्य में जिस दिन खड़ी होगी उस दिन अन्य बोलियों का साहित्य फीका पड़ेगा।

भोजपुरी की जातीयता

भोजपुरी भाषा भाषियों की अपनी अलग जातीयता है। उसकी अपनी विशेष रहन सहन, स्वभाव और जीवन के अलग दृष्टिकोण हैं। उसका

रहन सहन सादा, विचार साधारण ऊँचा पर अक्खड़ और बलाढ्य प्रकृति का होता है। वह धर्म्म में अन्धविश्वास अवश्य रखता है पर उस धर्म को अपने जीवन के साहस पूर्ण कामों और नई नई कठिनाइयों के अनुभवों में बाधक नहीं होने देता। वह दिखावटीपन या लिफाफाबाज कम और वास्तविक अधिक होता है। अपनी कुशाग्र बुद्धि से वह परिस्थिति की गम्भीरता को तुरत समझ लेता है और उसके अनुसार अपने को बना लेने के लिये तुरत कार्य्यशील हो जाता है। उसकी नस नस मे अक्खड़पन, निर्भयता और वीरता भरी रहती हैं। वह लडाई केवल लड़ाई भर के लिये मोल लेने को सदा तैयार रहता है। परन्तु इसके साथ भाषा और हृदय की मृदुलता तथा आतिथ्य धर्म का विचार उसको सदा स्मरण रहता है। वह अपने पौरुष और पराक्रम पर विश्वास रखता है। इसी से वह दूर दूर के प्रदेशों में भी जाकर बस जाता है और जीविकोपार्जन करता है। जैसा कि अंग्रेज विवेचकों का भी मत है जो इस भूमिका के आरम्भ में दिया गया है।

जी० ए० ग्रिअर्सन ने लिंगुइस्टिक सर्वे आफ इंडिया भाग पाँच के पृष्ठ ४ और पाँच पर लिखा है '...... भोजपुरी उस शक्तिशाली, स्फूर्ति पूर्ण और उत्साही जाति की व्यावहारिक भाषा है जो परिस्थिति और समय के अनुकूल अपने को बनाने के लिये सदा प्रस्तुत रहती है और जिसका प्रभाव हिन्दुस्तान के हर एक भाग पर पड़ा है। हिन्दुस्तान मे सभ्यता फैलाने का श्रेय बगालियों और भोजपुरियों को ही प्राप्त है। इस काम में बगालियों ने अपनी कलम से काम लिया है और भोजपुरियों ने अपनी लाठी से।"... .. "भोजपुरी भाषा भाषी प्रदेश उस जाति का प्रदेश है जो अपने अन्य बिहारी भाषा भाषी भाइयों से एक विलक्षण अलग स्वभाव की है। यह जाति भारतवर्ष की लड़ाकू जाति है। इनमें स्वभाव मे ही सहज रूप में सदा चैतन्य रहने वाली जातीयता जिसमे दोष बहुत ही नगण्य और गुण और योग्यता अत्यधिक मात्रा में वर्तमान रहती है, पायी जाती है। यह सग्राम को केवल सग्राम करने भर के विचार से प्यार करते हैं। ये आर्य्य [illegible] सर्वत्र [illegible]। प्रत्येक मनुष्य किसी भी सयोग या कुयोग [illegible] जो

स्वतः आ उपस्थित होती है अपनी किस्मत आजमाने और उससे अपनी जीविकोपार्जन करने के लिये सदा प्रस्तुत रहता है। इस जाति का प्रदेश हिन्दुस्तान की सेना की भर्ती के लिये बहुत उपजाऊ खान का काम करता है। पर साथ ही इसके ठीक प्रतिकूल सन् १८५७ ई० की क्रान्ति में इस जाति ने प्रमुख भाग लियो। भोजपुरी अपनी लाठी का उतना ही (अस्त्रशस्त्र छीन जाने पर लाठी ही उसके पास बच रही) प्रेमी है जितना आयरलैंण्ड निवासी अपनी छड़ी से प्रेम करता है। बड़ी मोटी और लम्बी हड्डियों वाला लम्बा कद भोजपुरी अपनी मोटी लाठी के साथ सुदूर के खेतों में लम्बे कदम से टहलता हुआ सदा देखा जाता है। हजारों भोजपुरी बृटिश कालोनीज में बस कर वहाँ से धनी हो घर लौटे हैं। हर वर्ष बहुत बड़ी सख्या में ये उत्तरीय बगाल में घूमते हैं और वहाँ अपनी जीविका इमानदारी के साथ नौकरी करके या लाठी केवल डकैती से उपार्जन करते हैं। कलकत्ता में इनसे कम वीर बगाली सदा इनसे डरा करते हैं। कलकत्ता इस जाति से भरा पडा है। ऐसी जाति भोजपुरियों की है जो भोजपुरी भाषा बोलते हैं। यहाँ यह भी भली भाँति समझ लेना चाहिये कि उनकी भाषा की लाघवता और उदारता इतनी बढ़ी चढी है कि सभी प्रस्तुत प्रयोगों के लिये वह प्रस्तुत और उपयुक्त रहती है क्योंकि उसमें व्याकरण की जटिलता अत्यधिक मात्रा में कहीं भी नहीं है।"

सबसे विशेषता इस भोजपुरी जाति में यह है कि यह अपनी भाषा, धर्म और देश का प्रेमी सदा रही है और आज भी है। चाहे वह जिस परिस्थिति में हो पर उसके हृदय में यह प्रेम सदा अपना स्थान सर्व प्रथम बनाये रखता है और मौका पाते ही वह उसके अनुसार कार्य्य तुरत करना शुरू कर देता है। उसके देश प्रेम का उदाहरण सन् १८५७ का राज विप्लव प्रत्यत्त है।

गत सन् १९४२ का आन्दोलन भी इस क्षेत्र में सबसे अधिक सक्रिय रहा।

सन् १९१६ का बकरीदी दंगा जो आरा में हुआ था उनके धार्मिक

अंध विश्वास का उत्कट उदाहरण है। मातृ-भाषा के प्रति उनका प्रेम इतना उत्कट है कि जब दो भोजपुरी मिलेंगे तो वे आपस में भोजपुरी में ही वार्ता करेंगे। इस स्वभाव से डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद तथा बाबू सचितानन्द सिनहा भी वंचित नहीं हैं। वर्तमान समय में भी अपने इस वीर स्वतंत्र स्वभाव तथा देश-प्रेम का परिचय भोजपुरी प्रदेश ने विभिन्न कांग्रेस आन्दोलनों के जन आन्दोलन के अवसरों पर पूर्ण रूप से दिखाया है। महात्मा गांधी के गिरफ्तार होने के बाद सन् ४२ के अगस्त में देश प्रेम में पागल भोजपुरी भाषा प्रदेश के निवासियों ने ही सबसे अधिक आन्दोलन उत्तर भारत में मचा रखा था। यही नहीं दमन के जमाने में भी इन जिलों में भोजपुरी वीरता की भावना घटी नहीं। पहले कह ही चुके हैं कि इस कठिन अवसर पर भी किस तरह उनके कवियों ने सैकड़ों हास्य, व्यंग और वीरता के गाने बना बना कर इस दमन को खेल सा समझ कर गाया है। सबसे बड़ी बात यह है कि आज भारतवर्ष २६ जनवरी को कतिपय वर्षों से ही स्वतन्त्रता दिवस मनाता है, पर भोजपुरी प्रदेश ने १८५७ से ही हर फाग में जो इस स्वतन्त्रता की प्रतिज्ञा को दुहराना और बड़े समारोह के साथ मनाना शुरू किया सो आज तक गाव गाव में जारी है। फाल्गुन में जब हर गाव की हर मण्डली में फाग गाना प्रारम्भ होता है तो सर्व प्रथम "बाबू कुअर सिंह तोहरे राज बिनु अब न रंगइबों केसरिया" वाला फाग जो भूमिका में पृष्ठ ३६ पर दिया जा चुका है गाया जाता है और बच्चा बच्चा देश प्रेम में मस्त हो उठता है।

एक भोजपुरी प्रान्त को दो भागों में बाट देने से भोजपुरी भाषियों की एकता और संगठन में प्रचुर ह्रास हुआ है। इससे ही अंग्रेज नीतिकारों को संतोष नहीं हुआ। उन्होंने भोजपुरी भाषा को भी, जो भोजपुरी भाषियों को प्राण से भी अधिक प्रिय है पांच भेदों में बाँटना उचित समझा। ग्रियर्सन साहब के लिंगु इस्टिक सर्वे आफ इन्डिया के लिखे जाने में वैज्ञानिक खोज के साथ साथ विभेद नीति को भी सफल करना उनका एक उद्देश्य रहा होगा। तभी तो उन्होंने एक भोजपुरी भाषा में पांच भेदों का निदर्शन किया है। उन्होंने भोजपुरी के इन पांच भेदों का नाम करण और स्थान भेद दिया है—

१—विशुद्ध भोजपुरी जो शाहाबाद, बलिया, गाजीपुर (पूर्वी भाग) और सरयू और गडक के दोआब में बोली जाने वाली भाषा है।

२—पश्चिमी भोजपुरी-फैजाबाद (टांडा तहसील) आजमगढ, जौनपुर, बनारस, पश्चिमी गाजीपुर, मिर्जापुर के दक्षिणी गांगेय प्रदेश, गोरखपुर और बस्ती जिलों में बोली जाने वाली भाषा।

३—नगपुरिया छोटा नागपुर में बोली जाने वाली भाषा।

४—मधेशी चम्पारन में बोली जाने वाली भाषा।

५—थारु-नेपाल के सरहद के साथ साथ बहराइच तक बोली जाने वाली भोजपुरी।

हिन्दुस्तान के इतने शक्तिशाली जनसमूह की एक भाषा, एक संस्कार, एक प्रान्त हो और उनकी एकता और संगठन बना रहे यह अंगरेज नीतिकारों के लिये कब सह्य होने की बात थी। बस मीठी मीठी प्रशंसा के साथ इसकी एक जातीयता की भाषा और प्रान्त को पाँच और दो भागों में बाँट कर उसको क्षीण करना उनका ध्येय हो गया।

वास्तव में ग्रियर्सन साहब द्वारा दिये गये विभेदों में कोई खास वैज्ञानिक परस्पर विभेद हो सो बात नहीं है। पाँचों भेदों के व्याकरण उसके नियम और मुहावरे एक हैं। सबकी लोकोक्तियाँ, गीत, साहित्य, पहेली तथा उनकी भाषा एक है। कहीं कहीं उच्चारण भेद तथा नी, ली, टे के प्रयोग पर ही यदि एक भाषा को पाँच भेदों में बाँटना ध्येय हो तो केवल शाहाबाद में ही तीन भेदों का उल्लेख उन्हें करना चाहता था। भभुआ सबडिवीजन और सदर सबडिवीजन के स्थानों की बोली के उच्चारण में आपस में भेद है। वैसे ही बक्सर सबडिवीजन और दक्षिणी ससराम सबडिवीजन के निवासियों के उच्चारण में भी भेद सुनाई पड़ता है। 'तो इस तरह देखने से तो हर ५० मील' पर की बोली के उच्चारण में थोड़ा अन्तर आ ही जाता है। ऐसा होना बिलकुल स्वाभाविक और अनिवार्य है। इस आधार पर चलने से तो किसी भाषा का रूप ही नहीं निर्धारित हो सकता। सुलतानपुर और प्रतापगढ की अवधी और लखीमपुर और सीतापुर

की अवधी को दोनों जगहों वाले एक ही अवधी मानते हैं पर दोनों में काफी अन्तर है या नहीं। ग्रियर्सन साहब भी रामायण की भाषा को अवधी मानते हैं। इगलैन्ड की हर काउन्टी के उच्चारण में भेद है जिसकी चर्चा बरनार्ड शाने अपने एक नाटक में किया है। तो क्या इससे अंग्रेजी में भी उतने ही भेद कर दिये जायेंगे ? भाषा के विभेद का आधार ऐसा मानना उचित नहीं और न कभी यह किसी को मान्य ही हो सकता है। विगत पृष्ठों पर मोतीहारी शाहाबाद, बनारस आदि की सभी तरह की भोजपुरी का उदाहरण आया है। उन सब को देखने में किसी को भेद ऐसी कोई चीज नहीं दिखाई पड़ती और न उनके अर्थ समझने में ही किसी को अलग कोष और व्याकरण देखने पड़ते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि भोजपुरी को जिन पाँच उपरोक्त भागों में ग्रियर्सन साहब ने बाँटा है वह सही नहीं।

फिर भोजपुरी प्रदेश की भाषा तथा उसके सस्कार और जातीयता की एकता के विषय में भी हम अगले पृष्ठों पर अधिक बातें प्रतिपादित कर चुके हैं और कह चुके हैं कि उसमें कोई भेद नहीं है। और यदि कोई भेद कहता या मानता है तो वह प्रत्येक भोजपुरी भाषी को वैज्ञानिक दृष्टि से भी उतना ही अमान्य होगा जितना वह अपनी जातीयता और देश प्रेम के विचार से उसे अवाञ्छनीय मानता है।

अभी अक्टूबर सन् ४३ के विशाल भारत में श्री राहुल साकृत्यायन ने, भोजपुरी के प्रेमी और लेखक होते हुए भी, भोजपुरी नाम के स्थान पर मल्लिका, काशिका आदि नामों को रखने का आग्रह—करके भोजपुरी को एक दूसरे रूप मे विभाजित करने की बात उठायी है। वे राजनीति के क्षेत्र में आकर भी यह भूल जाते हैं कि इस विभेद से जो वैज्ञानिक दृष्टि से विभेद का कोई महत्व नहीं रखता है इतने बड़े प्रदेश की शक्ति—जिसकी अपनी एक अलग जातीयता दो हजार वर्षों से कायम होचुकी है विलकुल नष्ट भ्रष्ट हो जायगी। राहुलजी के इस लेख का उत्तर बहुत ही सुन्दर और पाण्डित्य पूर्ण रूप मे एक भोजपुरी भाई ने अभी फरवरी १९४४ के विशाल भारत भाग ३३, अक २, पूर्णाङ्क १९४४ में प्रकाशित कराया है। इस लेख की दलीलें

अकाट्य और सर्वमान्य हैं। इस लेख के आवश्यक अंशों का यहाँ उद्धरण करना लेखक को जरूरी इस लिये जान पड़ा कि इसमें दोनों पक्ष की दलीलें सूक्ष्म रूप से व्यक्त हो गयी हैं।

"पता नहीं, राहुल जी ने भोजपुरी के स्थान पर सब जगह मल्लिका भाषा लिखने का कष्ट क्यों किया है। तारीफ की बात तो यह है कि जहाँ उन्होंने मल्लिका लिखा है वहीं कोष्टक में उन्हें भोजपुरी भी लिखना पड़ा है। शायद बिना भोजपुरी लिखे वे मल्लिका का परिचय न दे सकते थे। सचमुच मल्लिका एक नया नाम है जिसे जतलाने के लिये किसी व्यापक नाम का आश्रय लेना ही होगा और वह भोजपुरी ही है। मल्ल जन पदों को हम जानते हैं और साथ ही यह भी जानते हैं कि मल्लों का केन्द्र स्थान कहीं गोरखपुर के पास था। जयचन्द्र जी ने 'भारतीय इतिहास की रूपरेखा" में लिखा है कि 'मल्ल जनपद वृजि जनपद के ठीक पश्चिम और कोशल के पूरब सटा हुआ आधुनिक गोरखपुर जिले में था। पावा और कुशावती या कुसीनारा (आधुनिक कसिया, गोरखपुर के नजदीक पूरब) उनके कस्बे थे। उसमें छपरा भी शामिल रहा होगा, यह हम मानते हैं क्योंकि इन जनपदों की सीमा कब क्या रही यह निश्चय से कहना कठिन है।

पर अगर मल्ल जनपद की सीमा भी वहीं रही हो, जैसा कि राहुल सांकृत्यान जी बतला रहे हैं—जैसे छपरा, आरा, बलिया, मोतिहारी, देवरिया और दिलदार नगर तो भी तो उनकी बोली या भाषा मल्लिका नाम से नहीं थी। आज के जमाने में जो क्षेत्र मल्ल जनपद के नाम पर राहुल जी बतला रहे हैं—वह भी तो एक अजीब चीज है। वे देवरिया तो कहते हैं, मगर गोरखपुर नहीं, दिलदार नगर कहते हैं मगर गाजीपुर नहीं, देवरिया और दिलदार नगर में अगर मल्लिका है तो गोरखपुर और गाजीपुर में क्यों नहीं है? फिर मल्लिका (यानी भोजपुरी) और काशिका (यानी भोजपुरी) में भेद कहाँ रहा? "छपरा और बनारस की बोलियों का दावा आपके सामने आवेगा। और मल्ल तथा काशी जनपदों के निवासी अपनी अपनी भाषाओं की सत्ता स्वीकार करा के रहेंगे।" राहुल जी के इस कथन में अलग सत्ता

स्वीकार कराने का प्रश्न ही कहाँ उठता है ? राहुल जी कहते हैं :—

"ग्रियर्सन का प्रयत्न प्रारम्भिक था, इसलिये उनके भाषा तथा क्षेत्र विभाग भी प्रारम्भिक थे । उन्होंने भोजपुरी के भीतर ही काशिका और मल्लिका दोनों को गिन लिया है जो व्यवहारतः बिलकुल गलत है ।" भले ही ग्रियर्सन का प्रयत्न प्रारम्भिक रहा हो । पर जयचन्द्र जी का मत तो प्रारम्भिक नहीं है । जयचन्द्र जी कहते हैं—"भोजपुरी गगा के उत्तर दक्षिण दोनों तरफ है । वस्ती, गोरखपुर, चम्पारन, सारन, बनारस, बलिया, आजमगढ, मिर्जापुर और शाहाबाद (इसमें गाजीपुर शायद भूल से छूट गया है, इस लिये हम उसे भी रख लेते हैं) अथवा प्राचीन मल्ल और काशी राष्ट्र उसके अन्तर्गत हैं । अपनी एक शाखा नागपुरिया बोली द्वारा उसने शाहाबाद से पालामू होते हुए छोटा नागपुर के दो पठारों में से दक्खिनी पठार अर्थात् राँची के पठार पर कब्जा कर लिया है ।" आगे वे झाड़ खण्ड के सम्बन्ध में लिखते हुए कहते हैं—"किन्तु उस पर मुख्यतया बिहार की मगही और भोजपुरी बोलियों ने, और उनमें से भी अधिक भोजपुरी ने अधिकार किया है । जयचन्द्र जी के इस मत का समर्थन हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी अध्यापक श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की 'वाङ्मय विमर्ष' नामक पुस्तक से होता है । उन्होंने लिखा है— 'बिहारी के वस्तुतः दो वर्ग हैं—मैथिली और भोजपुरिया । भोजपुरिया पश्चिमी वर्ग में है । और मैथिली पूर्वी वर्ग में । भोजपुरिया मैथिली से बहुत भिन्न है ˙ ˙ ˙ भोजपुरिया युक्तप्रान्त के पूर्वी भाग गोरखपुर, बनारस कमिश्नरियों और बिहार के पश्चिमी भाग चम्पारन, सारन, शाहाबाद जिलों की बोली है । ˙˙ ˙˙˙˙ इसके अन्तरगत भोजपुरी पूरबी और नगपुरिया बोलियाँ हैं ।" झाड़ खण्ड में जयचन्द जी ने मगही का जो अधिकार लिखा है वह इतना ही है कि गया से कुछ शिक्षित और सभ्य व्यक्ति जाकर राँची के पठार पर बस गये हैं । उनके साथ मगही बोली भी कुछ अशों में स्वभावतः वहाँ चली गयी है ।

इस प्रकार शाहाबाद के जिले के भभुआ सबडीविजन का बनारस से कितना गहरा सम्बन्ध है । इसे वहाँ की बोलियों का अध्ययन करके समझा

जा सकता है। इसके अलावे जमानिया स्टेशन (गाजीपुर ई० आई० मेन लाइन) से एक सड़क दुर्गावती स्टेशन (ई० आई० ग्रैण्ड० कार्ड लाइन शाहाबाद) तक चली गयी है। यह सड़क आठ या दस मील लम्बी है। इसमें गाजीपुर जिला बोर्ड की दो मील, बनारस जिला बोर्ड की दो मील, और शाहाबाद जिला बोर्ड की चार या छः मील लम्बी सड़क है। अब कोई बतावे कि इस सड़क के आस पास के गाँवों में भाषा मल्लिका होगी कि काशिका ? हम कहते हैं इन सब गाँवों की भाषा भोजपुरी है। इसी आधार पर हम यह कहना चाहते हैं कि मल्लिका काशिका और भोजपुरी का यह बिना झगड़ा का झगड़ा क्यों ? प्राचीन काल मे चाहे जो भी बढा चढा हो, आज तो सब एक दशा में हैं, सबकी एक ही बोली भोजपुरी है।' तब तीनों एक में मिल क्यों न जाँय ? हम फिर कहना चाहते हैं कि अवधी के बाद भोजपुरी है। उनके बीच में अन्य कोई भाषा गढने से फायदा नहीं होगा। यदि छोटे मोटे भेदों पर ध्यान दिया जायगा तो घर घर की भाषा अलग अलग हो जायगी।

—लेखक की स्वीकृति से

इसके अतिरिक्त हिन्दी के बड़े विद्वान बाबू श्यामसुन्दर दास तथा प० पद्मनारायण आचार्य ने भी अपने "भाषा रहस्य" में भोजपुरी की एकता और विस्तार को लेखक के मत के अनुसार ही स्वीकार किया है। पृष्ठ २०६ (प्रधान भाग) पर बिहारी का विवरण देते हुये उन्होंने लिखा है:—

पूर्व की ओर आने पर सबसे पहली बहिरग भाषा बिहारी मिलती है। बिहारी केवल बिहार में ही नहीं, सयुक्त प्रान्त के पूर्वी भाग अर्थात् गोरखपुर-बनारस कमिश्नरियों से लेकर पूरे बिहार प्रान्त में तथा छोटा नागपुर में भी बोली जाती है। यह पूर्वी हिन्दी के समान हिन्दी की चचेरी बहिन मानी जा सकती है।

(१) मैथिली जो गंगा के उत्तर दरभंगा के आस पास बोली जाती है।

(२) मगही जिसका केन्द्र पटना और गया है।

(३) भोजपुरी जो गोरखपुर और बनारस कमिश्नरियों से लेकर बिहार प्रान्त के आरा (शाहाबाद) चम्पारन और सारन जिलों में बोली जाती है। यह भोजपुरी अपने वर्ग की ही मैथिली मगही से इतनी भिन्न होती है कि चैटर जी भोजपुरी को एक पृथक वर्ग में ही रखना उचित समझते हैं।

इन उद्धरणों को पढ़कर भोजपुरी के विभेद के पक्ष की सभी दलीलों की निर्मूलता तथा इन पंक्तियों के लेखक के मत की प्रामाणिकता पाठकों पर स्वय स्पष्ट हो जायेगी। अस्तु।

अब इस भूमिका के लेखक को कतिपय निजी तथा सार्वजनिक कारणों से इस भूमिका को यहीं समाप्त करना पड़ता है। शेष तीन शीर्षकों वाला अश इस पुस्तक में नहीं जा सका। यदि ईश्वर ने चाहा तो वह अश भी जो इस भूमिका का मुख्य अश है पुस्तिका के रूप में पाठकों को अवलोकनार्थ शीघ्र भेंट किया जायगा।

लेखक,

दुर्गाशकर-प्रसाद सिंह

नवम्बर, ४३

जगद्देव का पवाँरा जो बुन्देलखण्ड में गाया जाता है जिसका सकेत भूमिका के पृष्ठों में हो चुका है :—

कसामीर काह छोड़े भुमानी नगर कोट काह आई हो, माँ।
कसामीर कौ पापी राजा सेवा हमारी न जानी हो, माँ।
नगर कोट धरमासन राजा कर कन्या विलमाई हो, माँ।
कन्या कर विलमावेवारी राजा पलना डार झुलाई हो, माँ।
पलना डार झुलावे वारी राजा मुतियन चौक पुराये हो, माँ।
मुतियन चौक पुरावे वारी राजा कचन कलश धराये हो, माँ।
देवी जालपा राजा धरमासन खेले पासासार हो, माँ।
कौना के पासे रतन सवारे कौना के पासे लाल हो, माँ।
देवी के पासे रतन संवारे धरमासन के पासे लाल हो, माँ।

पैले पासे डारे धरमासन परी न एकऊ दाव हो, मा।
दूजे पासे डारे भुमानी परे पचीसऊ दाव हो, माँ।
हस हंस पूछे मइया लगैरवा को हारी को जीती हो, मा।
हार चलो धरमासन राजा जीती मोरी श्राद भुमानी हो, मा।
मनसे चली मोर श्राद भुमानो सात समुद खा जाय हो, माँ।
मनसे चली मोरी श्रादि भुमानी डोलै डोलै वरन छिपाये हो,मा।
मलिहा मलिहा टेरे भुमानी मलहा के नाव लिश्रावो हो, मा।
श्राज वसा लियों वारु रेत में भोरइ उतारौं पैले पार हो, मा।
पाँच टका गाठी के खोले जबई उतारौ पैले पार हो, मा।
गर्भ न कर मलहा के वारे गर्भ इ होत विनास हो, माँ।
गर्भ करो लका के रावन सोने को लका विनासी हो, माँ।
गर्भ करो वन की गुमचू ने लाल वदन भौ कारे हो, मा।
गर्भ करो चकइ चकवा ने सोने की रैन विछोई हो, मा।
गर्भ करो रतनाकर सागर जल खारे कर डारे हो, मा।
पहली चुरु जल श्रचये भुमानी समुद गये खलयाये हो, मा।
दूजी चुरु जल श्रचये भुमानी समुदा कीच गिलाये हो, मा।
तीजी चुरु जल श्रचये भुमानी समुदा धूर उड़ाये हो, मा।
उठ राजो मछ विनती करत हैं जिया जन्त मर जाये हो, मा।
जैसे तैसे समुद भरा दो श्रवई उतारों पैले पार हो, मा।
कारी घटा उर पीरी वदरिया जे दोऊ उनईं जाये हो, मा।
सात समुद पै जल वरसाये वरसे घोरा घोर हो, मा।
भरे समुद में सिंगा नचावें जलऊ न डूब पाँव हो, माँ।
मनसे चली श्राद भुमानी हूला नगर खां जाय हो, मां।
हूला नगर में डोले भुमानी लेवे सब के भाव हो, मा।
मनसे चली मोरी श्राद भुमानी जगदेव जू के रावरन जाय हो मा।
श्रावत देखीं जगदेव जू की रानी मन में गईं मुसकाय हो, मा।
श्राव श्राव री मोरी श्राद भुमानी जीयरा के परम श्रधार हो, मा।

काये पटरन डारो बैठका काये पखारों दोइ पाव हो, मा ।
चन्दन पटरी डारों बैठका दूधा पखारों दोइ पाव हो, मां ।
ताते से माड़े माई सीमइ बनालो और सुरश्रन दूध हो, मा ।
सोने के थार परोसे वारी रानी रूपे कथुल्लन दूध हो, मा ।
पाच गिरास करे जग तारन थार दये सरकाय हो, मा ।
उठ उठ देखै मोरी श्राद भुमानी जगदेव जू कुवर न दिखाय हो, मा ।
टक्का को चाकर कहिये पुवारो घर श्रावे तीसरे पार हो, मा ।
मनसे चली मोरी श्राद भुमानी दल पगरे रावरन जाय हो, मा ।
सीस डगारे माई लटै फिकारे कैसी श्राई माज डपारी हो, मा ।
तोरी सभा में को है ऐसो राजा जो मोरे माथे ढाके हो, मा ।
थान दसक मगवाये दल पगरे माथे ढकन न होय, मा ।
कै मोरे माथे ढाकै रै जगादेव कै उरहइ कै रइया राव हो, मा ।
जो काछू देवे राजा जगादेव जो सौ चौगुनी दियो हो, मा ।
जगदेव देवे देस परगनों मैं दिवों राज तिहाई हो, मा ।
जगदेव देवे इक दो घुडला मैं घुड़सार हकाश्रों हो, मा ।
जगदेव देवे इक दो हथिया मैं हथसार हकाश्रो हो, मा ।
जगदेव देवे मोरै रुपइया मैं दियों खिचरा भराय हो, मा ।
जगदेव देवे खीर पवरिया मैं दियों डला भराय हो, मा ।
तामे के पत्र मगाये जगतारन लिखवाये चौगुने दान हो, मां ।
वाचा हराय चली जगतारन जगदेव जू की रावरन जाय हो, मा ।
श्रावत देखों श्राद भुमानी जगदेव जू मन में गये मुसकाय हो, मा ।
श्राव श्राव री मोरी श्राद भुमानी कानौ ढार दये पाँव हो, मा ।
तोई लों श्राई धारा नगरी के दै दे हमारे दान हो, मा ।
श्राठ दार राजा गुपन चढावे नमये दियो प्रगट चढ़ावे हो, मा ।
घरियक विलमो मोरी श्राद भुमानी मैं रनवासे जाव हो, मा ।
का रनियन के लेव बुलउश्रा करे दान में हान हो, मा ।
नारी कमऊ न निदरौ माता, नारी कचन खान हो, मा ।

भोजपुरी-लोक-गीत

मे

करुण रस

२०० वर्ष पहले के भोजपुरी गीत

छपरा जिला में, छपरा से तीसरा स्टेशन बनारस आने वाली लाइन पर मॉझी है। यह मॉझी गॉव बहुत प्राचीन स्थान है। यहा कभी (वेरुआर या अन्य किसी) क्षत्रियों का बड़ा राज्य था। जिनके कोट का टीला इस समय सरकार द्वारा संरक्षित है। वह डेढ़ मील की लम्बाई में है। इसी गॉव में इसी राज्य के दीवान घराने के कायस्थो की काफी आबादी है। इसी वंश में शाहजहाँ के निधन और औरङ्गजेब की *तख्तनसीनी* के समय धरनीदास जी नाम के एक महान सन्त हो गये हैं। ये इस राज्य-वंश के दीवान अपने पिता की मृत्यु के बाद बने थे। पर तुरन्त ही इन्होंने दिल्ली तख्त पर बादशाह औरंगज़ेब के आसीन होते ही फकीरी ले ली थी। इन्होंने कहा '—

शाहजहाँ छोड़ी दुनिआई, पसरी अवरगजेब दुहाई।
सोच विचारि आतमा जागी, धरनी धरेउ भेस वैरागी।

इनके गुरु विनोदा नन्द जी थे। उनका देहावसान संवत् १७३१ कृष्ण पक्ष, श्रावणमास की नवमी को हुआ था। "सतरह सै एक तीस भवो सम्मत सरसौमी॥ कृष्ण पक्ष पर तच्छ सुभग सावन तिथि नौमी॥ करि विचार भृगुवार विनोदा नन्द पधारे॥ . . . .॥" इस छप्पय में धरनीदास जी ने गुरु के देहावसान की तिथि बतायी है।

इन महान सन्त ने उस समय की प्रचलित बोलियों में 'शब्द प्रकाश' और 'प्रेम प्रकाश' नामक दो ग्रन्थ लिखे थे जो आज भी प्राप्त है। ये दोनों ग्रन्थ

अप्रकाशित है। शब्द प्रकाश को सन् १८८७ में बाबू रामदेव नारायण सिंह, मु० चैनपुर जि० सारन ने छपवाया था। पर वह बहुत अशुद्ध है मूल हस्त लिपि की १०० वर्ष पूर्व की लिखी कापी भी बाबू राज वल्लभ सहाय जी, सा० माँझी के पास है। 'प्रेम प्रकाश' की पाहुलिपि भी माँझी के मठ में जो धरनीदास जी का मठ है, आज तक शिष्य परम्परानुगत वर्तमान है।

धरनीदास जी ने भोजपुरी में अपने 'शब्द प्रकाश' की रचना की है। उनकी हिन्दी में भी भोजपुरी का प्रबल छाप वैसा ही है जैसा कि तुलसीदासजी की रामायण में अवधी का है। खाली भोजपुरी ही नहीं बंगला, पंजाबी, मैथिली, मगही, मोरँगी, उर्दू आदि भाषाओं में भी उन्होंने रचना की है जो 'शब्द प्रकाश' में वर्तमान है।

निम्नलिखित करुण रस के गीत उसी 'शब्द प्रकाश' से इस संग्रह में, दिये गये है। इनमें "प्रौढ़ता, सौन्दुर्य्य, वर्णन शैली और रस परिपाक तथा काव्य के सत्यं, शिव सुन्दरम्, के सभी लक्षण पाठक को तो देखने को मिलेहींगे, साथ ही भोजपुरी काव्य की प्राचीनता और उसकी प्रौढ़ता भी इससे सिद्ध हुए बिना नहीं रहेगी। इस तरह के कितने प्रतिभा पूर्ण काव्य नष्ट हो गये और जो है भी वे ऐसे ही अधकार में पड़े हुए है। उनको ढूढ निकालना और भोजपुरी साहित्य की प्राचीन निधिको पुष्ट करना हर भोजपुरी-भाषा भाषी का परम कर्त्तव्य है। जो लोग कहा करते है कि भोजपुरी का अपना लिखित साहित्य नहीं है उनके इस कथन के विरोध में यह काव्य प्रबल प्रमाण है।

इन गीतों का पाठ ठीक वैसा ही रखा गया है जैसा कि मूल प्रति में है। इससे ३०० वर्ष पूर्व की भोजपुरी का नमूना मिलता है।

धरनीदास जी ने जहाँ प्रचलित भाषाओं में रचना की है वहाँ हर भाषा के प्रचलित छन्दों को भी भोजपुरी में अपनाया है। उन छन्दों का नामकरण भी उन्हीं देशों के अनुसार किया है—जैसे :—राग पंजाबी, राग मोरंगी, राग बंगाला, राग तिरहुती इत्यादि।

निम्नलिखित गीत 'शब्द प्रकाश' की मूल प्रति से उद्धृत है।

राग मगल

(१)

पार बसे प्यारे प्रीतम ओर बसेरा मोर।
गुरु-गम तहाँ चित लुबुधल जैसे पच धन मन चोर ॥
जैसे चकोर चित चदहिं चितवत एक टक लाइ।
जब होइ नैन के ओझल पुहुमी परै मुरुझाइ ॥
जैसे चकई निसि कलपइ भोर निहारि निहारि।
जब लगि दरस-परस नहिं उठत पुकारि पुकारि ॥
धरनी विरह-भुअगम डसेऊ अचानक आइ।
वेगि मिलो प्रभु गारुरी मरत न लेहु जिआइ ॥

अर्थः—उस पार प्यारे प्रीतम रहते हैं, और मेरा बसेरा इस पार किनारे पर है। गुरु के बताने से मेरा चित्त उस प्रीतम पर इस तरह लुब्ध हो गया है जिस तरह थके हुए चोर का मन धन को चुराने के लिये लुभाया करता है, वह उस तरह से उनपर आसक्त है, जिस तरह उस चकोर का चित्त जो चन्द्रमा को एकटक देखते हुए रात भर तो लुभाया करता है पर चन्द्रमा के भोर में उसकी आँखों से ओझल होते ही वह पृथ्वी पर मुरझा कर गिर पड़ता है; अथवा मेरा मन गुरु के ज्ञान से उस चकई की तरह प्रीतम पर लुभा रहा है जो रात भर सवेरे की लालिमा की चिन्ता करके कलपा करती है और जब तक चकवे का दरस परस उससे प्रात काल नहीं हो जाता तब तक सारी रात पुकार पुकार कर बिलखा करती है। धरनीदास कहते हैं कि मुझे विरहरूपी साँप ने अचानक आकर डँस लिया है। अब मैं मरना ही चाहता हूँ। साँप का मन्त्र जानने वाले हे मेरे प्रभु मुझसे मिल कर आप मुझ मरते को क्यों नहीं बचा लेते ?

(२)

मूल सब्द सुधि सुनइत जाग ली आतम नारी।
नैहर नेह बिसरि गैला गुरु सुरती ससुरारी ॥
पूरन प्रेम प्रगट भउ उर उपजे ला अनुराग।
भूखन भवन न भावै नैनन्ह नींद न लाग ॥

संग सलेहरि सकुचति सगति सवति सोहाय ।
बिरहिन बिरह बीआकुल निसिवासर अकुलाय ॥
बिलपति, कलपति, रोअति, झखति झूखति सोइ ।
औषध दरस परस बिनु व्याधि बिनास न होइ ॥
जब लगि जुगुति न जानेऊ रहलि अपावन देह ।
आपु आप नहिं परिखत बाढत सहज सनेह ॥
धरनी-रेखि अदेखिय निर्मल जोति प्रगाश ।
तन, मन, प्रान, जीवन, धन बलि बलि धरनीदास ॥

अर्थः—मूल शब्द के सुनते ही आत्मारूपी नारी जाग उठी और उसको नैहर (मायका) अर्थात् इस शरीर की सुध भूल गई और गुरू की कृपा से ससुराल (परलोक) स्मरण हो आया। पूर्ण प्रेम प्रगट हुआ और हृदय में अनुराग उत्पन्न हो गया। अब आभूषण आदि अलंकार और भवन नहीं भाते। आँखों में नींद का नाम नहीं। संग की सखियाँ अर्थात् दसों इन्द्रियाँ सकुचित अर्थात् शिथिल हो रही है और सवति से संग हो रहा है अर्थात् ईश्वर-भक्ति में ही सदा चित्त लीन रहता है। विरहिणी आत्मा व्याकुल है रात दिन अकुला रही है। विलखती है—कलपती है—रोती और झींखती है और विरह में सूखती चली जाती है। औषध के विना अर्थात् प्रीतम के दर्शन विना उसको बिना व्याधि ही का सन्निपात हो गया है। जब तक युक्ति नहीं जानती थी तभी तक शरीर अपावन था। अपने ही से अपने को नहीं पहिचान सकती। सहज (स्वाभाविक) प्रेम बढ़ रहा है। धरती पर जितनी रेखायें हैं अर्थात् संसार की परम्परा की, रीति रिवाज़ उन सब को भूल गई। निर्मल ज्योति के प्रकाश से धरनीदास की विरहणी आत्मा तन, मन, धन, जीवन और प्राण से प्रीतम पर बलि-बलि जाती है।

इसमें कुछ संज्ञाओं को क्रिया बनाया गया है। भोजपुरी व्याकरण में संज्ञा को क्रिया बनाने का नियम इससे बहुत पुराना सिद्ध होता है सुरति को सुरती करके सुरति दिलाने के अर्थ में प्रयोग हुआ है। वैसे ही अदेखिय का भी अदेख से क्रिया बना अदेख कर देने के अर्थ मे प्रयोग हुआ है।

राग हिंडोल

(१)

अति अदभुत एक रुखवारे। जित कित बिपरित डार ॥
गुरु गम लाग हिंडोलवा रे। चढ़ु मन राजकुमार ॥
माझ मझोर लगिआ रे। प्रेम के डोरि सुढार ॥
पाच सखी सग झूलहि रे। सहजे उठत झझकार ॥
अरध उरध झुकि झूलहिं रे। गहि गहि अधर अधार ॥
विनु मुख मगल गावहि रे। सखि बिनु दीपक उजियार ॥
धरनी जन गुन गाइआ रे। पुलकित वार न वार ॥
जो जन चढ़ेउ हिंडोलवारे। सखि वहुरि न उतरनिहार ॥

अर्थः—एक अत्यन्त अद्भुत वृक्ष है। उसकी डार इधर-उधर फैली हुई है। गुरु के ज्ञान का हिंदोला लगाकर मन रूपी राजकुमार उस पर चढ़ा। घोर वन के बीचो-बीच प्रेम के सुन्दर चढ़ाव-उतार वाली रस्सी से वह झूला लगाया गया है। मेरे (मन रूपी राजकुमार) के साथ पाँच सखिया (पाँच इन्द्रिया) झूला झूल रही है और सहज रूप से झंझा का झझकार उठा करता है। ये सब नीचे-ऊपर झुक-झुक कर और निराधार का आधार ग्रहण कर करके झूल रही हैं। बिना मुख के ये मगल गाती हैं और हे सखी बिना दीपक के ही उजाला करती हैं। यह धरणीदास ऐसे संत जन का गुण गीत है। वे बार बार पुलकित होते हैं। हे सखी! जो पुरुष इस हिंडोले पर चढ़ता है वह फिर लौटता नहीं है।

(२)

नइहर बड़ मोर सुखिना रे, हमरो जे बहुत दुलार ।
सासुर सुधि नहि जानीआ रे, देहुँ कसबिधि बेवहार ॥
सासु सुनिअ बड़ी दारुनि रे, ससुरहिं भावहि गारि ।
देवर देह निहारहिं रे, ननद निपट ननि वारि ॥
टोले वसहिं सब टोनहीं रे, सवति के सिर घरुआर ।
हम अवला नव जोबना रे, कठिन कुटिल ससार ॥

रहत बनत नहिं नइहर रे, सासुर कैसे के जाउँ ।
धरनी धनि सिधि पावहु रे, जौं बालम बसै यहि गाँउ ॥

अर्थः—अध्यात्म पक्ष में विरह वर्णन है । सन्त लोगों की आत्मा ईश्वर के प्रेम में गा रही है । मेरे नैहर में (ससार में) मुझे बड़ा सुख है । मेरा बहुत दुलार होता है । मैं अपने ससुराल का स्मरण भूल गयी । वहाँ कैसा विधि व्यवहार होता था यह भी स्मरण नहीं । सुनती हूँ सास बड़ी कठोर हैं, और मेरे ससुर को गाली ही भली है, मेरा देवर शरीर निहारा (देखा) करता है और ननद अत्यन्त नटखट है । पास पड़ोस में सब टोनही (टोना करने वाली) बसती हैं और सौत को ही घर का सारा अधिकार मिला है । मैं नयी उमर की अबला हूँ और संसार कठिन कुटिल है । मुझसे नैहर ही में नहीं रहते बनता ससुराल किस तरह जाऊँ । धरनीदास की विरहिणी आत्मा तभी सिद्धि पायेगी जब बालम इसमें निवास करेंगे ।

(३)

गरजि असाढ़ जनावइ रे, प्रीतम समुझि सनेह ।
सहजे भवन पगु ढारइ रे, नख सिख पुलकित देह ॥
सावन सब्द सोहावन रे, दादुर झींगुर मोर ।
पिय पिय रटत पपिहरा रे, सखि अमिय सरिस घन घोर ॥
भादव नव सत साजिय रे, कत सुघर घर माहिं ।
सकल कलपना मेटिअ रे, सखि भेंटि कलप तरु छाहिं ॥
आसिन आस पुराइअ रे, पुरबिल पुराने भाग ।
धरनी तिन्ह तिन्ह भुलिआ रे, जिन्ह जिन्ह उर अनुराग ॥

अर्थ.—हे सखि ! यह आषाढ़ मास गर्ज गर्ज कर मेरे प्रीतम के स्नेह को मुझे स्मरण दिला रहा है । प्रीतम जिस भाँति नख से सिख तक सजकर और अग अग से पुलकित होकर मेरे भवन मे प्रवेश करते थे उसका स्मरण यह मास मुझको दिला रहा है । हे सखि ! इस सावन में दादुर और झींगुर तथा मोर के सोहावने शब्द सुन रही हूँ और उधर पपीहा पी-पी की रट लगा रहा है । सो हे सखि ! यह घनघोर वर्षा अमृत के सदृश्य जीवनदायक हो रही है । भादों

(२)

जाहि भैला गुरु उपदेश अम्मा। अग अग मेटल कलेस अम्मा ॥
सुनत सजग भैला जीव अम्मा। उर उपजल प्रभु प्रेम अम्मा ॥
छुटि गैला जाति व्रत नेम अम्मा। जब घर भइल अजोर अम्मा ॥
तब मन मानल मोर अम्मा। देखल से कहल न जाय अम्मा ॥
कहले न जग पतियाय अम्मा। धरनी तिन्ह धनि भाग अम्मा ॥
जिन्ह जिय पिय अनुराग अम्मा ॥

अर्थ :—हे माता! जिस दिन गुरू का उपदेश हुआ उसी दिन मेरे अंग अंग का क्लेश मिट गया। उस उपदेश के सुनते ही मेरा जीव सजग हो गया। और अपने हृदय में अपने प्रभु का प्रेम उत्पन्न किया। इस उपदेश से हे माँ! मेरी लौकिक जाति, नियम और व्रत आदि का प्रपञ्च दूर हो गया। हे माँ! जब इस तरह से शरीर रूपी घर में अँजोर हो गया तब मेरे मन के लिये सबेरा हो गया। और हे माता! जो कुछ मैंने देखा वह कहा नहीं जाता। और जो कहने का प्रयत्न करती हूँ तो ससार उस पर प्रतीत नहीं करता। धरनीदास कहते हैं कि हे माता! उनका भाग्य धन्य है जिनके ऊपर प्रीतम का अनुराग हो।

उपर्युक्त दोनों गीत सन्त महाकवि बाबा धरनीदास कृत हैं। इनका विशेष परिचय अन्यत्र दिया जा चुका है।

(३)

की मोरे देसवा सखि मोरे देसवा, एक अचरज बात मोरे देसवा।
तर के उपर भैला उपर के हेठ।
जेठ लहुर होला लहुरा से जेठ ॥ १ ॥
आगु के पाछू होला पाछू होला आगू।
जागल सुतैला सुतल उठि जागू ॥ २ ॥
नारि पुरुष होला पुरुष से नारी।
माई मानहू नाहीं सवति पिआरी ॥ ३ ॥

आइल ते गइल गइल चलि आव ।
धरनी के देसवा कै अइसन सुभाव ॥

अर्थः—हे सखी ! हमारे देश में एक आश्चर्य की बात है। यहाँ नीचे दबा हुआ मनुष्य को ऊपर उठा हुआ और ऊपर वाले को नीचे माना जाता है। जो आगे है, वह पीछे समझा जाता और जो पीछे है, वह आगे को जाने वाला माना जाता है। जो जगा हुआ है, वह तो सोता हुआ है और जो सोता हुआ है, वह जागता हुआ समझा जाता है। स्त्री जो है वह तो पुरुष मानी जाती है और पुरुष स्त्री। माता को तो माना नहीं जाता पर सवति प्यारी होती है। हे सखी ! इस देश में जो आता है वह तो गया हुआ समझा जाता है और जो चला जाता है वही आया हुआ समझा जाता है। हे सखी ! धरनी (श्लेष है—पृथ्वी का एक अर्थ है और दूसरा अर्थ धरनीदास का है) के देश का यही स्वभाव है।

(४)

जब लगि बारि कुँआरि अम्माँ
तब लगि दुलहि दुलारि अम्माँ
सुन दिन धरल लिआर अम्माँ
आलि लूटे बरन हमार अम्माँ
दो होयनि कुलवो उजिआरि अम्माँ
जहँ प्रभु रचल धमारि अम्माँ
धरनी मनहिं समुझावल अम्माँ
पुरब लिखल फल पाओल अम्माँ

अर्थः—हे अम्मा ! मैं जब तक कुमारी थी तब तक तो प्यारी दुलही समझी जाती थी। मेरा पूरा दुलार होता था। हे मा ! मेरे जाने की तिथि निश्चित हो गयी। ससुर के रूप में तो मेरा बालम है। हे अम्बे ! दस कौ का कुल उज्ज्वल हो जाता है जहाँ (जिसके साथ) प्रभु ने धमार (खेल धम्मा, क्रीड़ा) रचाया। हे अम्बे ! धरनीदास अपने मन को समझाते हैं कि मैंने अपने पूर्व जन्म का फल पा लिया। मेरा जीवन सफल हो गया।

करता राग

(१)

हम धनि सुतलि धवरहर हो दहूँ दिसि रहु रखवार सपन सुभ भैगा ।
तहा एक पुरुष प्रगट भैला हो बैइसल से पलग मझार ॥
बोलिश्रा बोलत सुबोलिश्रा हो सबद परल मोरे कान ।
नैनन्ह देखलन जरी भरी हो देखत हरल मन मोर ॥
जस जानेला तस सानैला हो कलबल कछु न बसाय ।
कहउ जे जाही मन भावैला हो मोहि नहि अवरी सोहाय ॥
धरनी धनि बनव्रती भैली हो पुनि अति से हो पतिश्राय ॥

अर्थः—मैं विरहिणी धौरहर (परकोटा) पर चढ़कर सो रही हूँ। हे पहरेदार! तुम दसों दिशाओं में बैठे रहो। मेरे सामने एक ऐसा सम्भव हुआ,—एक पुरुष मेरे कमरे में प्रकट हुआ और मेरे पलग के बीच आकर बैठ गया। वह सुन्दर बोली बोलने लगा। तब उसके शब्द मेरे कानों में पड़े। नेत्रों ने नजर भर उस पुरुष को देखा और देखते ही मेरा मन हर गया। जिस तरह वह जानता है उस तरह मुझे बनाता है अर्थात् जिस तरह से चाहता है उस तरह से मुझे बनाता है उसके सामने मेरे कल-बल का कुछ बस नहीं चलता। जिसे जो मन में आवे वह मेरे सम्बन्ध में कहे अर्थात् मेरी निन्दा करे मुझे तो उसके अतिरिक्त अब दूसरा कोई पुरुप नहीं सुहाता। धरनीदास कहते हैं कि ऐसी व्रत वाली धनि (स्त्री) धन्य है जिसका प्रीतम ने फिर से पूर्ण विश्वास किया।

(२)

हमउ मतैली हमउ मतैली हमउ मतैली भाई रे ।
हमरे साथ कवहूँ जनि लागे जाके चित चतुराई रे ॥
घरहि के भूत ब्रह्म होय लागल को करि सकै निकाई रे ।
बड़उ मताह हम जानल जेन अजहुँ पतिआई रे ॥
जेउ मतैहि नामदेव कबिरा जैदेव मीराबाई रे ।
जेउ मतैहि सत घनेरे अगिनित-गनि न सिराई रे ॥

धरनीदास कहत भाइ संतो सुनहु सकल दुखिआई रे ।
अवर के भले भये कछुओ नहिं जो जगदीस सहाई रे ॥

अर्थः—हे भाई ! मैं पागल हो गई, पागल हो गई, अरे मैं तो पगली हूँ मेरे नाथ वह जिसके चित में चतुराई हो कभी न लगे । घर का ही भूत ब्रह्म होकर मेरे ऊपर लगा हुआ है इसको कौन निकाल सकता है । जो सब से बड़ा पगला है उसको मैंने जान लिया परन्तु आज तक यह विश्वास नहीं हुआ कि मैंने उसे जान लिया है । जिसने नामदेव, कबीर, जयदेव, मीराबाई को पागल बना दिया और जिसने अनेक सन्तों को जिनकी संख्या गिनने से नहीं चुकती पागल कर दिया है । धरनीदास कहते हैं भाई सन्तों और सारे दुनियादारो सुनो दूसरे किसी के अच्छे और बुरे होने से कुछ नहीं होता जो जगदीश सहायक हों ।

(३)

हो बगालिनि बसउ बंगाले धुर पूरबते आओ रे ।
जे नरनारि प्रचारि मिलै सो तहाँ गुन अपन चलावो रे ॥
सबद सनेह पानी पढि डारउ जुगुति जरी घरी प्याओ रे ।
नैनन्ह हेरी हरौ मन ताको बोलि बचन अपनावो रे ॥
गुरुव ज्ञान खवाएँ तूरति तहाँ भौ जल नदिआ सुखावो रे ।
सिंघ सरीखे जौ होय आवै गाडर करि देखरावो रे ॥
तौ साची सतगुरु की सेवकिनि गगन को तार तोरावो रे ।
धरनी धनि अति बिरह वियोगिनि जोगिनी तबहि कहावो रे ॥

अर्थ.—हे बगालनि ! तुम अत्यन्त पूर्व से आती हो बगाल में बस वहाँ पर जो कोई तुम्हें नर और नारी मिलें उनमें अपने गुणों का प्रचार करो । उस पर अपने शब्द और प्रेम रूपी जादू के पानी को मन्त्र पढ़कर डालो युक्ति रूपी जड़ी घिस कर उसे पिलाओ । अपने नेत्रों से देखकर उसके मन का हरण करो और मीठे वचन कह कर उसे अपना बनालो । गुरु के ज्ञान की शिक्षा देकर तूरीयावस्था अर्थात् मुक्तावस्था का बोध कराओ और उनके ससार रूपी नदी के जल को सुखाओ । सिंह होकर जो सामने आवे उसे अपने सरस व्यवहार से भेड़ ऐसा

बना दो तब तुम, सचमुच अपने गुरू की सेविका हो और तभी तुम आकाश के तारों को तोड़ सकोगी। अर्थात् प्रीतम को पा सकोगी। धरनीदास कहते हैं कि हे स्त्री! तुम तभी धन्य होगी और विरह में धन्य योगिन तभी कहाओगी भी।

(४)

काहि से कहो कछु कहिबो न जाय।
चरन सरन सुमिरन जिन्ह दीन्हों॥
बिनु मसि बिपरित अंक बनाय।
बिनु बाजन अति सबद गहागहि॥
सुनि सुनि पुनि पुनि अधिक सोहाय।
त्रिकुटि के ध्यान पेहान उघरि गयो॥
जगमग जगमग ज्योति जगाय।
सनमुख रहत सलोनी मूरति॥
तेहि देखत जियरा ललचाय।
धरनीदास तासु जन बलि बलि।
जे रघुनाथ के हाथ बिकाय॥

अर्थः—किससे कहूँ कहा नहीं जाता। जिसने चरणों में शरण दी और सुमिरन करने की शक्ति दी—उसी ने बिना स्याही के विपरीत अक बना दिया अर्थात् संसार में अनेक विघ्न बाधायें भी खड़ी कर दीं। बिना बाजा के अनादि शब्द बज रहा है जिसे बारबार सुन सुनकर अधिकाधिक प्रसन्नता प्राप्त होती है। जिससे त्रिकुटी के ध्यान रूपी पिटार का ढक्कन खुल गया और जगमग जगमग ज्योति जागने लगी है। सामने सलोनी मूर्ति रहने लगी जिसे देख देख कर हृदय ललचने लगा। धरनीदास उस पर बलिहारी होते हैं जो रघुनाथ के हाथ बिक गया है।

(५)

डगरी चललि धनि मधुरि नगरिया, बिच साँवर मतवलवा हो ना॥
अटपटि चलन लटपटी सी बोलनि, धाय लगल अँकवरिया हो ना॥

साथ सखिअ सब मुखहू न बोले, कवतुक देखि भुलानी हो ना ॥
मद केरी बास लगल मोरी नकिया, जाय चढ़ल ब्रह्मण्डे हो ना ॥
तबहिं से हो धनि भैली मतवलिया, विनु मद रहल न जाइ हो ना ॥
प्रेम मगन तन गावे जन धरनी, करी लेहु पण्डित विचरवा हो ना ॥

अर्थः—श्री सुन्दर मधुर नगर के मार्ग पर चली जा रही थी कि बीच ही में साँवला मतवाला मिल गया। उसकी चाल अटपटी थी। बोली लटपटा रही थी (उसने दौड़कर अपनी छाती से मुझको लगा लिया। मेरे साथ की सब सखियाँ कुछ मुख से भी नहीं बोलीं। प्रीतम के इस कौतुक को देखकर भूल सी गयी। मेरी नाक में मद (प्रेम) की गद लगी और वह सीधे ब्रह्माण्ड पर चढ़ गयी। तब से मैं श्री भी मतवाली हो गयी। और अब मुझे बिना मद के रहा ही नहीं जाता। धरनीदास प्रेम में मगन होकर गाते हैं और कहते हैं कि हे पण्डित-जन इस गीत का विचार कर लेना।

राग मोरंगी

प्रेम प्रकट भैला भाजि भरम गैला, उर उपजे ला अनुराग रस पगिलो ॥
तेहिं मन माने माया कल ना परत काया, गैली मुख पिआ से सुघरवा से लो ॥
पचि गइली पडिताई चली भइली चतुराई, नींद नउठलि दिनराति ना सोहात लो ॥
परिहरि जाति पाँति कुल करतूत भाँती, विसरेली वरन बड़ाई प्रभुताई लो ॥
जप तप योग जाति रीधि सीधि करमति, करम धरम कविलासे नहि आसलो ॥
धरनी भिक्षुक भनि तुहें प्रभु चिंतामनि, मिलहु प्रगट पर खोलि मुख बोलि लो ॥

अर्थ.—प्रेम प्रकट हुआ और भ्रम भाग गया। हृदय में अनुराग उत्पन्न हुआ और विरहिणी रस में पग गयी। इस प्रेम को मन माया मानता है और तब भी शरीर को कल नहीं पड़ता अरे मेरी भूख प्यास भूल गयी और घर का रहना भी भूल गया। मेरी-सारी पंडिताई भूल गई। चतुराई नष्ट हो गयी। नींद उचट गयी और यह दिन रात कुछ नहीं सुहाते। जात पाँत कुल करतूत सब छूट गये अपना वर्ण बड़ाई और प्रभुता सभी भूल गयी। जप तप योग धन ऋद्धि सिद्धि आदि कर्तव्यों को और धर्मों को भूल गयी और उनसे सुख भोगना या आशा रखना भी विस्मृत हो गया। भिक्षुक धरनीदास कहते हैं कि हे! चिन्ता

पथिक न मिलहि सजन जन जिनहिं जनावउ राम ।
बिहवल बिकल बिलखि चित चहुँ दिसि धावउ राम ॥
होइ अस मोहि लेइ जाउ कि ताहि लेई आवइ राम ।
ताकर मैं होइबि लउड़िया जे बटिआ बतावें राम ॥
तबहिं त्रिया पति जाइ दोसर जब चाहइ सो राम ।
एक पुरुष समरथ धनी बहुत निबाहइ राम ॥
धरनी गति नहि आनि करहु जस जानहु राम ।
मिलेहु प्रगट पट खोलि भरम जनि मानेहु राम ॥

अर्थः—मेरा प्रीतम ! गौड़ देश में रहता है और मैं प्रयाग राज में बसती हूँ । स्वभाव से ही मेरा उनसे प्रेम हो गया और हृदय में अनुराग उत्पन्न हुआ ।

हा राम ! अब भोजन, वस्त्र, शरीर, गहना घर ये सब मुझे कुछ नहीं भाता । पल पल पर उसकी सूरत याद आती है और मेरा मन व्याकुल हो उठता है ।

कोई पथिक ऐसा सज्जन नहीं मिलता जिससे मैं अपने हृदय का हाल कहूँ । विलख विलख कर विह्वल और विकल मेरा चित्त चारों तरफ दौड़ा करता है ।

मन में ऐसा होता है कि मुझको उनके पास कोई ले जाता या उन्हीं को कोई मेरे पास ले आता जो ऐसा करेगा और मुझे रास्ता बतायेगा उसकी मैं दासी होकर रहूँगी ।

स्त्री का पत तो तभी चला जाता है जब वह दूसरे पुरुष को स्वीकार करती है परन्तु एक ही समर्थवान पुरुष अनेक स्त्री का विवाह करता है ।

धरनीदास कहते हैं कि हे प्रभु ! मेरे लिये दूसरी गति नहीं है तुम जैसा जानो वैसा करो । हे प्रीतम तुम प्रकट होकर मेरे आवरण हटाकर मुझसे मिलना जरा भी भ्रम न मानना ।

(२)

एक पिय मोरे मन मानेउ पतिव्रत ठानेउ राम ।
अवरि जौ इन्द्र समान तौ त्रिन करि जानेउँ राम ॥

जहाँ प्रभु बइसु सिंहासन आसन डासन राम ।
तहँ तव बेनिश्रा डोलइबउँ बड़ सुख पइबउँ राम ॥
जौं प्रभु करहि लमासन पउढि करबि उपासन राम ।
गोड़तरियन पगु सहरइबउँ हियरा जुड़इबउँ राम ॥
धरनी प्रभु चरनामिरित नितहिं अचइबउँ राम ।
सन मुख रहबइ ठाढी अनत नहिं जइबउँ राम ॥

हे राम ! मैंने एक ही प्रियतम को अपने मन में माना और पातिव्रत्य धर्म पालने का व्रत लिया । किसी दूसरे पुरुष को चाहे वह इन्द्र के समान ही क्यों न सुन्दर हो मैं तृण ही के समान समझती हूँ ॥१॥

हे प्रभु ! तुम जहाँ बैठोगे वही मेरे लिये सिंहासन है, और उसी को मैं अपना आसन डासन समझती हूँ । वहीं मैं तुमको पंखा झलूँगी और उससे मुझे बड़ा आनन्द मिलेगा ॥२॥

हे प्रभु ! जहाँ आप लम्बासन कर लेट जायगें वहीं मैं आप के पैताने बैठ कर आपके पाँव सहलाऊँगी और अपना हृदय शीतल करूँगी ॥३॥

धरनीदास कहते हैं कि मैं अपने प्रभु के चरणामृत से नित्य आचमन करूँगा और उनके सामने सदा खड़ा रहूँगा । अन्यत्र कहीं नहीं जाऊँगा ।

(२)

एक त मैं पान अइसन पातरि, फुल जइसन सूनरि रे,
ए ललना, भुइयाँ लोटे ले लामी केसिया, त नइयाँ वझनियाँ के हो ॥१॥
आँगन बहरइत चेरिया, त अवरू लउड़िया नु रे,
ए चेरिया ! आपन बलक मों के देतू, त जिअरा जुडइतीं नु हो ॥२॥
देसवा सें बलु हम निकसबि, बसबों निखुझ बने रे,
ए रानी ! आपन बलक नाहीं देवों, तोर नइयाँ वझिनियाँ के हो ॥३॥
मोरा पिछुअरवा बढ़इआ भइआ ! वेगे चलि आवहु रे,
ए बढ़या ! काठे के होरिलवा गढ़ि देहु, त जिअरा जुड़ाइवि हो ॥४॥
पीठिया उरेहले, त पेटवा, त हाथ गोड़ सिरिजे ले रे,
ए ललना, मुँहवाँ उरेहइत बढ़या रोवे, परनवाँ कइसे डालवि हो ॥५॥

गोदवा में लिहली होरिलवा, त ओबरी समइली नु रे,
ए सासु ! हमरा भइले नॅदलाल, नइहरवा रोचन भेजहु हो ॥६॥
धाउ तुँहुँ गँउँआ के नऊआ ! वेगहिं चलि आवहु रे,
ए नऊआ ! बहुआ का भइले नॅदलाल, रोचन पहुँचावहु हो ॥७॥
आँगना बहरइत चेरिया, त रानी के जगावे ले रे,
ए रानी ! बबुनी का भइले नॅदलाल रोचनवा नऊआ लावेला हो ॥८॥
बोले के त ए चेरिया ! बोले लू, बोलहू नाहीं जानेलू रे,
ए चेरिया ! मोर बेटी कोखी के बझिनियाँ, रोचन कइसन आइल हो ॥९॥
खिरिकिन होइ जब देखलीं, त नऊआ झलके ला रे,
ए ललना, बाजे लागल अनॅद बधाव, महल उठे सोहर हो ॥१०॥
पसवा खेलत तुँहुँ बबुआ, त पसवनि जनि भुलु रे,
ए बबुआ ! तोहरा भइले भयनवा देखन तुँहूँ जावहु हो ॥११॥
जब भइआ अइले अँगनवाँ त बहिनी उदासेली रे,
ए ललना, धक धक करेला करेजवा हमार पत गइल नु हो ॥१२॥
जब भइया अइले ओबरिया, त बलका उठावेले हो,
ए ललना, मन बिखे आदित मनावे ली, मोर पत राखहु हो ॥१३॥
हथवा के लिहले होरिलवा त मुँहवाँ उघारेलेनि रे,
ए ललना, ठुमुकि ठुमुकि होरिला रोवेले, से आदित देआल भइले हो ॥१४॥

इस सोहर को भाषा शास्त्र विशारद श्री प० उदय नारायण जी त्रिपाठी एम० ए०, साहित्यरत्न ने मुझको दिया। इसी के साथ एक अन्य सोहर भी दिया जो सोहर नं० १४ के साथ उद्धृत है। इन दोनों की सुन्दरता की प्रशंसा में उन्होंने मुझसे कहा कि जब वे इन दोनों सोहरों को भाषा विज्ञान के महान पण्डित श्री डाक्टर सुनीति कुमार चटर्जी को कलकत्ते में सुनाये तो मारे करुणा के वे रोने लगे और कहने लगे कि ऐसे सुन्दर पद का अनुवाद अंग्रेजी तथा फ्रेंच आदि भाषाओं में प्रकाशित करना चाहिए।

अर्थ—एक ओर तो मैं पान ऐसी पतली और फूल के समान सुन्दरी हूँ और मेरे लम्बे चीकने केश पृथ्वी पर लोटा करते हैं पर दूसरी ओर मेरा नाम

बाँझ पड़ गया है ॥१॥

आँगन झाड़ती हुई री चेरी ! तू मेरी दासी है। अपना बालक तू जरा मुझे दे देती तो मै उसे खेलाकर अपना हृदय शीतल करती ॥२॥

दासी ने कहा—हे रानी ! तुम मेरे दासी होने की धमकी देकर मुझसे मेरा बालक चाहती हो। भले ही तुम मुझे घर से निकाल बाहर करो। मैं बीहड़ बन में जाकर बस लूगी। पर तुमको अपना बालक नहीं छूने दूँगी क्योंकि तुम्हारा बाँझ नाम पड़ चुका है ॥३॥

रानी बेचारी हृदय की चोट से आहत होकर बोल उठी—अच्छा ! मेरे पिछवाड़े मेरा हित रहता है। हे भाई ! तू जल्द यहाँ आओ। हे भाई बढ़ई ! तुम काठ का बालक गढ़ दो। मैं उसी को खेला कर अपने हृदय की आकांक्षा को शान्त करूँगी ॥४॥

बढ़ई ने बालक की पीठ बनाई। फिर पेट, हाथ, और गोद का सृजन किया। पर जब बालक का मुह बनाने लगा तब रोने लगा। कहने लगा—हा ! मैं इस बालक में प्राण कैसे पाऊँ कि डालूँ ! ॥५॥

बढ़ई ने काठ का बालक बना कर बाँझ रानी को दे दिया। उसने बालक को गोद में लिया और ओबरी में समा गयी। भीतर से उसने कहा—हे सास जी ! हमको नंदलाल हुआ है। हमारे मायके आप रोचन भेज दो ॥६॥

सास ने (मन ही मन खीझ कर बहू को उसके भाई के सामने नीचा दिखाने के अभिप्राय से) गाँव के नाऊ को दौड़कर बुलवाया। कहा—हे नाऊ ! मेरी बहू को बालक उत्पन्न हुआ है तुम दौड़ जाओ उसके माय के रोचन पहुँचा आओ ॥७॥

नाई बहू के मायके पहुँचा तो चेरी आँगन बुहार रही थी। उसने उससे रोचन का सम्वाद कहा। चेरी ने रानी को जगाकर कहा—हे रानी ! तुम्हारी कन्या को पुत्र उत्पन्न हुआ है। नाई रोचन लेकर आया है ॥८॥

माता ने कहा—री चेरी ! तू बातें बोल देती है, पर बोलना जानती नहीं। मेरी कन्या तो बांझ है। भला उसके यहाँ से रोचन कैसे आवेगा ? ॥९॥

इतना तो डाट कर कह दिया। पर माता को बोध नहीं हुआ। खिड़की

से झाँक कर उसने जब बाहर देखा तो नापित की झलक दिखाई पड़ी। बस उसे रोचन के सम्वाद की तथ्यता पर विश्वास हो गया। आनन्द बधाव बजने लगा और महल में सोहर गान होने लगा ॥१०॥

माता हुलसी हुई अपने पासा खेलते हुए पुत्र के पास पहुँची। कहा— हे पुत्र! तुम पासा खेलते हो तो उसी में भूल मत जाओ। सुना नहीं! तुमको भाञ्जा उत्पन्न हुआ है। तुम उसे देखने जाओ ॥११॥

भाई जब आँगन में अपने नवजात भाञ्जा को देखने आया तो उसकी बहन उदास हो गयी। उसका कलेजा धक धक धड़कने लगा। वह सोचने लगी कि हाय! अब हमारा पत गया ॥१२॥

जब भाई ओबरी में आया और बालक उठाने लगा तो बहन मन ही मन सूर्य्य भगवान की प्रार्थना करने लगी कि हे सूर्य्य भगवान! मेरा पत रखो ॥१३॥

भाई ने हाथ में होरिला को उठा लिया और उसका मुँह खोला। बस ठुमुक ठुमुक कर होरिला सूर्य्य भगवान की कृपा से रोने लगा। बहन ने कहा— धन्य! भगवान सूर्य्य ने दया की। मेरा पत रख लिया ॥१४॥

सचमुच बाँझ की दशा को देखकर और उसकी पुत्रोत्पत्ति की आकांक्षा को समझ कर कौन सहृदय द्रवित नहीं हो उठेगा? एक तो स्वभाव से ही स्त्री का हृदय पुत्र के लिये मचलता रहता है, उस पर हमारे समाज की रीति रस्म जिसमें बाँझ से बालक छुलाना या जच्चा या सन्तान न पैदा हुए नव वधू का छू जाना बुरा माना जाता है। चेरी तक ने भी अपने बालक को बाँझ को छूने नहीं दिया। इन दोनों कारणों से इस बाँझ के हृदय पर तब कितना बड़ा वज्रा घात हुआ होगा जब उसने विवश होकर असिल नहीं नकली ही पुत्रोत्पत्ति का स्वाग रचा और उसका सम्वाद मायके तक पहुँचवाया, पर भगवान ने अन्त में भाई के आने पर उसकी लाज रख ली। कला कितने सुन्दर रूप में यहा अकित की गयी है। रचना चातुरी भी बहुत ऊँचे दर्जे की है।

(४)

सोने के खरउवाँ राजा राम कउसिला से अरज करें हो।
हुकुम ना दीं मोरी मइया मे वन के सिधारउँ हो ॥१॥

जवने राम दुधवा पिअवलों घीऊ सेनि अबटलों हो ।
अरे—मोरे भितरा से बिहरेला करेजवा मैं कइसे बन भाखों हो ? ॥२॥
राम तो मोर करेजवा लखन मोरी पुतरिअ हो ।
अरे रामा, सीता रानी हाथे केरा चुरिआ में कइसे बन भाखों हो ? ॥३॥
राम गइले दुपहरिया लखन तिजहरिआ हो ।
सीता मोरी गइली सँझलौके में कइसें जिअरा वोंधों हो ॥४॥
पोअलों में घीऊ क लुचुइआ दूधवा कर जाउरि हो ।
अरे रामा, अतना जेवनवा मोरे विख भइले राम मोरा बन गइले हो॥५
चारि मदिल चारि दीप बरे हमरो अकेल वरे हो।
रामा, मोरे लेखे जग अँधिआर राम मोरे बन गइले हो ॥६॥
भीतरा से निकलीं कोसिला रानी नयनन नीर बहे हो ।
रामा, राम लखन सीया जोड़िया कवने बन होइहइँ हो ॥७॥
घर घर फिरेली कोसिला त लरिका बटोरेली हो ।
लइकन ! तनी एका रचीं ना धमारि त राम बिसरइतीं नु हो ॥८॥
राम बिनु सूनी अजोधिआ लखन बिनु मदिल हो ।
मोरी सीता बिनु सूनी रसोइआ कइसे जिअरा बोधवि हो ॥९॥
मदिल दीप जरइवइ सेजिया लगइवइ हो ।
रामा, आधी राति होरिला दुलरवइ जनुक राम घरहईं हो ॥१०॥
सावन भदउआ केरा रतिया घुमडि घन वरिसेले हो ।
रामा, राम लखन दुनो भइया कतहूं होइहें भींजत हो ॥११॥
रिमिक भिमिक देव वरिसेले मोरे नाहीं भावे ले हो ।
देव ! ओही वने जाइ जनि वरिसहु जाहाँ मोरे लरिकन हो ॥१२॥
राम के भींजेला मकुटवा लखन सिरे पटुका हो ।
मोरी सीता केरा भींजेला सेनुरवा लवटि घरवा आवहु हो ॥१३॥

अर्थ—सोने के खड़ाऊँ पर चढ़ कर श्री राजा रामचन्द्र कौशिल्या के यहाँ जाते हैं और निवेदन करते हैं कि हे मेरी माता ! मुझे अब आज्ञा प्रदान करो कि मैं अब बन के लिये प्रस्थान करूँ ॥१॥

कौशिल्या ने मन में सोचा—जिस राम को मैं ने छाती का दूध पिलाया, घी मल मल कर शरीर पुष्ट किया उस राम के बन जाने की बात मैं अपने मुख पर किस तरह लाऊँ? ऐसा करते भीतर से हा! कलेजा बिलख उठता है ॥२॥

राम तो मेरा हृदय हैं। लछमण मेरी आखों की पूतली हैं। और सीता मुझे अपने हाथ की चूरी समान हैं अर्थात् अहिवात के समान प्रिय हैं। मैं किस तरह से इनके बन जाने की बात अपनी जिह्वा पर लाऊँ? ॥३॥

राम ने दोपहर दिन को वन-प्रस्थान किया। लछमण तीसरे पहर गये। और मेरी सीता ने सन्ध्या होते वन को यात्रा की। हाय! मैं अपने हृदय को किस भाँति बोध दूँ? ॥४॥

मैं घी की पूरी पकायी। दूध का खीर बनाया। परन्तु हा! ये सब व्यञ्जन विष समान व्यर्थ हो गये। मेरे राम वन को चले गये ॥५॥

चारों मदिरों में चार चार दीपक जल रहे हैं। परन्तु मेरे भवन में केवल एक ही (राम के पुन. घर लौटने की आशा का) दीप जल रहा है। हाय राम! मेरे लिये ससार अन्धेरा हो रहा है। राम मेरे वन को चले गये ॥६॥

राज महल के अन्तर कक्ष से (व्याकुल होकर) कौशिल्या रानी बाहर निकल पड़ीं। उनके नेत्रों से नीर बह रहे थे और विह्वल हो वे पुकार रही थीं—अरे! मेरे राम, लखन और सीता की जोड़ी किस वन में होगी? ॥७॥

कौशिल्या ने घर घर फिर कर लड़कों को इकट्ठा किया। लड़कों को एकत्र करके उन्होंने कहा—अरे बच्चों! रच मात्र तुम लोग खेलते कूदते और धौल धप्पा मचाते तो मै राम को भूल सकती ॥८॥

राम के बिना अयोध्या सूनी है। लछमण के बिना घर निर्जन सा हो रहा है। और मेरी प्यारी सीता के बिना मेरी रसोई सूनी दीख रही है। मै किस भाँति अपने हृदय को प्रबोध दूँ? ॥९॥

सावन भादों की रात है। घुमड घुमड़ कर मेघ बरस रहा है। हाय राम! मेरे राम लछमण दोनों भाई कहीं भींग रहे होंगे! ॥१०॥

यह रिम झिम रिम झिम कर के मेघ जो बरस रहा है यह मुझे नहीं सोहाता। हे मघवा! तुम वहाँ जाकर मत बरसना जहाँ मेरे लड़के है ॥११॥

हा ! इस बरसात में राम का मुकुट भीजता होगा। लक्ष्मण केसर की पाग भींगती होगी। मेरी प्यारी सीता का सिन्दूर भी बिना भीगे नहीं बचा होगा। हे भगवान ! उनको सद्‌बुद्धि दो कि वे घर लौट कर चले आवें ॥१२॥

वात्सल्य प्रेम का कितना स्वाभाविक, सुन्दर, सजीव एवं करुण चित्रण कवियित्री ने किया है। मातृ हृदय का रूप खड़ा कर दिया है।

(५)

सोरहो सिंगार सीता कइली अटरिया चढि गइलिनि हो।
रघुनन्दन क डासल मेजिया सिरहाने ठाढ भइलिनि हो ॥१॥
पलक उघारि राम चितवें अभरन देखि भरमेले हो।
सीता ! कवन जरूर तोहरा लागेला ? एतनि राति आवे लू हो ? ॥२॥
काहे लागि कइलू सिंगार ? काहे रे लागि अभरन हो ? ।
सीता ! काहे लागि चढलिउ अटरिया ? देखल डर लागेला हो ॥३॥
रउरे लागि कइलों सिंगारावा, रउरे लागि अभरन हो।
राजा ! रउरे तीनू लोक क ठाकुर भेंट करे अइली नु हो ॥४॥
तू हूँ तीन लोक के ठाकुर तोहे देखि जग डरे हो।
राजा ! तिरिया अलप सुकुमारि सेजरिया देखि भरमेली हो ॥५॥
नइहरे ना बाटें बीरन भइया, ससुरे ना देवर हो।
राजा ! मोरे गोदिया ना जनमल बलकवा, अँहक कइसे पुजिहइँ हो ? ॥६६॥
लाल पिअर ना पहिरलीं, चउक ना बइठलीउँ हो।
सीता के ढुरे ला नयनवन नीर पटुकवे राम पोंछेलें हो ॥७॥
लाल पिअर पहिराइबि चउक बइठाइब हो।
रानी ! तोहरा के राखबि पगिया पेंच नयनवाँ के भीतर हो ॥८॥

सीता ने सोलहो शृङ्गार किया और अटारी पर चढ़ गयीं। रघुनन्दन की सजी हुई सेज थी। उसके सिरहाने जाकर खड़ी हुईं ॥१॥

पलक खोलकर राम ने सीता को निहारा और उनके आभूषणों को देखकर भ्रम में पड़कर बोल उठे—हे सीते ! तुम को क्या जरूरत पड़ी कि इस रात को यहाँ आई ? ॥२॥

तुमने किस लिये शृङ्गार किया ? किस कारण से आभूषण पहने ? हे सीते ! तुम क्यों अटारी पर चढ़ आई हो ? तुमको देखते डर मालूम होता है ॥३॥

सीता ने कहा—मैंने आपके लिये शृङ्गार किया और आप ही के लिये आभूषण पहने। हे राजन् ! आप तीनों लोक के ठाकुर हो। आप से भेंट करने ही मैं आई हूँ ॥४॥

आप तीनों लोक के ठाकुर हो। आप को देखकर ससार डरता है। हे राजन् ! अल्पवयस्क सुकमार त्रिया बिछी सेज देखकर भ्रम में पड़ जाती है ॥५॥

नैहर में मेरे बीर भाई नहीं हैं, न ससुराल में देवर ही हैं। हे राजन् ! मेरी गोदी में एक बालक भी नहीं जन्मा। मेरी (अँहक) मनोकामना कैसे पूरी होगी ? ॥६॥

लाल पीले वस्त्र मैं नहीं पहन सकी, न चौक पर ही बैठ सकी। इतना कहते कहते सीता की आँखों से आँसू बहने लगे ॥७॥

राम द्रवित होकर अपने दुपट्टा से उनके आँसू पोछने लगे और कहने लगे—हे सीते ! मैं तुमको लाल पीले वस्त्र पहनाऊँगा, चौक पर बैठाऊँगा, अपनी पगड़ी के पेच में रखूगा तथा आँखों के भीतर मूँद कर तुझे सदा के लिये हृदय में रख छोड़ूँगा ॥८॥

इसी भाव को लेकर सन्त कवि कबीर ने कहा है—

आओ प्यारे मोहना, पलक बीच मुदि लेहुँ।
ना मै देखौं तोहिको, ना कोइ देखन देहु।

प्रेम की पराकाष्ठा का कितना सुन्दर चित्रण है।

(६)

छोटे मोटे पेडवा ढेकुलिया त पतवा रे लहलह हो।
रामा, ताहि तरे ठाढि हरिनिया हरिना बाट जोहेली हो ॥१॥
वन मे से निकलेला हरिना त हरिनी से पूछेला हो।
हरिनी ! काहे तोर वदन मलीन ? काहे मुँह पीअर हो ? ॥२॥
गइलों मैं राजा के दुअरिया त बतिया सुनि अइलों हो।
पिआरे ! आजु छोटे राजा के बहेलिया हरिन मरवइहहँ हो ॥३॥

केइ जे बगिया लगवले ? केई रे आइ ढूँढ़ेले हो ?।
हरिनी ! केकर धनिया गरभ से हरिनवा मरवावे ली हो ? ॥४॥
दसरथ बगिया लगवले । लखन आइ ढूँढ़ेले हो।
पियारे ! रघुवर धनिया गरभ से हरिना मरवावेली हो ॥५॥
कर जोरि हरिनी अरज करे—सुनी ना कोसिला रानी हो !
रानी ! सीता के होइहें नन्दलाल । हमहि कछु दीहवि हो ? ॥६॥
सोनवा मढ़इवों दुनो सिंघिया भोजनवा तिल चाउर हो।
हरिनी ! मुग तहु अजोधेया के राज अभय वनि विचरहु हो ॥७॥

ढाक का छोटा सा पेड़ है। पत्तों से लहलहा रहा है। उसी के नीचे खड़ी खड़ी हरिन हरने की बाट जोह रही है ॥१॥

बन में से हरन निकलता है और हिरन से पूछता है—हे हिरन ! क्यों तुम्हारा मुख मलिन और पीला पड़ रहा है ? हिरन ने कहा—हे हरन ! मैं राजा के दरवाजे पर गई थी वहाँ बात सुन आई हूँ। हे प्यारे ! आज छोटे राजा के शिकारी हरन को मरवावेंगे ॥२, ३॥

किसने बाग़ लगाया ? उसमें किसने आकर के खोज किया ? हे हिरन ! किसकी स्त्री गर्भवती है जो हरन मरवाती है ? ॥४॥

दशरथ ने बाग़ लगायी। लक्ष्मण आकर के खोज किये। हे प्यारे ! राम की स्त्री गर्भवती है वही हरन को मरवावेगी ॥५॥

हाथ जोड़ कर के हिरन कौशल्या से प्रार्थना करती है—हे कौशल्या रानी ! सुनो। सीता रानी को नन्दलाल होगा तो मुझको क्या दोगी ? ॥६॥

कौशल्या ने हिरन का मतलब समझ कर कहा—हे हिरन ! मैं तुम्हारे हरन की सींगों को सोना से मढ़वा दूँगी और उसे खाने को चावल और तिल दूँगी। हे हिरन ! तुम अयोध्या का राज्य भोग करो। अभय होकर के बन में विचरण करो ॥७॥

(७)

छापक पेड़ छिउलिआ त पतवन गहवर हो।
ताहि तर ठाढी हरिनिया त मन अति अनमन हो ॥१॥

चरत चरत हरिनिवाँ त हरिनि से पूछे ले हो।
हरिनी ! की तोर चरहा झुरान कि पानी बिनु मुरझेलू हो ॥२॥
नाहीं मोर चरहा झुरान ना पानी बिनु मुरझीले हो।
हरिना ! आजु राजा के छठिहार तुहें मारि डरिहइँ हो ॥३॥
मचियहि बइठेली कोसिला रानी हरिनी अरज करे हो।
रानी ! मसुआ त सीझे ला रसोंइआ खलरिया हमे दीतू नु हो ॥४॥
पेड़वा से टाँगबि खलरिया त मनवा समुझाइबि हो।
रानी ! हिरि फिरि देखबि खलरिया जनुक हरिना जीअतहि हो ॥५॥
जाहु हरिनि ! घर आपाना खालरिया नाहीं देबइ हो।
हरिनी ! खलरी क खँजड़ी मढाइबि राम मोरा खेलिहई हो ॥६॥
जब जब बाजइ खँजड़िया सबद सुनि हरनी अँहकइ हो।
हरिनी ठाढि ढेकुलिया के नीचे हरिन क बिसूरइ हो ॥७॥

छपका हुआ (वह पेड़ जो ऊँचाई में कम हो और विस्तार उसका बड़ा हो) पेड़ ढाक का है। उसके पत्ते घने हैं। उस पेड़ के नीचे हिरन खड़ी है। हिरन का मन अनमना हो रहा है ॥१॥

चरता चरता हरन हिरन के पास आता है और पूछता है—हे हिरन ! क्या तुम्हारा चारागाह सूख गया है या पानी नहीं मिलता कि तुम मुरझाई सी हो रही हो ? ॥२॥

हिरन ने कहा—नहीं तो मेरा चारागाह ही सूखा है और न पानी ही के न मिलने से मैं मुरझाई सी हो रही हूँ। हे हरन ! आज राजा की छट्ठी है। तुम को वे मार डालेंगे ॥३॥

मचिया पर कौशल्या रानी बैठी हुई हैं और हिरन विनती कर रही है। कहती है—हे रानी ! तुम्हारे रसोई में मेरे हरने का मांस तो सिझाया जारहा है। उसकी खाल मुझको तुम दे देती तो मैं उसे पेड पर टाँगती और अपने मन को समझाती। हे रानी ! घूम फिर कर मैं खाल को देखती और मन में समझती कि हरन मानों जिन्दा ही है ॥४,५॥

इस करुण प्रार्थना पर कौशल्या को ज़रा भी करुणा नहीं आई। कहा—

है हिरन ! तुम अपने घर वापिस जाओ। मैं तुमको खाल नहीं दूगी। इस खाल से मैं खँजड़ी मढ़ाऊँगी और उससे मेरे राम खेलेगें ॥६॥

जब जब खँजड़ी बजती है तब तब हरनी शब्द सुनकर अँहकती है और ढाक के पेढ़ के नीचे खड़ी होकर अपने प्रीतम हरने को याद करती है ॥७॥

इस गीत में करुणा फूट कर बह निकली है। कितनी तीखी टीस गाना को सुनते ही हृदय में उत्पन्न हो जाती है यह वही जान सकता है जो इस गीत को गाये जाते हुए कभी सुना हो। मेरे परम मित्र श्री रामवृक्ष जी बेनीपुरी, इस गीत को गाकर स्वय एक दिन विभोर हो गये थे और इन पंक्तियों के लेखक को भी द्रवित कर दिया था। एक ओर हिरन की विरह वेदना युक्त कातर प्रार्थना और दूसरी ओर कौशल्या का अपने आनन्दोत्साह में विभोर हो हृदय की कठोरता दिखलाना कितना कलापूर्ण चित्रण है। उन्हीं कौशल्या के मातृ हृदय ने सोहर न० ६ के गीत में जब राम को पुत्र नहीं हुआ था कितनी करुणा और उदारता दिखाकर हिरन को अभय दान दिया है। पर आज आत्म दु.ख भूल जाने पर राम की छट्ठी में वही कौशल्या हिरन को हरन की खाल तक देने पर राजी नहीं होतीं। उनका स्वार्थ इतना प्रबल हो उठता है कि हिरन की सभी बातों को—सभी दुःख वेदना पूर्ण प्रार्थनाओं को अनसुनी करके वह हरन की खाल से राम की खँजड़ी मढ़वाती हैं और हिरन के सुहाग-वैभव को राम के खेल का साधन बनाने में आना कानी नहीं करती। ग्रामीणा कवियित्री ने कितने अनुभव की बात कही है। सन्तान मनुष्य को एक ओर तो करुणा, दयालु और निस्वार्थी बनाती है तो दूसरी ओर वह उसे कठोर, निर्दय और स्वार्थी भी बनाने से बाज नहीं आती।

(८)

ननदी भउजिआ दूनो पानी के गइली अरे—दूनो पानी के गइली हो।
भऊजी ! जवन रावनवा तोहे हरलसि उरेहि देखावहु हो ॥१॥
जो मैं रावना उरेहवि उरेहि देखाइब हो।
सुनि पइहें विरन तोहार त देसवा निकसिहईं हो ॥२॥
लाख दोहइआ राजा दसरथ भइया माथ छूँऔं हो।
भऊजी ! लाख दोहइआ लछिमन भइया, भइया से ना बताइब हो ॥३॥

माँगहु न गाँग गँगुलिया गगा जल पानी हो।
ननदी ! समुद्दे क कोहबर लिपावउ रावना उरेहौं हो ॥४॥
मगलिनि गाँग गगुलिया गगा जल पानी हो।
सीता समुद्दे के ओबरी लिपवली रावना उरेहइ हो ॥५॥
हथवा बनवली, गोड़वा सिरजली, त नयना बनावे ली हो।
कि आइ गइले सिरि राम आँचर खोलि ढापे ली हो ॥६॥
जेवन बइठे सिरी राम बहिन लाई लावेली हो।
भइआ ! जवन रावन तोर बएरी त भऊजी उरेहेली हो ॥७॥
अरे—रे लछुमन भइआ ! बिपतिया के साथी हो।
सीता के देसवा निकालहु रावना उरेहइ हो ॥८॥
जे भऊजी भूखला के भोजन लँगटे के बस्तर हो।
से भऊजी गरूए गरभ से मैं कइसे निकालौं हो ? ॥९॥
आहो—हो लछुमन भइया ! विपतिया के नायक हो !।
सीता जी के देसवा निकासहु रावना उरेहइ हो ॥१०॥
अरे—हो भऊजी सीतलि रानी ! बड़ ठकुराइनि हो !।
भऊजी ! आइ गइले तोर निअरिआ बिहाने बने चले के हो ॥११॥
ना मोरे नइहर ना मोरे सासुर हो।
देवरू ! ना रे जनक अस बाप केकरे घरे जाइबि हो ॥१२॥
खोइछा में लेली सरसोंइआ छिटत सीता निकसेली हो।
सरिसों ! यहि रहिये लवटिहें देवरा लछुमन कँदरिया तूरि खइहनि हो ॥१३॥
एक बन गइली दूसर वन लँघली तिसरे बीन्दाबन अइली हो।
देवरू ! एक बूँद पनिया पिआवहु पिअसिआ से वेआकुल हो ॥१४॥
बइठहु न भऊजी ! चँदन तरे—चँदना बिरिछ तरे हो।
भऊजी ! पनिया क खोज करि आई त तोहरा पिआई नु हो ॥१५॥
बहे लागी जुड़ई बयरिया चनन जूड़ि छइयाँ हो।
सीता भुइयाँ परेली कुम्हिलाइ पिअसिया से वेआकुल हो ॥१६॥
तोरले त पतवा कदम कर दोनवा बनवलनि हो।

टँगले लवँगिया के डरिया लखन चले घरे ओरे हो ॥१७॥
सोइ साइ सीता जागेली झझकि झझकि ऊठेली हो।
कहाँ गइले लछुमन देवरू त हमें ना वतवलनि हो ॥१८॥
हिय भरि देखितों नजर भरि रोइतों हो।
सामी के दीहितों सँदेसवा काहे अस कठोर भइलीं हो ॥१६॥
अव के मोरे आगे पीछे वइठी त के लट खोली रे हो ? ।
के मोरी जागइ रयनिया त नरवा कटावइ के हो ? ॥२०॥
वनवा से निकसेली तपसिनिया सीतहि समुझावेली हो।
सिता ! हम तोरे आगे पीछे वइठवि हम लट खोलवि हो ॥२१॥
हम तोरी जगवइ रयनिया त नरवा कटाइवि हो।
होत विहान लोही लागत होरिला जनम लेले हो ॥२२॥
सीता ! लकड़ी क करहु अँजोर सतति मुख देखहु हो।
तू पूता ! भइल विपतिया में वहुते सँसतिया में हो ॥२३॥
कुसवे ओढन पूत ! कुसवे के डासन, वन फल भोजन हो ।
जो पूता ! होतेउ अजोधिया वही पुर पाटन हो ॥२४॥
राजा दसरथ पटना लुटइतें कोसिला रानी अभरन हो।
अरे—हँकरहु ना वन के नऊअवा त वेगि चलि आवहु हो ॥२५॥
नऊआ ! हमरा रोचना लेइ जाउ अजोधया पहुँचावउ हो।
पहिले दिहो राजा दसरथ दूसरे कोसिला रानी हो।
तीसरे रोचन देवरा लछुमन प पिया न जनाइहउ हो ॥२६॥
पहिले रोचन देलनि दसरथ दुसरे कोसिला रानी हो।
तिसरे देलनि देवरा लछुमन प राम ना जनवलनि हो ॥२७॥
दसरथ देलनि आपन घोड़वा त कोसिला रानी अभरन हो ।
लछुमन देलनि पाँचो जोड़वा विहसि नऊआ घर चले हो ॥२८॥
चारिक खूट क सगरवा त राम दतुअन करें हो।
भइया ! भहर भहर करे माथ रोचन कँह पायउ हो।
भइया ! केकरा भइले नन्द लाल त जिअरा जुड़ाइल हो ॥२९॥

भऊजी त हमरी सीतल रानी बसेली बिन्दावन हो।
उन्हहीं के भइले नदलाल रोचन खिरधारी ले हो ॥३०॥
हाथ केर दतुअन हाथे रहे मुख केरा मुखे रहे हो।
ढुरे लागी मोतिअन आँसु पितम्मर भीजे लागेली हो ॥३१॥
हँकरहु न बन केरा नऊआ त बेगि चलि आवहु हो।
नऊआ ! सीता केरा हलिआ बतावहु सीता लेइ आइबि हो ॥३२॥
राजा ! कुस रे ओढन कुस डासन बन फल भोजन हो।
साहब लकड़ी के कइली अँजोर सतति मुख देखली हो ॥३३॥
अरे—हो लछुमन भइया ! विपतिया के नायक हो ! ।
भइया ! एक बेर जइत मधुबनवा भऊजइया लेइ अइतउ हो ॥३४॥
अजोधिया से चलले त मधुबन पहुँचलनि हो।
भऊजी, राम के त फिरल बा हँकार त तोरा के बुलावेले हो ॥३५॥
चलि जा लखन ! घरे अपना त हम नाहीं अब जाइबि हो।
लखन ! जो रे ई जीहें नन्दलाल त उनहीं के कहइहँइ हो ॥३६॥

ननद भौजाई दोनों पानी भरने गयीं। ननद ने कहा—हे भावज ! जिस रावण ने तुम्हारा हरण किया उसका चित्र बनाकर दिखाओ ॥१॥

भावज ने कहा—जो मैं रावण का चित्र बनाऊँगी और बनाकर उसे दिखाऊँगी तो तुम्हारे भाई जो सुन पावेंगे तो मुझे देश से निकाल देंगे ॥२॥

ननद ने कहा—राजा दशरथ की लाखों दुहाई देती हूँ। अपने भाई का माथा छूकर कसम खाती हूँ। हे भावज ! भाई लक्ष्मण की भी दुहाई देती हूँ—मैं राम से इसे नहीं बताऊँगी ॥३॥

भावज ने कहा—हे ननद ! गाँग गँगुली (चित्र बनाने का रंग और ब्रश आदि) और गंगा का पानी मगाओ, और सामने का कोहबर लीपाओ मैं रावण का चित्र बनाऊँगी ॥४॥

ननद ने चित्र बनाने का सामान और गगा का पानी मगवाया। सीता ने सामने की कोठरी लिपवायी और रावण का चित्र बनाया। हाथ बनाये, पाँवों का सृजन किया और नेत्र बना ही रही थीं कि रामचन्द्र वहाँ आ गये। उनको

देखते ही सीता ने अचल खोलकर चित्र झाप दिया ॥५-६॥

राम चन्द्र जब चौका पर भोजन करने बैठे तो बहन ने चुगली की। कहा—हे भाई ! जो रावण तेरा बैरी है उसी का चित्र भौजी बनाती है ॥७॥

राम ने कहा—अरे मेरा विपत्ति का साथी लछमण भाई ! सीता को देश से निकाल आओ। वह रावण का चित्र बनाती है।

लछमण ने कहा—जो भावज भूखे के भोजन और नंगे के वस्त्र के समान मुझे प्रिय हैं वह भावज गर्भवती हैं और उनका गर्भ पूर्ण भी हो चुका है। मैं उनको किस तरह से घर से निकालूं ? ॥८॥

राम ने फिर कहा—ऐ विपत्ति के नायक भाई ! सीता को देश से निकालो वह रावण का चित्र बनाती है ॥१०॥

लछमण ने कहा—हे बडी ठकुराइन मेरी भावज सीता रानी ! सुनो। तुम्हारे मायके से निआर (कुछ रुपयों और मंगल वस्तु के साथ जो साड़ी मायके से कन्या के ससुराल वालों के यहाँ कन्या के मायके जाने का दिन ठीक कराने के अवसर पर भेजी जाती है उसी को भोजपुरी में निआर कहते हैं।) आया है। हम लोग कल वन के लिये प्रस्थान करेंगे ॥११॥

सीता ने कहा—हे देवर ! न तो मेरा मायका है और न मेरा कोई ससुराल है। न जनक ऐसा बाप ही अब रहा। मैं किसके घर जाऊँगी ? ॥१२॥

सीता ने अचल में सरसों भर लिआ और उसे छींटती हुई घर से निकलीं। कहा—हे सरसों ! इसी रास्ते से लछमण लौटेंगे तब तक तुम फले रहना। तुम्हारी फलियाँ तोड़कर वे खायेंगे ॥१३॥

सीता एक वन गयीं, दूसरे वन को पार किया, तीसरा वन वृन्दाबन मिला। सीता ने लछमण से कहा—हे देवर ! एक बूँद पानी पिलाओ। प्यास से मैं व्याकुल हो रही हूँ ॥१४॥

लछमण ने कहा—हे भावज ! इस चदन वृक्ष के नीचे तुम टुक बैठ जाओ। मैं पानी खोज लाऊँ तो तुम्हें पिलाऊँ ॥१५॥

शीतल बयार बह रही थी और चदन का शीतल छाँह था। सीता पृथ्वी पर लेटकर प्यास से व्याकुल हो कुम्हला गयीं अर्थात् सो गयीं। लछमण ने कदम के

पत्ते तोड़े और उनसे दोना बनाया और पानी भरकर लौंग की डाल पर उसे टाँग दिया और स्वयम् अपने घर अयोध्या की ओर प्रस्थान किया। सोकर सीता जगीं और झिझक कर उठ बैठीं। कहने लगीं—अरे! मेरे लक्ष्मण देवर कहाँ चले गये? उन्होंने जाते समय मुझे क्यों नहीं बतलाया। मैं उन्हें हृदय भर देखती और नजर भर रोती और स्वामी को सन्देश देती कि वे क्यों इतना कठोर हो गये ॥१६-१७-१८-१६॥

सीता को प्रसव वेदना होने लगी। वे कहने लगीं—हा! अब मेरे आगे पीछे कौन बैठे? मेरे बाल कौन खोले? मेरी इस विपत्ति की रात में मेरे साथ कौन जगेगा और कौन मेरे बच्चे का नाल कटावेगा? वे विलख विलख कर रोने लगीं ॥२०॥

वन से तपस्विनी निकलीं और सीता को समझाने लगीं—हे सीते! हम तेरे आगे पीछे बैठेंगी। हम तेरा लट खोलेंगी। हम तुम्हारी विपत्ति की रात में तेरे साथ जगेंगी और बच्चे का नाल कटावेंगी ॥२१॥

शुबह होते शुकवा उगते उगते बच्चों ने जन्म लिया। तपस्विनी ने कहा—हे सीते! लकड़ी जलाकर प्रकाश करो और अपनी सतानों का मुख देखो ॥२२॥

सीता ने कहा—हे पुत्रों! तुम लोगों ने विपत्ति में और बड़ी ही यातना के समय में जन्म लिया। कुश ही तुम्हारे ओढ़ने हैं और कुश ही बिछावन तथा वन फल ही तुम्हारे भोजन हैं। हे पुत्रों! यदि तुम अयोध्या में होते या उस पाटन पुरी में होते तो आज राजा दशरथ वस्त्र लुटाते और रानी कौशल्या आभूषण बाँटती ॥२४॥

अरे वन के नापित को बुलाओ। उसको जल्दी लिवाकर लौट आवो। हे नाऊ! तू मेरा रोचन ले जाओ (जो पुत्रोत्पत्ति का सम्वाद चन्दन दुर्वादल आदि के साथ नाऊ लेकर जाता है उसे भोजपुरी में लोचना या रोचना कहते हैं) और उसे अयोध्या पहुँचाओ ॥२५॥

इसको पहिले राजा दशरथ को देना, फिर कौशिल्या रानी को देना और तीसरे देवर लक्ष्मण को देना। परन्तु रामचन्द्र को इसे न बताना ॥२६॥

नापित अयोध्या पहुँचा। उसने पहला रोचन दशरथ को दिया, दूसरा

रोचन कौशल्या रानी को दिया और तीसरा रोचन देवर लचमण को दिया। परन्तु राम को कुछ नहीं जताया ॥२७॥

नापित को दशरथ ने अपना घोड़ा इनाम दिया, कौशल्या रानी ने आभूषण प्रदान किये और लचमण ने पाँचो जोड़े कपड़े दिये। नाऊ प्रसन्न होकर घर को चला ॥२८॥

चौकोर तालाब था। उस पर राम बैठ कर दातुन कर रहे थे। लचमण को देखकर उन्होंने कहा—हे भाई! तुम्हारा माथा भक-भक करके चमक रहा है। तुमने यह चन्दन कहाँ से पाया? हे भाई! किसको नंदलाल पैदा हुआ है कि तुम्हारा हृदय इतना शीतल हुआ है? ॥२९-३०॥

लचमण ने कहा—हमारी भावज सीता रानी वृन्दावन में बसती हैं। उन्हीं को नदलाल हुआ है। जिसका रोचन मैं सिर पर धारण किये हूँ ॥३१॥

राम के हाथ की दातुन हाथ ही में रह गयी और मुख की मुख ही में रह गयी। आँखों से मोती के आँसू गिरने लगे और राम का पीताम्बर भींगने लगा। उन्होंने कहा—जरा वनके नाऊ को बुला न लो। वह जल्द मेरे पास चला आवे।

राम ने कहा—हे नाऊ! सीता का हाल बताओ। सीता को मैं वापस लाऊँगा ॥३२-३३॥

नापित ने उत्तर दिया—अरे कुश ओढ़ना है कुश ही बिछाना है। वन फल का भोजन है। हे साहब! मैं और क्या कहूँ लकड़ी जलाकर प्रकाश किया तब कहीं सीता ने अपनी संतान का मुख देखा ॥३४॥

राम ने कहा—अरे विपत्ति में नायक मेरा लचमण भाई! एक बार तुम मधुवन जाते और अपनी भावज को लिवा ले आते ॥३५॥

लचमण अयोध्या से चलकर मधुवन पहुँचे। सीता से उन्होंने कहा—हे भावज! राम के मन में तो फिर दुलार फिर आया है। वे तो तुमको बुलाते हैं ॥३६॥

सीता ने कहा—हे लचमण तुम अपने घर फिर जाओ। मैं अब अयोध्या नहीं जाऊँगी। जो ये नंदलाल जीते रहेंगे तो राम ही के कहायँगे ॥३७॥

इस गीत में करुण रस को क्लाइमेक्स (Climax) पर किस सरलता से कवियित्री ने पहुँचाया है यह देखते ही बनता है। न रुदन है, न आह और न वेदना प्रदर्शन ही। केवल सीधे सादे सात्विक और निस्वार्थ प्रेम के टीस भरे दो

चार शब्द जो हैं वे ही सीता के प्रति संसार भर की करुणा जाग्रत कर देने लिये परियाप्त सिद्ध होते हैं। देखिये इन लाइनों को श्रोता के हृदय में सीता प्रति कितनी बड़ी सहानुभूति ये उत्पन्न कर देती है :—

हिय भरि देखितों नजर भरि रोइतों हो
सामी के दीहितों सँदेसवा काहे अस कठोर भइलीं हो ॥

फिर—

तीसरे रोचल देवरा लछुमन प पिअवा न जनइहउ हो ॥

(६)

माघहि के तिथि नउमी त राम जग रोपेले हो।
रामा—विना रे सीता जग सूना सीता लेइआवहु हो ॥१॥
अरे—हो गुरू वसिष्ट मुनि ! पइयाँ तोर लागीले हो।
गुरू ! तुम्हरे मनाये सीता अइहें मनाइ लेइ आवहु हो ॥२॥
अगवा के घोड़वा वसिष्ट मुनि पाछे लछुमन देवर हो।
हेरे लागे रिसि के मेढ़ुलिया जहाँ सीता तप करें हो ॥३॥
अँगनेहि ठाढ़ी सीतलि रानी रहिया निहारत हो।
रामा—आवत होइहें गुरु जी हमार त पीछे लछुमन देवर हो ॥४॥
पतवा के दोनवा वनवली गगा जल भरली हो।
सीता धोये लगली गुरु जी के चरन त मथवा चढावेली हो ॥५॥
एतनी अकिल सीता ! तोहरे तू वुधि कर आगरि हो।
के तोरा हरले गेआन त राम विसरावेलू हो ॥६॥
सव कर हाल गुरू ! जानी ला अजान अस पूछीला हो।
गुरू ! अस के राम मोहि इहले कि कइसे चित मिलिहनि हो ॥७॥
अगिआ में राम मोहि डललनि, लाइ भूँजि कढलनि हो।
गुरू ! गरुए गरभ से निकसलनि त कइसे चित मिलिहइ हो ॥८॥
राउर कहल गुरु ! करवों परग दुइ चलवों हो।
गुरु ! अव ना अजोधेया जाइवि विधि ना मिलावहिं हो ॥९॥
हँकरहु नगर के कँहरा—वेगि चलि आवइ हो।

केहरा ! चनन क डँडिया फनावउ—सितहि लेइ आइवि हो ॥१०॥
एक वन गइले, दूसर वन, तिसरे विन्दावन हो।
गुली डण्डा खेलत दुइ बलकवा देखि राम मोहेले हो ॥११॥
केकर तू पुतवा नतियवा केकर हव भतिजवा हो।
लरिको ! कवनी मयरिया के कोखिया जनम जुड़वायउ हो ॥१२॥
बाप क नौवाँ न जानों, लखन के भतिजवा रे हो।
हम राजा जनक के नतिया सीता के दुलरुआ हो ॥१३॥
एतना बचन राम सुनलनि सुनहूँ ना पवलनि हो।
रामा—तरर तरर चुवे आँसु पटुकवन पोंछेले हो ॥१४॥
अगवे त रिसि क मँड़इया त राम नियरावेलनि हो।
रामा—छापक पेड़ कदम कर लगत सुहावन हो ॥१५॥
तेहि तर बइठेली सीतल रानी केसवन झुरवेली हो।
पिछवाँ उलटि जब चितवेली रामजी के ठाढ देखली हो ॥१६॥
रानी ! छोड़ि देहु जिअरा विरोग, अजोधिया बसावहु हो।
सीता ! तोरे बिनु जग अधिआर त जीवन अकारथ हो ॥१७॥
सीता अँखिया मे भरली विरोग त एकटक देखली हो।
सीता धरती में गइली समाइ कुछू नाहीं बोलली हो ॥१८॥

माघ की तिथि नौमी है। राम ने अश्वमेध यज्ञका निरूपण किया। राम ने कहा—सीता के बिना यज्ञ शून्य रहेगा। सीता को कोई जाकर लिवा लावे ॥१॥

वे गुरु वशिष्ठ के पास गये और बोले—हे गुरु महाराज वशिष्ट ! मैं आपके पाँव पड़ता हूँ। आपही के मनाने से सीता अवेंगी। आप मना कर उन्हे लिवा लाइये ॥२॥

आगे के घोड़े पर वशिष्ट मुनि और पीछे के घोडे पर लछमण देवर सवार होकर उस ऋषि की कुटिया को खोजने लगे जहाँ सीता तप करती थीं ॥३॥

आँगन मे खड़ी खड़ी देवी सीता मार्ग निहार रही थीं और सोच रही थीं कि हमारे गुरु जी और उनके पीछे देवर लछमण आते होंगे ॥४॥

सीता ने पत्तों का दोना बनाया। उसमें गंगा जल भर लायीं। उससे गुरु के

पाँव धोयीं और चरणामृत को अपने सर पर चढ़ायीं ॥५॥

वशिष्ट मुनि ने कहा—अरी सीते ! तुझे इतनी समझ है। तू बुद्धि से सम्पूर्ण हो। पर तुम्हारा ज्ञान किसने हर लिया कि तूने राम को बिसार दिया ? ॥६॥

सीता ने कहा—हे गुरु ! आप सब का हाल जानते हैं। क्यों अंजान ऐसा पूछ रहे हैं ? हे गुरु ! राम ने मुझे इस तरह सताया और जलाया है कि अब मेरा चित्त उनसे कभी मिल नहीं सकता है ? ॥७॥

राम ने मुझे अग्नि में डाला। अग्नि में डाल कर जलाया और मरने नहीं दिया, पुनः निकाल लिया। हे गुरु जी ! फिर घर लाये और मेरे पूर्ण गर्भ की दशा में ही मुझे घर से निकाल बाहर किया। तो अब बताइये मेरा चित्त उनसे कैसे मिल सकता है ? सो हे गुरु जी ! मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगी। दो कदम घर की ओर चलूँगी। परन्तु अब अयोध्या नहीं जाऊँगी। विधि से मेरी प्रार्थना भी है कि राम से मुझे अब वह न मिलावें ॥८, ९॥

गुरु वशिष्ट जब लौट आये तब सीता को मनाने के लिये राम ने स्वय जाने की तैयारी की। उन्होंने कहा—अरे नग्र के कहार को बुला लाओ। कहार तुरत सबाद पाते ही हाजिर हुए। राम ने आज्ञा दी—कहारों चन्दन की डोली तैयार करो। मैं सीता को लाने जाऊँगा ॥१०॥

राम एक वन में गये। दूसरे वन को पार किया। तीसरा वन वृन्दावन पड़ा। वहाँ वे दो बालकों को गुल्ली डंडा खेलते हुए देखकर मोह गये ॥११॥

उन्होंने पूछा—अरे बालकों ! तुम किसके लड़के हो, किसके नाती हो और किसके भतीजे हो ? और तुमने किस माता के पेट से जन्म लेकर उसके कोख को सार्थक किया है ? ॥१२॥

बालकों ने कहा—हम अपने बाप का नाम नहीं जानते। परन्तु इतना जानते हैं कि हम लक्ष्मण के भतीजे हैं, राजा जनक के नाती हैं और माता सीता के दुलारे पुत्र हैं ॥१३॥

राम ने ये वाक्य सुने और कुछ न भी सुन पाये कि उनकी आखों से झर झर आँसू गिरने लगे और वे दुपट्टे से उन्हें पोछने लगे ॥१४॥

उनके आगे ही मुनि की कुटी थी। उसके नजदीक वे पहुँच रहे थे। ठँगना सा घना फैला हुआ कदम का वृक्ष कितना सुहावना लग रहा था। उसी वृक्ष के नीचे बैठी हुई सीता रानी अपने केश सूखा रही थीं। उन्होंने जैसे ही पीछे फिर कर निहारा तो राम को सामने खड़ा देखा। आँखें चार होते ही राम ने कहा—हे रानी ! हृदय का क्रोध त्याग दो। अब अयोध्या को बसाओ। हे सीते ! तुम्हारे बिना मेरा जीवन अकारथ और संसार अँधेरा हो रहा है ॥१५,१६,१७॥

सीता की आँखों में युग युग का विरह भर आया। वह एक टक राम को निहारने लगीं। मुख से कुछ भी नहीं बोल सकीं। धरती फटी और उसमें वह समा गयीं ॥१८॥

इस गीत में राम के विरह का चित्र कवियित्री ने खींचा तो बहुत ही सफल और सरस रूप में है, परन्तु उसके इस चित्रण में एक अनोखी ख़ूबी यह है कि राम का सीता-प्रेम के साथ जो अपने मर्य्यादा पुरुषोत्तम होने का प्रेम लगा हुआ था, जो उनके सामने सीता के प्रेम से भी अधिक प्रिय था, उसे उसने शुरू में दिखा करके भी अन्त में सीता के प्रेम के आगे नीचा दिखला कर राम के मर्य्यादा पुरुषोत्तम होने के दम्भ को सीता के सात्विक प्रेम के सामने चूर चूर कर दिया है। उस पर भी सीता को पृथ्वी में प्रवेश करा करके और उनके मूक सत्य प्रेम की पूरी सफाई दे करके कविचित्री ने जो राम को हाथ मलते चुप चाप सदा के लिये पछताने को छोड़ दिया है इसमें कला का 'सत्य शिवं सुन्दरम्' वाला रूप पूर्ण रूप से चमक उठा है। अपढ़, मूर्ख, ग्रामीण कवियित्री की इस कला पूर्ण रचना की कौन तारीफ नहीं करेगा ? इतना सुन्दर भाव चित्रण हिन्दी और संस्कृत दोनो में ढ़ूँढ़ने पर भी मुझे नहीं मिला। विद्वान् पाठकों को कहीं मिला हो तो नहीं कह सकते।

(१०)

छापक पेड़ छिउल केरा पतवन घनवन हो।
ताहि तर ठाढ़ सीता भइली बहुत विपतिया में हो ॥१॥

कहाँ पइबों सोने केरा छुरवा त कहाँ पइबों धगरिन हो ।
के मोरी जागी रयनिया कवन दुख बटिहँइ हो ॥२॥
बन से निकसी बन तपसिनि सीतहिं समुझावेली हो ।
चुप रहु बहिनी ! तू चुप रहु हो, बहिनी ! हम देबो सोने केरा छुरवा,
त धगरिन बोलाइबि हो ।
हम तोरी जागबि रयनिया हमहिं होइब धगरिन,
त विपती हम बँटाइब हो ॥३॥
होत भोर लोही लागत कुस के जनम भइले हो ।
बाजे लागल अनँद बधाव गावेली सखि सोहर हो ॥४॥
जौं पूता ! होत अजोधिआ, राजा दसरथ घर हो ।
राजा सगरे अजोधिया लुटवतें कोसिला देईं अभरन हो ॥५॥
अब त पूता ! जनमेउ बन में बन फूल तोरउ हो ।
बेटा ! कुस रे ओढन कुस डासन बनफल भोजन हो ॥६॥
हँकरिन बन केरा नउवा बेगहिं चलि आवउ हो ।
नउवा ! जलदी अजोधिआ के जाऊ रोचन पहुँचावहु हो ॥७॥
पहिला रोचन राजा दसरथ, दूसर कोसिला रानी हो ।
तीसर दीहो देवर लछिमन पियहिं न बतइह हो ॥८॥
राजा दसरथ देलनि घोड़वा कोसिला रानी अभरन हो ।
लखन देवर देलनि पाँच जोड़वा त नऊवा बिदा कइले हो ॥९॥
सोने क गेडुअवा त राम दतुअनी करें हो ।
लछिमन ! भहर भहर होला माथ रोचन कहाँ पवलहु हो ॥१०॥
भऊजी त हमरी सीता देईं दूनो कुल राखनि हो ।
भइया ! उनके भइले नन्दलाल रोचन हम पावल हो ॥११॥
हाँथे क गेडुअवा हाथे रहें मुह केरा दतुअनि मुहे रहें हो ।
आरे—ढुरे लगले मोतिअन आँसु पटुकवन पोछे लगले हो ॥१२॥
आगे केरा घोड़वा वसिष्ट मुनि पाछे के लछुमन देवर हो ।
बीचवे के घोड़वा सवार राम सीता के मनावे चलले हो ॥१३॥

राउरि कहनवा गुरु करवइ् परग दस चलबइ हो ।

ललना—फाट त धरतिया समाइत्रि अजोधिया ना जाइत्रि हो ॥१४॥

छीउल का छापक पेड़ है जिसके घने पत्ते लहलहा रहे हैं । उसके नीचे बड़ी विपत्ति में पड़ी हुई सीता देवी खड़ी हुई हैं ॥१॥

खड़ी खड़ी चिन्ता करती हैं—मैं यहाँ नाल कटाने के लिये सोने का छुरा कहा पाऊँगी और धगडिन यहाँ मुझे कहाँ मिलेगी ? इस प्रसव पीड़ा के समय मेरे साथ रात्रि में कौन जगेगा और कौन दुख बटावेगा ? ॥२॥

वन से वन की तपस्विनियाँ निकलीं । वे सीता को समझाने लगीं। हे बहन! तुम चुप रहो । रोओ मत । हम लोग तुम्हें नाल कटाने के लिये स्वर्ण-छुरा देंगी । हम तुम्हारे लिये धगड़िन बुलावेंगी । हम तुम्हारी दुस्सह वेदना में तुम्हारे साथ रात भर जगेंगी । हम ही धगरिन बनकर धगरिन का काम भी करेंगी और तुम्हारा दुख बाटेंगी ॥३॥

प्रात काल होते ही होते शुक्रतारा के उदय लेते लेते कुश का जन्म हुआ । आनन्द बधाई बजने लगी और वन की सखियाँ सोहर गाने लगीं ॥४॥

सीता देवी ने आहें भर कर कहा—हे पुत्र ! आज तुम अयोध्या में राजा दशरथ के घर जो जन्म लिये रहते तो वहाँ राजा दशरथ जी सारी अयोध्या को लुटा डालते और कौशल्या रानी अपना सम्पूर्ण आभूषण वितरण कर देतीं ॥५॥

हे पुत्र ! अब तो तुम्हारा जन्म वन मे हुआ । वन के फूलों को तोड़ कर खेलो । बेटा ! यहाँ तुम्हारा कुश ही ओढ़ना है और कुश ही बिछावन और भोजन भी वन के फल मात्र हैं ॥६॥

उन्होंने वन के नापित को बुलाया । पुकार कर कहा—हे नाऊ ! तू जल्द चले आओ । नाऊ आया और सीता ने उससे निवेदन किया—हे नाऊ ! तू जल्द अयोध्या को जाओ और पुत्रोत्पत्ति का रोचना (चन्दन दूर्वादल आदि शुभ वस्तु) वहाँ शीघ्र पहुँचाओ ॥७॥

पहला रोचन राजा दशरथ को देना, दूसरा कौशल्या रानी को पहुँचाना और तीसरा रोचन मेरे प्यारे देवर लछमण को प्रदान करना, पर देखना मेरे प्रीतम राम को कुछ न बताना ॥८॥

नापित को राजा दशरथ ने घोड़ा इनाम दिया, कौशल्या ने आभूषण दान दिये और लछमण देवर ने उसको पाँचो जोड़े वस्त्र प्रदान करके विदा किया ॥६॥

सोने के सुबन्ना से पानी लेकर रामचन्द्र दातुन कर रहे थे। उन्होंने चन्दन लगाये लछमण को देखकर कहा—हे लछमण तुम्हारा माथा भक भक करके चमक रहा है। तुम्हें रोचन कहाँ से मिला है? ॥१०॥

लछमण ने कहा—हे भाई! हमारी भावज सीता देवी तो दोनों कुलों को कायम रखने वाली हैं। उन्हीं को पुत्र उत्पन्न हुआ है। हमें उन्हों ने ही रोचन भेजा है ॥११॥

राम के हाथ का सुबन्ना हाथ ही में जैसा का तैसा रह गया और मुख की दातुन मुख में लगी ही रह गयी। उनके मोती के समान आँसू ढुरकने लगे और वे उन्हें अपने दुपट्टा से पोछने लगे ॥१२॥

आगे के घोड़े पर वशिष्ट मुनि चढ़े, पीछे के अश्व पर लछमण आसीन हुए और बीच के बछेड़े पर श्री रामचन्द्र सवार होकर सीता देवी को मनाने चले ॥१३॥

सीता ने सब की बातों को सुन कर और अपने हृदय की सारी वेदना को समेट कर अपने वृद्ध गुरुजन के सामने वही बात कहीं जो उनके सम्मान, प्रतिष्ठा और आत्म गौरव के अनुकूल तथा स्त्री त्याग की पराकाष्ठा के माफिक बात थी। "हे गुरुजी! मैं आपका कहना करूँगी। दश पग अयोध्या की ओर चल दूँगी। परन्तु अयोध्या नहीं जाऊँगी। धरती माता के मेरे स्वागत के लिये फटते हुए वक्षस्थल में मैं प्रवेश कर जाऊँगी पर अयोध्या नहीं जाऊँगी" ॥१४॥

इसी भावार्थ का पूर्व्व में न०४ सोहर में एक गीत आ चुका है। परन्तु दोनों में बहुत भेद है। और वह भेद भाव, व्यञ्जना और रस पुष्टि के विभिन्न दृष्टिकोणों का सुन्दरतम भेद है। इन गीतों के पाठ से इस बात की पुष्टि होती है कि कविता के लिये परिमार्जित मस्तिष्क की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी की इसे एक सच्चा भावुक हृदय और उसकी सत्यानुभूति की जरूरत है ॥१५॥

सखिया सोने के सुपेलिया पछोरेलीं मैं मोतियाँ हिलोरीले हो ॥१॥
जब हम परलीं राम घरे—राजा रे दसरथ घरे।
जरि बरि भइलीं कोइलवा त जरि के भसम भइलीं हो ॥२॥
सभवा बइठल राजा रामचनर पुछावे राजा दसरथ।
पुता! कवन सीतलि दुख दीहल सखिन सगे रोवे ली हो ॥३॥
हसि के धनुस उठवलनि बिहँसि के पइठलनि।
सीता! अब सुख सोअहु महलिया गुपुत होइ जाइबि हो ॥४॥
अरे रे! लछिमन देवरा! विपतिया के नायक।
देवरू! भइया के लावउ मनाइ नाहीं त बिखि खाइबि हो ॥५॥
अरे हो भऊजी सीतल रानी! बड़ ठकुराइन हो!।
देहु ना तिरवा कमनिया मैं भइया खोजे जइहों हो ॥६॥
ढूँढलों मैं नग्र अजोधिया अवरू पुर पाटन हो।
देवरू! ढूँढलीं नाहीं गुपुत तलउवा जहाँ राम गुपुत भइलें हो ॥७॥
काहेके मैं सेजिया बिछाओं केहि लागि फूल छितराओं हो?।
देवरू! केकरा मैं लागों टहलिया कइसे दु:ख बिसरावउँ हो ॥८॥
हमरहिं सेजिया बिछावहु फूल छितरावहु हो।
भऊजी! हमरेहिं लागहू टहलिया त दु:ख बिसरावहु हो ॥९॥
जवने मुह आमावा न खइलों इमिलिया कइसे चीखउँ हो।
जवने मुह लछुमन कहि गोहरवलीं पुरुख कइसे भाखबि हो ॥१०॥
अरे रे, पापिनी भउजइया! पाप जनि बोलहु।
भऊजी, जइसे कोसिला रानी मतवा ओइसन हम जानीले हो ॥११॥
लाख दोहइया राजा दसरथ राम माथ छूई ले हो।
बुड़की बिरथा मोरि जाय जो धनि कहि गोहरावउँ हो ॥१२॥

अरे! जब मैं राजा जनक के घर थी तो मेरे संग की सखियाँ तो सोने की सूपेली पछोरा करती थीं और मैं मोतियों को स्वर्ण-सूप से फटक फटक कर खेला

करती थी ॥१॥

परन्तु जब मैं राम के घर में पड़ी, राजा दशरथ के गृह मे लाकर रख छोडी गयी तब मैं दुखाग्नि से जलकर और विरह से तप कर काला कोयला बन गयी। वह कोयला भी नहीं रह सकी। यहाँ तक जलाया गया कि जलते जलते कोयला से भस्म बन गयी ॥२॥

सभा में राजा रामचन्द्र बैठे हैं। राजा दशरथ ने उनसे पूछ भेजा कि हे पुत्र राम! तुमने सीता को कौन सा ऐसा दुःख दिया कि वह सखियों के साथ रो रही है ॥३॥

राम ने हँस करके धनुष को उठाया और विहँस करके महल में प्रवेश किया। सीता के पास जाकर कहा—हे सीते! अब तुम सुख से महल में शयन करो। मैं गुप्त हुआ जाता हूँ ॥४॥

राम चले गये। सीता ने व्याकुल होकर लछमण से कहा—अरे हे लछमण देवर! तुम विपत्ति में मेरे नायक हो। तुम जाकर अपने भाई को मना लाओ। नहीं तो मै विष खा लूँगी ॥५॥

लछमण ने कहा—अरी मेरी भावज सीता रानी! तुम बड़ी ठकुराइन हो। तुम मुझे तीर कमान दो। मैं अपने भाई राम को खोजने जाऊँगा ॥६॥

लछमण राम को खोज कर लौटे तो कहने लगे— हे भावज! मैंने राम को सारी अयोध्या में ढूढ डाला। पाटन पुरी में भी सर्वत्र खोज लिया। पर कहीं वे नहीं मिले। सीता ने कहा—हे देवर! तुमने राम को सर्वत्र खोजा पर गुप्त-सागर में उन्हें नहीं तलाशा जहाँ वे गुप्त हुए थे। अरे! अब मैं राम की अनुपस्थिति में किसकी सेज डसाऊँगी और किस के लिये उस पर पुष्प बिखेरूँगी? हे देवर! अब मैं किसकी सेवा में लगूँ और अपना दुःख किस प्रकार भुलाऊँ? ॥७॥

लछमण ने परीक्षा के लिये कहा—हे भावज! मेरी सेज तुम बिछा दिया करो और मेरे ही लिये उस पर फूल भी बिखेर दिया करो। तुम मेरी ही सेवा में लग जाओ और अपना दुःख भूल जाओ ॥८॥

सती सीता ने उत्तर दिया—जिस मुख से मैंने कभी आम की खटाई नहीं खायी उसी मुख से मैं इमली कैसे चीखूँगी? हे देवर! जिस मुख से मैने तुम्हे

लछमण कह कर पुकारा उसी मुख से पुरुष कैसे भाखूँगी ? ॥१०॥

लछमण ने कहा—पापिन भावज ! तू पाप की बात न बोलो। हे भावज ! जैसी कौशल्या रानी मेरी माता है वैसी ही मैं तुमको जानता हूँ। मैं राजा दशरथ की लाखों दुहाई देता हूँ—रामचन्द्र जी का सौगन्द खाता हूँ मेरा गंगा स्नान का पुण्य नष्ट हो जाय जो मैं कभी तुमको स्त्री कह कर पुकारूँ ? ॥११,१२॥

(१२)

ललिता चन्द्रावलि अइली, यसुमति राधे अइली हो।
ललना, मिलि जुलि चलीं ओहि पार यमुन जल भरिलाईं हो ॥१॥
डँडवा में बंधिलीं कछोटवा हिआ चनन हारवा हो।
ललना, पँवरि के पार उतरलीं तिवइया एक रोवइ हो ॥२॥
किआ तोके मारेली ससुइया ननदी किआ दुःख दिहली हो ?।
बहिनी, कीया तोरा कन्त बिदेस क्वन दुःख रोएलू हो ॥३॥
नाहीं मोरा मारेली ससुइया नाहीं ननदी दुःख दीहलीं हो।
बहिनी, नाहिं मोरा कन्त बिदेस कोखिए दुःख रोईला हो ॥४॥
सात बलक दैव दीहलनि कंस लेइ लिहलनि हो।
बहिनी आठवें रहलवा गरभवा ने इहो हरि लेइहनि हो ॥५॥
चुप रहु, चुप रहु देवकी ! आँचर मुँह पोछिधालु हो।
बहिनी ! आपन बलक हम मारबि तोहर जिआइबि हो ॥६॥

ललिता और चन्द्रावली आईं। यशुमति और राधा आईं। सबों ने सलाह किया कि हिलमिल कर उस पार चलती जाय और यमुना का जल भर लावें॥१॥

उन सबों ने अपने कमर में कछोटा बाधा और अपने चन्द्रहारों को छाती में लपेट लिया और पौंड़ कर यमुना के उस पार उतर रहीं। वहाँ एक स्त्री को जार बेजार रोती हुई देखकर सबों ने पूछा—अरी स्त्री ! क्या तुम्हारी सास तुमको मारती है या तुम्हारी ननद तुम्हें दुःख पहुँचाती है या हे बहन ! तुम्हारा कन्त कहीं परदेश में है ? बताओ तुम किस दुःख से इस तरह रो रही हो ? ॥१,२,३॥

स्त्री ने कहा—न तो मेरी सास मुझको मारती है और न मेरी ननद ही मुझे कष्ट देती है। हे बहन ! मेरा कन्त भी विदेश में नहीं है। मैं अपनी कोख

के अर्थात सन्तान के दुःख से रो रही हूँ।

ईश्वर ने मुझे सात बालक दिये। परन्तु सबों को राजा कंस ने ले लिया। सो हे बहन ! यह आठवाँ गर्भ इस बार रहा है। इसे भी कंस हर लेगा ॥४,५॥

यशुमति ने कहा—हे बहन देवकी ! तुम चुप रहो। अपने अंचल से अपना मुख पोछ डालो। मैं अपने बालक को मरवाऊँगी और तुम्हारे बालक को जिआऊँगी ॥६॥

कितना सुन्दर यशोदा और देवकी का सम्बाद अपढ़ कवियित्री ने चित्रित किया है। कितना स्वाभाविक वर्णन है। सर्वत्र प्रसाद गुण से पदावली ओत प्रोत हो रही है। करुणा किस वेगवती धारा के साथ पाठक के मन को बहा ले जाती है। यह पाठक स्वयं देखें और गाकर आनन्द उठावें। लय के साथ पढ़ने में ही इन गीतों का सौन्दर्य्य प्रस्फुटित होता है।

(१३)

सोने के खरउआँ राजा दसरथ खुटुरु खुटुरु चलले हो।
राजा गइले रे केदलिया के बनवाँ त काँट गड़ि गइलनि हो ॥१॥
जे मोरा कँटवाँ निकलिहें वेदन हरि लेइहनि हो।
अरे, जवन मगनवाँ ते मँगिहे तवने हम दिआइबि ॥२॥
घरवाँ से निकलीं केकइया रानी सोरहो सिंगार कइले हो।
राजा ! हम तुहरे कँटवा निकासबि वेदनवा हरि लेइबि हो ॥३॥
अरे-जवने मँगन हम माँगबि तवने रउरें देइबि हो।
अँगुरी से कँटवा निकसली वेदन हरि लिहलिनि हो ॥४॥
राजा ! जवन माँगन हम मागीले तवने रउरे देईना हो।
राजा ! राम लखन वन जासु भरत राज बिलससु हो ॥५॥
माँगहि के केकई ! मगलू माँगन नाहीं जनलू हो।
केकई ! मागि लीहलू मोर प्रान त कोसिला रानी ओंठगन हो ॥६॥
जे राम चित से ना उतरे पलक से न बिसरेलें हो।
से राम बने चलि जइहें त कइसे जीउ बोधबि हो ॥७॥

सोने के खड़ाऊँ पर चढ़ कर राजा दशरथ खुटुर खुटुर चले। राजा केदली के वन में जब पहुँचे तो पाँव में काँटा गड़ गया ॥१॥

राजा ने कहा कि जो मेरा काँटा निकाल कर पीड़ा हर लेगा उसे जो इनाम वह मागेगा मैं वही दूँगा ॥२॥

रानी कैकेयी अपने घर से सोलहो शृङ्गार करके निकलीं और राजा से बोलीं—हे राजन् ! मैं तुम्हारा काँटा निकालूँगी और दर्द भी हर लूँगी। मैं जो वर मागूगी वही आप मुझे देंगे। उसने अपनी उँगली से काँटा निकाला और राजा की पीड़ा को हर लिया ॥३,४॥

कैकेयी ने कहा—हे राजन् ! जो वरदान अब मैं मागती हूँ उसे ही आप मुझे दीजिये। राम लछमण वन को जायँ और मेरे भरत अयोध्या का राज भोग करें ॥५॥

राजा ने कहा—अरी कैकेयी ! तूने वरतो माँगने को माँग लिया परंतु तुमको वर मागना नहीं आया। कौशल्या रानी की आड़ में तूने मेरा प्राण ही माग लिया है ॥६॥

जो मेरे राम मेरे चित्त से पल भर के लिये भी नहीं उतरते और आखों से एक क्षण के लिये भी नहीं विसरते वे राम अगर वन चले जायगे तो मैं अपने जी को किस प्रकार समझाऊँगा अर्थात् राम के बिना मेरा प्राणान्त हो जायगा ॥७॥

(१४)

सासु मोरी कहेली बँझिनियाँ ननद ब्रजवासिनि हो।
रामा जिनके मैं वारी रे बिआही ऊहो घर से निकसलनि हो ॥१॥
घरवा से निकसी बँझिनियाँ जगल विच ठाढ भइली हो।
रामा—वनवा से निकसी बघिनिया त दुःख सु.ख पूछइ हो ॥
तिरिया ! कवन विपतिया के मारल जगल बिच ठाढ़ भइलू हो ? ॥२॥
सासु मोरी कहेली बँझिनिया ननद ब्रजवासिनि हो ॥
बाघिन ! जिनके हम वारी बिआही ऊहो घर से निकललनि हो।
बाघिन ! हमरा के जो खाइ लीहितू बिपतिया से छुटितीं हो ॥३॥

के अर्थात सन्तान के दुःख से रो रही हूँ ।

ईश्वर ने मुझे सात बालक दिये । परन्तु सबों को राजा कंस ने ले लिया । सो हे बहन ! यह आठवाँ गर्भ इस बार रहा है । इसे भी कंस हर लेगा ॥४,५॥

यशुमति ने कहा —हे बहन देवकी ! तुम चुप रहो । अपने अंचल से अपना मुख पोछ डालो । मैं अपने बालक को मरवाऊँगी और तुम्हारे बालक को जिआऊँगी ॥६॥

कितना सुन्दर यशोदा और देवकी का सम्वाद अपढ़ कवियित्री ने चित्रित किया है । कितना स्वाभाविक वर्णन है । सर्वत्र प्रसाद गुण से पदावली ओत प्रोत हो रही है । करुणा किस वेगवती धारा के साथ पाठक के मन को बहा ले जाती है । यह पाठक स्वयं देखें और गाकर आनन्द उठावें । लय के साथ पढ़ने में ही इन गीतों का सौन्दर्य्य प्रस्फुटित होता है ।

(१३)

सोने के खरउआँ राजा दसरथ खुटुरु खुटुरु चलले हो ।
राजा गइले रे केदलिया के बनवाँ त काँट गड़ि गइलनि हो ॥१॥
जे मोरा कँटवाँ निकलिहैं बेदन हरि लेइहनि हो ।
अरे, जवन मगनवाँ ते मँगिहे तवने हम दिआइबि ॥२॥
घरवाँ से निकलीं केकइया रानी सोरहो सिंगार कइले हो ।
राजा ! हम तुहरे कँटवा निकासबि बेदनवा हरि लेइबि हो ॥३॥
अरे-जवने मँगन हम मांगबि तवने रउरें देइबि हो ।
अँगुरी से कँटवा निकसली वेदन हरि लिहलिनि हो ॥४॥
राजा ! जवन मांगन हम मागीले तवने रउरे देईना हो ।
राजा ! राम लखन बन जासु भरत राज बिलससु हो ॥५॥
मांगहि के केकई ! मगलू मांगन नाहीं जनलू हो ।
केकई ! मागि लीहलू मोर प्रान त कोसिला रानी ओंठगन हो ॥६॥
जे राम चित से ना उतरे पलक से न बिसरेलें हो ।
से राम बने चलि जइहें त कइसे जीउ बोधबि हो ॥७॥

सोने के खड़ाऊँ पर चढ़ कर राजा दशरथ खुटुर खुटुर चले। राजा केद्ली के वन में जब पहुँचे तो पाँव में काँटा गड़ गया ॥१॥

राजा ने कहा कि जो मेरा काँटा निकाल कर पीड़ा हर लेगा उसे जो इनाम वह मागेगा मैं वही दूँगा ॥२॥

रानी कैकेयी अपने घर से सोलहो श्रृङ्गार करके निकलीं और राजा से बोलीं—हे राजन्! मैं तुम्हारा काँटा निकालूँगी और दर्द भी हर लूँगी। मैं जो वर मांगूगी वही आप मुझे देंगे। उसने अपनी उँगली से काँटा निकाला और राजा की पीड़ा को हर लिया ॥३,४॥

कैकेयी ने कहा—हे राजन्! जो वरदान अब मैं मांगती हूँ उसे ही आप मुझे दीजिये। राम लछमण वन को जायँ और मेरे भरत अयोध्या का राज भोग करें ॥५॥

राजा ने कहा—अरी कैकेयी! तूने वरतो मागने को माँग लिया परंतु तुमको वर मांगना नहीं आया। कौशल्या रानी की आड में तूने मेरा प्राण ही माग लिया है ॥६॥

जो मेरे राम मेरे चित्त से पल भर के लिये भी नहीं उतरते और आखों से एक क्षण के लिये भी नहीं विसरते वे राम अगर वन चले जायगे तो मैं अपने जी को किस प्रकार समझाऊँगा अर्थात् राम के विना मेरा प्राणान्त हो जायगा ॥७॥

(१४)

सासु मोरी कहेली बँझिनियाँ ननद ब्रजवासिनि हो।
रामा जिनके मैं वारी रे विआही ऊहो घर से निकसलनि हो ॥१॥
घरवा से निकसी बँझिनियाँ जगल विच ठाढ़ भइली हो।
रामा—वनवा से निकसी बघिनिया त दुःख सु ख पूछइ हो॥
तिरिया! कवन विपतिया के मारल जगल विच ठाढ़ भइलू हो? ॥२॥
सासु मोरी कहेली बँझिनिया ननद ब्रजवासिनि हो॥
बाघिन! जिनके हम वारी विआही ऊहो घर से निकललनि हो।
बाघिन! हमरा के जो खाइ लीहितू विपतिया से छुटितीं हो ॥३॥

के अर्थात सन्तान के दुःख से रो रही हूँ।

ईश्वर ने मुझे सात बालक दिये। परन्तु सबों को राजा कंस ने ले लिया। सो हे बहन ! यह आठवाँ गर्भ इस बार रहा है। इसे भी कंस हर लेगा ॥४,२॥

यशुमति ने कहा —हे बहन देवकी ! तुम चुप रहो। अपने अंचल से अपना मुख पोछ डालो। मैं अपने बालक को मरवाऊँगी और तुम्हारे बालक को जिआऊँगी ॥६॥

कितना सुन्दर यशोदा और देवकी का सम्बाद अपढ़ कवियित्री ने चित्रित किया है। कितना स्वाभाविक वर्णन है। सर्वत्र प्रसाद गुण से पदावली ओत प्रोत हो रही है। करुणा किस वेगवती धारा के साथ पाठक के मन को बहा ले जाती है। यह पाठक स्वयं देखें और गाकर आनन्द उठावें। लय के साथ पढ़ने में ही इन गीतों का सौन्दर्य्य प्रस्फुटित होता है।

(१३)

सोने के खरउआँ राजा दसरथ खुटुरु खुटुरु चलले हो।
राजा गइले रे केदलिया के बनवाँ त काँट गड़ि गइलनि हो ॥१॥
जे मोरा कँटवाँ निकलिहें बेदन हरि लेइहनि हो।
अरे, जवन मगनवाँ ते मँगिहे तवने हम दिआइबि ॥२॥
घरवाँ से निकलीं केकइया रानी सोरहो सिंगार कइले हो।
राजा ! हम तुहरे कँटवा निकासबि बेदनवा हरि लेइबि हो ॥३॥
अरे-जवने मँगन हम माँगबि तवने रउरें देईबि हो।
अँगुरी से कँटवा निकसली वेदन हरि लिहलिनि हो ॥४॥
राजा ! जवन माँगन हम मागीले तवने रउरे देईना हो।
राजा ! राम लखन बन जासु भरत राज बिलससु हो ॥५॥
माँगहि के केकई ! मगलू माँगन नाहीं जनलू हो।
केकई ! मागि लीहलू मोर प्रान त कोसिला रानी ओंठगन हो ॥६॥
जे राम चित से ना उतरे पलक से न बिसरेलें हो।
से राम बने चलि जइहें त कइसे जीउ बोधबि हो ॥७॥

सोने के खड़ाऊँ पर चढ़ कर राजा दशरथ खुट्टर खुट्टर चले। राजा केदली के वन मे जब पहुँचे तो पाँव में काँटा गड़ गया ॥१॥

राजा ने कहा कि जो मेरा काँटा निकाल कर पीड़ा हर लेगा उसे जो इनाम वह मागेगा मैं वही दूंगा ॥२॥

रानी कैकेयी अपने घर से सोलहो श्रृङ्गार करके निकलीं और राजा से बोलीं—हे राजन्! मैं तुम्हारा काँटा निकालूँगी और दर्द भी हर लूँगी। मैं जो वर मागूगी वही आप मुझे देंगे। उसने अपनी उँगली से काँटा निकाला और राजा की पीड़ा को हर लिया ॥३,४॥

कैकेयी ने कहा—हे राजन्! जो वरदान अब मैं मांगती हूँ उसे ही आप मुझे दीजिये। राम लक्ष्मण वन को जायँ और मेरे भरत अयोध्या का राज भोग करें ॥५॥

राजा ने कहा—अरी कैकेयी! तूने वरतो मागने को माँग लिया परंतु तुमको वर मांगना नहीं आया। कौशल्या रानी की आड़ में तूने मेरा प्राण ही माग लिया है ॥६॥

जो मेरे राम मेरे चित्त से पल भर के लिये भी नहीं उतरते और आखों से एक क्षण के लिये भी नहीं विसरते वे राम अगर वन चले जायगे तो मैं अपने जी को किस प्रकार समझाऊँगा अर्थात् राम के बिना मेरा प्राणान्त हो जायगा ॥७॥

(१४)

सासु मोरी कहेली बँझिनियाँ ननद ब्रजवासिनि हो।
रामा जिनके मैं वारी रे विआही ऊहो घर से निकसलनि हो ॥१॥
घरवा से निकसी बँझिनियाँ जगल विच ठाढ भइली हो।
रामा—वनवा से निकसी वघिनिया त दुःख सुःख पूछइ हो ॥
तिरिया! कवन विपतिया के मारल जगल विच ठाढ़ भइलू हो? ॥२॥
सासु मोरी कहेली बँझिनिया ननद ब्रजवासिनि हो ॥
बाघिन! जिनके हम वारी विआही ऊहो घर से निकललनि हो।
बाघिन! हमरा के जो खाइ लीहितू विपतिया से छुटिती हो ॥३॥

जहवाँ से तू चलि अइलू लवटि तहवाँ जावहु हो ।
बाँझिनि ! तोहरा के जो हम खाइबि हमहुँ बाँझ होखबि हो ॥४॥
उहवाँ से चलेली बॅझिनिया बिअरी पासे ठाढ भइली हो ।
रामा ! बिअरि से निकले नगिनियाँ त दु·ख सु.ख पूछई हो ॥
तिवई, कवने विपतिया के मारी बिअरी पासे ठाढ भइलू हो ॥५॥
सासु मोरी कहेली बॅझिनिया ननद ब्रजवासिनि हो ॥
नागिन ! जिनकर मैं बारी रे बिआही ऊ घर से निकसलनि हो ।
नागिन ! हमरा के जो डॅसि लेतिउ विपतिया से छूटितीं हो ॥६॥
जहवाँ से अइलू लवटि तहाँ जावहु तोहि नाहीं डॅसबइ हो ।
बाँझिनि ! तोहरा के जो हम डॅसबि हमहूँ बाँझ होखबि हो ॥७॥
उहवाँ से चलली बॅझिनिया माई दुअरा ठाढ भइली हो ।
भितरा से निकसी मयरिया त दु ख सुःख पूछई हो ॥
बिटिया ! कवन विपति तोरे ऊपर उहाँ से चलि अइलू हो ॥८॥
सासु मोरी कहेली बॅझनियाँ ननद ब्रजबासिनि हो ॥
मइया ! जिनकर मैं बारी बिआही ऊहो घर से निकललनि हो ।
मइया, हमारा के जो राखिलिहितू विपतिया से छूटितीं हो ॥९॥
धिया ! जहवाँ से अइलू लवटि तहवाँ जावहु तोके नाहिं राखबि हो ।
धिया ! तोहरा के जो हम राखबि बॅझिनियाँ बहू बनिहनि हो ॥१०॥
उहवाँ से चलेली बॅझिनिया जगल बिच आवे ली हो ।
धरती ! तूहीं सरन अब दिहितू त बॅझिनिया नाम छूटित हो ॥११॥
जहवाँ से तू अइलू उलटि तहवाँ जावहु तुमहि नाहीं राखब हो ।
बाँझिनि ! तोहरा के रखले हमहुँ होखबि ऊसर हो ॥१२॥

सास मुझे बाझ कहती है । ननद ब्रजबासिन कहती है । हे राम ! जिनके साथ मैं क्वारी ब्याही गयी उन्होंने मुझे अपने घर से निकाल बाहर किया ॥१॥

बाँझ घर से निकल कर जङ्गल के बीच जा खड़ी हुई । वन से बाघिन निकली तो वह इस स्त्री को देखकर इस से सु.ख दुःख पूछने लगी । कहा—अरी

अबले ! तू किस विपत्ति की मारी हो कि इस तरह निडर हो घोर जंगल में खड़ी हुई हो ? बाँझ ने उत्तर दिया—अरी बाघिन ! मेरी सास मुझे बाँझ कहती है। ननद व्रजवासिनी कह कर पुकारती है और जिसके साथ मैं क्वारी ब्याही गयी उसने भी मुझे घर से निकाल दिया। सो हे बाघिन ! अगर तू मुझे खा लेती तो मै इस विपत्ति से छूट जाती ॥२-४॥

बाघिन ने कहा—अरी स्त्री ! तू जहाँ से चलकर यहाँ आयी हो वहीं लौट कर चली जा। अरी बाँझ ! यदि मै तुमको खा लूँगी तो मै भी बाँझ हो जाऊँगी ॥५॥

वहाँ से बाँझ निराश होकर चली और सांप के बाँबी के पास आकर खड़ी हुई। बाँबी से नागिन निकली तो स्त्री को देखकर उससे दु:ख सुःख पूछने लगी। कही—अरी स्त्री ! तू किस विपत्ति की सताई हुई हो कि इस विवर के पास आकर खड़ी हुई हो ॥५॥

यहाँ भी स्त्री ने नं० ७ (२-४) लाइनों में बाघिन से कही हुई बात को दुहरा कर नागिन से अपने को डसने के लिये प्रार्थना की और नागिन ने भी बाघिन की तरह नं० ५ लाइन में कही हुई बात को दुहरा कर स्त्री को घर लौट जाने की सलाह दी और कहा कि यदि मै तुझको डसूँगी तो मै भी बाँझ हो जाऊँगी ॥६-७॥

तब वहाँ से भी निराश होकर स्त्री अपनी माता के द्वार पर आकर खड़ी हुई। आँगन से उसकी माँ निकली और उसको देखकर उससे सु:ख दुःख पूछने लगी उसने कहा—हे पुत्री ! तुझे सासुर में कौन सा ऐसा दुख हुआ कि तुम वहाँ से बिना बुलाये चली आयीं ? ॥८॥

स्त्री ने कहा—हे माँ ! मेरी सास मुझे बाँझ कहती है। ननद व्रजबासिन कहती है। जिसके हाथ तूने बारी वयस में ब्याह दिया था उसने भी मुझे घर से निकाल बाहर किया। सो हे माता ! अगर तुम मुझे अपने पास रख लेती तो मैं इस विपत्ति से छुटकारा पाती ॥९॥

माता ने कहा—हे कन्ये ! तू जहां से यहाँ आयी है वहाँ लौटकर चली जा। मै तुझको यहाँ नहीं रखूँगी। अगर मैं तुझको यहाँ रखूँगी तो मेरी बहू

भी बाँझ हो जायगी ॥१०॥

स्त्री वहाँ से भी निराश होकर चली और पुनः मध्य जङ्गल में आ खड़ी हुई। उसने धरती माता को सम्बोधन करके कहा—री धरती माता! अब तू ही शरण देती तो मेरा बाँझ नाम छूटता ॥११॥

पृथ्वी ने कहा—तू जहाँ से यहाँ आयी वहीं पलट कर चली जा। मैं तुझको अपने में स्थान नहीं दे सकता। अगर मैं तुझ बाँझ को अपने में ग्रहण कर लेती हूँ तो मैं भी ऊसर बन जाऊँगी ॥१२॥

बाँझ की इस अनाथता और हृदय द्रावक गाथा पर किस मनुष्य का हृदय नहीं पसीज उठेगा? समाज के तिरस्कारों को सहन करते करते जब बांझ को और अधिक सहना असह्य हो उठा तब इस गीत में ही अपने दुःखों को गाकर उसने अपने और अपनी सरीखी अन्य बहनों के जख्मों पर मरहम पट्टी करना चाहा है। पर इससे उसके वृहत् अकारण तिरस्कार का वह घाव क्या कभी भर सका? कदापि नहीं।

उपर्युक्त सोहर न० १४ का दूसरा पाठ भी मुझे मिला है। इसमें २० ही चरण हैं। पूर्वोक्त सोहर का अन्तिम चरण इसमें नहीं है। यह दूसरा पाठ नीचे उद्धृत है:—

(१४ अ)

सासु मोरी कहेली बँझिनियाँ, ननद ब्रजबासिन रे,
ए ललना, जिनकर बारी में बिआही, उहो घर से निकालेले हो ॥१॥
घर से निकलली बझिनियाँ, निखुझ बने ठाढि भइली रे,
ए ललना, बन में से निकली बघिनियाँ, पूछे ले भेद लाई नू हो ॥२॥
किया तोरे सासु ननद घर बएरनि, नइहर दुरि बसे रे,
ए तिरिया! कवनी विपति तोहरे परलो, निखुझ बने आवेलू हो ॥३॥
नाहीं मोरा सासु ननद घर बएरनि नइहर दूरि बसे रे,
ए बाघिनि! कोखि का विपति बयरगलीं निखुझ बने अइलीं नू हो ॥४॥
सासु मोरी कहेली बझिनियाँ, ननद ब्रजबासिन रे,
ए बाघिनि! जिनकर बारी में बिआही, उहो घर से निकासेले हो ॥५॥

जगवा के सब दुख सहवों, इहे नाहीं सहवि रे,
ए बाघिनि ! हमरा के तुहूँ , खाइ लीतू विपति मोरि छूटति हो ॥६॥
जहवाँ से अइलू तिरियवा, उहें चलि जाहू नु रे,
ए तिरिया ! तोहरा के हम नाहीं खइबों, बझिनि होइ जाइवि हो ॥७॥
उहवाँ से जाइ तिरियवा, बियरि लागे ठाढि भइली रे,
ए ललना, बिलि में से निकसे नगिनियाँ, पुछे ले भेद लाइनु हो ॥८॥
किया तोरे इत्यादि जैसा कि ३ से ७ चरण तक में वर्णन है। इन्हीं की
यहाँ चरण ६, १०, ११, १२, और १३ चरण में पुनरुक्ति है।
उहवाँ से जाइ तिरियवा, अमा घरे ठाढि भइली रे,
ए ललना, ओबरी से आइ मयरिया, पुछे ले भेद लाइ नु हो ॥१४॥
किया तोरे कन्त बिदेसे कि सासु निकाले ले रे,
ए धीया ! कवन बिपति तोहरे परले नयन नीर ढारेलु हो ॥१५॥
नाहीं मोरा कन्त बिदेसे, ना सासु निकाले ले रे,
ए आमा ! कोखि क बिपति बयरगलीं, नयन दूनो ढरेला हो ॥१६॥
सासु मोरी कहेली बझिनियाँ ननद बृज बासिन रे,
ए आमा ! जिनकर बारी बिआही उहो घर निकासेले हो ॥१७॥
जगवा के सब दुख सहवों, इहे नाहीं सहवि रे,
ए आमा ! हमरा के देहु सरनवा, बिपति किछु गाँथीनु हो ॥१८॥
जहवाँ से अइलू धियरिया, उहें चलि जाहु नु रे,
ए धीया !-तोहरा के रखले पतोहियो, बझिनि होइ जाईनु हो ॥१९॥
सगरे के तेजली तिरियवा, पिरिथी मनावेली रे,
ए माता ! फाटीं ना पिरिथी देयाल त हम गहवों सरनि हो ॥२०॥

(१५)

कारिक पियरि बदरिया झमकि दइब बरसहु हो।
बदरी ! जाई बरसु ओही देस जहाँ पिया कोड़ करें हो ॥१॥
भीजेंला आखर बाखर तमुआ कनतियानु हो।
अरे भीतराँ से हुलसै करेजवा समुझि घरवाँ आवसु हो ॥२॥

बरहे बरिस पर लवटे ले बरहि तर उतरे ले हो।
माई, उठेंली लेई पिढवा बहिनि जल गडुआनु हो ॥३॥
मोर पिया पनिया त पीयेलें हाथ मुह धोवे ले हो।
मइया! देखलीं त कुल परिवार धनिया नाहीं देखी ले हो ॥४॥
बेटा! तोरि धनि अगवा के पातरि मुखवा के सूनरि हो।
बहुअरि गोड़े मूडे ताने ली चदरिया सोवेली धवरहरि हो ॥५॥
खोल न बहुअरि गढ के केवरिया दुपहर भइ आइल हो।
बहुअरि! देखु न तोर परदेसिया दुअरे तोरे ठाढ बाटें हो ॥६॥
झझकि के बहुअरि जगली केवारी खोलि देखेल हो।
सइया जनतों में तोहर अवइया थेइयथेइ नचतीं नु हो ॥७॥
जब से तू गइल मोरे पिअवा सेजरिया नाहीं डँसलि हो।
ससुरजी के तपलीं रसोइयाँ भुइयाँ परि सूतेलीं हो ॥८॥
जब से गइलीं मोरी धनिया पनवा नाहीं खइलीं,
तिरियवा ना चितइलें हो।
धनिया तोंहरी दरद मोरी छतियाँ त जाने ले नरायन हो ॥९॥

यह काले और पीले बादल उमड़ रहे हैं। झम झम करके मेघ बरस जाता है। अरे! बादल तुम सब यहाँ मत बरसो। वहा जाकर बरसो जहां मेरे प्रियतम क्रीडा व्यवसाय करने गये हुए हैं ॥१॥

वहाँ ऐसा बरसना कि उनकी बही, बस्ता, तम्बू, कनात सब भींग जाँय और (बरसाती मौसम देखकर) उनका कलेजा भीतर से हुलसने लगे, और वे मेरे हृदय की बात उस आत्म-अनुभूत भावना को अनुभव करके भली भाँति समझ लें और घर चले आवें ॥२॥

बारह वर्षों पर प्रियतम लौटे तो घर के बाहर बट वृक्ष के नीचे उतरे। उनको देखते ही माता पीढ़ा लेकर दौड़ी, बहन जल ले कर पहुँची। मेरे प्रियतम ने हाथ मुँह धोया, जल पीया और पूछा—"हे माँ! मैंने अपने कुल परिवार को तो देखा पर अभी तक अपनी स्त्री को नहीं देख पाया" ॥३, ४॥

माता ने कहा—'अरे पुत्र! तेरी स्त्री अंग से पतली है और मुख से सुन्दर

है। बहू सर से पाँव तक चादर ओढ़ कर बुर्जा पर सोती रहती है ॥५॥

वह धौरहर पर गया। कहा—'अरी बहू गढ़ के किवाड़ खोलो, दोपहर हो आया। बहू! देखो त तुम्हारा परदेशी तुम्हारे दरवाजे पर खड़ा हुआ है ॥६॥

बहू झमक कर जगी और किवाड़ खोलकर देखने लगी। प्रियतम को देखकर उसने कहा—हे प्यारे! यदि मैं तुम्हारी अवाई जानती तो पहले से वस्त्र लुटाती नाच कराती। हे मेरे पति! तुम जब से गये तब से मैंने सेज नहीं बिछायी। सासु जी की रसोई बनाने में सदा तपती रही और पृथ्वी पर पड़ कर सोती रही ॥७, ८॥

प्रियतम ने कहा—"हे मेरी प्यारी! इस प्रवास में मैंने पान नहीं खाया किसी स्त्री को आँख उठा कर देखा नहीं। प्रिये! तुम्हारा दर्द मेरी छाती में सदा वर्तमान रहा यह भगवान जानते हैं॥ ९॥

पति पत्नी का १२ वर्ष के विरह के बाद का मिलन और निष्कपट वार्ता कितना सरल और स्वाभाविक है॥

(१६)

बाबा जे बिअहले राजा घरे बहुत सम्पति घरे हो।
मोरी माई खबरिया ना लिहली ना बिरना पठा वे ली हो ॥१॥
सासु कहें तोरे माई नाहीं ससुर कहें तोरे बाबा नाही नु हो।
आपु प्रभु कहें तोर भइया नाहीं के तोरे सासुर आवइ हो ॥२॥
आरे गरभैतिन बहुअवा गरभ जनि बोलहु हा।
तोरे भइया के होरिला जो होइ त ऊ तोरे अइतें नु हो ॥३॥
एतना वचन सुनि बहुअरि सूरज मनावेंलीं हो।
सूरज! भइया के होइते नन्दलाल त हमरी ओर अइनि हो ॥४॥
होत बिहान पह फाटत होरिला जनम ले ले हो।
बाजे लागे अँनद बधइया उठइ लागे सोहर हो ॥५॥
बाबा मोरे गइले बजाजे घरे जोड़वा लेइ अइलेनि हो।
माई मोरी पीअरी रँगावें बीरन लेके आवेलें हो ॥६॥
भऊजी मोरी चऊरा पिसवली कसार बन्हावेली हो।

भऊजी मोरी पुतरा उरेहें बीरन ले के आवेले हो ॥७॥
आगे आगे आवे बहँगिया त पाछू घीऊ गागर हो।
ओहि पाछें भैया असवरवा त बहिनी के देस जाले हो ॥८॥
जइसे दउरे गइया त अपना बछरूआ खातिर हो।
ओइसे दउरली बहिनिया त अपना भइअवा खातिर हो ॥९॥
का ले अइल भइया सासु कर का रे गोतिनि कर हो।
का ले अइल भइया भयने खातिर का त हमरा खातिर हो ॥१०॥
पियरी ले अइलीं बहिनि ! सासू जी के कसरा गोतिनि जी के हो।
गूजवा गोड़हरा त भयने के तोहरा के कुछू नाहीं हो ॥११॥

मेरे बाबा ने मुझे राजा के घर ब्याह दिया। बहुत बड़े सम्पत्तिशाली का घर मुझे दिया पर मेरी माता ने आज तक कोई खबर नहीं भेजी और न मेरे भाई को ही मेरे पास पठाया ॥१॥

यहाँ मेरी सास कहती है कि तेरा बाबा नहीं है। ससुर कहते हैं कि तेरी मा नहीं है और स्वयं हमारे प्रभु कहते हैं कि तुम्हारा भाई नहीं है नहीं तो तुम्हारे सासुर में जरूर आता ॥२॥

उन्होंने आज फिर कहा—अरी गर्वीली बहू ! गर्व की बात न बोलो। यदि तुम्हारे भाई का पुत्र होता तो वह यहा अब तक अवश्य आया रहता ॥३॥

इतनी बात सुनकर बहू ने सूर्य्य की वदना की कि हे सूर्य्य भगवान ! मेरे भाई को पुत्र दो कि वह मेरी तरफ आने का विचार करे ॥४॥

प्रात.काल होते होते पह फाटते (लाली दौड़ते ही) बालक उत्पन्न हुआ। आनन्द बधाई बजने लगी और सोहर गाये जाने लगे ॥५॥

मेरे बाबा बजाज के घर गये और धोती का जोड़ा खरीद लाये। मेरी माता जी ने उसे पीला रँगवाया और मेरा भाई उसे लेकर मेरे यहाँ आया ॥६॥

मेरी भावज ने चावल पिसवाया और कसार (मिठाई विशेष) बन्हाया, फिर सुन्दर पुतला बनाया और भाई उसे लेकर मेरे यहा आया ॥७॥

आगे आगे पीअरी (पुत्र जन्म के अवसर पर जो सामान भेजा जाता है) की बहँगी आती है। उस के पीछे घी का घड़ा आता है। उसके पीछे मेरे भाई

घोडे पर सवार बहन के देश चले आ रहे हैं ॥८॥

जिस प्रकार गाय अपने बच्चे के लिये दौड़ती है वैसे ही बहन अपने भाई से मिलने के लिये झपट कर दौड़ पड़ी ॥६॥

उसने पूछना शुरू किया—हे भाई ! तुम सास के लिये क्या लाये हो ? गोतिनी के वास्ते क्या है ? तुम भाञ्जे के लिये और मेरे लिये क्या लाये हो मुझसे बताओ ॥१०॥

भाई ने कहा—हे बहन ! मैं तुम्हरी सास के लिये पीली धोती लायाहूँ । तुम्हारी गोतिनी के लिये कसार लाया हूँ । और अपने भाञ्जे के लिये मैं कान की बाली और पाव का कड़ा लाया हूँ और तुमको कुछ नहीं लाया ॥११॥

(१७)

सुखिया दुखिया दूनो वहिनियाँ ।
दूनो बधइया लेइ अईलीं हरे राजा वीरन ॥१॥
सुखिया जे लाई गुँजहरा गोड़इरा ।
दुखिया त दूव के पौंडा हरे राजा वीरन ॥२॥
सुखिया जे पूँछेली अपने वीरन से ।
विदा करो घर जाईं हरे राजा वीरन ॥३॥
लेहु न वहिनी खोइछ भरि मोतिया ।
सैयाँ चढ़न के घोड़वा हरे राजा वीरन ॥४॥
दुखिया जे पूछेले अपना वीरन से ।
विदा करहु घर जाई हरे राजा वीरन ॥५॥
लेहु ना वहिनी खोंइछ भरि कोदो ।
ऊहे दूव के पौड़ा हरे राजा वीरन ॥६॥
गँउआँ गोयड़वा लघहीं ना पवले ।
दुखिया झरन लागे मोती हरे राजा वीरन ॥७॥
कोठवा जे चढि के त भऊजी पुकारेलि ।
ननदी रूठल घरवा लावहु हरे मोरे वालम ॥८॥

सुखिया और दुखिया दोनों बहन बधाई लेकर के आयीं । सुखिया

सोने के खरउँआ राजा राम चन्नर सीता से अरज करे हो।
ए सीता! दुख सुख करीह गिरिहिआ नइहर मत जइह हो ॥४॥
विना रे केवट केरा नइया अवधपुर ना रहिहें हो।
अरे विना रे पुरुष केरा बहुआ नइहर चलि जइहें हो ॥५॥
पहिर ओढ़ि सीता ठाढ भइली धरती निहस गइली हो।
ए सीता! टोला महाला अगुतइले कबदो सीता जइहन हो ॥६॥

सोने की खड़ाऊँ पर चढ़कर रामचन्द्र अपनी माता कौशल्या के पास गये और उनसे निवेदन करने लगे—माँ! भाग्य में तो घन लिखा है, सीता यहाँ कैसे रहेगी? ॥१॥

कौशल्या ने कहा—"हे वत्स! मै सीता के गृह को जीरा और लौंग की अंगीठी से सुगन्धित करूँगी और माणिक का दीप जलवाऊँगी, सीता को सोने की चौकी पर बैठाकर स्नान कराऊँगी और पीला पीताम्बर पहनाकर उसे सिंहासन पर बैठाऊँगी ॥२-३॥

सोने की खड़ाऊँ पहन कर राजा रामचन्द्र ने सीता से नम्र शब्दों में कहा—"हे देवी! तुम्हें सुःख दुःख जो कुछ हो, घर रहकर सहना। मायके मत जाना"। सीता ने उत्तर दिया—"जैसे विना केवट की नाव सरजू में कदापि नहीं टिक सकती वैसे ही बिना पुरुष के स्त्री मायके चली ही जायगी" ॥४-५॥

सीता मायके चली गयीं। वहाँ जब वस्त्रादि पहनकर सीता खड़ी हुई तो उनको देखकर पृथ्वी सहम गई। पृथ्वी ने कहा—"सीते! तुमको देखकर टोले महल्ले वाले परेशान हो रहे है कि सीता कब ससुराल जायगी? तुम मायके से क्यों नहीं जाती?"

(२५)

चलीहु सखिया सलेहर! मिलि जुलि चलहु हो।
मोर सखिया! मिलि जुलि चल अजोधिया त पिया के मनाइबि हो ॥१॥
एक बन गइलों दूसर बन अवरू तीसर बन हो।
मोर सखिया! पातर पिया ठाढ फुलवरिया मलिनिया संगे बिहसे ले हो ॥२॥

घोडे पर सवार बहन के देश चले आ रहे हैं ॥८॥

जिस प्रकार गाय अपने बच्चे के लिये दौड़ती है वैसे ही बहन अपने भाई से मिलने के लिये झपट कर दौड पड़ी ॥६॥

उसने पूछना शुरू किया—हे भाई ! तुम सास के लिये क्या लाये हो ? गोतिनी के वास्ते क्या है ? तुम भाञ्जे के लिये और मेरे लिये क्या लाये हो मुझसे बताओ ॥१०॥

भाई ने कहा—हे बहन ! मैं तुम्हरी सास के लिये पीली धोती लायाहूँ । तुम्हारी गोतिनी के लिये कसार लाया हूँ । और अपने भाञ्जे के लिये मैं कान की बाली और पांव का कड़ा लाया हूँ और तुमको कुछ नहीं लाया ॥११॥

(१७)

सुखिया दुखिया दूनो बहिनियाँ ।
दूनो बधइया लेइ अईलीं हरे राजा वीरन ॥१॥
सुखिया जे लाई गुँजहरा गोड़इरा ।
दुखिया त दूब के पौंडा हरे राजा वीरन ॥२॥
सुखिया जे पूँछेली अपने वीरन से ।
विदा करो घर जाईं हरे राजा वीरन ॥३॥
लेहु न बहिनी खोइछ भरि मोतिया ।
सैयाँ चढ़न के घोड़वा हरे राजा वीरन ॥४॥
दुखिया जे पूछेले अपना वीरन से ।
विदा करहु घर जाई हरे राजा वीरन ॥५॥
लेहु ना बहिनी खोइछ भरि कोदो ।
ऊहे दूब के पौंड़ा हरे राजा वीरन ॥६॥
गँउआँ गोयड़वा लघहीं ना पवलें ।
दुखिया झरन लागे मोती हरे राजा वीरन ॥७॥
कोठवा जे चढि के त भऊजी पुकारेलि ।
ननदी रूठल घरवा लावहु हरे मोरे बालम ॥८॥

सुखिया और दुखिया दोनों बहन बधाई लेकर के आयीं । सुखिया

गुजहरा और कड़ा उपहार में ले आई और दुखिया केवल दूब के लच्छा को ही ले आ सकी। सुखिया अपने भाई स पूछती है—"हे भाई मुझे अब विदा करो। मैं अपने घर जाउँगी" ॥१-३॥

भाई ने कहा—"हे बहन ! अञ्चल भर मोती लो और अपने स्वामी के चढ़ने के लिये यह घोड़ा ले जाओ" ॥४॥

दुखिया ने अपने भाई से पूछा—हे भाई ! मुझे बिदा दो। मैं अब अपने घर जाऊँ ॥५॥

भाई ने कहा—हे बहन ! अपने अंचल भर कोदो ले लो उस दूब का लच्छा भी लेलो जिसको तुम ले आईं थीं ॥६॥

(दुखिया कोदो और दूब को लेकर चुपचाप चल पड़ी) वह गाँव के बाहर हो भी नहीं पायी थी कि उसके अञ्चल के दूब से मोती झरने लगे। यह देखकर कोठे पर चढ़ी हुई उसकी भावज पुकार कर कहने लगी, "अहे मेरे सैंया ! ननद रूठी जा रही है। उसे मनाकर घर लाओ" ॥७॥

धनी और गरीब की कितनी सुन्दर और सच्ची तुलना है। ऐसी घटनायें नित्य देखने को मिलती हैं। तभी तो तुलसीदास जी ने कहा है—

देश काल कुल जानि के सबै करै सनमान।
तुलसी दया गरीब को तू सहाय भगवान।

तभी तो गरीब बहन के अञ्चल के दूब से मोती झरने लगे।

(१८)

ऊठति रेख मसि भीनत राम मोरा वने गइले हो।
मोरि बारह बरिस कइ उमिरिया मैं कइसेके बिताइबि हो ? ॥१॥
काइ राम ! तोहरे जे घरे रहे ? काइरे बिदेस गइले हो।
रामा, हँसि के ना धइल अँचरवा ना कबहूँ कोहनइल नु हो ? ॥२॥
लालि चुनरि नाहि पहिरेलों पीअरि नाहीं छोरेलों हो।
रामा, कोंखि ना लीहलीं बलकवा छठीओ नाहि पूजेलीं हो ॥३॥
छोड़ले जाईले घर सोनवाँ महल भर रूपवा नु हो।
रामा, छोड़ित जाइले देवरवा, पिया के सँग रहँसवि हो ॥४॥

रेख निकलते और स्याही आते ही मेरे राम बन चले। मेरी उमर बारह वर्ष की है। मैं कैसे जीवन बिताऊँगी ? ॥१॥

हे राम ! तुम्हारे घर रहने से ही मुझको क्या लाभ था और विदेश जाने से ही क्या हानि है ? हे राम ! तुमने कभी हँस कर के मेरे अञ्चल को नहीं पकड़ा और न कभी मुझ पर क्रोध ही किया ॥२॥

मैंने न कभी लाल चूँदरी ही पहनी और न पीअरी (पीली धोती) को ही कभी पहन कर उतार सकी ! हे राम ! मैं कभी गोदी में बालक को भी नहीं ले सकी अर्थात मुझे कोई सन्तान भी नहीं हुई और उसकी छठ्ठी भी पूजने का सौभाग्य मुझे नहीं प्राप्त हो सका ॥३॥

पति ने कहा—"हे प्रिये ! मैं घर भर सोना छोड़े जा रहा हूँ। महल भर चांदी यहीं पड़ी है। तेरा छोटा देवर भी यहीं रह रहा है।" इस पर पत्नी ने कहा—"ये सब मुझे कुछ न चाहिये मैं अपने प्रियतम के साथ (जङ्गल में) ही प्रसन्न होऊँगी मुझे अपने साथ ले चलिये" ॥४॥

सन्तान की कामना का स्त्री हृदय में होना कितनी स्वाभाविक बात है। फिर प्रियतम के संग के सामने सारी सम्पदा कुल परिवार त्याज्य है।

(१६)

मन मोर बसेला गोबिन हियरा राम लछुमन हो ।
दुनो नयना में भरत भुआल किस्न नाहीं बिसरसु हो ॥१॥
कब दोना गगा बढिअइहें, सेवरवा दहि जइहनि हो ।
आरे बहिनी ! कबदोनि किसुन लवटिहें, रधिका जुड़इहनि हो ॥२॥
भादो में गगा बढ़ि अइहे, सेवरवा दहि जइहनि हो ।
ए बहिनी, कातिक में किसुन लवटिहनि रधिका जुड़इहनि हो ॥३॥
जइसन कोहरा के अँऊआ, छनहि छन तलफेला हो ।
ए बहिनी, ओइसन रधिका के जिअरा छनहि छने तलफेला हो ॥४॥
रुकमिन के अँगना वेइलि फूल अवरू सरब फूल हो ।
ए बहिनी ! एकँहू त फुल हम पइतीं त सेजिया डसइतीं—
किसुन पवँढ़इतऊँ हो ।

जे यह मगल गावेला गाइ सुनावेला हो ।
ए बहिनी—से हो बैकुण्ठहि जाला सदा सुख पावेला—
प्रेम फल पावेला हो ॥५॥

मेरा मन गोविन्द में बसता है और हृदय राम लक्ष्मण की युगल जोड़ी में लगा हुआ है। मेरी दोनों आखों में राजा भरत हैं। मुझे कृष्ण नहीं विसरते हैं ॥१॥

न मालूम कब गंगा में बाढ़ आवेगी ? उसका सेवार बह कर कब साफ होगा ? अरी बहन ! न मालूम कब श्री कृष्ण चन्द्र लौटेंगे और मेरी राधा जुडायेगी ? ॥२॥

भादों मास में गगा बढ़ेंगी और उसका सेवार बह जायगा। हे बहन ! कार्तिक में श्री कृष्ण भगवान लौटेंगे और मेरी राधिका जुड़ायगी ॥३॥

अरे जिस तरह कुम्भार का आंवा क्षण ही क्षण तलफा करता है वैसी ही मेरी राधिका का हृदय क्षण प्रति क्षण तलफ रहा है। ॥४॥

अरे रुक्मिणी के आंगन में बेला का वृक्ष है और सब गुण उस में वर्तमान हैं। हे बहन ! अगर मैं उस वृक्ष का एक भी फूल पाती तो मैं सेज डसाती और कृष्ण के पाव के पास पड रहती ॥५॥

जो यह मगल गाता है और गाकर सुनाता है वह, हे बहन ! बैकुण्ठ जाता है और सदा सुख पाता है और प्रेम का सच्चा फल प्राप्त करता है ॥६॥

(२०)

राजा दुआरे रनियवा—त रनिया रोदन करे हो ।
राजा ! हम त जोगिनि होइ जइबों, त एके रे पुतर बिनु हो ॥१॥
जो तुहूँ रनिया रे ! जोगिनि होइबू हमहुँ जोगीआ होइजाइबि हो ।
रनिया ! दुनो जन भभूति रमाइबि त तिरथ नहाइबि हो ॥२॥
गया नहइलों, गजाधर अवरू वेनी-माधव हो ।
राजा ! अतना तिरथ हम कइलीं पुतर नाहीं पाई ले हो ॥३॥
चारि चउखण्ड के पोखरवा त ताहि पर चनन गाँछ हो ।
आहो—ताहि तट रामजी के आसन बलका उरेहे ले हो ॥४॥

बोलिया त ए राम ! बोलीले बोलत लजाई ले हो ।
राम ! सगरे नगरिया में रुनुझुन हमें नाहीं चितई ले हो ॥५॥
सगरे नगरिया में रुनुझुन तोहरे कवन गति हो ।
रानी ! जे किछु लिखेला लिलार से हो रे कइसे मेटेला हो ॥६॥

राजा के दरवाजे पर रानी रो रही है और कहती है कि 'हे राजन् ! एक पुत्र के बिना मैं योगिनी हो जाऊँगी" ॥१॥

राजा ने कहा—हे रानी ! अगर तुम योगिन बनोगी तो मैं भी योगी बनूँगा और दोनों प्राणी भस्म लगायेंगे और तीर्थ स्नान करेंगे" ॥२॥

रानी ने कहा—"गया और गजाधर में स्नान किया और बेनीमाधव का दर्शन किया, पर हे राजन् ! इतना तीर्थ करने पर भी मैंने पुत्र नहीं पाया" ॥३॥

आयताकार पोखरा है । उस पर चन्दन का बिरवा है । उस बिरवे के नीचे राम जी का आसन है । वहीं वे बालक का सृजन कर रहे हैं ॥४॥

रानी वहाँ जाकर खड़ी हुई और राम से बिनती करने लगी—"हे राम ! मैं बात तो कहती हूँ पर कहते लज्जा मालूम होती है । राम ! सारे नगर तो मैं सर्वत्र रुनझुन रुनझुन की आवाज (बच्चों के घूघुरु की आवाज) सुनती हूँ अर्थात सब की सन्तान है । पर हे राम ! क्या बात है कि आप मेरी ओर कृपा दृष्टि नहीं करते ? ॥५॥

राम ने उत्तर दिया—सारे नगर में तो रुनझुन का स्वर है अर्थात सब की सन्तानें हैं । परन्तु तुम्हारी कौन गति है यह तुम क्या जानो ? हे रानी ! जो कुछ भाग्य में लिखा है वह कैसे मिट सकता है ?" ॥६॥

(२१)

नारद पोथिया जे बाँचे लें कस के सुनावेलें हो ।
आहो देवकी के रहले गरभवा देवकी पुतवा मारब हो ॥१॥
नौ मन लोहवा चुराइबि चकरी बनाइबि हो ।
आहो देवकी से कोदई दराइबि गरभ गिराइबि हो ॥२॥
नौ मन लोहवा गलाइबि गगरी बनाइबि हो ।
आहो देवकी से पनिया भराइबि गरभ गिराइबि हो ॥३॥

पनिया जे भरेली जमुना दहे बइठली अरारे चढि हो ।
आहो देवकी के रोअले जमुनवा जमुना बढि आइलि हो ॥४॥
बनवा से निकसे जसोदा देई देवकि समुझावेलि हो ।
ए बहिनी ! कवन कवन दुख अवहेला कहि के सुनावहु हो ? ॥५॥
किया तोर बहिनी हो ! सासु दुख, नइहर दूर बसे हो ?
बहिनी ! किया तोरे कंत विदेस कवन दुखवा रोवेलू हो ? ॥६॥
नाहीं, मोर बहिनी हो ! सासु दुख, नईहर दूरि बसे हो ।
बहिनी ! नाहीं मोरे कन्त बिदेस कोखिये दुखे रोई ले हो ॥७॥
सात बलक राम दिहलनि से हो कंस मरलनि हो ।
ए बहिनी ! अठवें गरभ 'अवतार' एहू के कस मरिहइँ हो ॥८॥
चुप होखु, चुप होखु, देवकी ! त जनि रोइ मरहु हो ।
देवकी ! अपन बलक हम मेजब तोहरो मगाइबि हो ॥९॥
नुनवा उधार तेल पाँइँच अवरूदालि पाइँच हो ।
बहिनी ! कोखि के जनमल कइसन पाँइच ? भुलले नरायन हो ॥१०॥

नारद पोथी बाचते हैं और बाच कर कस को सुनाते हैं कि हे राजन् ! देवकी को गर्भ है । उसके पुत्र को आप मारियेगा । कंस ने कहा—"मैं नव मन लोहा गलवाऊँगा और उसकी चक्की बनवाऊँगा और हे नारद ! उसी में देवकी से कोदो दरवाऊँगा और इस तरह उसका गर्भपात कराऊँगा । मैं नव मन लोहा गलवाऊँगा और उसका एक घड़ा बनाऊँगा और उसी से देवकी से पानी भरवाऊँगा और इस तरह उसका गर्भ गिरवाऊँगा" ॥१, २, ३॥

देवकी जमुना दह में पानी भरती है और थक कर अरार पर बैठ जाती है । वहाँ वह इतना रोती है कि उसके रुदन से जमुना बढ़ जाती हैं ॥४॥

बन में से यशोदा निकलती हैं । देवकी को समझाती हैं और पूछती हैं कि "हे बहन ! तुमको कौन सा दु:ख हो रहा है मुझको कह कर सुनाओ । हे बहन ! क्या तुमको सास का दुःख है या तुम्हारा मायका दूर बसता है अथवा तुम्हारा कत विदेश है ? तुम किस दु ख से रो रही हो" ? ॥५-६॥

देवकी ने कहा—"हे बहन ! मुझे सास का दुःख नहीं है । न मेरा मायका

ही दूर बसता है। हे बहन ! न मेरा कंत ही विदेश में है। मैं केवल सन्तान के दुख से रो रहीं हूँ" ॥७॥

सात बालक भगवान ने मुझे दिये और सातों को कंस ने मार डाला। अब हे बहन ! आठवें गर्भ में अवतार होने वाला है पर उसको भी कंस मारने को तैयार है ॥८॥

यशोदा ने कहा—"हे देवकी ! चुप रहो, रो रो करके मत मरो। मैं अपना बालक भेजूगी और तुम्हारा मँगा लूगीं। देवकी ने कहा हे बहन ! नमक तेल का तो उधार पाइ्च होता है। यह पेट के जन्में हुये लड़के का हाय कैसा उधार पाइच ? मुझको ईश्वर ने भुला दिया है कि यह सब हो रहा है" ॥६,१०॥

(२२)

कोठिला से कढ़लों खुखुड़िया त घमवा सुखावेलों हो।
ए ननदी ! खुखुड़ी के रोटीया पकवलों वथुइया केरा सगिया ना हो ॥१॥
त हाली हाली करिल जेवनवाँ चेतिल आपन घरवा नु हो।
ए ननदी ! हाली हाली करिल जेवनवा चेतिल आपन घरवा नु हो ॥२॥
त छान्हीं से उतरली लुगरिया त अवरू चदरिया नु हो।
ए ननदी ! पहीरहु फटही लुगरिया वनऊरा डालिल खोइछ हो ॥३॥
त ऊँचवहि ऊँचवा जनि जइह, ऊँचे ऊँचे घाम लगिहैं हो।
ए ननदी ! ऊँचवाँ लगीहैं तोहरा घामावा खाले खाले जइहउ हो ॥४॥
त उहवाँ ले घोड़ावा दउरवले वहिनिया से जे भेट कइलनि हो।
ए वहिनी ! का का तू कइलू जेवनरवा त काहरे विदइया पवलू हो ॥५॥
त खाये के खुखुड़ी के रोटिया वथुइया केरा सगिया नु हो।
ए भइया ! पहिरे के फटही लुगरिया वनऊर देखिल खोंइछ हो ॥६॥
त भइया के रोअले पटुका भींजे बहिनी जमुन दहे हो।
ए वहिनी ! तनी एका डड़िया विलमाव जलदि चलि आइवि हो ॥७॥
त उहवाँ से घोड़ा दउरवले कचहरिया में उतरलनि हो।
ए चेरिया ! कहि आउ धनीजीसे मोरि त हम ससुररिया जइबों हो ॥८॥
ए चेरिया ! उनकर छोट भइया के विआह नेवतवा लेइ जाइवि हो।

होत मोरा भइया के बिआह नेवतेवे नउआ अइतें हो ॥९॥
ए राजा ! जऊँ मोरा भइआ के बिअहवा नेवत हम जइतीं नु हो ।
त दुअरे से नऊवा नेवता दीहले दुअरवे चलि गइलनि हो ॥१०॥
ए धनिया ! कालिहि तोर भइया के बरिआत जलदी हम जाइबि हो।
त झाँपी में से काढेली पीतम्मर गोटा पाटा टाँकेली हो ॥११॥
ए राजा ! गोटे गोटे मोहर गुहावेली खोलीहें मोर मयरिया नु हो ।
ए राजा ! घीउआ में बान्हेली सोठउरा खोलिहें मोर मयरिया नु हो ॥१२॥
त उहवाँ ले घोड़ दउरवलनि बहिनिया ढिग उतरले हो ।
ए बहिनी ! खोली द तू फटही लुगरिया बनउरा केर खोइंछ में हो ॥१३
ए बहिनी ! पहिरहु लहँगा पटोरवा मोहर भर खोइछ हो ।
त उहवा ले घोड़ा दउरवले कचहरिया में उतरले हो ॥१४॥
ए चेरिया ! पूछित आवहु मोर रानी जीसे बहिनी का बिदइया पवली हो ।
त खाये के खुखुड़ी के रोटिया बथुइया केर सगिया नु हो ।
ए धनिया ! पहिरे के फटही कन्हावर बनउरवा देखली खूँटा में हो ॥१५॥
त अइसन बोलिया राजा जनि बोल अवरू तू जनि बोल हो ।
ए राजा सुन पइहें गोतिनी देआदीन मेहनावा मोहि मरिहनि हो ॥१६॥

भावज ने कोठी में से खुखुड़ी निकाली । उसको धूप में सुखाया और ननद से कहा—हे ननद ! मैंने खुखुड़ी की रोटी पकायी और बथुए का साग बनाया है । तुम जल्दी जल्दी भोजन कर लो । अपना घर चेतो । छप्पर पर से भावज ने लुगरी उतारी और ननद को देकर कहा—हे ननद ! यह फटी लुगरी पहन लो और बनौला खोइछ (अचल) में भर लो और अपने ससुराल के लिये प्रस्थान करो ॥१-३॥

हे ननद ! तुम ऊँचे ऊँचे मार्ग से ससुराल में न जाना। ऊँचे मार्ग से जाने में तुमको धूप लगेगी। इसलिये नीचे रास्ते से ससुराल की यात्रा करना ॥४॥

बहन चली गयी । भाई को जब खबर लगी कि बहन चली गयी तो उसने घोड़ा दौड़ाया और बहन से भेट करके पूछा कि हे बहन ! तुमने क्या क्या

भोजन किया और बिदाई में भावज ने क्या क्या तुमको दिया ? बहन न कहा—"हे भाई ! मैंने खाने को खुखुड़ी की रोटी और बथुए का साग पाया। पहनने के लिये मुझे फटही लुगरी मिली और बिदाई में यह अञ्चल के खूट में बंधा हुआ बिनौला देखलो" । ॥५,६॥

भाई रोने लगा। उसका दुपट्टा आसू से भीज गया। बहन से कहा—"हे बहन ! थोड़ी देर अपनी पालकी रोक दो मैं जल्दी ही लौट कर आता हूँ" ॥७॥

भाई ने वहा से घोड़ा दौड़ाया और अपनी कचहरी में आकर उतरा। उसने अपनी नौकरानी से कहा कि बहू के छोटे भाई का विवाह है। "मैं नेवता में जाऊँगा"। बहू ने कहा—अगर मेरे भाई का ब्याह होता तो नाऊ निमन्त्रण लेकर आता ? हे राजन् यदि मेरे भाई का विवाह होगा तो मैं अवश्य निमन्त्रण में जाती। राजा ने कहा—"नाई निमंत्रण लेकर आया था। बाहर ही उसने निमंत्रण दिया और बाहर ही से चला गया। हे धनि ! तुम्हारे भाई की बारात है। मैं जल्दी ही जाऊँगा। स्त्री ने पिटारे से पीताम्बर निकाला उसपर गोटा पट्टा चढ़ाया और हर गोटे में मोहर सिलवाई कि उसकी मां उसको खोलकर निकाल लेगी। घी और सोंठ का लड्डू बनवाया और सब राजा को अपने मायके ले जाने के लिये दिया ॥८-१२॥

राजा वहा से घोड़ा दौड़ाकर अपने बहन के पास आया और बोला—हे बहन ! तुम फटी लुगरी खोल दो और बिनौला उसके खूट में बांध दो ॥१३॥

हे बहन ! लहँगा साड़ी पहन लो और मोहर अंचल में बांध लो। कचहरी में उतरे और चेरी से कहा कि हे चेरी ! मेरी स्त्री से पूछ आवो कि क्या क्या विदाई में उसने बहन को दिया है। खुखुड़ी की रोटी और बथुए का साग मिला था और हे चेरी ! पहनने के लिये फटी लूगरी मिली थी और बिदाई में देख लो खूट में बँधा बिनौला मिला था। भावज ने सुनते ही कहा—"हे प्रियतम ऐसी बोली न बोलो। अगर मेरी जेठानी या पड़ोस वाली सुन पायेगी तो मुझे ताना मारेगी" ॥१४-१६॥

ननद भौजाई का वैर स्त्री संसार में उतना प्रसिद्ध है जितना कि काव्य जगत में व्याघ्र और हाथी, श्वान और मृग की शत्रुता विख्यात है।

(२३)

हरदी सरीखे पपीहरा तू चिरई ! बोलना—अरे हाँ रे चिरई ! बोलना,
लालनजी के देसवा जहाँ पिया वसते हमार ॥१॥
सावन केर अन्हरिया त जेठ दुपहरिया नु हो। ए चिरई ! बोलना।
हम पापिनि गजओबरि सूतीं छैला बिरिछ तरे ठाढ बोलना ॥अरे०॥
अगना बहरइत चेरिया ! त अवरू लउँडिया नू हो !!
ए चेरिया ! बाहरे दलनिया देवर बाड़े देवरा बोलाव नू हो ॥अरे०॥
पासावा खेलत तुहूँ लखनजी ! त अवरू लखन देवरू हो !!
आरे लखन !!! राउर भउजी बाड़ी गजओबरि रउरा के बोलावेली हो।
अरे हाँरे चिरई बोलना ॥४॥
पासावा लडाँवत बेल तरे अवरू बबुर तरे हो।
आरे ललना-नील घोड भइले असरवा महल बीचे ठाढ भइले हो ॥५॥
मचिया बइठल रउरा भऊजी त भउजी बढइतिन हो।
काहे के परलीं हँकार त कहि के सुनावहु हो ॥६॥
कपरा त बथेला टनाटन ओदर चिल्हिक मारे हो।
ए बबुआ ! राउर भइया गइले परदेस दरद मोरा के हरो हो ॥७॥
अरे-अरे-भऊजी बढइतिन ! अवरू सिर साहेब हो।
ए भऊजी ! रचि एक दरदा नेवारहु होरिल भोरे भुइँया लोटिहें हो ॥८॥

अरी पक्षी ! तू बोल। पपीहा ! हरदी के समान तू पीला है। तू लालन जी के देश में जाकर बोल जहाँ मेरे पिया बसते हैं। अरी चिड़िया तू बोल ॥१॥

अरी चिड़िया ! सावन की अँधेरी और जेठ की दुपहरी में भी तू वहा जाकर बोल। इन अवसरों पर मैं ही पापिन अपने उच्चा भवन में रहती हूँ। मेरे सैयाँ तो कहीं वृक्ष के नीचे हवा खाते हुए टहलते और खड़े रहते हैं। तू वहाँ जाकर बोल ॥२॥

अरी अँगना बुहारने वाली लौंड़ी और चेरी ! बाहर दालान में मेरे देवर जी हैं। तू जाकर उन्हें बुला ला। अरी चिरई ! वहाँ मेरे बालम के पास जाकर बोल ॥३॥

लौंडी ने देवर के पास जाकर कहा—"हे लछमण जी ! तुम पासा खेल रहे हो। आपकी भावज जच्चा गृह में हैं"। आपको बुला रही हैं। अरी चिड़िया तू बोल ॥४॥

बेल और बबुर वृक्ष के नीचे पासा खेलते हुए लछमण देवर ने जैसे यह सम्वाद सुना नीले घोड़े पर सवार होकर महल बीच आ पहुँचे ॥ अरी चिड़िया ! बोल। जहाँ मेरे सैंयाँ निवास करते है वहाँ जाकर बोल ॥५॥

लछमण ने कहा—मचिया पर बैठी हुई हे मेरी भावज ! तुम मेरी बड़ी पूजनीया भावज हो। तुमने मुझे क्यों बुलवाया ? कह कर सुनाओ ? अरी चिड़िया बोल। जहाँ मेरे प्रीतम लालन जी के देश बसते हैं बोल ॥६॥

भावज ने कहा—हे बाबू ! मेरा माथा टन टन करके दर्द कर रहा है और पेड़ू में चिल्हक (दर्द) उठ रही है। आपके भाई तो परदेश गये हुए है। मेरी पीड़ा कौन हरेगा ? अरी चिड़िया ! तू बोल। लालन जी के देश जहाँ हमारे छैला बस रहे हैं जाकर बोल ॥७॥

लछमण ने कहा—हे भावज ! तुम तो स्वयं पूज्य हो और तुम ही घर की स्वामिनी हो। थोड़ा सा धैर्य धारण करके दर्द निवारण करो। प्रातःकाल होरिल पृथ्वी पर लोटने लगेगा अर्थात् पुत्रोत्पति होगी ॥८॥

कितने सुन्दर रूप में प्रसव समय की विरह-व्यथा को व्यक्त किया गया है। सच है दुर्दिन में या अत्यन्त पीड़ा के समय में अपना आत्मीय स्मरण हुए बिना नहीं रहता। खास कर प्रसव पीड़ा के समय पति का स्मरण होना तो और स्वाभाविक इसलिये है कि पति ही इस वेदना का कारण रहता है।

(२४)

सोने के खरउँआ राजा राम चन्नर माता से अरज करे हो।
ए माता ! हमरा लिखल मधुबनवा त कइसे सूनरि रहिहनि हो ॥१॥
जीरवा के बोरसी भरइवों लॅवगिया देइके बासवि हो।
ए बाबू ! मानिक दिअरा बरइवों बहुअवा गजओवरि हो ॥२॥
सोने के चउकी गढइवों सीता के नहवइवों हो।
ए बाबुल ! पीअर पीतम्मर पहिराइब सिंहासन बइठाइबि हो ॥३॥

सोने के खरउँआ राजा राम चन्नर सीता से अरज करे हो।
ए सीता! दुख सुख करीह गिरिहिआ नइहर मत जइह हो ॥४॥
बिना रे केवट केरा नइया अवधपुर ना रहिहें हो।
अरे बिना रे पुरुष केरा बहुआ नइहर चलि जइहें हो ॥५॥
पहिर ओहिर सीता ठाढ भइली धरती निहस गइली हो।
ए सीता! टोला महाला अगुतइले कबदो सीता जइहन हों ॥६॥

सोने की खड़ाऊँ पर चढ़कर रामचन्द्र अपनी माता कौशल्या के पास गये और उनसे निवेदन करने लगे—माँ! भाग्य में तो वन लिखा है, सीता यहाँ कैसे रहेगी? ॥१॥

कौशल्या ने कहा—"हे वत्स! मैं सीता के गृह को जीरा और लौंग की अगीठी से सुगन्धित करूँगी और माणिक का दीप जलवाऊँगी, सीता को सोने की चौकी पर बैठाकर स्नान कराऊँगी और पीला पीताम्बर पहनाकर उसे सिंहासन पर बैठाऊँगी ॥२-३॥

सोने की खड़ाऊँ पहन कर राजा रामचन्द्र ने सीता से नम्र शब्दों में कहा—"हे देवी! तुम्हें सुःख दुःख जो कुछ हो, घर रहकर सहना। मायके मत जाना"। सीता ने उत्तर दिया—"जैसे बिना केवट की नाव सरजू में कदापि नहीं टिक सकती वैसे ही बिना पुरुष के स्त्री मायके चली ही जायगी" ॥४-५॥

सीता मायके चली गयीं। वहाँ जब वस्त्रादि पहनकर सीता खड़ी हुई तो उनको देखकर पृथ्वी सहम गई। पृथ्वी ने कहा—"सीते! तुमको देखकर टोले महल्ले वाले परेशान हो रहे है कि सीता कब ससुराल जायगी? तुम मायके से क्यों नहीं जाती?"

(२५)

चलीहु सखिया सलेहर! मिलि जुलि चलहु हो।
मोर सखिया! मिलि जुलि चल अजोधिया त पिया के मनाइबि हो ॥१॥
एक बन गइलों दूसर बन अवरू तीसर बन हो।
मोर सखिया! पातर पिया ठाढ फुलवरिया मलिनिया सगे बिहसे ले हो ॥२॥

अँगना बहरइत चेरिया त अवरू लउँड़िया नु हो।
आरे चेरी! मलिनी के पकड़ी ले आवहु बलमुआ भोरवलसि हो ॥३॥

सीता ने अपनी सखियों से कहा—"हे सखी! आओ हम मिलजुल कर अयोध्या चलें और प्रियतम को मना लावें ॥१॥

सीता सखियों के साथ एक वन में गयीं दूसरे को पार करके तीसरे में पहुँची। वहाँ उन्होंने राम को देखकर सखी से कहा—'अरी सखी! वह देखो मेरे सुकुमार प्रियतम खड़े खड़े फुलवारी में मालिन के साथ हँस बोल रहे हैं' ॥२॥

सीता ने कहा "आंगन बुहारती हुई हे चेरी! तुम मालिन को पकड़ लाओ। वह मेरे बालम को अपने प्रेम में फंसा रही है। मैं उसे दन्ड दूँगी" ॥३॥

(२६)

पनवा अइसन पनिया पातर सोहगइली अइसन सूनरि हो।
आरे मोर सूनरि! फुलवा अइसन हलुकइया चननवा अइसन गमकई हो ॥१॥
एक हाथे लिहली सूनरि दिअरा दूसरे हाथे गगा जल हो।
आरे मोरे सूनरि चढि गइली राजा के अटरिया जहाँ रे राजा सूतेले हो ॥२॥
दिअरा घइली दिअरखवा गगाजल सिरहनवा नु हो।
कुछ घरी लागे बतिअवइत कुछ फुसिलवइत नु हो ॥३॥
आरे मोर सूनरि! जब राजा जोरेले सनेहिया तबहीं मुरूगा बोलेला हो ॥४॥
मुरूगा के मरबों डयन तुरि अबरू पएर तुरि हो।
आरे मोरि सूनरि! जबे राजा जोरे ले सनेहिया तबे हो मुरूगा बोले ला हो ॥५॥
काहे के मरबू डएन तुरि अवरू पएर तुरि हो।
आरे मोर सूनरि! हमहुँ त राजा के टहलुआ—अधेरात बोलीला
राजा के जगाई ला हो ॥६॥

पान ऐसी पतली, सिन्धौरा ऐसी सुन्दर तथा फूल जैसी हलकी और चन्दन की तरह महकने वाली वह स्त्री है ॥१॥

स्त्री ने एक हाथ में दीप और दूसरे हाथ में गंगाजल उठाया और अपने प्रियतम की अटारी पर जहाँ वे सो रहे थे चढ़ गयी ॥२॥

दीपक को तो उसने दीवट पर और गंगाजल को सिरहाने रख दिया।

आप सेज पर पति के पास बैठ गई। प्रियतम के साथ बातें करते और फुसलाने में कुछ समय बीत गया। जैसे ही राजा स्नेह जोड़ने पर उद्यत हुए वैसे ही मुर्गे ने बाँग दी ॥३॥

स्त्री ने कहा—इस मुर्गे को मैं डैना और पाँव तोड़कर मार डालूँगी। जब राजा स्नेह जोड़ने पर उद्यत होते हैं तब वह बोलने लगता है ॥४॥

मुर्गे ने कहा—अरी पगली स्त्री ! मुझे क्यों मारोगी ! मैं तो राजा का सेवक हूँ। मेरा आधी रात को बोल कर राजा को जगाना ही तो काम है ॥६॥

इसी गीत से मिलते जुलते भाव को लेकर प्रवीण राय ने शृंगार रस में कहा है:—

कूर कुर कुट कोटि कोठरी निवारि राखौं,
चून दै चिरैअन को मूदि राखौं थलियो ॥
सारँग में सारँग सुनाय के प्रवीण राय,
सारँग दै सारँग की जोति करौं मदियो ॥
बैठी परयक पै निसक ह्वै के अक भरौं,
करौंगी अधर पान मयन मत्त मिलियो ॥
मोहि मिले इन्द्रजीत धीरज नरिन्द्र राव,
एहो चन्द मद गति नेकु आजु चलियो ॥६॥

गीत और इस घनाचरी की तुलना करने पर पाठक देखेंगे कि पूर्व के गीत में यह शोखी यह उत्तेजना और यह उद्दीपन नहीं है। वहाँ गृह चर्य्या से थकी मोदी फूल सी हलकी और पान सी पतली गृहिणी का घर के सब कामों को समाप्त करके प्रणय के लिये प्रियतम के पास जाना और वहाँ जाकर प्रणय में विफल होना भर ही व्यक्त है। गीत में प्रणय मिलन के उद्दीपकों में केवल दीपक और गगाजल तथा अटारी का ही नाम आ सका है। इसके परे दिहाती जीवन में दूसरा लभ्य ही क्या होता है ? फिर वहाँ 'निसंक हो के अक भरौं' की बात की जगह पर 'कुछ घरी लागे बतिअवइत कुछ फुसिलवइत' ही भर कह कर हृदय की विवशता और लाचारी व्यक्त करना बहुत था। फिर यहाँ जब प्रवीण राय चन्द्र भगवान को भी डाटकर मन्द गति चलने का आदेश देती है, तो वहाँ

ग्रा मीण, पराश्रित, निर्बल, विपल मनोरथ प्रेमिका मुर्गे को मार डालने की धमकी तक ही दे सकने का साहस कर सकती है। पर उसके इस धमकी का जवाब भी मुर्गा दे डालने के लिये काफी सबल है। यहीं तक नहीं पति महाशय भी तो इन्द्रजीत के ऐसा सबल नहीं ज्ञात होते कि अपनी पतली, सुन्दरी, हलकी नायिका की काम तृष्णा को तृप्त कर सकें। उनको इस योग्य बनाने के लिये लज्जा शीला मूक नायिका को ही तो घड़ियों बातें करके फुसलाना पड़ता है पर तब भी मुर्गे की तुच्छ बोली ही उन्हें पुनः विमुख कर देने के लिये काफी सबल सिद्ध होती है। बेचारी ग्राम वधू की कितनी दयनीय दशा है कोई भी सुख उसे सुलभ नहीं।

(२७)

भल हऊ रानिहो कोसिला रानी किन बउरावल हो।
करउ रमइया जी के मूड़न उही सुख देखहु हो ॥१॥
घर घर फिरईं कोसिला रानी गोतिनी बोलावईं हो।
गोतिनी! हमारा मड़इया तरे आवउ रमइया जी के मूँड़न हो ॥२॥
गोतिया त अइलें अँगन भरि गोतिनी ओसार भरि हो।
एक नाहीं अइलीं केकइया मँड़उआ नाहीं सोहइ हो ॥३॥
दुअरा से उठे राजा दसरथ वेदिया प ठाढ भइले हो।
रानी! कवन वचन तुँहुं बोललू केकईया नाहीं अइलिनि हो? ॥४॥
पठवलि नउआ अरु बरिया अवरू दस बाभन हो।
राजा! पठइउँ मों तोहरे दसौंधी केकई नाही आवेली हो ॥५॥
सोने के खरँउआ राजा दसरथ केकई महल गइलें हो।
रानी! कवन गिरह जिउ मनेलू देखन नाहीं गइलू नु हो? ॥६॥
पवलीं मैं नउआ त वरिया अवरू दस बाभन हो।
रानी पठवेली अपन दसौंधी अपने नाहीं आवेली हो ॥७॥
कोप पलग रानी केकई डेवढ़ि राजा हाथ जोरईं हो।
रानी जवन मगन तुहूँ मागत्रि तवन हम देब्रइ हो ॥८॥

मागन त हम मगितीं मगहीं जो पइतीं नु हो।
राम लखन बनवा मखितीं भरत राजा। राजहिं हो ॥६॥
भँगन के तऊ मगलू भँगन नाहीं जानेलू हो।
मँगलू सकल राज पाट त बन कइसे माखेलू हो ॥१०॥
जे राम लछिमन दूनों आँखि के पुतरिया नु हो।
जइहइँ उहे बनवास जिअबि हम कइसे नु हो ॥११॥
लाली रे गइया के बछवा त भला मोरे के छीनइ हो।
एहि रे अवधपुर दसरथ भुआल पुकारेले हो ॥१२॥
सोने के खरउआ राम लछिमन माता के महल गइलें हो।
माता भरि मुख देहु असीस हम बन के सिधारबि हो ॥१३॥
जे राम लछुमन दुइ आखि के पुतरिया नु हो।
छिमियन परेला ठुसार मों कइसे कइसे के असीसउँ हो ॥१४॥

सखिया कहती हैं—हे कौशल्या रानी ! तुम मारे आनन्द के पागल हो गई तुम्हे किसने पागल बना दिया। अहो राम जी का मुंडन करो। उस सुख को भी देख लो ॥१॥

कौशल्या रानी ने घर घर घूमकर जेठानियों को बुलाया और कहा कि हे जेठानी हमारी मड़ैया में चलो ! राम जी का आज मुंडन है ॥२॥

गोत्र वाले आंगन भर में भर गये। जिठानियों की ओसारे में भीड़ लग गयी। परन्तु एक कैकेयी नहीं आई जिससे माँड़ों की शोभा नहीं हुई ॥३॥

राजा दशरथ द्वार पर से उठ कर वेदी पर आकर खड़े हुये। उन्होंने कौशल्या से पूछा हे रानी ! तुमने क्या बात की कि कैकेयी नहीं आई ? रानी कौशल्या ने उत्तर दिया—"हे राजन् मैंने नाई और बारी को भेजा और फिर कुलीन दश ब्राह्मणों को भेजा। उसके बाद आपके दसौंधी को भी भेजा परन्तु तब भी कैकयी नहीं आयीं ॥४॥

सोने की खड़ाऊँ पहने हुए राजा दशरथ कैकेयी के महल में गये। कैकेयी को पुकार कर उन्होंने कहा—"हे रानी ! किस बात की गिरह तुमने मन में बाँध रक्खी है कि आज राम की मुंडन देखने तुम नहीं गयीं। तेरे पास नाई और बारी

आये और दस ब्राह्मण भी आये। रानी ने अपना दसौंधी भी भेजा परन्तु तब भी तुम नहीं गयी" ? ॥७॥

कोप पलँग पर रानी कैकेयी पड़ी हुई है और दरवाजे पर राजा दशरथ हाथ जोड़कर खड़े खड़े विनती करते हैं। "हे रानी ! जो वर तुम माँगोगी वह मैं तुमको दूगा" ॥८॥

रानी ने कहा---"हे राजन् मांगने को तो मैं मांगती हूँ। पर डरती हूँ कहीं तुम अस्वीकार न कर दो"।

मैं राम लक्ष्मण को वन जाने और भरथ को राज्य पाने का वर आप से मांगती हूँ ॥९॥

राजा ने कहा—"अरी कैकेयी ! माँगने को तो तुमने वर माँगा परन्तु सच पूछो तो तुम माँगना नहीं जानती हो। तुम सपूर्ण राज पाट तो माँगती ही हो परन्तु राम और लक्ष्मण के बन जाने की बात का क्यों कहती हो ? राम और लक्ष्मण, तो दोनों मेरी आँखों की पुतलियाँ हैं। वे बनवास करने जायेंगे तो मैं कैसे जीवित रहूँगा ? ॥११॥

"अरे मेरे लाली नाम के बछड़े को कौन मुझसे छीन रहा है" अवधपुरी की गलियों में राजा दशरथ पागल सा बनकर पुकारने लगे ॥१२॥

सोने की खड़ाऊँ पहन कर राम और लक्ष्मण माता के महल में गये और बोले—"हे माँ ! प्रसन्न होकर हमें आशीश दो कि हम वन को जायँ"॥१३॥

कौशल्या ने कहा—"जो राम लक्ष्मण मेरी दोनों आँखों की पुतलियां हैं उनको वन जाने को आशीर्वाद भी मैं कैसे दूँ ? हाय ! मेरी पाली हुई लहलहाती खेती पर पाला पड़ गया" ॥१४॥

(२८)

चइत के तिथि नउमी त राम जग रोपइँ हो।
बिना रे सीता जग सून त के जग देखइँ हो ॥१॥
मचिअहिं बइठलि कोसिला रानी भितरा अरज करेइँ हो।
राजा ! तोहरे मनवले सीता मनिहें मनाइ लेइ आवहु हो ॥२॥
लछिमन ! सुन मोरे भइया बिपतिया के नायक हो।

तोहरे मनवले सीता मनिहें मनाइ लेइ आवहु हो ॥३॥
हमरे मनवले नाहीं मनिहें सीता नाहीं अइहुईं हो।
भइया ! भेजी न गुरुजी हमार मनाइ लेइ आवसु हो ॥४॥
अगवाँ के घोड़वा बसिठ मुनि पिछुवा के लछिमन हो।
हेरे लगलें रिखि के मड़इया जहाँ सीता तप करईं हो ॥५॥
अगना बहरइत चेरिया त बाभा के दसियवा नु हो।
सीता ! आवत गुरुजी तोहार त पाछें लछिमन देवरु नु हो ॥६॥
कचन अरती जे साजेली साजि सवारेली हो।
गुरुजी के अरती उतारि निहुरि पाँव लागेली हो ॥७॥
अतना अकिल सीता ! तोहरा त बुधिया के आगरि हो।
कवन हृदय दुःख मनलू अजोधिया तजि दिहलू हो ॥८॥
रउरो कहल गुरु ! करबों, परग दस चलबों, लवटि चलि अइबों हो।
गुरु ! ओही रे निठुरवा के मुहवाँ मों कइसे के देखबि हो ? ॥९॥
अगिया में लाइ राम दहलनि पनिओ नाहीं लवलनि हो।
अस केरा राम बियोगले सपनवों चित ना मिलिहइँ हो ॥१०॥

चैत की नौमी तिथि है। राम ने यज्ञ ठाना है। बिना सीता के यज्ञ सूना दीख रहा है। कौन यज्ञ देखने के लिये यज्ञशाला में जाय ? मचिया पर कौशल्या बैठी हैं। वह भीतर दशरथ से नम्र शब्दों में कह रही हैं—"हे राम ! तुम्हारे मनाने से सीता मान जाँयगी। जाओ उनको मनाकर ले आओ" ॥१२॥

राम ने लच्मण से कहा—"हे भाई लचमण ! तुम विपत्ति के नायक हो। तुम्हारे मनाने से सीता मानेगी तुम जाओ उनको मनाकर ले आओ"। लचमण ने उत्तर दिया—"मेरे मनाने से सीता नहीं मानेगी। वे नहीं आवेगी। हे भाई ! आप गुरु (वशिष्ठ जी) को भेज दीजिये, वे मना कर ले आवे" ॥३-४॥

घोड़े पर सवार होकर आगे आगे वशिष्ठ मुनि और पीछे पीछे लचमण ऋषि के आश्रम पर गये ॥५॥

आंगन बुहारने वाली चेरी ने कहा—"हे सीता रानी ! तुम्हारे गुरु वशिष्ठ और उनके पीछे देवर लचमण चले आ रहे हैं" ॥६॥

सीता ने सोने की थाल में आरती सजायी। फिर विविध प्रकार से सवाँर कर थाल ठीक किया। और तब उन्होंने गुरु को आरती उतार कर उन्हें झुककर दण्डवत किया ॥७॥

गुरु ने कहा—हे देवी तुम को इतनी समझ है और तुम इतनी बुद्धिमती भी हो कि मेरी आरती उतारती हो। पर तुम्हें क्या दुख हुआ कि तुमने अयोध्या को त्याग दिया ॥८॥

सीता ने कहा—हे गुरुजी ! मैं आपका कहना करूंगी। दस पग अयोध्या की ओर चलूंगी, पर फिर लौट कर वापिस चली आऊंगी। हे गुरु ! मैं उस निष्ठुर का मुख कैसे देख सकूंगी जिस ने अग्नि में डालकर मेरी परीक्षा की। उस पर पीने को थोड़ा पानी भी नहीं दिया ? हे गुरु ! इस तरह राम ने मुझे वियोग में जलाया है कि अब मेरा चित उनसे स्वप्न में भी नहीं मिलेगा ॥१०॥

(२९)

घिउआ क काढ़ेली सोहरिया त दूधवा क जाउरि कइली हो।
लिहेली आँचर तर ढाँकि रमइया हेरइ निकसेली हो ॥१॥
एक वन गइली दूसर वन तिसरी बइरि मिली हो।
बइरी ! एहि बाटे गइले मोरे राम त मोहि के बतावहु हो ॥२॥
बिलमाइ रखलों आपन पुरुष अस अपना गोतिनी अस हो।
रानी ! यहि बाटे गइले तोहार राम पगड़िया उनकर अरुझेले हो ॥३॥
बिलमाइ के रखलू अपना पुरुष अस अपना गोतिनी अस हो।
बइरी ! घबदन घवदन फरीहउ घवदवन पकिहउ हो ॥
बहिनी, हमके बतवलू हमरा लाल के जिअरा हुलसि उठल हो ॥४॥
एक वन गइली दूसर वन तिसरे चकइया मीलनि हो।
चकई ! एहि बाटे गइले मोरे राम त मोंग के बतावहु हो ? ॥५॥
बिहरत रहलों पुरुस सगे अपना चकवा संगे हो।
रानी ! मैं नाहीं देखलों तोहार राम त कइसे बतावहुँ हो ॥६॥
बिहरत रहलू अपना पूरुष सगे अपना चकवा सगे हो।
रतिया के होखिहन बिछोह जोड़ा तोरा फुटिहनि हो ॥७॥

एक बन गइली दूसर बन तीसरे धोबिन मिललि हो ।
धोबिन ! एहि बाटे गइले मोर राम त मोरा के बतावहु हो ? ॥८॥
सूतल रहलीं अपना पुरुस सगे अपना धोबिया सगे हो ।
रानी ! यही बाटे गइले तोहार राम पगड़िया उनकर धोअलीं हो ॥९॥
धोअत रहबू अपना पुरुस सगे अपना धोबिया सगे हो ।
तोहरा के देलीं जनम अहिवात जनम जुग सेनुर हो ॥१०॥

कौशल्या घी की पूड़ी और दूध की खीर पकाकर, अञ्चल के नीचे छिपाकर राम को ढूढ़ने निकलीं । वे एक वन में गयीं, फिर दूसरे वन को पार कर तीसरे वन में उन्हें बेर का वृक्ष मिला । उन्होंने उसको सम्बोधन करके पूछा "हे बेर ! यदि इस मार्ग से राम गये हों तो मुझे बताओ" ॥१ २॥

बेर के वृक्ष ने कहा—"हे रानी ! जब इस मार्ग से तुम्हारे राम जा रहे थे तो मैंने उनको आदि पुरुष परमेश्वर समझ कर उनकी पाग में उलझ कर उनको बिलमाना चाहा था" । ॥३॥

कौशल्या ने कहा, "हे बेर के वृक्ष तुम अपने मूल पुरुष को बिलमाते रहे इसलिये मेरा वरदान है कि घौद के घौद में फलते और पकते रहना । हे भाई तू ने मुझे मेरे भूले पुत्र का पता बताया उससे मेरा हृदय हर्षित हो उठा" ॥४॥

वहाँ से कौशल्या आगे के वन में गयीं । एक वन को पार करके दूसरे और तीसरे बन में उन्हें चकई चिड़िया मिली । उन्होंने उससे पूछा—"हे चकई ! यदि इस मार्ग से मेरे राम गये हों तो मुझे बताओ" ॥५॥

चकई ने तिरस्कृत स्वर में कहा—"हे रानी मैं अपने पुरुष चकवा के साथ विहार करती थी । मैंने तुम्हारे राम को नहीं देखा । क्या बताऊँ" ॥७॥

रानी ने शाप दिया । "हे चकई तुम अपने पुरुष के साथ विहार करती रही और राम को नहीं देख सकी तो तुम्हें रात को चकवा से विछोह हो जाया करेगा ! तेरी जोड़ी रात में टूट जाया करेगी" ॥७॥

वहाँ से कौशल्या फिर चलीं । एक वन के बाद जब दूसरे को पार करके तीसरे वन में पहुंची तो उन्हें धोबिन मिली उन्होंने उससे पूछा—'हे धोबिन ! मुझे बताओ। क्या इस मार्ग से राम अभी गये हैं ?" ॥८॥

धोबिन ने कहा, "हे रानी! मैं अपने पुरुष के साथ यहाँ कपड़ा धोती थी।
ी मार्ग से तुम्हारे राम मुझे मिले थे। मैंने उनकी पगड़ी धो दी थी ॥९॥

रानी ने कहा—हे धोबिन! तुमने अपने पुरुष के साथ राम का कपड़ा
ाया है इसलिये मैंने तुम्हे आजन्म सुहाग का वर दिया। तुम्हारा सिन्दूर जन्म
न्म युग युग अचल रहे ॥१०॥

(३०)

देवकी जे चलली असनान करे ओही रे जमुना दहे हों।
बहिनी! एहि रे जमुना धसि मरितों त जनम अकारथ भइले हो ॥१॥
बइठि बुझावेली जसोदा रानी सुनु बहिनी देवकी नु! हो।
बहिनी! करु वसुदेव के सेवा तोर जनम सवारथ होईहैं हो ॥२॥
पहिले पहर राति गइले सपन एक देखे ली हो।
हरिअर बाँस करिअवा दुआरे भीर लागल हो ॥३॥
दुसरे पहर राति गइले सपन एक देखेली हो।
ए बहिनी! कोर नदियवा में दहिआ झरोखवन धइल हो ॥४॥
तीसरा पहर राति गइले सपन एक देखेली हो।
बहिनी! पाकल पान पेटार सिरहनवन धइल हो ॥५॥
चउथे पहर राति गइले सपन एक देखेली हो।
साँवर बरन रघुनन्नन पलग पर पउढेले हो ॥
जे यह मगल गावे ला गाइ के सुनावेला हो।
से बैंकुण्ठहि जाला सदा सुख पावेला हो ॥

यमुना स्नान के लिए जाती हुई देवकी की यशोदा से भेंट हुई। देवकी ने कहा—"हे बहन! मैं इसी यमुना में डूब कर मर जाना चाहती हूँ। मेरा जीवन सन्तान के बिना निष्फल हो रहा है" ॥१॥

यशोदा रानी बैठ कर देवकी को समझाने लगीं—"हे बहन देवकी! तुम वासुदेव (पीपल वृक्ष) की सेवा करो। तुमको सन्तान होगी और तब तुम्हारा स्त्री जन्म लेना सफल हो जायगा" ॥२॥

देवकी ने रात्रि के पहले पहर मे स्वप्न देखा कि काला हरा बाँस सामने

है और दरवाजे पर बड़ी भीड़ लगी है ॥५॥

उसने दूसरे पहर रात बीतने पर दूसरा स्वप्न देखा कि नये पात्र में दही झरोखा पर रखा हुआ है। रात के तीसरे पहर उसको यह स्वप्न हुआ कि डंठल लगा हुआ पका पान उसके सिरहाने रखा हुआ है। फिर उसी तरह चौथे पहर रात में उसने सपना देखा कि सांवले रङ्ग का बालक उसके पलग पर लेटा हुआ है ॥६॥

जो यह मगल गावेगा और गाकर दूसरों के सुनावेगा वह वैकुंठ जायगा और सदा सुख पायेगा ॥७॥

(३१)

गिरिहि से निकसीं जसोदा त सुभदिन सावन हो।
ए ललना, जमुना के निरमल नीर कलस भरि लावेली हो ॥१॥
काहे के घइलवा, कवन सुत डोरी नु हो।
ए ललना, कवन सखी पनिया के जाय त सत जस सधतिहुरे ॥२॥
केहू सखि जल भरे केहू सखि मुह धोवे हो।
ए ललना, केहू सखि जात निहारे तिरिअवा एक रोअति हो ॥३॥
ना देखीं नइया नाहीं बेड़वा तीरे घटवार भइआ हो।
रे ललना, केइ बीखे उतरबि पार तिरिअवा जाइ बोधबि हो ॥४॥
अँचरा लपेटली,फुफुती काछा बॅन्हली सखि सभ दह बिचकूली हो।
ए ललना, छाती तरे घइला ओठघाँइ जमुन दह पार भइली हो ॥५॥
ए ललना, किया तोरे सासु ननद दुख नइहर दूर बसे हो।
ए तिरिया! किया तोरा कंत बिदेस कवन दुखवे रोवेलू हो ॥६॥
ना मोरा सासु ननद दुख नइहर दूर बसे हो।
ए ललना, ना मोरे कंत बिदेस कोखिए दुख रोईला हो ॥७॥
सात पुतर राम दिहले सकल कंस हरि लिहलसि हो।
ए ललना, अठवें गरभ अवतार तेकरो आस नाहीं नु हो ॥८॥
दीदी! चुप रहु चुप रहु देवकी हमहि काम आइबि हो।
ए ललना, आपन बालक मैं बेचबि तोरा के जुड़ाइबि हो ॥९॥

नूनवा उधार तेल पाँइच अवरू तेल पाँइच हो।
ए ललना, कोखिया क कइसन पाँइच कइसे घिरिज़ घरों हो ॥१०॥
सखि! विनवहु घर के त देवता उहे सभ भार हरिहैं हो।
सखि! चाद सुरुज सब अवरू गगा माता विनवहु हो ॥११॥

श्रावण के शुभ दिन में घर से यशोदा बाहर निकलीं और यमुना का निर्मल जल भर लायीं ॥१॥

यशोदा ने किस कारण से घड़ा भरा और घड़ा भरते समय किस सूत की बनी हुई डोरी का प्रयोग किया यह कोई बतावे तो? अरे—वह कौन ऐसी सौभाग्यवती स्त्री होगी जो इस तरह यशोदा के समान पानी भरने जायगी और सत्य रूपी यश का भागी बनेगी? ॥२॥

कोई सखी जल भर रही है और कोई सखी मुह धो रही है। कोई चलते चलते किसी रोती हुई स्त्री को एकटक देख रही है ॥३॥

किसी सखी ने कहा—"अरे! यहाँ घाट पर मैं नाव नहीं देखती हूँ हे घटवार भाई! यहाँ कोई अपना पराया भी नहीं दीखता है। अरे! मैं किस चीज़ से पार उतरूँ और कैसे उस रोती हुई स्त्री को जाकर समझाऊँ" ॥४॥

उस स्त्री ने अपने अग के वस्त्रों को समेट कर कछोटा बाँधा और छाती के नीचे घड़ा रखकर उसके सहारे तैर कर यमुना पार किया ॥५॥

वहाँ उसने उस रोती हुई स्त्री से पूछा—"हे सखी! तुझे तेरे सास और ननद का दुख है या तेरा मायका दूर बसता है या तेरा स्वामी विदेश में है बताओ तो किस दुख के कारण तुम रो रही हो"? ॥६॥

स्त्री ने उत्तर दिया—"मुझे न सास का दुःख है, न ननद का, और न मेरे स्वामी ही विदेश में है। न मेरा मायका बहुत दूर है कि जिसके कारण मैं रो रही हूँ। हे बहन! मैं यहाँ केवल सन्तान के दुख से रो रही हूँ। ईश्वर ने मुझे सात पुत्र दिये। कस ने सब का नाश किया। अब आठवें गर्भ का अवतार है। पर इसके बचने का भी मुझे भरोसा नहीं होता" ॥७,८॥

स्त्री ने कहा—"हे देवकी! तुम चुप रहो। मैं तेरे काम आऊँगी। मैं अपना बालक देकर तुमको सुखी करूँगी" ॥९॥

देवकी ने कहा—"अरे नमक और तेल का उधार होता है। यह सन्तान के उधार पौंइच की कैसी बात सुनती हूँ। मुझे समझ में नहीं आता हाय! मैं किस तरह से धैर्य धारण करूँ"? ॥१०॥

स्त्री ने कहा—"हे सखी! मैं गृह देवकी तथा सब देवताओं और धर्म की—चन्द्रमा, सूर्य्य और गंगा माता की भी शाक्षी देकर कहती हूँ कि हमारी तुम्हारी यह प्रतिज्ञा निश्चित रूप से सच होगी। मैं लाख दैत्यों का बध करूँगी। कंस को जलाकर राख कर दूँगी और तुमको सुख पहुँचाऊँगी" ॥११,१२॥

(३२)

जनमेलों दुख केरा राति, परलों भव सागर हो।
ललना, सुति गइलों भरम भुलाइ, कुमति कइ आगर हो ॥१॥
सतगुरु दिहलनि जगाइ, उठलों अकुलाइ केरा हो।
ललना, टूटि गइले भरम क फंद, परम सुख पावल हो ॥२॥
पिया केरा दिहलनि मिलाइ पिया अपनवलनि हो।
ललना, आपन चेरिया बनाइ, परम पद दिहलनि हो ॥३॥
सत सुकीरित कइ घइलवा, परेम केरा लेजुर हो।
ललना, पनियाँ भरऊँ झक झोरि माग भरि सेनुर हो ॥४॥
सासु मोरा सुते गजोबरि, ननदि मोरा आँगन हो।
ललना, हम धनीं सुतीं घवरहर, पिया सगे जागन हो ॥५॥
झिरिहिरि बहे ली बयारि, अमिय रस ढरकइँ हो।
ललना, ओरमे नवरँगिया क डारि, चँनन गाछ गमकइ हो ॥६॥
तेहि चढि बोले मोरा हँसा, सबद सुनि के बाउर हो।
ललना, मगल पलटू गावे ले, जगवा से नाउर हो ॥७॥

(३३)

आरे आरे सुरति सोहागिन, पइयाँ तोरा लागउँ हो।
ललना, रूठल कत मनावहु, इहे बर मागउँ हो ॥१॥
तोहरे मनवले ए सुरति देई, जहँु पिया अइहइँ हो।
ललना, उजरल नगर बसइबू, मांके जुड़वइ नु हो ॥२॥

गजमोति चउक पुरावहुँ कलस भरावहुँ हो ।
ललना, उच्चवें अइ बइठावहुँ, पियवा जो पावहुँ हो ॥३॥
तू जनि मोहि अगुतावहु, नरक जनि लावहु हो ।
ललना, कत से तोरा के मिलावहुँ, त सुरति कहावहुँ हो ॥४॥
बरहें बरिस पर पिया मोरा अइले, त हमे गोहरावहि हो ।
ललना, गगना केवारी खोलावेले, हमके मनावे ले हो ॥५॥
पलटू दास भरम सब भागेले, चित अनुरागे ले हो ।
ललना, मन वाञ्छित फल पावेले, त वेरि नाहिं लागेले हो ॥६॥

(३४)

जेकरे अँगना नवरँगिया, सेत कइसे सूतइ हो ।
लहर लहर बहु होय, सबद सुनि रोवइ हो ॥१॥
जेकर पिया परदेस, नींदरि नाहीं आवइ हो ।
चउँकि चउँकि उठे जागि, सेजरिया नाहीं भावइ हो ॥२॥
रयन दिवस मारे बान, पपीहरा बोलइ हो ।
पिया पिया लावइ सोर, सवति होइ डोलइ हो ॥३॥
बिरहिनि रहेली अकेल, त कइसे केरा जीवइ हो ।
जेकरे अमिय कइ चाह, जहर कइसे पीवइ हो ॥४॥
अभरन देहुँ बहाय, बसन धइ फारउँ हो ।
पिया बिना कवन सिंगार, सीस देइ मारउँ हो ॥५॥
भूख न लागइ नींद, बिरह हिया हरकइ हो ।
मँगिया सेनुर मसि पोछउँ, नयन जल ढुरकइ हो ॥६॥
कापर करऊँ सिंगार, त काके दिखलावउँ हो ।
जेकर पिया परदेस, से काके रिझावइ हो ॥७॥
रहेली चरन चित लाइ, सोवे भन आगर हो ।
पलटु दास कइ सबद, बिरह केरा सागर हो ॥८॥

करुण रस

जँतसार

१

जँतसार गीत जाँत पीसते समय गाया जाता है। दिन रात की गृह-चर्य्या से फ़ुरसत पाकर जब बीती रात या देव बेला [ब्रह्म मूहूर्त] में स्त्रियाँ जाँत पर आटा पीसने बैठती हैं तब वे अपनी मनोव्यथा मानो गाकर ही भुलाना चाहती हैं। इसी से जँतसार में स्त्री जीवन की सारी वेदनायें, सारी यातनायें जो गृहस्थी में उन्हें भोगनी पड़ती हैं वर्णित हैं। मैथिली शरण जी ने भी कहा है:—

गीत गाने बैठतीं या दुख भुलाने बैठतीं।

बोअलीं मों गोहुवाँ ऊपजि गइली अँकरी,
मेड़वा बइठल प्रभु झखेले की।
जनि प्रभु झखहु जनि प्रभु झुरवहु, अँकरी बदलि गोहुवाँ पीसबि रे की ॥१॥
पिसत कुटत मोरा धनि दुबरइली, कहतू त चेरिया लेअइतों रे की ॥२॥
चेरिया त आने गइले सवति ले अइले, सवति बिरहिया कइसे सहबि रे की ॥३॥
पुरिया पकइह ए गोतिनी जउरी जे रिन्हिह, परत परत महुरा लगइहु रे की ॥४॥
एक छिपा खइली सवत दुइ छिपा खइली, अँचवे के बेरिया कपरा घुमरल रे की ॥५॥
जऊँ तोरा बहुआ रे घुमरेला कपरा, सुति रहु प्रभु धवरहर रे की ॥६॥
हर जोति अइलें कुदारी झामि अइले ओरि तर बइठे मनवा मारि रे की ॥७॥
सभ केहुके देखे लों अँगना से घरवा में, पुरुबी बगालिन नाहीं लऊके ले रे की ॥८॥
तोहरी बहुअवा बबुआ गरभी गुमनिया, सुतल बाड़ी धवरहर रे की ॥९॥
एक पैना मरले दुसर पैना मरले, पुरुबी बगालिनि नाहीं बोले ली रे की ॥१०॥

मैंने गेहूँ बोआ था परन्तु तमाम अँकरी (अन्न विशेष जिसकी घास की श्रेणी में गणना है) उपज आयी। इस दुःख के मारे मेंड़ पर बैठे हुए मेरे स्वामी चिन्ता कर रहे हैं ॥१॥

स्त्री ने ढाढ़स बँधाते हुए कहा—"हे स्वामी! चिन्ता न करो। मैं अँकरी को बदल कर ही गेहूँ की रोटी बनाऊंगी और तुम्हें खिलाऊँगी" ॥२॥

पति ने कहा—"हाय कूटते पीसते मेरी स्त्री दुबली हो गयी। हे प्यारी! कहो तो मैं तुम्हारे लिये एक चेरी लाऊं" ॥२॥

स्त्री ने कहा—'मेरे स्वामी मेरे लिये दासी लाने के लिये तो गये पर ले आये सवत। हा! अब मैं सौत द्वारा दिये गये इस विरह को कैसे सहन करूंगी" ॥३॥

उसकी गोतिनी ने समझा कर सलाह दी—"हे गोतिनी! तुम जाउर, (खीर) और पूरी पकाना और उसके हर तह में विष लगा देना"। स्त्री ने ऐसा ही किया उसकी सौत ने एक थाल खाया, फिर दूसरा भी खा डाला। उठकर हाथ धोने के समय उसका सर घूमने लगा ॥४॥

स्त्री ने कहा—"री बहू! यदि तुम्हारा सर दर्द कर रहा है तो स्वामी के धौरहरे पर जाकर सो रहो दर्द अच्छा हो जायगा" ॥६॥

स्वामी हल जोत कर और कुदाल चला कर जब खेत से घर लौटकर आया तो ओरी के नीचे मन मार करके बैठ रहा ॥७॥

उसने कहा—"सब किसी को तो आँगन और घर में देखता हूँ परन्तु वह पूर्व देश की बंगालिन नहीं नजर आती" ॥२॥

जेठानी ने उत्तर दिया—"हे! बाबू तुम्हारी नई बहू गर्व और गुमान में माती हुई है। वह धौरहरे पर सो रही है" ॥६॥

क्रोध में आकर वह धौरहरे पर चढ़ गया और पूर्व देश की बंगालिन को एक पैना (बैल हाँकने का डेढ़ हाथ लम्बा बाँस का पतला डंडा) मारा। तब भी जब वह नहीं उठी तो दूसरा पैना मारा। परन्तु बंगालिन मर चुकी थी बोले तो कौन बोले ॥१०॥

२

सासु मोर चलली रे गगवा नहाये रे ना,
ए राम सिकिए छिहुलवे चिन्हवा दिहली हो राम ॥१॥
ए राम घरवा लिपत चिन्हवा मेटल रे की।
सासु मोर अइली रे गगवा नहाइ के नुरे राम।
कवन रसिया चिन्हवा मेटवलसि हो राम ॥२॥
मोरा पिछुवरवा हजमा भइया हीतिवा ना
ए राम गोविन आगा खबरि जनावहु रे की ॥३॥
भरली कचहरिया गोविन करहु बरखसिया हो राम—
ए गोबिन ! तोरि मइया ठानेली किरिअवाहु रेना ॥४॥
उहवा से गोबिना रे घरवा चलि अहले रे ना—
ए आमा ! कब कब दुखवा तोहरा अवहेला हो राम ॥५॥
गोविना ! तोरि धनि चिन्हवा मेटवली हो राम।
मोर पिछु वरवा सोनार भैया हितवा रे ना।
भैया ! धनी जोगे गढ ना गहनवा हो राम ॥६॥
मोर पिछुवरवा रगरेज भैया हितवा रे ना।
भैया ! धनी जोगे रंग ना चुनरिया हो राम ॥७॥
मोर पिछुवरवा कँहार भैया हितवा रे ना।
भैया ! धनी जोगे डडिया फनावहु रे ना ॥८॥
मचिया बइठलि तुहुँ धनिया बढइतिन हो ना।
धनिया ! तोरे नइहर भइआ के विअहवा रे ना ॥९॥
मोरा नइहइवा राजा भइया के विअहवा रे ना।
ए राजा ! भैया मोरे अहते लिआवन हो ना ॥१०॥
दुअरे अइलनि धनि दुअरे से गइलनि रे ना—
तोहरा से मेटवा ना कइलनि रे की ॥११॥
ओढि पहिरि धनिया ठाढ भइलि अगना हो राम।
राम जस धनिया लागे गवनहरि रे ना ॥१२॥

एक वन गइले दूसर वन गइले रे ना—
राम-तिसरा बनवा ड़ड़िया बिलमावे हो राम ॥१३॥
ढिलवा जे परले धनि तोरि लामी केसिया।
हमरी जे केसिया राजा! ढिलवा जे पर ले हो ना
राजा! आमा मोरी हेरीहनि भउजी मोरी बन्हि हनि हो राम ॥१४॥
अतना वचन राजा सुनही ना पवलनि हो राम।
रामा काढि के कटरिया जिअरा मरलनि हो राम ॥१५॥
एक ओर गिरेला धनिया के मुड़िया हो, राम।
एक ओरिया बबुआ जदुननन हो ना ॥१६॥
फांडे बान्हि लिहले रे धनी के गहनवा रे ना,
ए राम कान्हे पारी ले ले जदुननन हो राम ॥१७॥
जऊ हम जनिती धनिया असापित हो राम,
राम अइसन मयरिया मोगल वेचितों हो राम ॥१८॥
गलियन गलियन गोविन फेरिया लगवले हो राम—
राम तनि एक दुधवा पिआवहु हो राम ॥१९॥
घरमें से निकसलि बबुई चमइनिया रे ना,
ए राम बबुआ के मइआ का भइली हो राम ॥२०॥
बबुआ के मइआ चमइन मरि हरि गइली हो राम—
ए राम रचि एक दुधवा पिआवहु हो राम ॥२१॥

मेरी सास जब गगा स्नान को गई तब वह सींक से रेख खींच गई कि इससे बाहर मत जाना। घर लीपते समय मुझसे चिन्ह मिट गया। सास गंगा स्नान करके जब लौटी तो कहने लगी—"अरे! किस रसिक ने इस चिन्ह को मिटाया है?" ॥१-२॥

मकान के पिछवारे नाई मेरा शुभ चिन्तक रहता है। अरे भाई नाई! गोविन्द के पास यह सम्वाद जाकर सुनाओ ॥३॥

नाई गोविन्द के निकट गया और कहा—हे गोविन्द भरी सभा बरखास्त करो। तुम्हारी मा तुम्हारी स्त्री से सौगंध ले रही है ॥४॥

गोबिन्द ने अपने घर आकर माता से पूछा—माँ ! तुम्हें कौन दुःख
माता ने कहा—हे ! गोबिद । तुम्हारी स्त्री ने मेरी अनुपस्थिति में मेरी
हुई रेखा को मिटाया है । गोबिंद ने कहा—मेरे पिछवाड़े मेरा मित्र र
रहता है । उससे स्त्री के योग्य गहना बना देने को कहो और रगरे
सुन्दर चूँनर रगने का आदेश दो ॥५,६,७॥

मेरे पिछवाड़े कँहार बसता है । अरे भाई ! तुम मेरी स्त्री के योग
पालकी तैयार करके लाओ ॥८॥

इतना प्रबन्ध करके पति स्त्री के पास गया और कहा—"हे धनि
घर में सम्मानित हो । तुम्हारे मायके में तुम्हारे भाई का विवाह है" ॥९॥

स्त्री ने कहा—हे राजा ! यदि मेरे मायके में मेरे भाई का विवाह
तो मेरा भाई अवश्य मुझे लिवाने यहाँ आता ॥१०॥

पति ने कहा—"वह आया था । पर बाहर ही आया और बाहर
वापिस भी गया । तुमसे उसने भेंट नहीं की" ॥११॥

स्त्री कपड़ा लत्ता पहन कर आगन में इस प्रकार खड़ी हुई मानं
गवन जाने वाली सुसज्जित वधू हो ॥१२॥

वह एक वन में गई । दूसरा वन पार हुआ । तीसरे वन में गोवि
पालकी खड़ी करायी ॥१३॥

कहा—तेरे बाल में बहुत से जूँ भरे हैं । (आओ मैं उन्हें सा
दूँ) ! स्त्री ने कहा—हे राजा ! हमारे केस में ढील अधिक हैं त
माता उन्हें खोजकर निकाल देगी । भाभी केस बाध देगी । (यहाँ केस र
की क्या आवश्यकता है ?) । इतनी बात सुनते ही राजा ने कटार नि
कर स्त्री को मार डाला ॥१४,१५॥

एक तरफ स्त्री का मस्तक गिरा और दूसरी ओर उसे पुत्र उत्पन्न हु
पति ने (दुखित होकर) स्त्री के गहने उतार कर फाँड़ (धोती का अग्र भा
बांधे और कंधे पर नवजात संतान को सुला कर रोकर कहा—हा ! य
जानता कि मेरी स्त्री गर्भवती है और इस तरह निर्दोष है तो मैं अपनी (
लांछन लगाने वाली) ऐसी माता को मुग़ल के हाथ बेच डालता ॥१६-१७॥

वह नवजात सन्तान को कंधे पर सुलाये हुए गली गली फिर कर सभी से प्रार्थना करने लगा कि मेरे बालक को दूध पिला दो ॥१६॥

तमाम घूमने के बाद अंत में अपने घर से एक चमाइन निकली और बच्चे को लेकर बोली अरे इस पुत्र की मा क्या हुई ? गोविंद ने कहा—हे चमाइन ! पुत्र की माता मर कर मुझ से छिन गई। अब तू इसे ईश्वर के नाम पर थोड़ा दूध पिला दे ॥२०-२१॥

यह गीत कितना दुखान्त है। माता की झूठी शिकायत करने पर पुत्र अपनी गर्भवती पत्नी को धोखे से वन में लेजाकर मार डालता है, पर निर्दोष स्त्री खड्ग प्रहार के साथ ही पुत्र प्रसव करती है। अवश्य ही किसी सत्य घटना के आधार पर यह गीत बनी होगी।

(३)

मचिया बइठलि "टिकुली" झारे लामी केसिया हो ना।
राम परी गइली इन्दरसिंह नजरिया हो राम ॥१॥
मचीया बइठल तुहूँ आमा हो बढ़इतिनि हो ना।
आमा केकरी तिरियवा झारे केसिया हो राम ॥२॥
आगि लागो बबुआ ! तोहरा अकिलिया हो ना।
बबुआ ! अपनी भवहिआ नाहीं चिन्हल हो राम ॥३॥
होत पराते ससुर डुगिया पिटवलनि हो ना।
रामा छोटे बड़ चलन अहेरिया हो राम ॥४॥
हमरो जे धोतिया भइया ! धोबिया घरवा बाड़ी हो ना।
भैया ! हम कइसे चलवों अहेरिया हो राम ॥५॥
हमरा पनहिया भइया ! चमरा घरवा बाड़ी हो ना।
भइया ! हम कइसे चलवों अहेरिया हो राम ॥६॥
लेहुन बबुआ हो ! हमरी पनहिआ रे ना।
बबुआ चलि चल तुहूँत अहेरिया हो राम ॥७॥
एक वने गइले दूसरे वनवा गइलें हो ना।
रामा तिसरे वनवा ठाने लें लड़इया हो राम ॥८॥

ऊँचवे लड़वलें भसुर नीचवें गिरवलें हो ना ।
राम चनन बिरिछवाँ ओठघवले हो राम ॥९॥
सभ दिन भसुर जेवें अँगना से घरवा हो ना ।
राम आजु भसुर जेवेलें डुड़ुहिया हो राम ॥१०॥
कथिए भीजेलि भसुर ! गोड़वा के पनहिया रे ना ।
भसुर ! कथिए भीजेलि ढालि तरुवरिया हो राम ॥११॥
सितिए भीजलि भवह ! गोडवा के पनहिया रे ना
ए भवह ! सितिये भीजेलि ढालि तरवरिया हो राम ॥१२॥
घरि राति गइली पहर राति गइली रे ना,
राम मुड़के ले सोबरन केवड़िया हो राम ॥१३॥
किआ तुहूँ कुकुरा बिलरिया रे ना,
ए राम किआ तू नगरवा केरा लोगवा हो राम ॥१४॥
नाहीं हम हईं 'टिकुली' ! कुकुरा बिलरिया रे ना,
ए 'टिकुली' ! नाहीं हईं नगर के लोगवा हो राम ॥१५॥
राम हम हईं इन्दर सिंह भसुरवा हो राम ।
तोहरा के छोड़ि भसुर आनक ना होइबों रे ना ॥
ए राम प्रभुजी के मुहवा देखाव हो राम ॥१६॥
सभ कर घोड़वा रे बहरा से दुअरा रे ना ?
राम प्रभुजी के घोड़वा काहे बिसमादल हो राम ॥१७॥
कहवाँ मरल भसुर ! कहवाँ गिरवल रे ना,
राम कवने बिरिछ ओठघँवल हो ना ? ॥१८॥
उचँवे लड़वलीं भवह ! नीचवे गिरवलीं हो ना,
ए भवह ! चन्नन बिरिछ ओठघवलीं हो राम ॥१९॥
एक बन गइली डोली दूसर बनवाँ गइली रे ना,
राम तीसर बने चिल्हिया मेड़रइलीं हो राम ॥२०॥
जब लगि भसूर ! बिनों इन्हना लकड़िया रे ना,
[illegible]

जबलगि भसुर अगिया आने गइलनि रे ना,
राम फुफुतिनि अगिया धधकवली हो राम ॥२२॥
राम दूनो रे बेकति जरि छुरावा भइलें होना,
जहूँ हम जनती "टिकुली" मोरि बुधि छरबू रे ना ॥
ए राम डड़िया रे पइसि सतवा नसीती हो राम ॥२३॥

टिकुली मचिया पर बैठी हुई अपने लम्बे लम्बे केश झार रही थी कि इतने में इन्द्रसिंह की नजर उस पर पड़ गई ॥१॥

इन्द्रसिंह ने अपनी मा के पास जाकर पूछा—"हे मचिया पर बैठी हुई मेरी पुरुखिनि मा ! यह स्त्री जो बार झार रही है किसकी स्त्री है ?॥२॥

माता ने कहा—"हे पुत्र ! तुम्हारी समझ में आग लगे । तुम अपनी ही भवह को नहीं पहचानते" ?॥३॥

दूसरे दिन प्रातः काल होते ही भसुर ने डुग्गी पिटवाकर गाव में मुनादी करवायी कि छोटे बडे सब शिकार खेलने चलें ॥४॥

छोटे भाई ने कहा—"हे भाई ! मेरी धोती तो धोबी के घर है । मै अहेर खेलने कैसे जा सकता हूँ ? मेरा जूता चमार के यहाँ बन रहा है मै कैसे शिकार खेलने चल सकता हूं" ?॥५-६॥

बडे भाई ने कहा—"हे भाई ! तुम मेरा जूता और मेरी धोती ले लो । शिकार खेलने चलो" ॥७॥

दोनों भाई एक वन में गये । फिर दूसरे वन मे पहुँचे । अन्त में तीसरे वन में इन्द्रसिंह ने लड़ाई ठान दी । ऊँची पहाड़ी पर लड़ाई हुई और नीची पहाड़ी पर उन्होंने छोटे भाई को नीचे गिराया अर्थात् मार डाला और लाश को चन्दन के वृक्ष के सहारे खड़ी कर दी ॥८,९॥

(टिकुली सोच रही हैं) ससुर तो सदा घर और आँगन मे जेवनार करते थे परन्तु आज वे डुड़ही (रसोई से सटी जगह) पर जेवनार करने बैठे है सो क्यों ॥१०॥

टिकुली ने सब समझ कर पूछा—'हे भसुर जी ! आपके पाँव का जूता किस तरह भीग गया और किस चीज से यह ढाल और तलवार भी भीग गई

है ॥११,१२॥

एक घरी रात बीती। पहर रात चली गई ('टिकुली' के घरके स्वर्ण किवाड़ को किसी ने भड़काना शुरू किया। टिकुली ने पूछा—"अरे तुम कौन हो? कुत्ता बिल्ली हो या शहर का कोई बदमाश? ॥१३,१४॥

(बाहर से आवाज आई) "मैं कुत्ता बिल्ली नहीं हूँ! न शहर का कोई बदमाश ही हूँ। हे टिकुली! मैं तुम्हारा भसुर इन्द्रसिंह हूँ। दरवाजा खोलो।" टिकुली ने कहा—'हे भसुर जी मैं आपको छोड़कर दूसरे की नहीं बनूँगी। मुझे मेरे प्रभु जी का मुख एक बार दिखला दीजिये। सब के घोड़े तो स्वाभाविक रूप में बाहर भीतर हो रहे हैं। मेरे प्रभु का घोड़ा क्यों दुखी दिखाई पड़ता है। हे भसुर जी। आपने उनको कहाँ मारा और कहाँ गिराया और किस वृक्ष के नीचे उनके शव को रख दिया है?॥१५ १८॥

भसुर ने कहा—"री भवह! मैंने उसे ऊँची पहाड़ी पर तो लड़ाया और नीची पहाड़ी पर गिरा दिया और हे भवह! उसके शव को मैंने चन्दन वृक्ष से टेक लगा दिया है ॥१९॥

भवह की डाँडी एक वन को गई। फिर दूसरे वन को उसने पार किया। फिर जब तीसरे वन में पहुँची तो वहाँ (लाश पर) चील्ह मँड़रा रहीं थीं ॥२०॥

टिकुली ने भसुर से कहा—"हे भसुर! मैं जब तक यहाँ (दाह सस्कार के लिये) लकड़ी चुनकर इकट्ठी करती हूँ तब तक आप आग जाकर ले आइए" ॥२१॥

उधर भसुर आग लाने गया। और इधर टिकुली की फुफती (साड़ी का चूननदार वह भाग जो उदर पर रहता है) से आग धधक उठी और पति पत्नी जलकर स्वाहा होगये ॥२२॥

इन्द्रसिंह जब लौट कर आया तो उसने हाथ मलकर कहा—"अरी टिकुली! यदि मैं जानता कि तुम इस तरह मेरी बुद्धि छल लोगी तो मैं पालकी में ही पैठ कर तुम्हारा सतीत्व नष्ट कर देता ॥२३॥

नराधम इन्द्रसिंह की मनोवृत्ति को अंतिम चरण में देख कर किस

मनुष्य को उस पर क्रोध नहीं आयगा। यह गीत किसी सत्य घटना के आधार पर ही रचा गया है। आज भी ऐसे नर पिशाच हैं जो ऐसे कृत्यों के अपराधी पाये जाते हैं। परन्तु यह गीत स्त्री चरित्र को उज्ज्वल और पवित्र बनाने में कितनी सदियों से सहायक सिद्ध होता रहा है यह ठीक ठीक कौन कह सकता है? पुरुष ऐसी उपदेशतात्मक चीजों को स्मरण रखने में सदा उदासीन देखा गया है। पर स्त्री खासकर हमारे भारतवर्ष की स्त्री ने तो इन निधिओं को शताब्दियों से चुरा कर अपने कण्ठ में छिपा रखा है और मूक बनी हुई पुरुषों के अनेक अत्याचारों को निरन्तर सहनकर इनसे स्वय लाभ उठाया है। उनके लिए शास्त्र, पुराण, ज्ञान, और धर्म सब के द्वार सदा से तो बन्द ही थे। जो कुछ उनके पास उपदेश योग वस्तुएँ थीं वे यह गीत थे जिन पर ही उनकी आस्था थी, विश्वास था, और थी अटूट अन्धभक्ति। आज भी है उन्हीं के सहारे तो उनका जीवन निर्वाह होता है।

(४)

तुहुँ त जइब ए राम जी! ओही मधुबनवा,
हमरा के काइ सँऊपबि ए रामजी!—काई सऊँपबि ए रामजी! ॥१॥
तोहरा के सँऊपबि ए सीता जी! अन्न धन लछीमी।
तोहरा के सँऊपबि ए सीता जी! बूढ़ि महतरिया।
तोहरा के सँऊपबि ए सीता जी! भागीरथि भएनवा ॥२॥
अन्न धन लछीमी ए राम जी! सभे उड़ि जइहें।
बूढ़ि महतरिया ए रामजी! उहो मरि जइहें ॥
भागीरथि भएनवा ए रामजी! उहो घरे जइहें ॥३॥
हमहूँ जे चलबों ए राम जी! रउआ सगे सथवा।
भूखिया जे लगीहें ए रामजी! जेवना बनइबों ॥४॥
पिअसिया जे लगिहें ए रामजी! जलवा पिअइबों।
नींदिया जे लगिहें ए रामजी! सेजिया डसइबों ॥५॥
पएर पिरइहें ए रामजी! गोड़वा दबईबों।
हमहुँ जे चलबों ए रामजी! रउरा सगे सथवा ॥६॥

सीता कहती हैं—हे राम जी ! आप तो स्वय मधुवन जाइयेगा। किन्तु मेरा सहारा क्या होगा ? मुझे भी लेते चलें ॥१॥

राम ने कहा—हे प्यारी ! तुमको मैं अन्न धन और लक्ष्मी सब सौंप दूँगा और हमारी वृद्धा माता की देख रेख भी तुम्हारे जिम्मे रहेगी। और फिर तुमको ही अपना भगीरथ भाञा भी सौंप दूँगा ॥२॥

सीता ने कहा—हे प्रभु ! अन्न, धन और लक्ष्मी ये सब उड़ जायँगी। आपकी वृद्धा माता भी मर जायँगी। भगीरथ भाञा भी अपने घर चला जायगा। ॥३॥

हे प्रभु ! (मैं अनाथ हो जाऊँगी)। इसलिये मैं भी आपही के साथ चलूँगी। जब आपको भूख लगेगी तो जेवनार बनाऊँगी, प्यास लगेगी तो पानी पिलाऊँगी, नींद लगेगी तो सेज बिछाऊँगी। और प्रभु जी जब आप के पाँव दुखेंगे मैं दबाऊँगी ! मैं भी आप के सग में चलूँगी ॥४,६॥

(५)

जिन राम अँखियों न उतरसु पलक न बिसरसु हो राम—
तिन्हि राम गइले मधुबनवा ए राम ॥१॥
कथी केरा करों मैं कोर रे कगजवा नू ए राम ॥
कथिए करों मसिहनिया ए राम।
केकरा के बदवों कएथवा नू ए राम ॥२॥
आँचर फारि फारि करिहे कोर कगजवा नू ए राम।
नयन कजरवा मसिहनिया नू ए राम ॥
देवरा के बदीहे कयथवा नू ए राम।
चिठिया जे लिखीहे समुझाइके नू ए राम ॥३॥
मोरा पिछुवरवा हजमा भइया हितवा नू ए राम।
एकहिं चिठिया पहुँचाई देहु ना ए राम ॥
एकलि चिठी राम हाथे दीह नू ए राम ॥४॥
चारु चौखड के पोखरवा त राम दतुअनिया करे ए राम।
हजमा जे चिठिया लिहले ठाढ भइले ए राम ॥५॥

कहँवा के हउव तुहुँ हजमा ! नू ए राम ।
केई भेजेला एक चिठिया नू ए राम ॥६॥
मथुराकहई॑ हम हनमा गोकुल कइले जाई ले ए राम ।
सीता जी भेजेली एक चिठिया नू ए राम ॥७॥
हाथ लफाइ चिठिया लिहलनि, ठेहुनवा धई बचलनि ए राम ॥
अत सबरी लिखेली वियोगवा नू ए राम ॥८॥
सीता रोवे ले अछन छछन कई नू ए राम ।
पटुकवे लोर पोछलनि नू ए राम ॥६॥
अब राम चलले त मधुबनवा नु ए राम ।
चुप होखु चुप होखु सीता नू ए राम ॥१०॥
सरब गुनवे आगर बाड़ू तू नू ए राम ।
फिरि से अइलीं मधुबनवा नू ए राम ॥११॥
एक गोड़ चउकठवा दूसर पलँगरिया देले नु ए राम ॥
आइ गइलीं सबरी सुरतिया नू ए राम ॥११॥
रोवे लीं सीता देई अहि महि नू ए राम ।
पटु के पोछेली लोरवा नू ए राम ॥
आइल राम फिरी गइलनि नू ए राम ॥१४॥

सीता जी विलाप कर रही हैं—जो राम मेरी आँखों से कभी उतरते नहीं थे; पलक से क्षण मात्र विसरते नहीं थे हा ! वे ही आज मधुवन को चले गये ॥१॥

मै किस चीज का कागज बनाऊँ और किस चीज की स्याही और किसको कायस्थ (पत्रलेखक) बनाऊँ ? सखी ने कहा—"अंचल फार करके तो उसे कागज बनाओ और अपने नेत्र के काजल की स्याही तैयार करो। अपने देवर को कायस्थ (पत्र लेखक) बनाओ। वही समझा करके तुम्हारा पत्र लिखेगा" ॥२, ३, ४॥

सीता ने कहा—"पीछे पड़ोस में नाई मेरा हितैपी रहता है। हे नाई एक पत्र राम के पास पहुँचा दो। इसे राम के हाथ में ही देना" ॥५॥

चार खूँट का (वर्गाकार) पोखरा है। उस पर राम दातुन कर रहे हैं। और नाई चिट्ठी लिये हुये उनके सामने जाकर खड़ा होता है ॥६॥

राम ने पूछा—"हे नाई ! तुम कहाँ के रहने वाले हो ? किसने इस चिट्ठी को भेजा है" ॥७॥

नाई ने कहा—मैं मथुरा का नाई हूँ ! गोकुला को जा रहा हूँ। सीता ने एक चिट्ठी भेजी है ॥८॥

हाथ बढ़ाकर राम ने पत्र लिया और उसे घुटने पर फैलाकर पढ़ा। सीता का वियोग, उनकी करुणदशा वह दुपट्टा से आँसू पोछते है। सीता लिखती है कि अब राम मधुबन छोड़ दें। राम ने पत्र लिखा—"हे सीता ! तुम रोओ मत, तुम सब गुणों से युक्त हो। मैं पुनः घर आऊँगा" ॥६-१२॥

राम घर गये। एक पाव चौखट पर रखा दूसरा पाव पलग पर रखा कि तुरन्त सबरी की स्मृति हो आयी। सीता सिर धुन धुन करके रोने लगी। और डुपट्टा से आंसू पोछने लगी और कहने लगी हाय राम आकर भी वापिस चले गये ॥१२-१४॥

इस गीत में स्त्री के अल्प ज्ञान का बोध होता है। वह राधिका के स्थान पर सीता का नाम रखकर अपनी विरह गाथा गाती है। कूबरी के स्थान पर सबरी का नाम प्रयोग करती है। वैसे ही गोकुला की जगह मथुरा और मथुरा के स्थान पर गोकुला का पाठ है। मै ने जैसा का तैसा पाठ रखा है। सशोधन नहीं किया। इससे यह पता चलता है कि स्त्री आप बीती बातों को ही सीता, राधा, राम और कृष्ण को पात्र मानकर दुहराती है और हृदय की कथा कहती है। जहाँ पति का दुलार स्मरण होता है वहा राम के आने का और सान्त्वना भरा पत्र का वर्णन हो उठता है और फिर जहा पति के तिरस्कार और अपने जलाने का ख्याल आता है वहा राम खाट पर पांव रखकर भी कुब्री के लिये वापिस चले जाते हैं। उसे रोकर चुप हो जाना पड़ता है। यह कहकर सन्तोष करने का प्रयत्न करना पड़ता है कि जब राम ने ही सीता को त्याग दिया था तो मेरे स्वामी ने जो मुझको त्याग दिया है उसमें उसका क्या दोष है। ईश्वर का यही नियम है। नारी जीवन को पुरुष

जाति ने कितना निरीह बना रखा है। यह अत्याचार क्यों हुआ और क्यों हो रहा है इसका निर्णय कौन करे ?

(६)

वर तरे डोमिनि बीनेले रे चगेलिया, आरे वर तरे ।
रजवा खेले ला फूल गेनवा , आरे वर तरे ॥१॥
हटिखेल रजवा ! हो परेले छिटिकिया आरे वर तरे ।
तोरा लेखे डोमिनि हो बाँस केरे छुलिनवा, आरे वर तरे ॥२॥
मोरा लेखे डोमिनि ! अगर रे चननवा, आरे वर तरे ॥
जऊँ तुहूँ रजवा ! रे हमरा मे लोभइल, आरे वर तरे ।
वनवा पइसि काटु रजवा रे बँसवा आरे वर तरे ॥३॥
एक हाथ रजवा रे काटे घन वसवा, कि वर तरे ।
एक हाथ पोछे नैना लोरवा, कि वर तरे ॥४॥
किया तोरे रजवा रे ! मइया मन परली आरे वर तरे ।
किया तोरे रजवा रे ! भइया मन रे परलें कि वर तरे ।
किया तोरे रजवा रे ! जाघ के तिरिअवा आरे वर तरे ॥५॥
नाहीं मोर डोमिनी रे मइया मन परली, आरे वर तरे ।
नाहीं मोर डोमिनी ! भइया मन परले, आरे वर तरे ॥६॥
एक त जे मन परे जाघ के तिरिअवा, आरे वर तरे ।
दोसर जे सिर के सेनुरवा, आरे वर तरे ॥७॥
राजा घरे रहितीं डोमिनि ! रजवा कहइतीं, आरे वर तरे ।
लोग करतें नइ नइ सलमिया, आरे वर तरे ।
तोरा घरे डोमिनि रे डोमवा रे कहलीं आरे वर तरे ॥८॥
जूठ मोर खइल ए रजवा ! त पीठि लागि रे सूतल, आरे वर तरे ।
जतिया कहवल तुहूँ डोमवा ए रजवा ! कि वर तरे ।
वर तरे डोमिन रे बीने ले चगेलिया, कि वर तरे ॥१०॥

वट वृक्ष के नीचे डोमिन चँगेली (टोकरी) बीन रही है और वहा राजा गेंदा का फूल खेल रहा है ।

डोमिन ने कहा—"हे राजा हट कर खेलो। वहा बास का छीलन पड़ा हुआ है" राजा ने कहा—"री डोमिन! तुम्हारे लिए यह बाँस का छीलन है प मेरे लिये यह छीलन चन्दन और अगर के समान है।" डोमिन ने कहा—"हे राजा, अगर आप मुझ पर आसक्त हो तो वन मे जाकर मेरे लिये बाँस का लाओ" ॥३॥

एक हाथ से राजा घनी कोठ से बाँस काटता है और दूसरे हाथ से अपन आसू भी पोछता जाता है ॥४॥

डोमिन ने कहा—'हे राजा। क्या तुमको अपनी माता का स्मरण हो आया अथवा तुम्हें तुम्हारा भाई याद पड़ा है। या तुमको अपनी जाघ प बैठने वाली स्त्री स्मरण हुई है कि तुम इस वट वृक्ष के नीचे रो-रहे हो" ॥५॥

राजा ने कहा—हे डोमिन! मुझको न अपनी माता स्मरण हुई और न अपना भाई ही। मुझे अपनी जाघ की स्त्री ही एक मात्र (इस समय) स्मरण हो रही है। और स्मरण होता है उसके सिर का सिन्दूर अर्थात् मेरे विरह में उसका वैधव्य जीवन ॥६॥

हे डोमिन! अपने राजघर में राजा कहा जाता। प्रजा मेरी भक्ति मे नत मस्तक रहती। और डोमिन!! तुम्हारे घर में डोम कहा जा रहा हूँ। डोमिन ने कहा—हे राजा! अब तो तुमने मेरा जूठन खाया और मेरी पीठ से सटकर सोते भी रहे। और अब तुम्हारे डोम कहे जाने में क्या सन्देह है ॥१०॥

(७)

मचिअहि बइठलि तुहूँ अम्मा हो बढइतिन होना।
ए आमा! बाबा के जेवनवा देई आवहु रे की ॥१
सुनहु बबुई! हो भगवति बबूई! नु रे की।
ए बबुई! लिलहा सरिखवे जेवना देई आवहु रे की ॥२॥
मचीअहि बइठलि तूहूँ आमा हो बढइतनि रे की।
ए आमा' बाबा के नजरिया बड़ी बाऊरि होना ॥३॥
चिठिआ जे लीखीले बाबू घूरमल सिंहवा रे ना।
ए बबूआ! अबकी नेवतवे तुहूँ अइहनु रे की ॥४॥

चिठिआ वाचत इनर सिंह मन मुसुकइलनि रेना ।
ए वावा ! अवकी नेवतवे हम जाइवि रे की ॥५॥
ववुआ ! विनु रे गवनवे कइसन नेवत रे की ॥६॥
मचिअहिं वइठलि तुहूँ आमा ! वढइतिन रे ना ।
ए आमा ! अवकी नेवतवे हम जाइवि रे की ॥७॥
ए ववुआ ! विनू रे गवनवे कइसन नेवत रे की ॥८॥
जव रे इनर सिंह गाँव के वहर भइले रे ना ॥
ए राम वाये रे दहिनवे कउवा वोले रे की ॥९॥
वोलु वोलु कउवा ! सुलछनि वोलिया रे ना ॥
ए कउवा ! अवकी रएनिया जीति आइवि हो की ॥१०॥
एक कोस गइले इनर सिंह दुइ कोसवा गइलनि रे की ॥
ए राम तीसरे कोसवा ठनलनि अहेरिया नूरे की ॥११॥
ए ववुआ ! चलि चल केदली के वनवाँ नु रे की ॥
ए ववुआ ! हम रउरा खेलवों सीकरवानु रे की ॥१२॥
सभ केहू मारेला हारिल चिरइया रे ना ॥
ए राम घुरमल सिंह मारे आपन दमदा नु रे की ॥१३॥
ऊँचवहिं मरलनि नीचवे गिरवलनि रे ना ॥
रामा ! चनन विरीछवे ओठघवलनि नु रे की ॥४॥
कथीए भीजेला ए वावा ! पाँव के पनहिया रे ना ?
ए राम ! कथिए भीजेला तरुवरिया नू रे की ॥१५॥
सीतिये भीजेला वेटी ! पाँव के पनहिया रे ना ॥
ए राम ! खूनवें भीजेला तरुवरिया नू रे की ॥१६॥
कहवाँहिं मरलीं वावा ! कहवाँ गिरवलीं रे ना ॥
ए राम ! कवना वीरीछवे ओठघवलीं नु ए राम ॥१७॥
ऊचवहिं मरलीं वेटी ! नीचवा गीरवलीं रे ना ॥
ए राम—चनन वीरीछिए ओठघाई देलीं रे की ॥१८॥
राउर छोड़ि वावा ! अनकर ना होइवों रे ना ॥

ए रामा ! रचि एक लोथिया देखावहु रे की ॥२०॥
मोरा पीछुअरवा कहार भइया हीतवा हो ना ॥
ए रामा ! भगवति के डडिया फनावहु रे की ॥२१॥
एक कोसे गइलों दोसर कोसे गइलों रे ना ॥
ए राम तीसर कोसवा चिल्हीया मेड़राइल रे की ॥२२॥
राउर छोड़ि बाबा ! अनकर ना होइबों रे ना ॥
ए बाबा ! तनी एक अगीया ले आवहु रे की ॥२३॥
जऊँ रउआ हई रे बारे के बिअहुआ रे ना ॥
ए रामा फुफुतिन अगिया धधकावहु रे की ॥२४॥
जबलक बाबा हे अगिआ ले अइलन रे ना ॥
ए रामा ! फुफुतिन अगिआ धधकवली नु रे की ॥२५॥
ए रामा ! दूनों रे बेकति जरि गइलनि रे की ॥
रोवेलें धुरुमल सिंह मुहें दे रुमलिया रे ना ॥२६॥
ए रामा मोरि बुधि छुरे बेटी भगवति नु रे की ॥
जहूँ हम जनिती भगवति मोरि बुद्धि छुरबू रे ना ॥
ए रामा डड़िया पइसि जतीया नसीती नु रे की ॥२७॥

भगवती ने कहा—हे ! मचिया पर बैठी हुई मेरी पूज्य माता ! बाबा का भोजन दे आओ ॥१॥

माता ने कहा—हे बेटी भगवती ! हाथ की कलाई बाहर करके तू ही भोजन रख आ ॥२॥

भगवति इसी तरह भोजन अपने बाबा को दे आई लौटकर उसने अपनी माता से कहा—हे मा ! बाबा की नज़र तो बहुत बुरी मालूम हुई ॥३॥

बाबू धूरमल सिंह ने अपनी कन्या को ससुराल में पत्र लिखा कि हे वत्स ! निमन्त्रण जा रहा है । इस नवेद पर तुम अवश्य आना ॥४॥

पत्र पाते इन्द्रसिंह ने (धूरमल सिंह का दामाद और भगवति का पति) मन में हँस कर अपने पिता से कहा कि हे पिता जी ! मैं इस निमन्त्रण पर ससुराल जाऊँगा ॥५॥

इन्द्रसिंह के पिता ने कहा—हे पुत्र ! समझ में नहीं आता बिना गवन हुए यह निमन्त्रण कैसा ? ॥६॥

इस पर इन्द्रसिंह ने अपनी माता के पास जाकर कहा—मचिया पर बैठी हुई हे मेरी पूज्य मा ! इस निमन्त्रण पर मुझे ससुराल जाने दो ॥७॥

परन्तु माता ने भी इन्द्रसिंह को ससुराल जाने से यही कह कर मना किया और कहा अभी गवन हुआ नहीं तुम्हारा जाना उचित नहीं है ॥८॥

जब वे ससुराल के लिए बाहर निकले तब उनके बायें दायें काग बोलने लगा ॥९॥

उन्होंने कहा—अरे काग ! तू शुभ की बोली बोल। इस बार की लड़ाई में जीत कर आऊँगा ॥१०॥

इन्द्रसिंह एक कोस गए, दूसरा कोस भी वे पार कर गये। किन्तु तीसरे कोस में उनसे लड़ाई ठन गयी ॥११॥

घुरमल सिंह ने (मार्ग ही में भेंट कर अपने दामाद इन्द्र सिंह से कहा) हे वत्स ! केदली के बन में निकल चलो। हम आप वहाँ शिकार खेलेंगे ॥१२॥

संसार में और शिकारी तो हरियल पक्षी आदि शिकार मारता है पर घुरमल सिंह ने तो अपने दामाद का ही शिकार किया। उसने इन्द्र सिंह को ऊँचो जगह पर मार कर नीचे गिरा दिया। हा राम ! उसने उसकी लाश चंदन वृक्ष के सहारे खड़ी कर दी ॥१४॥

घर जाने पर घूरमल सिंह की कन्या भगवति ने पूछा—हे पिता ! तुम्हारे पाँव का जूता किस चीज़ से भींग रहा है। और यह ढाल तलवार किस वस्तु से भीगी हुई है ? ॥१५॥

घुरमल सिंह ने कहा—हे बेटी ! सीत से तो पाँव की पनही भीग गयी है और खून से तलवार भीगी हुई है ॥१६॥

भगवति ने सारा किसा अपने पापी पिता का समझ कर ढाढ़स कर पूछा—हे पिता ! आपने उन्हें कहाँ मारा और किस वृक्ष के सहारे उनके शव को खड़ा किया ॥१७॥

कामी पिता ने समझा कन्या राजो है। उसने खुशी खुशी कहा—हे

बेटी मैंने उसे ऊँची जगह पर तो मारा और नीचे गिरा कर चन्दन वृक्ष से लगा दिया ॥१८॥

कन्या ने छाती पर पत्थर रख कर अपनी सहज स्त्री चातुरी से काम लिया और कहा—हे पिता जी ! मैं आपको छोड़कर दूसरे किसी की नहीं हो सकती पर ईश्वर के नाम पर मुझे स्वामी की लाश तो दिखा दो ॥२०॥

घुरमल सिंह ने कहा—हे मेरे पिछवारे रहने वाले मेरे हितैषी भाई कहार ! भगवति के लिये पालकी सजाकर ले आओ ॥२१॥

भगवती एक कोस गई, दूसरा कोस उसने पार किया। तीसरे कोस में उसने देखा कि चील मेड़रा रही हैं ॥२२॥

उसने अपने पिता से यह कह कर कि वह उसी की होकर रहेगी आग ले आने का आग्रह किया ॥२३॥

पापी पिता आग लाने के लिये गया। इधर भगवती ने शव को लेकर कहा—हे राम ! यदि ये मेरी कुमारी अवस्था के विवाहित सत्य के स्वामी हों तो—हे भगवान !! मेरी फुफुती (साड़ी का अग्रभाग) से अग्नि धधक उठे ॥२४॥

जब तक घुरमल सिंह आग लेकर लौटा तब तक इधर भगवति की फुफुती से आग प्रगट हो कर धधकने लगी ॥२५॥

उस अग्नि में यह दम्पति जल कर स्वाहा हो गया। घुरमल सिंह मुँह पर रुमाल रखकर रोने लगा और कहने लगा—मेरी बुद्धि का हरण मेरी लड़की भगवती ने किया ॥२७॥

इसी भावका एक गीत हम और जँतसार न० ३ में उद्धृत कर चुके हैं। किन्तु उसमें जेठ और भवह की गाथा है। और नायिका है टिकुली। पर इस गीत में नायिका भगवति है और नायक उसका पिता घुरमलसिंह और पति इन्द्र सिंह। वर्णन प्रायः एक सा है। कुछ चरण तो वैसे ही हैं। सती के सत का अच्छा परिचय है और दूसरों के लिये आदर्श पथ प्रदर्शन भी। नराधम पिता के कुकृत्यों का गीत में सत्य रूप में रख छोड़ना यथार्थ चित्रण का ज्वलन्त उदाहरण है और इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि स्त्री

कवयित्री ने भी सदा पुरुषों से होशियार रहने के लिये अपनी बहनों को उपदेश दिया है। यहाँ तक कि ऐसे नराधम पिता का भी अस्तित्व बता कर उससे सावधान रहने की शिक्षा दी है और पुरुष मात्र से स्त्री को होशियार रहने को कहा है।

(८)

गवना करवलीं ए पीअवा, घर बइठवलीं नू रे की ॥१॥
ए मोरग जीवरे अपने चलेले उतरी बनीजिया नू रे की ॥
बरहो बरिस पर अइले ए मोरग जीवहो ढारे जिरवा गोनिया नू रे की ॥
माई लेई धावे हो रामा आरे पिढवा से पनिया नू रे की ॥
ए मोरग जीव हो बहिनी ले अइली नव रग बेनिया नू रे की ॥२॥
सभ कें त देखीं ए आमा अगना मे घरवा हो रामा ॥
ए मोरग जीव हो पतरी तिरीअवा नाही देखीं ले हों की ॥३॥
तोहरी तिरिअवा ए बबुआ! गरभी गुमनिया हो राम ॥
ए मोरग जीव हो—सूतल बाड़ी घर धवरहर हो की ॥४॥
जब आमा! रहिती हो जाघ के तिरिअवा नू रे की ॥
ए मोरग जीव हो झाकि झुकी देखिती आपन पिअवा नू रे की ॥५॥
तोहरो तिरिअवा ए बाबू! गरभी गुमनिया नू रे की ॥
ए मोरग जीव हो डूबि मरली ओहीरे सगरवा नू रे की।
कहा गइलू सत क तिरिअवा बिहरे मोर छतिया नु रे की ॥६॥

पति ने स्त्री का गौना कराया। उसे घर में बैठा कर वह मोरग देश व्यवसाय करने चला। बारह वर्ष के बाद व्यवसाय करके उधर से जब वह लौटा तब बैल की बरधी खोलकर उसे गिराया। माता बैठने के लिए पीढ़ा (काठ का आसन) और पीने के लिए पानी लेकर दौड़ आई और बहिन रंगीन पंखा लेकर उसके पास गई ॥१-२॥

मोरग से लौटे पुरुष ने कहा—हे मा! मैं सब किसी को घर और आँगन में देख रहा हूँ। लेकिन मेरी सुकुमार पत्नी कहाँ है? ॥३॥

माता ने कहा—हे पुत्र! तुम्हारी स्त्री बड़ी गर्वीली है। वह धौरहर पर

सो रही है ॥४॥

पुत्र ने कहा—हे मा ! अगर मेरी जाँघ की स्त्री धवरहर पर होती तो अवश्य इधर उधर झाँक कर अपने पति को देखती ॥५॥

माता ने कहा—हे पुत्र तुम्हारी स्त्री बड़ी गर्वंवती थी। उसने सामने के सागर में डूबकर अपना प्राण दे डाला।

पति ने दुःख के स्वर में कहा—हे भगवान ! मेरे हृदय में गोला लगता और मेरी छाती फट जाती। मैं मर जाता और अपनी सती स्त्री से स्वर्ग में ही भेंट करता ॥६॥

(६)

काहे के लवल हो आम इमिलिया काहे के लवल घनि बँसवारि ॥
खाए के लवलीं हो अमवा इमीलिया त बगला छावे के बँसवारि ॥
रइनि लाई कईलीं तिरिश्रवा, त ओही लागि जाइ लें बिदेस ॥१ ॥
सभवा बइठल तुहूँ बाबा हे बढइता देई बाबा अपन असीस ॥
पाव के पनहिया बबूआ ! लेइओ ना लेहू, अबकी रइनिआ अइह जीति ॥२॥
पसवा खेलत तुहूँ भइआ हो बढइता ! देई भइया अपन असीस ॥
हसराज घोड़वा भइया लेइओ ना लेहू, अबकी रइनिआ अइह जीति ॥३॥
मचिया बइठल तुहुँ आमा हो बढइतिन, देई आमा अपन असीस ॥
दूध भात खोरवा बबुआ ! जेंइओ ना लेहू, अबकी रइनिया अइह जीति ॥४॥
भड़सर बइसल भउजी हो बढइतिन, देई भउजी अपन असीस ॥
घोड़ा के चभुकिआ बबुआ लेइओ ना लेहू, अबकी रइनिया अइह जूझि ॥५॥
सेजिया बइठल मोरि धनिया बढइतिन, देहु धनिया अपन असीस ॥
सिर के पटुकवा हरिजी लेइओ न लीहीं, अबकी रइनिया आइबि जीति ॥६॥
पहिलो रइनिया जूझे रजवा के पूतवा नदिया भइलि छछकाल ॥
पाव के पनहिया हमरा बाबा के दीह उन्हकर सभवा भइली सून ॥
हसराज घोड़वा हमरा भइआ के दीह उनुकर टूटल दहिन बाह ॥७॥
दूध भात खोरवा हमरा आमा के दीह उनुकर गोदिया भइले सून ॥८॥
घोड़ा के चभुकिया हमरा भउजी के दीह, उनुकर पूजल मन के आस ॥

सिर के पटुकवा हमरा धनिया के दीह, उनुकर सेनुरवा गइले छूटि ॥६॥

पत्नी पूछ रही है—हे प्रियतम ! आपने आम और इमली के वृक्ष और सघन बाँस की कोठ किस लिये लगाया और किस हेतु मुझसे विवाह किया। पति ने उत्तर दिया—खाने के लिये मैंने आम और इमली के पेड़ लगाये और बँगला छवाने के लिये बाँस की कोठी लगाई। हे धनि ! मैंने लड़ाई लड़ने के हेतु तुम से विवाह किया और उसी लिये विदेश भी जा रहा हूँ ॥१॥

पति वहाँ से पिता के पास गया और कहा—हे सभा के मध्य में बैठे हुए पूज्य पिता ! आप अपना आशीर्वाद मुझे दीजिये। मै रण में जारहा हूँ। पिता ने आशीर्वाद देकर कहा—हे पुत्र मेरे पाँव का जूता तुम ले लो। इस बार संग्राम तुम जीत कर आना ॥२॥

फिर वह अपने भाई के पास जाकर बोला—पासा खेलते हुए हे मेरे बड़े भाई ! मुझे अपना आशीर्वाद दीजिये। भाई ने कहा—हे भाई ! मेरा हसराज नाम का घोड़ा तुम ले लो। इस बार संग्राम जीत कर आना ॥३॥

फिर उसने अपनी माता के पास जाकर कहा—मचिया पर बैठी हुई हे मेरी पूज्य माता ! मुझे आशीर्वाद दो। माता ने आशीर्वाद देकर कहा—हे पुत्र ! दूध भात खाकर जाओ। इस बार संग्राम जीत कर आना ॥४॥

भड़सर (घर में सामान रखने के लिये जो दीवाल में बाँस गाड़ कर मिट्टी लगा कर जगह बना लेते है, उसे भड़सर कहते है) में बैठी हुई भावज के पास जाकर उसने कहा—हे मेरी पूज्य भावज मुझे आशीर्वाद दो। भावज ने कहा—हे बाबू ! घोड़े की चाबुक ले लो। इस सग्राम मे तुम जूझ जाना ॥५॥

वहाँ से पति ने अपनी स्त्री के पास जाकर कहा—सेज पर बैठी हुई हे मेरी धर्मपत्नी ! तुम मुझे अपनी शुभ कामना दो जिससे मै यह सग्राम जीत कर सकुशल लौट आऊँ। पत्नी ने कहा—हे मेरे प्रियतम ! मेरे सिर की चादर को आप अपने साथ ले लीजिये। इस संग्राम मे आप की जीत होगी ॥६॥

पहली ही लड़ाई में राजपुत्र जूझ गया। रक्त की नदी बह चली। उसने मरते मरते सन्देश दिया। मेरे पाँव की पनही मेरे पिता को देना। मेरे

बिना उनकी सभा सूनी हो गई ॥७॥

यह हंस राज घोड़ा मेरे बड़े भाई को देना । हा ! मेरे निधन से उनका दाहिना हाथ टूट गया और यह दूध भात का कटोरा मेरी माता को देना हा ! उनकी गोद अब सूनी हो गई ॥८॥

और यह घोड़े की चाबुक मेरी भावज को देना, जिनके मन की कामना मेरे निधन से पूरी हुई । और मेरी यह सिर की पगड़ी मेरी पत्नी को दे देना । हा ! मेरे बिना जिसकी सेज सूनी हो गयी ॥९॥

इस गीत में वीर रस के साथ करुण रस का बहुत सुन्दर सम्मिश्रण हुआ है । वे विधवायें, जिनके पति वीर गति को प्राप्त होते हैं इस गीत को चक्की चलाते समय गाकर अपनी किन सुकुमार और करुण स्मृतियों के भाव चित्रित करती हैं । यह पाठक अनुमान करें और विचार करें उनकी उस वेदना भरी टीस और मर्मभेदी स्थिति की ॥

(१०)

पानी के पियासल जिरवा गइली पनिघटवा रे ।
घर के भसुर बटिआ रोके ले नु रे जी ॥१॥
छोड़ु छोड़ु भसुरा रे ! मोर पनीघटवा रे,
बरसेला पनीआँ भीजले मोरि चुनरी नु रे जी ॥२॥
जउँ तोरा जिरवा रे भींजे ले चुनरिया रे,
हमरो दुपटवा ओढि लेवहु रे जी ॥३॥
तोहरे दुपटवा भसुर ! आगि धधकाइबि,
हमरी चुनरिया सीतल बयरिया नु रे जी ॥४॥
झीनी झीनी गेहुआ जिरवा बास के चँगेलिया,
जिरवा पीसे ली जँतसरिया नु रे जी ॥५॥
एक झींक हथवा दूसर झीकँ जँतवा,
देवर सनेसवा लेइ जावहु रे जी ॥६॥
पसवा खेलत तूहूँ जैसिंह रजवा रे,
तोरी धनि रोवे जँतसरिया नु रे जी ॥७॥

पसवा लइवलन राजा वेल गे ववूर तर,
झपटि के अइले जँतसरिया नु रे जी ॥८॥
कोरां ले उठवलनि जाँघ वइठवलनि,
अपनी रुमलिया अँसुआ पोंछेनु रे जी ॥९॥
किया तोहिं जिरवारे! माइ गरिअवलिन,
किया ही वहिनिया विरहा वोलेहु रे जी ॥१०॥
नाहीं मोके अहो राजा सासु गरिअवलीं,
नाहीं हो वहिनिआ विरहा वोलेनु रे जी ॥११॥
जवन भसुर मोरा अँगुठा ना देखलन,
तवन भसुरवा वटिआ रोकेनु गे जी ॥१२॥
होखे दे विहान जिरवा! लागे देनु लोहिया,
रइनि चढाइ भइआ मारवि रे जी ॥१३॥
भइया मरले जैसिंह अक्सर होइव,
धनिया मरले दूसर धनिया नु रे जी ॥१४॥
मुहवाँ रुमलिया देके हँसेलें जयसिंह,
अइसन सुलछनि जिरवा धनियाँ नु रे जी ॥१५॥

पानी भरने के लिए जीरा नाम वाली स्त्री पनघट पर गई। उसके पति के वडे भाई ने ही, जो उस पर मोहित था, उसे रास्ते में छेड़ना चाहा। जीरा ने पनघट की छेड़ छाड़ को बुरा कहते हुए कहा कि पानी वरमने से उसकी चूँदर भीग रही है ॥१,२॥

भसुर ने कहा—अरे जीरा! अगर तुम्हारी चूँदर भीग रही है तो तुम मेरी चादर ओढ़ लो ॥३॥

जीरा ने कहा—हे भसुर! तुम्हारी चादर में आग लगे, मेरी चूदर से शीतल हवा चलती है ॥४॥

चढ़ियों गेहूँ लेकर—वाँस की छोटी टोकरी में जीरा गेहूँ जतसार में पीस रही है। उसने एक हाथ में झोंक लिया। दूसरे हाथ से झोंक डाला। उसने अपने देवर से कहा कि हे देवर! मेरा सन्देश मेरे स्वामी के पास ले

जाओ ॥५,६॥

देवर ने जाकर जैसिंह से कहा—हे भाई जै सिंह ! तुम तो यहाँ पासा खेल रहे हो और तुम्हारी स्त्री जँतसार में रो रही है ॥७॥

जैसिंह ने झट से पासा बेल और बबूल के नीचे फेंक दिया और झपट कर जतसार में जा पहुँचे ॥८॥

उसने रोती हुई अपनी स्त्री को उठाया और जाँघ पर बैठा कर अपनी रूमाल से आसू पोछकर कहा—हे जीरा प्यारी ! तुम क्यों रो रही हो ? तुमको मा ने गाली दी है या बहन ने ताना मारा है ॥६,१०॥

जीरा ने कहा—हे राजा ! मुझको मा ने गाली नहीं दी और न ननद ने ताना ही मारा है। जिस भसुर ने मेरा कभी पाँव का अँगूठा तक नहीं देखा वही मेरा आज रास्ता रोक रहा था ॥११,१२॥

जैसिंह ने कहा—अरी जीरा ! सवेरा होने दे उस भाई को मैं रण पर चढ़ा कर मारूँगा ॥१३॥

जीरा ने कहा—हे जैसिंह ! भाई को मारने से तुम अकेले हो जाओगे। पर यदि मुझको मार दोगे तो दूसरी स्त्री तुम्हें मिल जायेगी ॥१४॥

जयसिंह ने रूमाल से अपना मुख दाब कर किसी प्रकार हँसी रोक कर कहा-जीरा ! तुम मेरी मंगल की मूर्ति शुभ लक्षणों से युक्त पत्नी हो ॥१५॥

(१२)

आवत देखीं मों दुइ हो सिपहिया,
एक साँवर एक गोर हो राम ॥१॥
गोर हउवन मोरि माई क पुतवा,
साँवर ननद जी के भइया हो राम ॥२॥
माँचिअहिं बइठलि मोरि सासु बढ़इतिनि,
काइ बनावों जेवनरवा हो राम ॥३॥
कवनी कोठिलवहि वहुअरि सरेला कोदइया,
मेंड़वा मसउढे क सगवा हो राम ॥४॥
अगिया लगावों सासु सरली कोदइया,

बजर मसुढ़वा के सगवा हो राम ॥५॥
खोलि देवई सासु हो झिनवा त चउरा,
मुँगिया दरिय दरि दलिया हो राम ॥६॥
जेवन बइठेले सार बहनोइया,
सरवा के ढरैली अँसुइया हो राम ॥७॥
की तुहूँ सुरतेल भइया के कलेउवा,
की हो बहुअवा जी सेजरिया हो राम ॥८॥
नाहीं हम सुरतीला भइया के कलेउवा,
नाहीं त बहुअवा के सेजरिया हो राम ॥९॥
चाँद सुरज अइसन बहिनि सँकलपेउँ,
जरि जरि भइलि कोइलरिया हो राम ॥१०॥
देहु न बहिनी हमके ढालि तरुवरिया हो,
सावज अहेरिया हम जाइबि हो राम ॥११॥
एक वन गइले दूसर वन गइले,
तिसरे में मरलें बहनोइया हो राम ॥१२॥
केथिया डूबलि भइया पावँ के पनहियाँ,
केथियाँ डूबलि तरुवरिया हो राम ॥१३॥
सितिया डूबलि बहिनी पाँव के पनहिया,
रकत डूबलि तरुवरिया हो राम ॥१४॥
हम त मरलीं बहिनी! सगे बहनोइया,
तोहरा से कहीं साँचीं बतिया हो राम ॥१५॥
कहँवहि मरल भइया! सग बहनोइया,
कवने बिरीछवे ओठँघवल हो राम ॥१६॥
उचवहि मरलीं बहिनी नीचवहि ढकेललीं,
चनन बिरीछवे ओठघँवलीं हो राम ॥१७॥
के मोरा छइहें भइया! राँड़ के मड़ैया,
के मोर बितइहैं दिनवा रतिया हो राम ॥१८॥

हम तोरी छइवों वहिनि रौंड़ के मड़इया,
भऊजी वितइहैं दिनवा रतिया हो राम ॥१९॥
दिन भर भइया ! भउजी चरखा कतइहैं,
साँझि वेरि देइहैं वूँट मड़वा हो राम ॥२०॥

मैंने दो सिपाहियों को आते हुए देखा। एक साँवला और दूसरा गोरा। गोरा सिपाही तो मेरी माता जी का पुत्र है और साँवला मेरी ननद का भाई है ॥१-२॥

'मचिया पर मेरी पूज्य सास बैठी हैं। हे सास! मैं क्या जेवनार बनाऊँ ?' स्त्री ने कहा ॥३॥

सास ने कहा—हे बहू ! किस कोठी में कोदो बिगड़ रहा है। (उसी से कोदो ले लो।) और खेत की मेड़ पर मसौढ़ा का साग है ही। (उसे बना लो) ॥४॥

बहू ने (खीझ कर) कहा—हे सास ! सड़े कोदो में मैं आग लगाऊँगी। मसौढे के साग पर वज्र गिरेगा। मैं महीन चावल की कोठी खोलूंगी और मूँग दल कर उसे साफ कर दाल बनाऊँगी ॥५,६॥

जब साले और बहनोई खाने बैठे तो साले की आँखों से आँसू गिरने लगे ॥७॥

बहनोई ने पूछा—हे भाई तुमको माता का कलेवा स्मरण हो रहा है [illegible]नी स्त्री की सेज याद आ रही है। तुम आँखों से आँसू क्यों गिरा

उसने अपने बहनोई को मार डाला ॥१२॥

बहन ने पूछा—हे भाई ! किस चीज से तुम्हारे पाँव का जूता भीग गया और किस वस्तु से यह ढाल तरवार भी भींगी हुई है । ? ॥१३॥

भाई ने कहा—हे बहन ! सीत से तो जूता भीगा है और रक्त से ढाल तरवार भीगे हैं ॥१४॥

हे बहन ! मैंने अपने सगे बहनोई को मार दिया तुमसे सच्ची बात कह रहा हूँ ॥१५॥

बहन ने पूछा—हे भाई ! अपने सगे बहनोई को तुमने कहाँ मारा और किस वृक्ष के सहारे उसकी लाश खड़ी की ? ॥१६॥

भाई ने कहा—मैंने उसे ऊँची जगह पर मार कर नीचे गिरा दिया और चन्दन वृक्ष के नीचे लाश रख छोड़ी है ॥१७॥

बहन ने रोकर कहा—हे भाई ! मुझ राँड (विधवा) की मड़ैया (झोपड़ी) को कौन छावेगा अर्थात् मैं किसकी शरण और संरक्षकता में अब रहूँगी और किसके सहारे मेरे दिन बीतेंगे ? ॥१८॥

भाई ने कहा—हे बहन—मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा । तुम जो अब विधवा हो गई तुम्हारी झोपड़ी भी मुझे ही बनानी होगी और तुम्हारी भावज तुम्हारे दुःख के दिन रात को बितावेगी ॥१९॥

बहन ने रोकर कहा—हे भाई ! दिन भर भावज मुझसे चरखा कतावेगी और सन्ध्या समय एक बूँद माड [चावल पक जाने पर जो जल निकाला जाता है] पीने को देगी ॥२०॥

यह गीत भी सत्य घटना के आधार पर रचा हुआ जान पड़ता है । कभी भारत में ऐसे मिथ्यादम्भ की प्रथा भी प्रचलित थी कि जिसमें पड़कर लोग ऐसे ऐसे नृशंस कार्य भी वीरता और आत्म गौरव समझते थे ।

(१३)

सम के नगरिया 'चुरिला' बँसिया बजावे राम ॥
हमरा नगरिया काहे ना बजावहु रे की ॥१॥
कइसे बजाई रानी रउरी नगरिया रे ॥

कुकुरा भूँकेला पहरू जागेला रे की ॥२॥
कुकुरा के देवों 'चुरिला' दूध भात खोरिया रे ॥
पहरू के मद में मतइवो नु रे की ॥३॥
आधी राति अगिली पहर रात पिछली रे ॥
दुअरा पर चुरिला रसिया ठाढ नु रे की ॥४॥
खोलु खोलु खोलु रानी सँकरी केवरिया रे ॥
दुअरे अइले चुरिला रसिया नु रे की ॥५॥
कइसे मैं खोली चुरिला सँकरी केवरिया रे।
अँचरा सूतेला राजा कूअर रे की ॥६॥
तोहरा जे पास रानी सुबरन छुरिया रे।
अँचरा कलपि चलि आवहु रे की ॥७॥
अँचरा कलपत चुरिला बड नीक लागे रामा ॥
मुहँवा देखत छतिया फाटेले रे की ॥८॥
एक कोस अइलों चुरिला दुइ कोस अइलों रे ॥
चलत चलत पइया थाकल रे की ॥९॥
चलहु चलहु रानी थोरि के त रतिया रे।
उहे त जे लउके मोर धवरहर रे की ॥१०॥
सूरज जे उगले चुरिला ! मुख मोर चटपट रे ॥
गोड़वा चलत चलत बज्जर रे की ॥११॥
आर बटोहिया तूहूँ मोर लगब भइया हो।
कतहूँ देखल चुरिला धवरहर रे की ॥१२॥
नाहीं हम देखलीं (ए बहिनी)) नाहीं हम सुनलीं हो ॥
कहवाँ तू सुनलू चुरिला धवरहर रे की ॥१३॥
देखलीं मों देखलीं, ए बहिनी, हाजीपुर डीहवा रे ॥
चुरिला के मइया सुअर चरावेली रे की ॥१४॥
जो मैं जनितों चुरिला जाति के दुसधवा रे।
बाबा के नगरिया फँसिया दिहतीँ रे की ॥१५॥

लट पट पगिया चुरिला लामी लामी केसियारे।
गोरी सुरतिया हम भूलि गइलीं नु रे की ॥१६॥
साथ ही में खइलू रानी ! साथही में सुतलू हो ॥
अब कइसे जतिया तोर मेराई नु रे की ॥१७॥

"सब के नगर में 'चुरीला' वंशी बजाता है। मेरे गाँव में क्यों नहीं जाता ?" बहू ने पूछा ॥१॥

'चुरिला' ने कहा—हे रानी ! मैं तुम्हारे गाँव में कैसे वंशी बजाऊँ ? सारी रात कुत्ते भूँका करते हैं और पहरू (चौकीदार) जागते रहते हैं ॥२॥

रानी ने कहा—हे चुरिला ! मैं कुत्ते को दूध भात कटोरा भर कर दूँगी। और पहरेदार को दारु पिलवा दूँगी (तुम आना) ॥३॥

आधी रात बीत गई। पहर रात बाकी रही। रानी के दरवाजे पर रसिक चुरिला आकर खड़ा हुआ।४॥

उसने कहा—हे रानी ! किवाड़ की जँजीर खोलो। तुम्हारा प्रेमी चुरिला आ गया ॥५॥

रानी ने कहा—हे चुरिला ! मैं कैसे दरवाजे की साँकल खोलूँ। मेरे अचल पर तो राजकुमार सो रहा है ॥६॥

चुरीला ने कहा—हे रानी तुम्हारे पास सोने की छुरी है। अपना अचल काट कर चली आओ ॥७॥

रानी अचल काट कर बाहर आई। उसने चुरिला से कहा—हे चुरिला अचल काटते समय तो बड़ा सुख मिला। पर चलते समय राजकुमार का मुंह देख कर छाती फट गई ॥८॥

मार्ग चलते चलते रानी ने थक कर कहा—हे चुरिला मैं एक कोस आई। दूसरा कोस भी चल चुकी। अब तो चलते चलते मेरे पैर थक गये ॥९॥

चुरिला ने कहा—हे रानी ! बस पैर बढ़ाओ। अब तो बहुत थोड़ी रात बाकी है। वह सामने मेरे घर का बुर्ज दिखलाई पड़ता है ॥१०॥

रानी ने कुछ चल कर सबेरा होने पर फिर कहा—हे चुरिला ! सूर्योदय

हो गया प्यास से मेरी जीभ तालू में लग कर चट चट कर रही है और पाँव चलते चलते बज्र ऐसे भारी हो गये हैं। हे पथिक भाई तुमने कहीं चुरिला के घर की बुर्जी देखी है ॥११, १२॥

पथिक ने कहा—हे बहन! हमने चुरिला का धौरहर न देखा है और न सुना ही है। तुमने कहीं सुना कि चुरिला के घर धौरहर है। हे बहन! हाजीपुर बाज़ार में मैंने देखा है कि चुरिला की बहन सूअर चराती है ॥१४॥

रानी ने कहा—हे चुरिला! अगर मैं यह जानती कि तू जात का दुसाध है तो मैं अपने बाबा के नगर में ही तेरी फासी दिलवा देती ॥१५॥

हे चुरिला मैं तुम्हारी लटपट पाग और लम्बे लम्बे केस पर भूल गई और आसक्त हो गई तुम्हारी गोरी सूरत पर ॥१६॥

चुरिला ने कहा कि हे रानी! अब तो तुमने मेरे साथ भोजन किया और मेरे शरीर से लग कर तुम अब तक सोती भी रही हो। अब तुम फिर किस तरह अपने ऊँचे कुल में मिल सकती हो? ॥१७॥

यह गीत Hugh Fraser नामक अंग्रेज लेखक ने Folk lore from Eastern Gorakhpur नामक पुस्तक में प्रकाशित किया था। उसी से यह पद संग्रहीत है। आज भी यह शाहाबाद में गाया जाता है।

(१४)

अवध नगरिया से सीता देई रे चलली।
राहे बाटे बोले कागा बोलिया हो राम ॥१॥
काग के बचनियाँ सुनि सीता मन रे झुरवे।
काहे देवरु! नयना मोरे फरके हो राम? ॥२॥
घोड़वा के वेग देवरु पवन समनवा ॥
सेहू घोड़वा पावें पावें चलेला हो राम? ॥३॥
तोहरो सुरतिया देवरू! सुरुज के जोतिया?
सेहू काहे धुमिल हो गइली हो राम? ॥४॥
सुनु सुनु सीता देई! हमरी भउजिया हो॥
राम भेजेलें तोहकें वनवाँ हो राम ॥५॥

गहबर वन जाई सीता परिहरहू ।
एही लागि वनवा लेह अइलों हो राम ॥६॥
कवना कमइए देवरू ! हम धनि रे चुकलीं ।
काहे के भेजेलें हमके वनवाँ हो राम ॥७॥
धोबिया वचनिया सुनि राम दुख पवले ।
ताहि लागि वनवा तोहि भेजलनि हो राम ॥८॥
अजस मोटरिया देवरू ! हमरे लिलरवा ।
प्रभु के सुजसवा सब होखे हो राम ॥९॥
जो नाहीं रहिते देवरू ! हमरी गरभिया ।
एही छन जिउआ देइ देतीं हो राम ॥१०॥
एतना सुनत सेस लोटे ले धरनि पर ।
ताहि छन अइली मुरछवा हो राम ॥११॥
अचरा डोलाइ सीता लखन के उठवली ।
तोहरा के राम जोहत होइहें हो राम ॥१२॥
जब से लखन सीता वन तेजि चलले ।
सीता देई भुइआ लोटि परलीं हो राम ॥१३॥
सीता के वियोग सुनि के वन के चिरइया ।
सीता के निकट वेगि अइलीं हो राम ॥१४॥
सब ना सुनत मुनि अइले रे निकटवा ।
सीता मने वोधवा करवले हो राम ॥१५॥
जगत जननि माता धरु न धीरजवा हो ।
तोरे लागि कुटिया छवइवो हो राम ॥१६॥
चलु चलु सीता देई हमरो वहिनिया हो ।
सब भाँति सुखवा पहुँचइवो हो राम ॥१७॥
जो कोई सुनि राम सीता क वियोगवा हो ।
पामिका अमरवा होई जाई हो राम ॥१८॥
अयोध्या से सीता चलीं । रास्ते में सब जगह कौवे की बोली सुनाई

पड़ी। कौवे की बोली से सीता के मन में भय पैदा हुई और वे भय से सूख गईं। उन्होंने लछमण से पूछा हे देवर मेरी दाईं आंख क्यों फड़क रही है ? यह पवन गामी रथ क्यों मन्द पड गया है ? इसके घोड़े इतने निर्जीव और दुखी क्यों लग रहे हैं ? और तुम जो सदैव सूर्य की तरह तेजस्वी दिखाई पड़ते थे इस समय श्री हीन क्यों हो रहे हो ? ॥१,२,३,४॥

लछमण ने कहा— हे मेरी भावज सीता देवी ! रामचन्द्र जी ने तुमको बनवास दिया है। तुम्हें घोर जगल में ले जाकर छोड़ देने की उन्होंने आज्ञा दी है। इसी लिये मैं तुमको वन में ले चल रहा हूँ ॥५, ६॥

सीता ने कहा—हे लछमण ! मेरे किस अपराध पर उन्होंने मुझे वनवास दिया ? ॥७॥

लछमण ने कहा कि रामचन्द्र ने धोबी के अपवाद पर प्रजा विश्वास के लिये तुम्हें बनवास देने का निश्चय किया ॥८॥

सीता ने कहा हे देवर अपयश का भार उठाने और उसका फल भोगने से मुझे भय नहीं। प्राणेश्वर को सदैव यश मिले। यदि गर्भवती रहने के कारण विवश न होती तो मैं इसी क्षण प्राण दे देती ॥९,१०॥

सीता की इस हृदय बेधी बात से लछमण को मूर्छा आगई। वह पृथ्वी पर गिर पड़े ॥११ .

सीता ने अचल से हवा कर लछमण को होश कराया और कहा- हे लखन लाल तुम घर जाओ राम जी तुम्हारे लिए चिन्तित होंगे ॥१२॥

जब लछमण सीता को वन में छोड़ कर चले गये तब सीता पृथ्वी पर गिर कर रोने लगीं। सीता का वियोग रुदन सुन कर वन के पक्षी उनके निकट आकर बैठ गये ॥१३, १४॥

सीता के इस क्रदन को सुन कर मुनि बाल्मीक वहाँ आये और सीता को समझाने लगे। हे जगत जननी। तुम धैर्य धारण करो। मैं तुम्हारे लिये कुटी छवा दूंगा ॥१५, १६॥

हे सीता देवी ! तुम चलो। दुख न मानो। तुम मेरी बहन हो। मै सब प्रकार से तुम को सुख दूँगा ॥१७॥

अम्बिका प्रसाद कहते हैं कि जो कोई सीता के इस वियोग को सुनेगा वह अमर हो जायगा और वैकुण्ठ चला जायगा ॥१८॥

अम्बिका प्रसाद आरा में मुखतार थे। इनके समय का ठीक पता नहीं चलता परंतु सम्भवतः जिस समय ग्रिअरसन भोजपुरी पर खोजकर रहे थे उस समय यह अवश्य रहे होंगे। इनके अधिक गीत मुझे शान्त रस के मिले हैं। ग्रिअरसन ने भी इनके गीतों का सग्रह किया है।

(१५)

रोइ रोइ पतिया लिखेलीं सब सखिया।
कब होइहें तोहरे अवनवा हे हरी जी ॥१॥
कवन अइसन चुक भइली हरि जी हमरा से।
तेजि गइलीं मधुबनवा हे हरि जी ॥२॥
पिरिती के रीति कुछु रउरा नाहीं जनलीं।
हइं रउआ जातिके अहिरवा हे हरी जी ॥३॥
पछिली पिरिति करीं कबहूँ इयदिया रे
का कहिके गइलीं कुब्जा घरवा हे हरि जी ॥४॥
अम्बिका प्रसाद दरसन तोहरा से पवलीं।
छोड़िती न रउरी चरनिया हे हरि जी ॥५॥

सब सखियाँ रो रो कर पत्र लिख रही है। हे कृष्ण! तुम्हारा गोकुल मे कब आना होगा। हे हरि जी! हमसे कौन सी ऐसी चूक हुई कि आप इन लोगों को त्याग कर मधुवन में चले गये। ॥१,२,॥

आपने प्रीति करने की रीति को नहीं समझा। आखिर आप जाति के अहीर ही तो हैं ॥३॥

हे हरि! पिछली प्रीति को अब भी तो याद कीजिये कि आप हमसे क्या क्या कह कर मथुरा पुरी कुबजा के घर गये थे ॥४॥

अम्बिका प्रसाद कहते हैं कि सखियाँ कहती हैं कि हे कृष्ण! अगर हम आपके दर्शन पा जातीं तो चरणों को फिर कभी नहीं छोड़तीं ॥५॥

(१६)

मधुपुर मधुपुर हम सुनीला ए उधो जी।
मधुपुर कइसन देसवा ए उधोजी ॥१॥
ओहि मधु पुरवा बसे कुबरी रे ठगिनिया।
से ही कइली हरिजी के टोनवा ए उधोजी ॥२॥
जवना कन्हइया लेइ के निसु, दिन हम बिहरों,
सेहू रे कन्हइया भइले निरमोहिया ए उधो जी ॥३॥
सूर से सइयाँ प्रभु मिलि के बिछुड़ले।
सखि सब विरहे वेआकुल ए उधो जी ॥४॥

सखियाँ कहती हैं—हे उद्धव! मधुपुर मधुपुर हम हमेशा सुना करती हैं। यह मधुपुर कैसा देश है बताइये तो! उस मधुपुरी (की क्यों लोग प्रशंसा करते हैं) वहाँ तो कुबरी ऐसी ठगिन निवास करती है जिसने हमारे हरि जी पर टोना (जादू) कर दिया है ॥१,२॥

हे उद्धव! जिस हरि के साथ हम रात दिन बिहार किया करती थीं वह हरि आज निर्मोही हो गये ॥३॥

सूरदास कहते हैं कि सखियां कहती हैं कि हे ऊधो! हमारे स्वामी हम से मिलकर भी बिछुड़ गये। हम सब सखिया बिरह से व्याकुल हो रही हैं ॥४॥

सूरदास के और भी भजन शान्त रस में मुझे मिले हैं।

(१७)

पिआ पिआ कहि रटेला पपिहरा, जइसे रटेलि विरहिनिया ए हरी जी ॥१॥
स्याम स्याम कहि गोपी पुकारेली, स्याम गइले परदेसवा ए हरी जी ॥२॥
बहुआ विरहिनी ओही पियवा के कारन, ऊहे जो छोड़ेली भवनवा ए हरी जी ॥३॥
भवन छोड़ले पर पिअवा न ताके, बहुअरि करेली सिंगरवा ए हरी जी ॥४॥
अमिका परसाद जो पिया के मैं पइतों, सपने ना छोड़तीं चरनवा ए हरी जी ॥५॥

पपीहा पीउ पीउ कह कर ऐसा रट लगा रहा है। जैसे विरहिणी प्रियतम की रट लगाये रहती है ॥१॥

श्याम श्याम कह कर गोपियां पुकार रही हैं परन्तु श्याम परदेश चले

गये हैं ॥२॥

वह भी उसी अपने प्रियतम के कारण विरहिणी हो रही है जिसने अपना घर छोड़ दिया है ॥३॥

भवन छोड़ देने पर पति प्रियतमा की ओर ताकता तक नहीं परंतु तब भी वह शृङ्गार कर रही है ॥४॥

अम्बिका प्रसाद कहते हैं कि जो मैं प्रिय को इस बार पा जाती तो स्वप्न में भी उनका चरण नहीं छोड़ती ॥५॥

(१८)

जेठ के दुपहरिया क तलफी भभुरिया हो राम ॥
अरे राम—राम जी जे सीता के निकसलनि गरुये गरभ से हो राम ॥ १॥
रोवेलि सीता देई अछुन छुछुन कइ अवरु बिलखि कइ हो राम ॥
अरे रामा के मोरे आगू पीछू होइहैं केइ रे होइहैं धगरिन हो राम ॥२॥
वनवा से निकसेलीं वन तपसिन सीतहिं समुझावेलीं हो राम ॥
सीता ! हम तोरे आगू पीछू होखबइ हमहीं होबइ धगरिनि हो राम ॥३॥
रोवेली सीता देई अछुन छुछुन करि अवरू बिलखि कइ हो राम ॥
हथवा गेडुअवा लिहले रिसि मुनि सीता समुझावे हो राम ॥४॥
सीता हम लाइबि बेल के लकड़िया त रतिया अँजोर करबि हो राम ॥५॥
चइत केर तिथि नौमी त राम जगि रोपलनि हो राम ॥
बिना रे सिता जगि सूना सीता लेइ आवहु हो राम ॥६॥
आगवाँ क घोड़वा बसिठ मुनि पाछावाँ भरत लाल हो राम ॥
रामा अल्हड़े बछेड़वा लखन लाल सीता के मनावन चलले हो राम ॥७॥
पतवा के दोनवा गगाजल पानी हो राम ॥
अरे रामा सीता धोवइँ गुरुजी के पाँव त मथवा चढ़ावेलीं हो राम ॥८॥
अतना अकलिया सीता तोहरे त बुधि करि आगरि हो राम ।
सीता राम के कइने बिसरवलू अजोध्या तेजि दीहलू हो राम ॥६॥
सोनवा के अस आगि तवलनि आगि भूजि कढलनि हो राम ॥
गुरु ! अस कइ राम मोहि डहलनि सपनवाँ ना चित्त मिलइ हो राम ॥१०॥

तोहर कहल गुरु मनवइ अजोधिया कइ जाइबि हो राम ।
गुरु अइसन पुरुस के सनेहिया त विधि न मिलावसु हो राम ॥११॥

जेठ की दोपहरी है। रेत जल रही है। अरे ! इसी समय जिसका गर्भ पूरा हो रहा था ऐसी सीता को राम जी ने घर से निकाल बाहर किया ॥१॥

सीता बिलख बिलख करके फूट फूट कर रो रही हैं और कह रही हैं कि हा राम ! अब मेरे आगे पीछे सहायता देने वाला कौन होगा और कौन मेरे लिये धगरिन बनेगा ॥२॥

वन से वन की तपस्विनी निकलती है और कहती है हे—सीता ! हम तुम्हारे आगे पीछे तुम्हारे साथ रहेंगी और हम धगरिन का काम करेंगी तुम चिन्ता मत करो ॥३॥

तब भी सीता फूट फूट कर रोती ही रहती है उनका बिलखना सुन हाथ में जल पात्र लेकर ऋषि मुनि आये और सीता को समझा कर कहने लगे कि हे सीता चिंता न करो हम बेल की लकड़ी लाएंगे और रात में जला-देंगे ॥४,५॥

चैत की नौमी तिथि को राम ने यज्ञ का निरूपण किया। राम ने कहा अरे ! बिना सीता के मेरा यह यज्ञ सूना हो रहा है। सीता को जाकर कोई ले आओ ॥६॥

आगे के घोड़े पर वशिष्ट मुनि सवार हुए। पीछे के घोड़े पर भरतलाल आसीन हुए और अलहड बछेड़ पर लखनलाल सवार होकर सीता को मनाने चले ॥७॥

सीता ने पत्तों का दोना बनाया। उसमें गंगा जल भर लाईं और गुरु जी के पांव धो कर चरणामृत लिया ॥८॥

वशिष्ट मुनि ने कहा—हे सीता ! तुमतो इतनी बुद्धिमती हो। हम तुम्हारी प्रशंसा करते हैं। किन्तु तुमने रामचन्द्र को क्यों भुला दिया और अयोध्या को क्यों त्याग दिया ॥९॥

सीता ने कहा—हे गुरु जी ! राम जी ने मेरी अग्नि-परीक्षा ली आग में जलाकर भी उन्हें प्रतीति न हुई। हे गुरु जी ! राम ने ऐसा मुझे दुःख दिया है

कि अब स्वप्न मे भी मेरा चित उनमे नहीं मिलेगा। परंतु तब भी हे गुरु ! मैं आपका कहना मानूँगी। अयोध्या को जाऊँगी। परतु हे गुरु विधि से यही प्रार्थना रहेगी कि ऐसे पुरुष की प्रीति को वह फिर न दे ॥१०,११॥

इसी भाव को आगे के सोहर और जँतसार गीत मे भी दिया गया है। और वहाँ भी रसकी ऐसी ही पुष्टि की गई है। इस गीत के पद पद में करुणा भरी है। सीता का अन्तिम जीवन कितना करुणा जनक रहा। वे गर्भवती अकेली वन में छोड़ दी गई ? यह नहीं विचार किया गया कि उस सती पर क्या बीतेगी ? यदि पत्नी की हैसियत से वे राम के सामने रजक वाक्य को सुन कर ही त्याज्य समझी गई तो क्या राम राज की एक प्रजा होने की दृष्टि से उन के ऊपर लगाये गये इस अभियोग की बिना जोच किए ही फैसला कर देना राम के न्याय को कलङ्कित नहीं करता ? और फिर उस पर भी सीता की यह सहन-शीलता कि राम के प्रति एक कुवाक्य नहीं। गुरु की आज्ञा शिरोधार्य्य कर अयोध्या जाने तक को तैयार हो जाना। पर दिल की कसक गुरु से कैसे छिपातीं ?

"गुरु ऐसन पुरुस के सनेहिया त विधि ना मिलावहु हो राम।"

कितना संयम है—कितनी वेदना और व्यथा है ?

(१६)

मोरँग मोरँग मों सुनीला मोरँग न जानी हो राम।
अरे रामा ! मारा पिया चले मोरँग देसवा त हम कइसे जीअबि हो राम ॥१॥
केकरा तू सउँपेल अन धन केकरा त लछिमी हो राम।
अरे पिया केकरा तू सउँपेल नौरँग बगिया त तू चलल मोरँग हो राम ॥२॥
बाबा के सउँपली त अन धन माई जी के लछिमा हो राम ॥
भइया के सउँपली मों नवरंग बगिया हम धनि मारग देस हो राम ॥३॥
देइ गइलें चनन चरखवा ओठगन क मचिया हो राम।
आरे पिया ! देइ गइले अपना दोहइया धरम जनि छोड़िहउ हो राम ॥४॥
घुन लागे चनन चरखवा ओठगन क मचिया हो राम।
आरे पिया ! छूटे चाहे तोहरी दोहइया धरम चाहे डालइ हो राम ॥५॥
मन के बिरोगिनि तिरियवा त सासु जी से पूँछइँ हो राम ॥

सासू ! बिना रे पुरुस के तिवइया उमिरि कइसे बितिहइँ हो राम ॥६॥
तुलवा के अँगिया सिआवहु छतीसो बँदवा लावहु हो राम ।
बहुअरि ! जिअरा में राखहु बियोग बएस बीति जइहें हो राम ॥७॥
ऊपरा जे लवलीं बेइलिया त निचवाँ सदाफल हो राम ।
हमरे हरिजी के लवलि बेइलिया बेइलि कुम्भिलाइलि हो राम ॥८॥
आवहु सखिया सलेहरि मिलि जुलि आवउ हो राम ।
हमरे हरिजी के लवलि बेइलिया बेइलि हम सींचबि हो राम ॥९॥
बेइलि त सिंचली-सिचवली बेइलि तर ठाढि भइलि हो राम ।
आरे रामा ! आइ गइले हरि के सुरतिया त ठाढि मुरुछाइ गइली हो राम॥११॥
बरहें बरसिवें लवटले त दुअरे खटियवा डललनि हो राम ।
आपनि मइया बोलाइ भेद पूछलें धनिया कवन रग हो राम ॥११॥
तोर धनि अँगवा के पातरि त मुहवाँ के पीअरि हो राम ।
बेटा बड़े रे घरे के बिटिअवा दूनो कुलवा रखली हो राम ॥१२॥
कबहूँ न हँसि के पइठली बिहँसि नाहीं निकसेलि हो राम ।
बेटा महले दिया नाहीं बरली निदरिया नाहीं सूतलि हो राम ॥१३॥
अब धनि हँसि घरवा पइठहु बिहँसि के निकसहु हो राम ।
मोरि धनिया महले दिया लेसहु सोवहु सुख निदिया हो राम ॥१४॥

विरहिणी कह रही है। मैं मोरँग मोरँग तो सुना अवश्य करती हूँ पर नहीं जानती कि मोरँग कैसा है। हा राम। मेरे पति मोरँग देश चले। मैं कैसे जीवित रहूंगी।

उसने कहा—हे प्रिय ! तुमने किस के संरक्षण में अपना अन्न धन और लक्ष्मी (मवेशी वगैरह) किया और किसकी देख रेख में अपनी नए लगाये नौरंगी के बाग को छोड़ा कि आप मोरग देश चले ? ॥२॥

पति ने कहा—मैं ने पिता जी के जिम्मे तो अन्न और धन दिया। भाई को माल मवेशी और अपनी माता को अपनी नई लगायी हुई नौरगी की वाटिका (यहाँ श्लेष है— नयी लायी हुई पत्नी से तात्पर्य्य है) को सौंपदिया है। और तब मोरग देश जा रहा हूँ ॥३॥

हाय प्रियतम! ने मुझको कातने के लिये एक चन्दन का चरखा और लेटने के लिये नचिया देकर प्रस्थान किया। और अपनी शपथ देकर कहा कि अपना धर्म न छोड़ना ॥४॥

हा! अब चन्दन के चरखे को घुन लग रहा है और लेटने की नचिया भी अब टूट रही है। हे प्रियतम अब तुम्हारी शपथ भी टूटना चाहती है और मेरा धर्म डोलने लगा है ॥५॥

इन विचारों के साथ मन में विरहाग्नि वहन करने वाली विरहिणी अपने सास से पूछती है कि हे सास! बताओ बिना पुरुष के जो स्त्री हो वह अपनी आयु कैसे बितावे ॥६॥

सास ने कहा—हे बहू! फूल कपड़े की अँगिया (कंचुकी) सिलाओ और उसमें छत्तीस बंद लगाओ। और हे बहू! सदा मन में पति के वियोग का स्मरण किया करो तुम्हारा समय बीत जाएगा ॥७॥

ऊपर जो हरि जी ने बेइल रोपी थी तथा नीचे जो उन्होंने सदाफल का वृक्ष लगाया था वह उनकी प्यारी बेइल आज कुम्हलाने लगी है। हे सखी सहेली! आओ मिल जुल कर चलनी और और हरि जी की लगाई हुई उस बेइल की लता हम सींच दें ॥८,९॥

विरहिणी ने बेइल की लता को सींचा और सखियों से सिंचवाया। फिर आप उसी के निकट खड़ी हुई। उसे पति की सुधि आई और वह खड़े ही खड़े गिरकर मूर्छित हो गई ॥१०॥

बारह वर्षों के बाद पति लौटा तो दरवाजे पर खाट डाल कर बैठा और अपनी माता को बुलाकर चुपके चुपके भेद लेने लगा कि उसकी स्त्री किस रंग भाव में है ॥११॥

माता ने कहा—हे पुत्र तुम्हारी स्त्री शरीर से तो दुबली हो गई है। मुँह का रंग पीला पड़ गया है। वह बड़े घर की कन्या है। उसने दोनों कुलों की रक्षा की है ॥१२॥

वह न तो कभी हँसकर घर में प्रवेश करती है और न कभी मुस्कराती हुई घर से बाहर होती है। हे पुत्र! उसने अपने घर में दीप नहीं जलाया और

न कभी पूरी नींद भर सो ही सकी ॥१३॥

पति ने प्रसन्न होकर कहा—हे धनि। अब तुम हँस कर घर में पैठो और मुस्कराती हुई बाहर निकलो। अपने महल में दीप जलाओ और (मेरे साथ) सुख की नींद सोओ ॥१४॥

इस गीत में एक विरहिणी नायिका का कितना करुण चित्रण है। पति के जाते समय नायिका पूछती है कि गृह कार्य आप किस किस को सौंप कर जाते हैं। अपना प्यारा मीठे नींबू का बाग किसकी देख रेख में छोड रहे हैं। इससे उसका अभिप्राय था कि इससे पति रह जाय। पर वे न ठहर सके। जाते समय पति ने उसे कातने के लिए चरखा और बैठने को मचिया दिया और अपनी शपथ देकर धर्म न छोड़ने की प्रार्थना की। बारह वर्ष बीत गये—चर्खा और मचिया में घुन लग गया। तब विरहिणी घबड़ा कर डर गई कि अब कहीं धर्म भी न छूट जाय। उसने सीधे सास के पास जाकर अपनी व्यग्रता प्रकट कर पूछा कि बिना पति के मैं स्त्री जीवन किस तरह बिताऊँ? सास ने जो विरह बिताने का उपाय बताया वह कितना करुण और कितना व्यवहार्य्य है—बन्ददार अँगिया पहनो और हृदय में सदा पति वियोग का अनुभव किया कर और पति की लगाई हुई बेइल आदि पुष्प की सेवा करो। पत्नी ने ऐसे ही समय को काट दिया। पति आया और उसने माता से पत्नी के सम्बन्ध में पूछ ताछ की। माता ने विरहिणी का कितना सुदर चित्र खींचा है कि सुनते ही करुणा आ जाती है। तुम्हारी स्त्री शरीर से पतली और मुँह से पीली हो गई है। "हे बेटा! वह बडे कुलीन घर की कन्या है। उसने दोनों कुलों की रक्षा की। कभी हँस कर घर में नहीं समाई और न मुस्करा कर बाहर ही निकली। उसने जैसा कि कुलटाएँ किया करती हैं। अपने महल में कभी दीप तक नहीं जलाया और न वह नींद भर कभी सोई ही।" 'कितना मार्मिक चित्रण है।'

(२०)

मोरे पिछुअरवा धनि बँसवरिया से।
जुड़ि जुड़ि आवेली बयरिया हो राम ॥१॥
तेहि तर मोर हरी सेजिया बिछवलें।

आईजा तू हमरी सुनरिया हो राम ॥२॥
कइसे के आवों हरी तोहरी सेजरिया रे,
सासु घरवा बाड़ी बड़ी दारुनि हो राम ॥३॥
अतना बचनिया सुनि पिअवा बढैता रे,
घोड़े पीठि भइलें असवरवा हो राम ॥४॥
जाइ के उतरलनि ओही मधुवनवाँ रे ,
कइसे पाईं हरि के दरसवा हो राम ॥५॥
मचियहि बइठलि सासु हो ! बढइतिन,
कवने ओढरे बनवा जाऊँ हो राम ॥६॥
छोरहु न बहुअरि ! चटकी चुनरिया रे,
पहिरहु फटही लुगरिया हो राम ॥७॥
हथवा के लीह बहुअरि कचरी डलियवा से,
धई लीह हेलिनी के भेसवा हो राम ॥८॥
खोरिया बहारेहु अवरु घोड़सरिया रे,
हरि के बइठका बहारेहु हो राम ॥९॥
मोढवा बइठल हरि देखले हेलिनिया रे।
मनहिं त मने मुसुकइलनि हो राम ॥१०॥
कहँवा के तूहू हऊ सुनरि हेलिनिया रे,
कवन नगरिया के जइबू हो राम ॥११॥
मथुरहिं के हम हई जी हेलिनिया से ,
गोकुला नगरिया हम जाइबि हो राम ॥१२॥
तब त तूँ बहुअरि पनवा ना कुँचलू ,
हमरी सेजरिया नाहीं सुतलू हो राम ॥१३॥
अब कइसे बहुअरि रूप बदलू ,
हेलिनि बनल बनवा अइलू हो राम ॥१४॥
तब त जे रहलीं सइया बारि रे लरिकवा,
अब भइलीं बारी से बयसवा हो राम ॥५॥

मोरे पिछुअरवा सोनरा भइया मितवा रे,
सोरहो सिंगार गढ़ु गहना हो राम ॥१६॥
मोरे पिछुअरवा रँगरेज भइया मितवा रे,
धनि जोगे रँगहु चुनरिया हो राम ॥१७॥
मोरे पिछुअरवा कहँरा भइया मितवा रे,
डँड़िया फनाइ घरवा चलहु हो राम ॥१८॥

मेरे पिछवारे बाँस की घनी कोठ है। उससे शीतल हवा आती है। उसके नीचे मेरे प्रियतम ने सेज बिछा कर कहा—'हे मेरी ! सुन्दरी यहाँ चली आओ।' ॥१॥

सुन्दरी ने कहा—'हे स्वामी मैं आपकी सेज पर वहाँ कैसे आऊँ। यहाँ सास का बड़ा कठोर शासन है। वह घर में ही इस समय है' ॥२,३॥

इतनी बात के सुनते ही पति रूठ कर घोड़े पर सवार होकर मधुबन में जा ठहरा। हा ! अब प्रियतम का कैसे दर्शन मिले ? ॥४,५॥

विरहिणी ने मचिया पर बैठी हुई अपनी पूज्य सास के पास जाकर कहा—'हे सास ! मैं किस बहाने से स्वामी के पास मधुबन में जाऊँ' ? ॥६॥

सास ने कहा—'हे बहू ! तुम अपनी चटकीली नई चूनर को बदल कर फटी लुगरी धारण करो और हाथ में टोकरी और झाड़ू लेकर हेलिन का रूप बना लो। वहाँ इस रूप में जाकर पहले गली कूचा बहारना, फिर घोड़सार बहारना और तब अपने हरि की बैठक को बहारने जाना' ॥७,८,९॥

मोढ़े (एक तरह की कुर्सी) पर बैठा हुआ स्वामी अपनी स्त्री को हेलिनि के रूप में देखकर मन ही मन मुस्कराया। उसने पूछा—'हे हेलिनि ! तुम कहाँ की रहनेवाली हो और किस नगर को जाओगी ?'॥१०,११॥

स्त्री ने कहा—'मैं मथुरा की हेलिनि हूँ। गोकुल नगर जाऊँगी।' स्वामी ने कहा—'हे मेरी प्यारी। तब तो तुमने पान नहीं खाया था मेरी सेज पर पाँव तक रखने से इनकार किया था अब तुमने कैसे यह रूप बनाया ? कैसे हेलिनि का स्वाँग बना कर यहाँ तक चली आई' ? ॥१२,१३,१४॥

स्त्री ने कहा—'तब तक तो मैं अभी कच्ची अवस्था की होने के कारण

भोली थी, किन्तु अब तो मेरा यौवन जा रहा है' ॥१५॥

पति इस उत्तर से प्रसन्न होकर कहने लगा—'हे मेरे घर के पीछे वाले मित्र सोनार तुम मेरी स्त्री के श्रृङ्गार योग्य गहने बना दो और हे मेरे घर के पीछे रहनेवाले मित्र रंगरेज तुम मेरी धनि (पत्नी) के पहनने लायक चूनर रँग दो। मेरे घर के पीछे रहनेवाले मेरे मित्र कहार तुम मेरी प्यारी को घर ले चलने के लिए पालकी तैयार करो' ॥१६,१७॥

इस गीत में सबसे बड़ी शिक्षा की एक ही बात है और वह नारी जीवन का आदर्श है। पति के रूठने पर जो पत्नी भी मानकर बैठ रहती है और इस बात की प्रतीक्षा करती हैं कि पति उसे मनावे, वह क्यों उसे मनाने जाय। उसे यह समझना चाहिये कि सयम और सहयोग से ही दाम्पत्य जीवन सफल और सुखी होता है। उसके अनाचार से नहीं जिससे जब गलती हो क्या पति क्या पत्नी उसे तब आगे बढ़कर दूसरे को अनुकूल बनाना अपना परम कर्तव्य समझना चाहिये। पत्नी युवती थी ही। फिर सास का कठिन शासन भी था। लज्जावश पति के बुलाने पर उसका न जाना कोई उतना अस्वाभाविक नहीं था। फिर भी पति जो रूठ गया और पत्नी ने अपनी गलती महसूस की तब उसने हेलिनि का रूप बनाकर उसे जाकर मनाया। इस कृत्य से पति का प्रेम कितना बढ़ गया।

(२१)

बहेले बयारि पुरुवइया त खिकियो ना डोलेले हो राम ॥
अहो रामा, मोर परभू गइले बिदेसवा कइसे जियरा बोधउँ हो राम ॥१॥
अँगुरिन मँगिया निकरिओं नयन भरि कजरा हो राम ॥
अहो रामा, असकई जियरा बुझइबों कि जस हरि घरवें हो राम ॥२॥
होइतों मों जल क मछरिया जलहीं बीच रहितों हो राम ॥
अहो रामा, मोरा हरि अइतें असननवाँ चरन चूमि लेतीं हो राम ॥३॥
होइतों मों घरे के घरनिया जाहाँ प्रभु रमि रहे ले हो राम।
पोइतों मों घीउ के लुचुइया त दूध के जउरिया हो राम ॥४॥
सठिया कुटिय भात रिन्हितों मुँगिय दरी दलिया हो राम ॥
अहो रामा, मारे प्रभु अइतें जेवनवाँ नयन भरी देखितों हो राम ॥५॥

होइतों मैं घरके लउँड़िया घर ही बीचे रहितों हो राम ॥
अहो रामा, मार प्रभू अइतें सेजरिया त सेजिया बिछइतों हो राम ॥६॥

कुल मर्य्यादा से जकड़ी हुई प्रेम से विकल विरहिणी को कितनी स्वाभाविक कल्पना है। पति मिलन की उत्कण्ठा कितनी गहरी है। यह कल्पना परिस्थिति और समय के अनुकूल होते हुए भी कितनी तीव्र है। संस्कृत और हिन्दी तथा अन्य भाषा के कवियों ने भी इस भाव को लेकर अनेक कवितायें की हैं। रसखान ने इसी भाव को लेकर कहा है:—

मानुष हौं तो वहीं रसखानि, बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जौ पसु हौं तो कहा बसु मेरो, चरौंनित नन्द की धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तो वहा गिरि कौ, जो धरयौ कर छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं, मिलि कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन॥

संस्कृत के किसी कवि ने कहा है :—

कदा वृन्दारण्ये विमल यमुना तीर पुलिने,
चरत श्री कृष्ण हलधर सुदामादि सहित।
अये कृष्ण स्वामिन् मदन मुरलीवादन विभो!
प्रसीदेत्याक्रोश निमिषमिव नेष्यामि दिवसान्॥

लेकिन इन उद्धरणों में तीव्र अभिलाषा पाण्डित्य चातुरी के साथ प्रकट की गई है। इससे कुछ कृत्रिमता अवश्य आ गई है पर इस गीत में तो वही बातें व्यक्त हैं जिनको अपनी सूनी घड़ियों में, उन्मीलित नेत्रों से लोक लाज कुल मर्य्यादा की शिकजा में जकड़ी हुई विरहिणी पति की चिंता के समय सोच रही है। "पूर्वी हवा की गति इतनी मद है, कि कहीं सींक भी नहीं हिल रही है। हमारे प्रभु विदेश गये किस तरह अपने हृदय को समझाऊँ। उगलिओं से माँग बनाऊँगी। आँखों में काजल लगाऊंगी। प्रेम की बातों से प्यारे को सम्बोधित करूगी और हृदय की कसक मिटाऊगी, जैसे कि वे घर पर ही हों। मैं जल की मछली होती तो जल में ही रहती और जब हमारे प्रियतम स्नान करने आते तो उनके चरणों को चूम लेती। उस घर की गृहिणी होती जहाँ हमारे प्रभु विदेश में ठहरे होते तो मैं साठी धान कूट कर भात और मूँग दलकर दाल बनाती

औह मेरे प्रभु जब जेवनार करने आते तो उनको आखें भर देख लेती। मैं उस घर की कौड़ी होती तो मैं अपने घर न जाकर किसी बहाने उसी घर के बीच रह जाती और जब हमारे प्रभु शयन गृह में आते तो मैं तुरंत सेज बिछा देती। पाठक ! अपढ़ कवियित्री की इस विरहानुभूति का अनुभव करें और महा कवि देव की उस घनाक्षरी के पाण्डित्य पर ध्यान दें जिसमें उन्होंने छत्तीसों सञ्चारी कह सुनाया है जिसका अन्तिम चरण "तबहीं सो देव बाल बकति बिकानी सी" है इसमें जो स्वाभाविकता है वह मेरे विचार में तो न संस्कृत के उक्त श्लोक में है न रसखान की ऊपर की सवैया में है और न महा कवि देव की इस घनाक्षरी में ही है।

(२२)

सभकें त पकई लें पुरिया कुँअर के जऊरिया ए राम।
ओही रे रसोइया बिख भइलें त कुँअर विदेस गइलें हो ॥१॥
सासु मोर बोलेलीं बिरहिया त केकर कमइया खइबू ए राम।
ससुरु के जनमल लखन देवरू उनके कमइया खइबों हो ॥२॥
उहो देवरू दिहलें जवबिया जे हमरो बिअहिया बाड़ी ए राम।
काँख तर लीहनीं लुगरिया त बाबा देसवाँ चलि भइलीं हो ॥३॥
सभवा बइठल तुहूँ बाबा ! त बिपतलि धियरिया हउवे ए राम।
टूटलि मड़इया हम के दी ती त बिपती गँवइतीं नु हो ॥४॥
टुटही मँड़इया बेटी टुटि गइली जाहु न मयरिया आगे ए राम॥
आमा ! फटही लुगरिया हमकें देहू त बिपति गँवइतीं नु हो ॥५॥
फटहीं लुगरिया बेटी फाटि गइली जाहु न भईया आगे ए राम॥
भइया ! बीता एक जगहिया हमके देत न बिपती गँवइतीं नु हो ॥६॥
बीता एक जगहिया जोताइ गइली जाहु बहिनि भउजी आगे ए राम।
भउजी ! पछिली टिकरिया हमके देतू त बिपति गँवइतीं नु हो ॥७॥
जवन टिकरिया ननदी तुहें देबों से हो मोर लइका खइहें ए राम।
जवने डगरिया तुहूँ अइलू तवने धरि चलि जाहु नु हो ॥८॥
एक बने गइलीं दूसर बने तीसरें त ठाढ भईली ए राम।

बन में से निकसे बघिनिया त मोर जियरा भछि लेहु हो ॥६॥
जवने डगरिया तुहूँ अइलू तवने धइले चलि जा ए राम।
तोरे बिरहा के दगलि जे देहिया मों भछि के का पाइबि हो ॥१०॥
बरहे बरिस मोर हरि अइले गहना चुनरिया लेले ए राम।
पहिरि ओढिय धनि रोवे लगलीं पिया बोलें चल नइहरवा नु हो ॥
आगि लागे पियवा हो ओहि नइहरवा विपति केहु ना सहाइ ए राम ॥११

विरहिणी अपनी सखी से कह रही है—'मैंने सब के लिये पूरी बनाई पर कुँअर के लिये पूरी के साथ (चुपके से) खीर भी पका ली थी। पर हा! वह रसोई भी मेरे लिये विष तुल्य हो गई क्योंकि मेरे प्रिय बिना खाये ही विदेश चले गये' ॥१॥

मेरी सास ताने मारती है। कहती है यहाँ किसकी कमाई खाओगी। मैंने धीरे से कहा—मेरे ही ससुर के पैदा हुए लखनलाल देवर हैं। मैं उनकी ही कमाई खाऊँगी ॥२॥

परन्तु हा! उस देवर ने भी अपने ऊपर मेरा भार लेना अस्वीकार कर दिया और उसने कहा—हमारी भी व्याही स्त्री है। हा राम! (तब विवश होकर) मैं अपनी लुगरी (फटी साड़ी) बगल में लेकर अपने बाबा के देश (मायके) चल पड़ी ॥३॥

मैंने कहा—सभा में बैठे मेरे पूज्य पिता। मैं विपत्ति की मारी हुई (यहाँ बिपतल शब्द ध्यान देने योग्य है। लप्रत्यय लगा कर विपत्ति से बिपतल बना है अर्थात विपत्ति की मारी हुई) तुम्हारी कन्या हूँ। वह टूटी फूटी कुटिया मुझे दे देते तो उसमें रहकर मैं अपनी विपत्ति बिताती ॥४॥

पिता ने कहा—हे बेटी! मेरी वह टूटी कुटिया टूट गई। तुम अपनी माता के पास जाओ। स्त्री ने अपनी मा के पास जाकर कहा—हे मा। मुझे अपनी फटी लुगरी देती तो मैं अपनी विपत्ति के दिन काट लेती ॥५॥

माता ने कहा—हे बेटी! मेरी फटी साड़ी अब बिलकुल फट गई। वह मेरे पास न रही। तुम अपने भाई के पास जाओ। वह अपने भाई के पास जा कर बोली—हे भाई! यदि तुम मुझे एक बीता जगह दे देते तो मैं अपनी

विपत्ति के दिन बिता लेती ॥६॥

भाई ने तुरत जवाब दिया—हे बहन ! वह एक बीता ज़मीन जो तुम्हें दूँगा उसे जुतवा कर स्वयं मैं खेती कराऊँगा। तुम अपनी भावज के पास जाओ। स्त्री ने अपनी भावज के पास जाकर कहा—हे भौजी ! मुझे अपनी रसोई से पिछली टिकरी (वह छोटी रोटी जो अन्त में बचे परथन की सानकर पका ली जाती है) यदि तुम दे देती तो मैं अपने दुर्दिन बिता लेती ॥७॥

भावज ने उत्तर दिया—हे ननद। जिस टिकरी को मैं तुम्हें दूँगी उसे मैं अपने बच्चों को खिलाऊँगी। तुम जिस मार्ग से आई हो उसी मार्ग से अपने घर चली जाओ ॥८॥

माता पिता और भाई सबने साफ साफ कहते संकोच माना अतः सब अपने पास से दूसरे के पास उसे भेजते रहे। किसी से साफ कहते नहीं बना। पर भावज ने उसे साफ साफ उत्तर देकर वापिस जाने को कहा। जिस क्रम से वार्ता हुई है उससे ज्ञात होता है कि पुत्र वधू का ही घर में एकाधिपत्य था।

स्त्री ने एक वन में प्रवेश किया, दूसरे को पार किया और अन्त में तीसरे वन में जाकर खड़ी हो गई। वन में से बाघिन निकली और उसे सम्बोधन करके उसने कहा—हे बाघिन तू मुझे मार कर खा लो ॥९॥

बाघिन ने कहा—'हे स्त्री ! तुम जिस मार्ग से आई हो उसी से वापिस जाओ। विरह से जले तुम्हारे शरीर को भक्षण करके मैं क्या पाऊँगी' ॥१०॥

हे सखी ! बारह वर्ष पर मेरे हरि जी जब लौटे तब मेरे लिये गहना और चूनर लाये। मैं जब गहना और चूनर पहन कर खड़ी हुई तब हे सखी ! मैं रोने लगी। पति ने कहा—हे धनि ! तुमको यहाँ अकेले दुख मालूम होता है। चलो तुम्हें तुम्हारे मायके से घुमा लाऊँ। स्त्री ने कहा—हे प्रियतम ! उस मायके में आग लगे। मैं वहाँ नहीं जाऊँगी। विपति का साथी कोई नहीं होता ॥११॥

पति के न रहने पर हिन्दू समाज में स्त्री की कैसी दयनीय दशा हो जाती है यह इस गीत से स्पष्ट है। पुरुष कवि इसकी कल्पना ही भर क

सकता है पर स्त्री कवियित्री ने तो सब अनुभव कर अपना उद्‌गार प्रगट किया है। पति के विदेश जाने पर सास का ताना मारना और पूछना कि किसकी कमाई खायेगी और बहू का यह उत्तर देना कि स्वसुर के पैदा किए छोटे देवर तो हैं ही उन्ही की कमाई खाऊगी, फिर देवर का भी जवाब यह कह कर दे देना कि अब उसकी भी स्त्री है और इसके बाद मायके और वन के वर्णन कितने स्वाभाविक और करुण हैं। कवियित्री अन्त मे अतिशयोक्ति कहने में भी हिन्दी और उर्दू कवियों से पीछे नहीं रही है। उसके इस विरह वर्णन में ज़ौक और शंकर की अतिशयोक्ति की शोखी भले ही न हो परतु उसके हृदय की सादगी और सीधापन तथा कल्पना की सुकुमारता कम सुदर और कम रसोत्पादक नहीं है। देखिये ज़ौक साहब कहते हैं —

क्या नजाकत है कि आरिज उनके नीले पड़ गये।
हमने तो बोसा लिया था ख्वाब मे तस्वीर का॥

ज़ौक

नाथूराम शकर जी कहते हैं.—

"शकर नदी नद नदीसन के नीरन की
भाप बन अम्बर तें ऊँची चढ जायगी।
दोनों ध्रुव छोरन लौं पल में पिघल कर
घूम घूम धरनी धुरी सो बढ जायगी॥
झारेंगे अँगार ये तरनि तारे तारापति
जारेंगे खमण्डल में आग मढ जायगी।
काहू विधि विधि की बनावट बचैगी नाहि
जो पै वा वियोगिनी की आह कढ जायगी॥"

'शकर"

(२३)

ननदा भउजिया खेलेली सुपेलिया नू रे की।
आ रे भउजी बोलेली बिरहिया नु रे की।
अरे इहे रे चलनिया डोम घर जइबू नू रे की॥१॥

एतना वचन ननदी सुनहू ना पवली नू रे की ।
ननदी चलि भइली गिरिह धवरोहर नू रे की ॥२॥
आरे होत कोई परभू जी के मितवा नू रे की ।
वेगे खबरिया पहुँचाइत नू रे की ॥३॥
गलिया त गलिया फिरेला डोमवा नू रे की ।
हम तोहरे परभू जी के मितवा नू रे की ॥४॥
वेगि खबरिया पहुँचइवों नू रे की ।
तोहरे त बाड़े रानी माटी धवरोहर नू रे की ।
हमरे त बाडे ईंट धवरोहर नू रे की ॥५॥
आपन गहनवा काढ़ि बान्हि लेउ नू रे की ।
रानी पोखरा के पिंड़िया चलि आवहु नू रे की ॥६॥
एक वने गइली दूसरे वने गइली नू रे की ।
आरे भेंट भइली गउवाँ चरवहवा नू रे की ॥७॥
सुनहु न मोर भइया गोरू चरवहवा नू रे की ।
भैया ! कहाँ बाटे डोम धवरहर नू रे की ॥८॥
मो तोसे कहिला रनियाँ ये रनियाँ नू रे की ।
रनियाँ इहे हउए डोम धवरहर नू रे की ॥९॥
गइली जे रनियाँ अँगना बीच ठाढ भइली नू रे की ।
आरे बइठे के बाँस के छिलकवा नू रे की ॥१०॥
मैं तोसे पूछेलों डोमवा नू रे की ।
डोमवा कहाँ पवले अइसन रनियवाँ नू रे की ॥११॥
पहिरू न रनियाँ रे दूनो कान तरिवन नू रे की ।
वेचि आउ सुपवा सुपेलिया नू रे की ॥१२॥
पुरुव वेचिहे रनियाँ पच्छिम वेचिहे नू रे की ।
हरदी नगरिया मति वेचिहे नू रे की ॥१३॥
पुरुव छोड़ली रानी पच्छिमो नू रे की ।
रानी चलि भइली हरदी नगरिया नू रे की ॥१४॥

गलिया के गलिया फिरेली डोमिनियाँ नू रे की ।
केहू लिही सुपवा मउनियाँ नू रे की ॥१५॥
अपने महलिया चढि रजवा निरखे नू रे की ।
हम लेबों सुपवा मउनिया नू रे की ॥१६॥
ठीकहि मोलवा बतइहे डोमिनया नू रे की ।
ठीके ठीके मोलवा बताइब रजवा नू रे की ॥१७॥
मउनी के मोल ननदि जी के झुलवा नू रे की ।
सुपली के मोल राजा हाथ के रुमलिया नू रे की ॥१८॥
एतना बचन राजा सुनइि ना पवले नू रे की ।
आरे डोमवा के धई लेइ आवहु नू रे की ॥१६॥
आइल डोमवाँ देहरिया चढि बइठल नू रे की ।
आरे नइ नइ करेला सलमिया नू रे की ॥२०॥
ठीकहिं ठीक बतलइहे डोमवाँ नू रे की ।
हमरे हीं जोग रानी बाड़ी नू रे की ॥२१॥
ठीके ठीक बतलइबों राजा जी नू रे की ।
रउरे जोग रानी नाहीं बाड़ी नू रे की ॥२२॥
जूठ मोर खइली पीठि लागि सुतली नू रे की ।
राजा रउरे जोगे रानी नाहीं बाड़ी नू रे की ॥२३॥
एतना वचन राजा सुनही न पवले नू रे की ।
आरे डोमिनि धइ के मँगवले नू रे की ॥२४॥
अइली डोमिनिया अँगन बिच बइठलि नू रे की ।
ठीके ठीके बतिया बतइहे डोमिनिया नू रे की ॥२५॥
हमरे लायक रानी बाड़ी नू रे की ।
ठीक ठीक बतलइबों राजा जी हो नू रे की ।
राजा रउरे जोगे रानी बाड़ी हो नू रे की ॥२६॥
जूठ नाहीं खइलीं हो पीठि लागि नाहीं सुतली नू रे की ।
राजा रउरे जोग रानी बाड़ीं नू रे की ॥२७॥

जउँ तुहूँ रनियाँ रे जूठ नाहीं खइलू नू रे की ।
रनिया हमरे आगे देहुन परीछवा नू रे की ॥२८॥
जउँ तुहूँ अंगिया सत के होइह नू रे की ।
आगि तिल नाहीं जरे मोर देहियाँ नू रे की ॥२९॥
लहकल अंगिया तलफत करहिया नू रे की ।
आइ ताही बीच ठाढ़ि सती रनियाँ नू रे की ॥३०॥
गाँव के बाहर रजवा पोखरा खनवले नू रे की ।
आरे ताही बिच डोम भठीअवले नू रे की ॥३१॥

ननद भौजाई दोनों सुपली मौनी खेल रही हैं । भावज ने ननद के विरह को लक्ष्य करके ताना मारा । कहा हे ननद ! इस चाल चलन से तुम डोम के घर जाओगी ॥१॥

इतना व्यंग सुनते ही ननद ऊपर छत वाले घर में रुष्ट हो कर चली गई ॥२॥

वहाँ से उसने पुकार कर कहा—अरे ! मेरे प्रभुजी का कोई मित्र होता तो वहाँ उनके पास मेरा सन्देशा पहुँचाता ॥३॥

गली गली डोम फिरता है । उसने कहा—मैं तुम्हारे प्रभुजी का मित्र हूँ । हे रानी ! मैं शीघ्र वहाँ खबर पहुँचा दूँगा । तुम्हारा धौरहर तो माँटी का बना है । मेरे पास तो पक्की ईंट का धौरहर है ॥४,५॥

तुम अपना गहना निकालकर बाँध लो और तालाब के पास आओ ॥६॥

(प्रिय मिलन की उत्कण्ठा में ननद डोम के बहकावे में आ गई । वह घर से निकल पड़ी ।) वह डोम के साथ एक बन में गई । फिर दूसरे वन में पहुँची । वहाँ गाँव के चरवाहे से उसकी भेंट हुई । उससे उसने पूछा—हे भाई उस डोम का धौरहर कहाँ है ? ॥७,८॥

चरवाहे ने कहा—हे रानी ! मै कहता हूँ सुनो । यही डोम का धौरहर है ॥९॥

रानी घर के भीतर प्रवेश करके बीच आँगन में खड़ी हुई तो वहाँ

उसको बैठने के लिये बाँस के छिलके मिले ॥१०॥

चरवाहे ने पूछा—अरे डोम ! मै तुमसे पूछता हूँ तुम ऐसी रानी कहाँ पाये ?॥११॥

डोम ने कहा—हे रानी ! दोनों कानों मे तुम तरिवन (तरकी) पहन लो और सुपली मौनी ले जाकर बेच लाओ। पूर्व दिशा में बेचना, पश्चिम दिशा भी जाकर बेचना, परन्तु हरदी नगर में जाकर मत बेचना ॥१२,१३॥

रानी न पूर्व गई और न पश्चिम ही गई। वह सीधे हरदी नगर को चली गई। वहाँ डोमिन गली गली घूम कर कहने लगी—कोई सूप और मौनी (बाँस की छोटी चँगेली) लेगा ? ॥१४,१५॥

अपने महल के ऊपर चढ़ कर राजा ने उस डोमिन को देखा और कहा—अरे ! मै सुपली मौनी लूँगा ॥१६॥

डोमिन से राजा ने कहा—हे डोमिन ! तुम ठीक ठीक कीमत बताना। डोमिन ने उत्तर दिया—हे राजा ! मैं ठीक ठीक दाम बताऊँगी। मौनी का मोल तो ननद जी की कुरती है और सूप की कीमत राजा के हाथ की रुमाल है ॥१७,१८॥

इतनी बात सुनते ही अपनी स्त्री को पहचान कर राजा ने कहा—अरे डोम को कोई पकड़ तो लाओ ॥१९॥

डोम आया। वह देहरी पर चढ़ कर बैठा और झुक झुक कर सलाम करने लगा ॥२०॥

राजा ने कहा—हे डोम ठीक ठीक बताना कि मेरे योग्य यह मेरी रानी है कि नहीं ॥२१॥

डोम ने कहा—हे राजा मैं ठीक ठीक बताऊँगा। आपके स्वीकार करने योग्य रानी अब नहीं हैं। इन्होंने मेरा जूठन खाया है और मेरी पीठ से सटकर मेरे साथ शयन भी किया है ॥२२,२३॥

इतनी बात सुनते ही राजा ने कहा—अरे ! डोमिन को तो कोई पकड़ लाओ। डोमिन आई और आँगन के बीच जाकर बैठी। राजा ने कहा—री डोमिन ! सच्ची सच्ची बात बताना। मेरे स्वीकार करने योग्य रानी

हैं न ? ॥२४,२५॥

डोमिन ने कहा—हे राजा ! मैं ठीक ठीक बताऊँगी झूठ नहीं बोलूँगी। आपके स्वीकार करने योग्य रानी है। इन्होंने न जूठन ही खाया और न मेरे स्वामी डोम के साथ शयन ही किया। हे राजा ! तुम्हारे योग्य रानी हैं ॥२६,२७॥

राजा ने कहा—अच्छा ! हे रानी !! तुमने यदि डोम का झूठन नहीं खाया है तो मेरे सामने परीक्षा दो ॥२८॥

रानी ने अग्नि को सम्बोधन करके कहा—हे अग्निदेव ! अगर तुम सत के अग्निदेव होगे तो मेरा शरीर तिलमात्र भी नहीं जलेगा ॥२९॥

यह कह कर जब रानी ने अग्नि में प्रवेश किया—तो धधकती हुई आग ठढी पढ गई और उसके बीच में सती रानी बिना जले खड़ी चमकती रही ॥३०॥

गाँव के बाहर राजा ने ओवा (गहरा गड्ढा) खुदवाया और उसी में डोम को जीते ही गड़वा दिया ॥३१॥

इस गीत में हरदी के राजा का वर्णन आया है। हरदी बलिया जिला में हैहय वंशी राजपूतों की राजधानी है। यह भोजपुर से गंगापार बहुत निकट है। आज भी वही राजा अपने बुरे दिनों को गिनते हुए वर्तमान हैं। ज्ञात होता है वहीं के किसी राजा की कहानी को लक्ष्य करके यह गीत बना है। विरहिणी पति की तलाश में भावज के ताना मारने पर निकल बाहर होती है। डोम उसे फुसला कर घर ले जाता है और उसे सूप और टोकरी बेचने को भेजता है। वह वहीं जाती है जहां जाने से उसने रोका था। और पति द्वारा पुनः स्वीकृत होती है।

(२४)

एक सुधि आइ गइली जेवना जेंवत करे।
मोरा धईल जेवन बसिआइ गइले हो॥
सुधि आइ गइली सँवरो सिपहिया के ॥१॥
एक सुधि आ गइली पनिया भरत करे।
आरे फुटलें घइल बुड़ि जात रे।
सुधि आ गइली सँवरो सिपहिया क रे ॥२॥

एक सुधि अइली बीरवा जोरत करे।
आरे खैर सोपरिया मों भूलि गइलीं रे।
सुधि आ गइली सँवरो सिपहिया के ॥३॥
एक सुधि आ गइली सेजिया सोवत करे।
आरे डसिती नगिनिया मों मरि जाइतों रे।
सुधि आ गइली सँवरो सिपहिया के ॥४॥

विरहिणी अपनी दशा बता रही है। कहती है—'मुझे अपने साँवले सिपाही की सुधि भोजन करते समय आई। बस मैं विभोर हो गयी। सामने का रखा हुआ भोजन बासी हो गया। मुझे खाने की सुधि भूल गई ॥१॥

फिर एक बार याद आई पानी भरते समय। उसका फल हुआ कि मैं सुधि बुधि भूल गई और घड़ा फूट कर इनार (कुएँ) में डूब गया ॥२॥

फिर एक बार पान लगाते समय याद आ गई। बस मैं ऐसी बेसुध हुई कि पान में खैर सुपारी डालना भूल गई ॥३॥

फिर एक बार सुधि आई सेज पर सोते समय। हा! उस समय यही मन में आया कि मुझे नागिन डस लेती और मैं मर जाती॥ हा! मुझे अपने साँवले सिपाही की सुधि आ गई ॥४॥

(२५)

झीने झीने गोहुवाँ बाँसे कइ डलेरिया
ननदी भऊजिया गोहुँवाँ पीसे मोरे राम ॥१॥
रोजे त आव देवरा दुइ रे सिपहिया
आजु कइसे अइल अकेल मोरे राम ॥२॥
कइसे के भीजें देवरा तोर रे पनहिया
कइसे तेगवा तोर भीजे मोरे राम ॥३॥
सितियन भीजे भऊजी मोर रे पनहिया
हरिना सिकरवा तेगवा भीजे मोरे राम ॥४॥
देहु न बताई मोके देवरा रे गोसइयाँ
तोहि छाड़ि कतहीं ना जाइबि मोरे राम ॥५॥

कहवाँ मरल कहवाँ बहवल
कहवाँ चिल्हरिया मेडराइ मोरे राम ॥६॥
ऊँचवे मरलीं खलवे बहवलीं
सरगे चिल्हरिया मेड़राइ मोरे राम ॥७॥
बन में चनन केरा लकड़ी बटोरली
चितवा कइली तइयार मोरे राम ॥८॥
जाहु जाहु देवर अगिआ ले आवहु
सामी क अगिआ हम देवि मोरे राम ॥९॥
जो रउआँ होईं सामी सत के बिअहुता
अँचरा अगिनिया उपजाई मोरे राम ॥१०॥
अँचरा भभकि उठल सतिया भसम भइली
देवरा मलेले दूनो हाथ मोरे राम ॥११॥
जो हम जनितीं भऊजी दगवा कमइबू
काहे के मरितीं सग भइआ मोरे राम ॥१२॥

पतला पतला गेहूँ है और बाँस की डलिया है। ननद और भौजाई दोनों गेहूँ पीस रही हैं ॥१॥

भौजाई ने कहा—हे देवर ! रोज तो तुम दो साथी साथ आते थे आज अकेले कैसे आये ? ॥२॥

हे देवर ! तुम्हारा जूता कैसे भीग गया। और तुम्हारा तेगा कैसे भीगा हुआ है ? ॥३॥

देवर ने कहा, हे ! भावज शीत से तो मेरे जूते भीगे हैं और हरिण के शिकार से मेरा तेगा भींगा है ? ॥४॥

भावज ने कहा मैं तुमको छोड़ कर कहीं नहीं जाऊँगी। हे मेरे देवर ! तुमने मेरे स्वामी को कहाँ मारा, कहाँ फेंका और अब किस स्थान पर उनके शव के ऊपर चील्ह मड़रा रहीं हैं, यह मुझे बतादो ॥५,६॥

देवर ने कहा—मैंने ऊँचे पर्वत पर उन्हें मारा और नीचे खदक में गिरा दिया। वहीं आकाश में चील्ह मड़रा रही हैं ॥७॥

भावज ने बन में जाकर चन्दन की लकड़ी इकट्ठा करके चिता तैयार की और देवर से कहा—हे देवर तुम जाओ। कहीं से आग ले आओ। मैं अपने स्वामी का अग्नि-संस्कार करूँगी ॥८,९॥

देवर चला गया। चिता पर बैठ कर भावज ने कहा—हे मेरे स्वामी! अगर आप सत्य के स्वामी हों तो मेरे अञ्चल से आग निकले ॥१०॥

धक-धक कर अञ्चल से आग निकल पड़ी और उससे सती भस्म हो गई। देवर जब आग लेकर वापस आया तो दोनों हाथ मल मल कर कहने लगा—हे भावज! अगर मैं जानता कि तुम इस तरह से छल करोगी तो मैं क्यों अपने सगे भाई को मारता ॥११,१२॥

इस भाव के गीत हमें पूर्व में भी मिल चुके हैं।

(२६)

मोर पिछुवरवाँ कोहँरवा क बखरी निक निक मेटुकी गढावहु जी।
असकइ चाक चलावहु रे कोहँरवा दहिया बेचन हम जाइबि जी ॥
असकइ चाक चलाउबि गुजरिया, दहिया लेवइया लोभि जाई जी ॥१॥
मोर पिछुवरवा दरजिया के बखरी, निक निक चोलिया सिआवहु जी।
असकइ सुइया चलावहु रे दरजिया, चारि चिरइया दुइ मोर जी ॥२॥
कहवाँ बनावो गुजरि चारि चिरइया, कहवाँ बनाओं दुइ मोर जी।
अँगया बनावहु चारि चिरइया, अँचरै बनावहु दुइ मोर जी।
ऊठत बोले जेमें चारि चिरैया बइठत कुहुके दुइ मोर जी ॥३॥
एक घर लघली दुसर घर लघली तिसरे में मिलले कन्हैया जी।
छोड़ु कन्हैया हमरी कलइया, हमरे ससुर बड़ जालिम जी ॥
तोहरे ससुर के हम हथिया पठइओं तोहके वइठइबा अपने राज जी ॥५॥
छोड छोड कान्हा हमरो कलइया भसुरा वड़ा उतपाती जी।
तोहरे भसुर के हम घोड़वा पठइवों, तोहके वइठइवों अपने राज जी ॥६॥
छोड़ छोड़ु कन्हैया हमरो कलइया, हमरे देवर जजाली जी।
तोहरे देवर के मों मुरली पठइवों, तोहके वइठइवों अपने राज जी ॥७॥
छोड़ छोड़ु कन्हैया हमरो कलइया, सइयाँ हमरो दुख दारुन जी।

तोहरे बलमुआ के करवों बियहिया, एक गोरी एक साँवरि जी ॥८॥
तनी एक पिछवहुँ होइ जाहु कान्हा, जमुना में खेलिहों डुबुकिया जी।
एक बुड़की मरली दूसर बुड़की मरली, गोरिया उतरि गइली पार जी ॥९॥
पूछन लागे कान्हा गइया चरवहवा बखरी गुजरिया के बतावहु जी।
जाई के बइठे कान्हा कुँअवा जगत पर, पूछहिं कुआँ पनिहारिन जी।
बखरी गुजरिया के बतावहु जी।
जेहि के दुआरे कान्हा बाँन्हल पँड़रुवा, उहे गुजरिया के बखरी जी ॥१०॥

हमारे पिछवारे कुम्हार का घर है। चलो मैं अच्छी अच्छी मटकी बनवाऊँ। हे कुम्हार! तुम ऐसा चाक चलाओ कि मटकी जल्दी तैय्यार हो जाये। मैं दही बेचने जाऊँगी। कुम्हार ने कहा—हे गूजरी मै ऐसा चाक चलाऊँगा और ऐसी मटकी तैयार कर दूँगा कि जो दही खरीदेगा वह लोभ जायेगा ॥१॥

मेरे पिछवारे दरजी का घर है। चलो उससे अच्छी अच्छी चोली सिलायें। गूजरी दरजी के पास जाकर बोली—हे दरजी ऐसी सुई चलाओ कि चोली में चार चिड़ियाँ और दो मोर बन जायें ॥२॥

दरजी ने कहा—हे गूजरी! मै किस जगह चार चिड़ियाँ बनाऊँ और किस जगह दो मोर। गूजरी ने कहा—अँगिया मे तो चार चिड़िया और अञ्चल पर दो मोर ऐसा बनाओ कि उठने पर चिडिया बोलने लगे और बैठने पर दोनों मोर कुहुकने लगें ॥३॥

मटकी में दही ले और कुर्ता पहन कर स्त्री चली एक घर पार कर उसने दूसरा घर पार किया। तीसरे घर के सामने उसे कन्हैया मिले। उन्होंने उसकी बाँह पकड़ ली। स्त्री ने कहा—हे कान्ह! मेरी बाँह छोड दो। हमारे ससुर बड़े जालिम हैं। कान्ह ने कहा—मैं तुम्हारे ससुर को हाथी भेजूँगा और तुमको अपने राज की रानी बनाऊँगा ॥४॥

गूजरी ने कहा—हे कान्ह! मेरी बाँह छोड़ दो। मेरे जेठ बड़े उत्पात मचाने वाले हैं। कान्ह ने कहा—मैं तुम्हारे जेठ को घोड़ा भेज दूँगा और तुमको अपनी राज-रानी बनाऊँगा ॥६॥

स्त्री ने कहा—हे कृष्ण ! मेरी बाँह छोड़ दो। हमारे देवर बड़े ऊधमी है। कृष्ण ने उत्तर दिया—तुम्हारे देवर को मैं मुरली भेजूगा और तुमको अपनी रानी बनाऊँगा ॥७॥

स्त्री ने कहा—हे कृष्ण ! मेरी बाँह छोड़ दो। मेरे पति बड़े दु:ख देने वाले हैं। कृष्ण ने कहा—तुम्हारे पति के मैं दो विवाह कर दूँगा। एक साँवली और दूसरी गोरी होगी ॥८॥

स्त्री ने कहा—हे कान्हा ! थोड़ा-सा पीछे हो जाओ। मैं यमुना में डुब्बी मार खेलूगी। कान्हा स्त्री की बाँह को छोड़ कर हट गये। स्त्री ने एक डुबकी लगाई, फिर दूसरी डुबकी ली और जल के भीतर ही भीतर यमुना पार हो गई ॥९॥

कृष्ण गाय के चरवाहों से पूछने लगे कि गूजरी का घर तुम बताओ। (चरवाहों ने कुछ नहीं बताया तब) कान्हा कुँएँ की जगत पर जा बैठे और पनिहारिन से गूजरी का घर पूछने लगे। पनिहारिन ने कहा हे कान्हा ! जिसके दरवाजे भैंस का पड़वा बंधा हो वही तुम्हारी उस गूजरी का घर है ॥१०॥

(२७)

छोटी मुटी गछिया लामी लामी पतिया, फले फुले तुलसी सोहावन रेखो ॥१॥
निहुरि निहुरि हम अँगना बहरलों, देवरा निरखे मोर मुँहवाँ रेखो ॥२॥
काहे बिना भउजी हो ओठवा झुरइले, काहे बिना नैना नीर ढारेलू रेखो ॥३॥
पान बिना बबुआ हो ओठवा झुरइले, रउरे भइया बिनु नैना नीर ढारीला रेखो ॥४॥
पीसहु भउजी हो जिरवा के सतुवा, हम जइबों भइया के मनावन रेखो ॥५॥
एक वन गइले दुसर बने गइले, तीसर बने भइया धुइयाँ लावेंले रेखो ॥६॥
छाडि देहु भइया हो मनके किरोधवा, भउजी रोएली छतिया फारि रेखो ॥७
कइसे मैं छाड़ों बबुआ मन के किरोधवा, तोरि भउजी बोलिये छतिया फाटेले रेखो ॥८॥
झँझरे झरोखवे चढ़ा निरेखे, सामी मनाइ देवरा आवेला रेखो ॥९॥
अइसन देवर जीके पाँव धोइ के पिअवो, गइल सेंनुर बहुरावेले रेखो ॥१०॥

छोटा सा तुलसी का बिरवा है, जिसकी पत्तियाँ लम्बी हैं और फूल फूल से उसका सौंदर्य निखर रहा है ॥१॥

झुकी झुकी मैं आँगन बहार रही थी और देवर मेरा मुख निरख रहा था ॥२॥

देवर ने कहा—हे भावज ! किसके बिना तुम्हारे ओठ सूख रहे हैं और किसके विरह में तुम आँखों से नीर गिरा रही हो ? ॥३॥

भावज ने कहा—हे बबुआ ! पान के बिना (हिन्दुओं में विरहिणी का पान खाना तथा केश आदि बाँधना निषेध है) मेरे ओंठ सूख रहे हैं और तुम्हारे भाई के विरह में आखों से आँसू गिरा रही हूँ ॥४॥

देवर ने कहा—हे भावज ! जीरा का सत्तू पीस दो। मैं अपने भाई को मनाने जाऊँगा ॥५॥

देवर एक बन में गया, दूसरे बन को पार कर, तीसरे में उसका भाई धूनी रमाये हुए मिला ॥६॥

देवर ने कहा—हे भाई ! अपने मन का क्रोध छोड़ दो। मेरी भावज छाती फाड़ फाड़ कर रो रही है ॥७॥

भाई ने कहा—हे भाई। मैं अपने मन का क्रोध कैसे छोड़ू ? तुम्हारी भावज की कड़ी बोली से मेरी छाती फट जाती है ॥८॥

झँझरीदार झरोखे से विवाहिता चन्दा देख रही है और मन में कह रही है कि स्वामी को मना कर लिये हुए मेरा देवर आ रहा है। ऐसे देवर के मैं पैर धोकर पी लूँगी जिसके कारण मेरा सिन्दूर मुझे फिर मिल रहा है ॥९,१०॥

कितना स्वाभाविक वर्णन है। विरहिणी की व्याकुलता और पति के लौटने पर प्रसन्नता कितने सुन्दर रूप से चित्रित की गई है।

(२८)

गहिरी नदिया ये हरी जी, अगम बहे राम पनियाँ,
पिअवा जे चलले मोरँग देसवा बिहरेला करेजवा ॥१॥
जो हम जनितों ये हरि जी जाइबि परदेसवा।
कसि के बन्हितों ए निरमोहिया पिरीति केरा डोरिया ॥२॥

मुंह तोरा देखों ये हरीजी नान्ही नान्ही रेखिया ।
आँख तोरा देखों ये हरी जी अमवाँ केर फँकिया ॥३॥
ओंठ तोरा देखों ए हरी जी चुएला रतनरिया ।
हाथ तोरा देखों ये हरी जी लामी लछ रेसमा ॥४॥
घरवा में रोवेली घरनी ए हरी जी, बनवाँ में हरिनिया रोवे राम !
बनवा में रोवे चकवा चकइया रतिया बिछोहवा कइले राम ॥५॥

हे राम ! गहरी नदी है अगम जल बह रहा है । मेरे प्रियतम मोरँग देश को जा रहे हैं । मेरा हृदय भीतर से बिहर रहा है, अर्थात् भावी विरह को सोच सोच कर दुखी हो रहा है ॥१॥

हे हरि जी ! जो मैं जानती कि तुम परदेश जाओगे तो हे निर्मोही मैं तुमको प्रेम की डोर से कसकर बाँध देती ॥२॥

हे प्रियतम ! मैं तुम्हारा मुख देखती हूँ तो उस पर नन्हीं नन्हीं रेख अभी निकल रही हैं और जब तुम्हारी बड़ी बड़ी आखें देखती हूँ तो आम की फाँकी स्मरण हो आती हैं । ओठ देखती हूँ तो हे प्यारे ! ऐसा मालूम होता है कि उससे लाली टपक सी रही हैं और तुम्हारे हाथ देखने पर रेशम के लम्बे लच्छों का बोध हो जाता है ॥३,४॥

हे प्रियतम ! (तुम चले जा रहे हो) घर में तुम्हारी स्त्री रो रही है । विधवा हरिणी रो रही है फिर उसी वन में शापित चकवा चकई भी रात रात भर विरह में रुदन किया करते हैं । तुम भी इनको देखकर वहाँ कैसे चैन से रह सकोगे ? ॥५॥

प्रोषित पतिका अपने पति के विदेश गमन को सुन मन ही मन भावी विरह वेदना की चिन्ता कर रही है । पति की अवस्था अभी किशोर है । रेख आ रही है । आम की फाँक सी आखें हो रही हैं । होठों से लाली चू रही है । इतनी तरुणाई है । फिर अभी वे उसके प्रेम जाल में बँधे नहीं । यह जानती भी नहीं थी नहीं तो कभी ही कस कर प्रेम डोर से बाँध लेती । वे मोरँग देश जा रहे हैं । वहाँ क्या होगा यह सोच सोच कर उसका कलेजा वियोग दुःख से फट रहा है । हे नाथ ! (जीवन) नदी बड़ी गहरी है । उसमें अथाह अगम

जल बह रहा है। घर में घरनी रो रही है। जंगल में हरनी रो रही है। वन में रात्रि समय चकवा चकई रो रही है जिन्हे राम ने रात्रि का वियोग दिया। मेरा हृदय बिहर रहा है। पाठक सोचें कितना सजीव वर्णन है और कितनी वेदना इसमें भरी पड़ी है।

(२८)

सूतल रहलो मैं अपने ओसरवा,
तिरिया जे बोलेले कुबोल, ए जदुवसी !
होइ जाहु जोगिया फकीर ए जदुवसी ॥१॥
मोरा पिछुवरवाँ बढइया हित भइया।
अरे चन्नन बिरिछिया काटि देहु ए जदुवसी ॥२॥
चन्नन काटि भइया ! खरँगो बनावहु
आरे हम होइबों जोगिया फकीर ए जदुवसी ॥३॥
गुदरी बनवलन भभुती रमवलन,
आरे ! होइ गइलन जोगिया फकीर ए जदुवसी।
जदुवंशी के जियरा उदास ए जदुवसी ॥४॥
सगरे नगरिया जोगिया घूमि फिरि अइलनि।
आरे बहिनी दुअरिया भइले ठाढ ये जदुवसी ॥५॥
अँगना बहारइति चेरिया लउँड़िया।
आरे जोगिया के भिछा देइ आउ ये यदुवसी ॥६॥
चेरिया के हथवा रे गुह गोबराइल।
आरे जेइरे मेजेला देइ जाउ ए यदुवसी ॥७॥
तरे कइली सोनवा ऊपर तिल चाउर।
आरे जोगिया के भिछवा देवे आवेली ए जदुवमी ॥८॥
रोवेली बहिनी पटोरवे पोछि लोरवा।
आरे ई त हउएँ बीरना हमार ए जदुवमी ॥९॥
हम तुहूँ भइया हो ! एके कोखि जमलीं
आरे पिअलीं मयरिया जी के दूध ए जदुवसी।

आरे काहे भइल जोगिया फकीर ए जदुबसी ॥१०॥
तोहरा लिखल बहिनी ! अपनहीं रजवा ।
आरे हमरो लिखल जोगिया फकीर ए जदुबसी ॥११॥
छाड़ि देहु भइया हो सरँगो गुदरिया ।
आरे हमरे दुअरिया धुइयाँ रमाउ ए जदुबसी ॥१२॥
तोहरो कलेउवा बहिनी तोरे घरवाँ बाढो ।
आर हम हई जोगिया फकीर ए जदुबसी ॥१३॥

पति कह रहा है—मैं अपने गोसवारे में सो रहा था कि मेरी स्त्री कटु वाक्य बोलने लगी। कहने लगी तुम योगी फ़कीर हो आओ ॥१॥

हे मेरे पिछवारे के बढ़ई मित्र तुम चन्दन का पेड़ काटकर मेरे लिए एक सारंगी बना दो मैं योगी होऊँगा ॥२,३॥

सारङ्गी के बन जाने पर वह गुदरी (वैरागियों की गेरुए रग की झोली) और शरीर में भस्म लगाकर योगी का रूप धारण कर घर से निकल बाहर हुआ ॥४॥

सारे नगर में योगी घूम फिर आया। अन्त में अपनी बहन के घर के दरवाजे पर आकर खड़ा हुआ ॥५॥

बहन ने कहा—हे आँगन बहारती हुई मेरी लौंड़ी जाकर इस योगी को भिक्षा दे आओ ॥६॥

योगी ने कहा—चेरी के गन्दे हाथ से वह भिक्षा न लेगा। जिसने भिक्षा भेजी है वही आकर भिक्षा दे तभी वह भिक्षा ग्रहण करेगा ॥७॥

बहन ने नीचे तो सोना रक्खा और ऊपर से तिल और चावल रक्खा और योगी को भिक्षा देने बाहर आई ॥८॥

भाई को पहचानकर बहन चादर से आँसू पोंछ कर रोने लगी और कहने लगी कि वह तो उसका भाई ही है—हे भाई ! हम तुम दोनों एक ही पेट से पैदा हुए और एक ही माँ के दूध से पाले भी गये। हे भाई ! तुम क्यों फ़कीर हो गये ?॥९,१०॥

योगी के वेश में भाई ने कहा—हे बहन ! तुमको अपना राज्य भोग

करना लिखा था और मुझको फ़कीर ही बनना था ॥११॥

बहन ने कहा—सारङ्गी और गुदड़ी छोड़ दो। मेरे द्वार पर धूनी रमा कर रहो ॥१२॥

भाई ने कहा—हे बहन। तुम्हारा कलेवा तुम्हारे घर बढ़े। हम तो योगी हैं। (एक जगह बँधकर योगी नहीं रहता) ॥१३॥

बात की मार कितनी मर्मान्तक होती है यह इस गीत से मालूम होता है। कर्कशा स्त्री के कटु वचन को सुनकर पति योगी हो गया और बहुत दिनों बाद अपनी बहन के घर गया। यह भाई और बहन की भेंट कितनी करुण है। वहाँ भी भाई ने अपनी स्त्री के कटु वाक्य का उल्लेख न कर अपने योगी होने का कारण अपने भाग्य को ही बताया है। सच है स्त्री द्वारा अपमानित होने की कोई बात दूसरे से स्वीकार करना नहीं चाहता। भोजपुरी में कहावत है—'आपन हारल मेहरी के मारल केहू से न कहाय।'

(३०)

कवनी उमिरिया सासु निंदिया लगवलें,
कवनी उमिरिया गइले बिदेसवा हो राम ॥१॥
खेलत कुदत बहुअरि निंदिया लगवले,
रेखिया भिनत गइले बिदेसवा हो राम ॥२॥
फरि गइली निंदिया लहसि गइली डरिया,
बहूँ न अइले मोर बिदेसिया हो राम ॥३॥
रहे बरिसवा पै मोर हरि लवटेलें,
र तर डाले गोनिअवा हो राम ॥४॥
ाइया लेइ धावेली चनन पिटइया,
ाहिनि लेइ के धावे जूड़ पनिया हो राम ॥५॥
ाइ राखो मइया रे! अपनी निंदइया,
ाहीं देखलीं पतरी तिरियवा हो राम ॥६॥
ाोहरो तिरियवा बेटा! गरवे गुमनिया,
ााइ सुतेलीं धवरहर हो राम ॥७॥

गोड़वा धोवत बहिनी लागेले चुगुलिया,
भइश्रा भौजी से लेहुन किरियवा हो राम ||८||
मोर पछुअरवा बढइया भइया मितवा रे
धरम चइलिया चीरि लावहु हो राम ||९||
मोरे पिछुवरवा लोहार भइया मितवा रे!
धरमी करहिया गढि लावहु हो राम ||१०||
मोरे पिछुअरवाँ तेलिया भइया मितवा रे!
धरम के तेल पेरि लावहु हो राम ||११||
मोरे पिछुअरवाँ कोहँरवा भइया मितवा रे!
धरम गगरिया गढि लावहु हो राम ||१२||
मोरे पिछुवरवा नउवा भइया मितवा रे।
नइहरे खबरिया जनावहु हो राम ||१३||
जाइ कहिह मोरे बाबा के अगवाँ रे,
तोरी धिया चढेलीं किरियवा हो राम ||१४||
आजु एकदसिया विहान दुवदसिया,
तेरस के लेइहें किरियवा हो राम ||१५||
आगे आगे आवेला घीउ के गगरिया हो,
पीछवा से आवे बीरन भइया हो राम ||१६||
जितले वहिनियाँ नइहर चलि जइहें,
हरले पर भरवा झोंकाइबि हो राम ||१७||
वरि गइली अगिया त भभकी करहिया रे,
वहिनि रे ठाटि किरिया दिहली हो राम ||१८||
हे मोर सुरुज! हमार पति रखिह,
जौं हम होईं सतवन्ती हो राम ||१९||
जब वहिनी गइली अगिनी किरियवा,
खउलल तेल जूड पनिया हो राम ||२०||
एक पाँव डलली दूसर पाँव डलली

तिसरे उतरि भइली परवा हो राम ॥२१॥
जब बहिनी चलली गंगा किरियवा,
गंगा जी गइली भुराइ हो राम ॥२२॥
जब बहिनी चलली सुरुज किरिअवा,
उगल सुरुज भइले छपित हो राम ॥२३॥
हथवा रूमलिया लेके हँसे बीरन भइया,
बहिनी के डोलिया सजाव हो राम ॥२४॥
मुँहवा पटुकवा देके रोवे मोर राजा,
सतवती धनि नइहर जाली हो राम ॥२५॥
भल छल कइलू मोरी बहिनी हो राम।
डासल सेजिया उड़सलू हो राम ॥२६॥
खाए के देबों बेटा! दूधवा रे भतवा,
कइ देबि दूसर बिअहवा हो राम ॥२७॥
अगिया लगाऊ मइया! दूसर बिअहवा,
वजर पड़े ससुररिया हो राम ॥२८॥
बारह बरिसवा त मोर बाट जोहली,
छुटि गइली मोर सतवती हो राम ॥२९॥
चाँद सुरुज अस रानी मोरी छुटि गइली,
के घर बसल उजारल हो राम ॥३०॥

विरहणी अपनी सास से पूछती—हे सास! किस उम्र में मेरे विदेशी पति ने इस नीम के पेड़ को लगाया था और किस उम्र में वे परदेश गये थे? ॥१॥

सास ने कहा—हे बहू! जब वे खेलने कूदने लगे थे तभी इस नीम के पेड़ को उन्होंने लगाया था और जैसे ही रेख आने लगी वैसे ही वे विदेश को चले गये ॥२॥

बहू ने कहा! नीम फलने फूलने लगी। उसकी डालें खूब फैल कर हरी-भरी हो गईं। परन्तु हा राम! तब भी मेरा विदेशी पति नहीं लौटा॥३॥

बारह वर्ष पर मेरे हरि लौटे तो उन्होंने बटवृक्ष के नीचे ही अपनी बरधी खोली ॥४॥

माता चन्दन का पीढ़ा लेकर दौड़ी। बहन ठण्ढा पानी लेकर आई। पर पति ने कहा—हे मां! अपनी चदन पिढ़ई रख दो। मैं अपनी सुकुमार स्त्री को नहीं देख रहा हूँ वह कहाँ है? यह पहले बताओ ॥५,६॥

माँ ने कहा—हे बेटा! तुम्हारी स्त्री अपने गर्व के गुमान में धौरहरे पर सो रही है ॥७॥

पाँव धोते हुए बहन ने चुगली की—हे भाई! भौजी से तुम शपथ लो (शपथ की तैयारी होने लगी) ॥८॥

बहू ने कहा—मेरे पिछुवारे मेरा मित्र बढ़ई रहता है! हे भाई तुम धर्म की लकड़ी चीर कर ले आओ ॥९॥

मेरे पिछुवारे लोहार रहता है। हे भाई लोहार! तुम धर्म की कड़ाही बना कर लाओ ॥१०॥

मेरे पिछुवारे तेली रहता है। हे मित्र तेली तुम धर्म का तेल पेरकर लाओ ॥११॥

मेरे पिछुवारे कुम्हार रहता है हे भाई कुम्हार तुम धर्म का घड़ा बनाकर लाओ ॥१२॥

मेरे पिछुवारे नाई रहता है। हे मित्र नाई! तुम जाकर मेरे मायके में शीघ्र सूचना दो कि तुम्हारी कन्या से शपथ लिया जा रहा है ॥१३,१४॥

आज एकादशी है, कल द्वादशी होगी और तेरस के दिन शपथ ली जायेगी ॥१५॥

आगे आगे घी का घड़ा आरहा है। उसके पीछे मेरा भाई चला आ रहा है ॥१६॥

भाई ने आते ही कहा—अगर मेरी बहन जीत गई तो वह यहाँ न रहेगी—अपने मायके चली जायगी, और यदि वह अपनी परीक्षा में अनुत्तीर्ण हुई तो मैं यहीं उसे अग्नि में जलवा दूंगा ॥१७॥

आग जल गई तेल की कड़ाही खौलने लगी और बहन खड़ी होकर शपथ

देने चली। उसने कहा—हे सूर्य्य भगवान यदि मेरा सत न बिगड़ा हो तो मेरी लाज रखना ॥१८,१९॥

जब बहन अग्नि परीक्षा देने के लिए कढ़ाही के पास पहुँची तो खौलता हुआ तेल पानी के समान शीतल हो गया ॥२०॥

एक बार उसको कढ़ाही में डाला गया, फिर दूसरी बार डाला गया, फिर तीसरी बार डालने पर भी वह साफ़ निकल आई ॥२१॥

जब बहन गङ्गा की शपथ देने चली तब गङ्गा सूख गई और जब वह सूर्य की शपथ देने को आगे बढ़ी तो सूर्य भगवान् भी छिप गये ॥२२,२३॥

हाथ में रूमाल लेकर उसका भाई हँस कर कहने लगा मेरी बहन का डोला सजाओ , मैं इसे अपने घर ले जाऊँगा ॥२४॥

मुँह पर दुपट्टा देकर पति रो रहा है और कह रहा है—हा ! मेरी सती स्त्री मायके चली जा रही है। उसने पश्चात्ताप करके कहा हे मेरी बहन ! तुमने मेरे साथ यह कितना बड़ा छल किया। मेरी बिछीबिछाई सेज को उदास डाला ॥२६॥

उस की माता ने कहा—हे पुत्र तुम क्यों शोक करते हो। मैं तुमको खाने को दूध भात दूँगी और तुम्हारा दूसरा विवाह भी कर दूँगी ॥२७॥

पति ने कहा—दूसरे विवाह में आग लगाओ। मेरी नई ससुराल पर भी वज्र गिरे। बारह वर्ष तक जिस स्त्री ने मेरी राह देखी वह सती मुझसे छूट गई। हा राम ! चांद सूर्य सी पवित्र मेरी स्त्री लुट गई। मेरे बसे बसाए घर को हे राम ! किसने उजाड़ डाला ? ॥२८, २९,३०॥

अबोध अवस्था में नायिका का विवाह हुआ था ! गवना भी तब हुआ जब कन्या को पूरा ज्ञान नहीं था। रेख भीनते ही पति विदेश चले गये थे। सास कहा करती थी कि यही नीम का पेड़ लगा कर तेरे स्वामी विदेश गये। विरहिणी बारह वर्षों तक प्रतिक्षा मे रही इस बीच वह पूर्ण युवती हो चुकी थी। विरहिणी व्याकुल और अधीर होकर पूछती है—"सास जी, किस अवस्था में उन्होंने नीम का पेड़ लगाया था और किस अवस्था में विदेश गये थे। नीम में तो फल लगने लगे और उसकी डालें लहस चलीं। तब भी

पति नहीं आये।" कितनी वेदना है इस छोटे से प्रश्न में साथ ही श्लेष भी। मानो बारह वर्षों का धैर्य्य आज इसी वाक्य के साथ टूटना चाहता है।

"फरि गइली निबिया लहसि गइली डरिया,
तबहूं न अइले मोर बिदेसिया हो राम।"

फिर पाठक विचार करें और विरहिणी के ऊपर किये गये अत्याचारों की ओर सोचें कि उसके मन की तब क्या दशा हुई होगी जब बारह वर्षों तक निश्छल भाव से पति की आराधना करने के बाद पति के आने पर केवल ननद की शिकायत पर पति ने उससे परीक्षा लेने की बात कही, और साथ ही उसके हृदय में तब भी क्या बीता होगा जब परीक्षोत्तीर्ण होने पर भी परीक्षा फल के उपभोग से वह वञ्चित कर दी गई ? भाई उसे डोली सजाकर आजन्म विरह दुःख सहने के लिए घर ले चला खास कर उस अवस्था में जब वह अपनी आँख से अपने पति की विह्वल अवस्था को देख रही थी और समझ रही थी कि पति का प्रेम पवित्र था, ननद की शिकायत की वजह से उसने भ्रम में पड़कर परीक्षा ली थी और अब वह उसको अंगीकार करने के लिए तैयार ही नहीं बल्कि मा बहन को इस छल के लिए कोस भी रहा था। पर वह बेचारी समाज के झूठे दम्भ पूर्ण लोकाचार से इस तरह दबी हुई थी कि सती साबित होकर भी वह पति के साथ इस कारण से नहीं रह सकी कि उसके भाई ने पहले ही घोषणा कर दी थी कि उत्तीर्ण होने पर बहन को मैं वहाँ नहीं रहने दूंगा। एक ओर भाई की प्रतिज्ञा को निभाना और दूसरी ओर आजन्म बलात वैधव्य को भोगने की भयङ्कर स्थिति इन्हीं दो में एक को उसे चुनना था और उसने अन्त में अपने को भाई के वचन के लिए बलिदान कर दिया। गीत के चरण बिलकुल सीधे सादे हैं। अलकारादि भी कुछ वैसे नहीं जो संस्कृत मस्तिष्क को रोचक हों। पर विरहिणी की यातना और हृदय भावना का जो चित्र हमारे सामने स्त्री कवि ने चित्रित किया है वह हमें वाल्मीकि की सीता त्याग में, तुलसी के सीता बनवास में, कालीदास की शकुन्तला के विरह में मिलता है। त्याग और सहन की प्रतिमूर्ति विरहिणी हमें बिना रुलाये नहीं छोड़ती।

(३१)

झिलिमिलि बहेले बयारि पवन भल डोलि रही ।
डोले नवरङ्गिया के डार कोइलिया कुहुँकि रही ॥१॥
बाबा गइले परदेसवा बड़ा सुख देइके गइले हो ।
अँगना चननवाँ के गाँछ हिंडोलवा लाइ के गइले हो ॥२॥
सइयाँ गइले परदेसवाँ बडारे दुख देइ के गइले हो ।
छतिया त बजर केवरिया जँजिरिया लगाके गइले हो ॥३॥
बाट तोरा जोहेला बटोहिया काहे धनि लोर ढरे हो ।
किया तोरा नइहर दूरि किया घर सासु लड़े हो ॥४॥
नाहीं मोरा नइहर दूरि नाहीं घर सासु लड़े हो ।
हमरा बलमु परदेस वो ही हम सोच खरी ॥५॥
गलवा में देवों गल हार त मोतियन माग भरी ।
छोड परदेसिया के आस हमरे सग साथ चल हो ॥६॥
अगिया लागे गलहार बजर परे मोति लरि हो ।
तोहरो ले पिया मोरा सुन्नर गुलाब के फुल छड़ी हो ॥७॥
कटवों चननवा के गाछ पलँगिया बिनाइबि हो ।
ताही पर पिया के सुताइबि बेनिया डोलाइबि हो ॥८॥
धनि सतवती नारि धरम के जोति खरी ।
भेस बदलि पिय ठाढ़ देखि धनि मुरुछि परी ॥

इस गीत को आप मनन करेंगे तो देखेंगे कि किस पूर्णता के साथ विरह के कितने बड़े और सुन्दर भावों को इसमें व्यक्त किया गया है। विरहिणी अन्त में किस तरह परीक्षा में उत्तीर्ण होकर पति का प्रेम भाजन बन जाती है। 'झिलमिल बयार बह रही है। बड़ी सुन्दर हवा चल रही है। नौरंगी की डालें डोल रही हैं। और उनपर कोयल कुहक रही है।' कितना सुन्दर चित्रण है। फिर कहती है 'मेरे पिता परदेश गये तो मुझे बड़ा सुख दे गये। आंगन के चन्दन वृक्ष में हिंडोला डालकर वे चले गये। मैं स्वतंत्रता पूर्वक उस पर झूलती रही। पर प्रियतम जब परदेश गये तब तो बड़ा कष्ट हुआ। मुझे बड़े से बड़ा

दुख दे गये। वे छाती में वज्र किवाड़ लगाकर जंजीर चढ़ा गये। मेरी स्वतन्त्रता न रही।। यहाँ 'छतियन' में श्लेष है—अटारी और वक्षस्थल दोनों अर्थ में। विरहिणी इसी चिंतन में विभोर थी और आँखों से नीर गिरा रही थी कि नीचे से आवाज आई "हे कामिनि, क्यों रो रही हो? तुम्हारा बाट बटोही जोह रहा है। क्या तुम्हारा मायका दूर है या तेरे घर में सास से लड़ाई हुई? स्त्री ने निःसंकोच भाव से उत्तर दिया, "नहीं जी, मेरा नइहर दूर नहीं है न मेरे घर में सास से लड़ाई ही हुई है। हमारे बालम परदेश में हैं। मैं उसी सोच में खड़ी हूँ।" बटोही ने प्रलोभन दिया," मैं तुम्हारे गले में गलहार पहनाऊँगा, मोती से माँग भरूँगा तुम परदेशी की आशा छोड़, हमारे साथ चलो।" विरहिणी ने कहा, "तुम्हारे हार में आग लगे। मोती पर बज्र पड़े। तुम से हमारे पति सुंदर हैं। वे गुलाब के पुष्प की छड़ी हैं। मैं चदन की गाछ काटूँगी और पलग बिनाऊँगी। उसी पर अपने प्रियतम को सुलाऊँगी। और धीमे धीमे पंखा झलूँगी।" इस वाक्य को सुनते ही, उसका छद्मवेषी पति जो उससे बात कर रहा था मारे खुशी के चिल्ला उठा "हे सतवंती नारि! तुम धन्य हो। तुम साक्षात् धर्म की ज्योति खड़ी हो।

इस वाक्य को सुनते ही और अपने छद्मवेशी पति को पहचान कर स्त्री मारे प्रसन्नता के मूर्छित हो गई। इतना प्रौढ़, चमत्कारपूर्ण, सुन्दर और रस से ओत प्रोत चित्रण कदाचित् ही कहीं देखने को मिलता है। काव्य के सभी उच्च गुण इसमें भरे पडे हैं! प्रकृति वर्णन में कितना सौन्दर्य है। पिता और पति के विदेश गमन की तुलना में कितनी स्वाभाविकता है, नायक नायिका के प्रश्नोत्तर कितने सरस और समयानुकूल हैं। कहीं से उँगली उठाने के लिए जगह नहीं है।

(३२)

वेइलि एक हरि मोर लवलनि दुधवा सिचवलनि हो।
आप हरि भइले बनजरवा वेइलि कुम्हिलाइलि हो॥१॥
मिलहु रे सखिया सलेहरि मिलिजुलि चलइ न हो।
सखिया, हरि जी के लावलि वेइलिया सींचि सबु आवहु हो॥२॥

एक घइला सींचली नवरंगिया दूसरे घइला वेइलि हो ।
आइ गइले हरि जी के सुधिया नयन आँसू ढरकल हो ॥३॥
सरग में उड़ेले रे चिल्हिया सरब गुन आगरि हो ।
चिल्हिया जहँवां पठइतो तहँवां जइतू सनेहिया लेइ अइतिउ हो ॥४॥
उडलि उड़लि चिल्हि गइली बरधिया चढि बोलेली हो ।
सूतल बाट कि जागत बरधिया के नायक हो ।
तोरि धनि चिठिया पठवली उठि किनु बाँचहु हो ॥५॥
बायें हाँथे चिठिया ले लीहलनि दाहन हाथे बाँचेले हो ।
ढुरे ला नयनवन नीर पटुकवन पोछेलें हो ॥६॥
लादे बाटीं हरदी मरिचिया अवरू झीन कापड़ हो ।
चीलिह टूटे उनके बरधी के टँगिया नउजि घर आवसुँ हो ॥७॥

मेघदूत में विरही यक्ष ने बादल को अपना दूत बनाकर विरह संदेह यक्षिणी के पास भेजा है। यहां अपढ़ विरहिणी की इतनी तीव्र कल्पना कहाँ कि संस्कृत भाषा में अपनी विरह व्यथा पति तक पहुँचावे। फिर भी हृदय की वेदना में तो उसके उतनी ही टीस है जितनी कभी यक्ष की थी—और वह उतनी ही चिंता भी करती थी जितना यक्ष। काव्य लिखने की शक्ति कहाँ ? पर जो कुछ उसने भाव व्यक्त किया है वह कम सुंदर नहीं है। 'हरिजी ने एक वेइलि का पेड़ लगाया है। दूध से उसे सींचा। पर आप बनजारा बन गए और बेइल कुम्भलाने लगी। हे सखी सहेली मिलजुल कर चलो हरि जी की लगाई वेइल सींच कर जिला दें। उसने एक घड़ा जल नौरंगी वृक्ष में डाला, दूसरा घड़ा वेइल में डाला इतने मे हरि जी की उसे सुधि आगई। आँखों से आँसू गिरने लगे। उसे आकाश में उडती हुई चील दिखाई पड़ी। बस उसी को सम्बोधन करके उसने कहा "हे चील तुम सर्वगुणों से सम्पन्न हो, तुम को जहाँ भेजती हूँ वहाँ तुम जाओ और मेरे प्रेमी को वहाँ से ले आओ। चील उड़कर उसके पति की वरधी के ऊपर बोलने लगी।" हे वरधी के नायक, तुम सोते हो कि जागते ? तुम्हारी स्त्रीने तुम्हें चिट्ठी भेजी है। उठकर बाँच क्यों नहीं लेते। नायक ने बायें हाथ से पत्र लिया और दाहिने हाथ में लेकर उसे पढ़ने लगा। आँखों

से बहते हुए आँसू वह दुपट्टे से पोंछने लगा। उत्तर में उससे कुछ कहते नहीं बना। केवल इतना ही कह सका मेरी प्यारी से तुम कहना कि मिर्च और झीने कपड़े अभी लदे ही पड़े हैं बिके नहीं। मैं इन्हें छोड़ कर कैसे आऊँ? चीएह ने जब लौटकर विरहिणी को यह सन्देश दिया तो विरहिणी खीझ गई। उसके मुख से केवल इतना ही निकला उनके बैल की टाँगें टूट जाँय। वे घर आवें या नहीं आवें। मुझे उनकी चिन्ता नहीं है।

आगत पतिका बनी हुई विरहिणी अभी तक पति की राह देख रही थी। पर कोरा जवाब पाकर पुनः प्रवासित पतिका बन गई। और उसने अपने मन के क्षोभ को पति को नहीं उसकी बरधो को, जिस कारण से वह नहीं आ सका शाप देकर निकाला।

(३३)

ननद भउजिया मिलि पनिया के निकसेलीं,
अँचरा उड़ि उड़ि जाइ हो राम ॥१॥
मों तोसे पूछिला मैना ननदिया,
अँचरा कवने गुने ऊड़े हो राम ॥२॥
पवन बहेला पुरवइया हो भउजी,
अँचरा उड़ि उड़ि जाला हो राम ॥३॥
मों तोसे पूछीला मैना ननदिया,
अँचरा कवन गुनवा धूमिल हो राम ॥४॥
वटुली माँजन गइलीं बाबू महलिया,
वटुली करिखवे अँचरा करिया हो राम ॥५॥
मों तोसे पूछिला मैना ननदिया,
मुहवाँ कवन गुनवे पीअर हों राम ॥६॥
हरदी पीसन गइलीं भइया के महलिया,
ओही लागि मुंह पिअराइल हो राम ॥७॥
सभवा वइठल तुहूँ ससुरा वढइता,
ननदी गवनवा कइ डालीं हो राम ॥८॥

अइसन कहवू वहुअरि नइहर पहुँचाइबि,
मोरे मैना लरिका नदनवा हो राम ॥६॥
मचिअहिं वइठलि तुहूँ सासु वढइतिन,
मैना गवन देइ डार्ली हो राम ॥१०॥
अइसन कहवू वहुअरि खाल खिचवाइबि,
मोर मैना लरिका नदनवा हो राम ॥११॥
पँसवा खेलत मोर जेठ वढइता,
मैना गवन देइ डार्ली हो राम ॥१२॥
अइसन कहवू भवहि जीभि खिचइबों,
मोरि मैना लरिका नदनवा हो राम ॥१३॥
गेंनवा खेलत तुहूँ देवरू, दुलरुवा,
मैना गवन देइ डार्ली हो राम ॥१४॥
अइसन कहवू भौजी नइहर पहुचाइबि,
मोरी मैना लरिका नदनवा हो राम ॥१५॥
जेवना जेवइँत सैया सुनहु अरजिया,
मैना गवन देइ डार्ली हो राम ॥१६॥
मोरे पिछुअरवाँ पण्डित भैया मितवा,
मैना गवन सोधि देहू हो राम ॥१७॥
आजु एकदसिया विहान दुइदसिया,
तेरसि के वनेले गवनवा हो राम ॥१८॥
जव रे वरतिया रे अइली दुअरवाँ,
मैना के डँडवा पिराला हो राम ॥१९॥
जव रे वरिअतिया रे अइली अँगनवा,
मैना के भइले नन्दलाल हो राम ॥२०॥
मुहँवाँ पटुका देके हँसेले वजनियाँ,
गवना वजाओं कि वधैया हो राम ॥२१॥
मुहँवाँ पटुका देके हसेले कहरवा,

तीनि मुड़ कइसे लेके जाइबि हो राम ॥२२॥
मुहँवा पटुका देके रोवें मैना के सामी,
माई आगे कवनि जबबिश्रा हो राम ॥२३॥
मुहँवा पटुका देके रोवे मैना के बाबा,
मोरे मुह लगले करिखवा हो राम ॥२४॥
मुहँवा पटुका देके रोवे मैना के भैया,
दूनो कुल बोरलू मैना बहिनी हो राम ॥२५॥
मुहवाँ अँचर देइ रोवे मैना के भउजी,
हमरी कहनिया नाहीं मनलीं हो राम ॥२६॥
एक गाँव लँघली दूसर गाँव लँघली,
तिसरे में परे ससुरारिया हो राम ॥२७॥
परिछन निकसेली मैना ससुइया,
केकर जामल होरिलवा हो राम ॥२८॥
दिनवा त बीते मइया दर दरबरवाँ,
रतिया रहीले ससुररिया हो राम ॥२६॥

ननँद, भौजाई, एक साथ पानी भरने चलीं। ननँद की छाती से अन्चल उड़ उड़ जाता था। भौजाई ने ननद से पूछा, हे ननद ! तुम्हारा अञ्चल तुम्हारी छाती पर क्यों नहीं ठहता ? ॥१-२॥

ननँद ने उत्तर दिया—'हे सखी ! पूर्वा हवा चल रही है इससे मेरा अचल उड़ जाता है ॥३॥

भौजाई ने कहा—हे मैना ! मैं तुमसे पूछती हूँ कि किस कारण से तुम्हारा अन्चल मैला हो गया है। ननद ने जवाब दिया—मैं, ठाकुर के घर बर्तन मलने गई थी वहीं बटुली की कारिख अञ्चल में लग गई। फिर भावज ने पूछा—हे ननद मे तुमसे पूछती हूँ कि तुम्हारा मुँह क्यों पीला पड रहा है। ननद ने कहा—कि मै भइया के घर हल्दी पीसने गई थी उसी से मेरा मुख पीला पड़ रहा है ॥४,५,६,७॥

इस तरह भेद लेकर भावज ने जब ननद से उसके गर्भाधान की बात

निश्चय कर लिया तब वह अपने ससुर के पास जाकर बोली, सभा में बैठे हुए हे ससुर पूज्य ! ननद का गवना कर डालो ॥८॥

ससुर ने कहा—हे वहू ऐसी बात कहोगी तो तुम्हें मायके भेज दूंगा। मेरी मैना अभी नादान बच्ची है ॥९॥

फिर बहू सास के पास आकर बोली—'हे मचिया पर बैठी हुई मेरी पूज्य सास मैना का गौना कर डालो ॥१०॥

सास ने कहा—हे बहू ! मेरी मैना नादान बच्ची है, ऐसी बात कहोगी तो तुम्हारी खाल खिचवा लूँगी ॥११॥

बहू अपने जेठ के पास जाकर बोली—गोशाला में बैठे पासा खेल रहे हे जेठ तुम आरदणीय हो मैना का गौना कर दो। जेठ ने कहा हे भवह ! मेरी मैना नादान बच्ची है यदि तुम ऐसी बात कहोगी तो तुम्हारी जीभ निकलवा लूँगा ॥१२,१३॥

वहाँ से बहू अपने देवर के पास आकर बोली—हे हमारे देवर तुम तो गेंद खेल रहे हो मैना का गौना कर दो। देवर ने कहा—हे भावज मेरी मैना नादान बच्ची है ऐसी बात कहोगी तो मैं तुम्हें तुम्हारे मायके भेज दूंगा ॥१४, १५॥

स्त्री वहां से चल कर अपने पति के पास आई और कहने लगी—हे प्रियतम ! आप भोजन कर रहे हैं, मैना का गौना कर डालिये ॥१६॥

पति ने कहा—मेरे पिछवारे मेरा मित्र पंडित है। हे पंडित ! मैना के गौना का दिन विचार कर बताओ ॥१७॥

पंडित ने कहा—आज एकादशी है, कल द्वादशी है, और परसों त्रयोदशी को, गौने का दिन बनता है ॥१८॥

पति ने गौने का दिन निश्चय करके भेज दिया जब बारात दरवाजे लगी तब मैना को प्रसववेदना होने लगी और जब बारात आँगन में आई तो मैना को पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१९,२०॥

मुँह पर दुपट्टा देकर बाजे वाले हँसने लगे और कहने लगे कि व्याह का मङ्गल बजाऊँ या पुत्र की बधाई। मुँह पर दुपट्टा देकर हँस कर कहार कहने लगे कि तीन व्यक्ति एक ही साथ पालकी में कैसे जायँगे। मुँह

पर दुपट्टा देकर मैना का स्वामी रो रोकर कहने लगा कि मैं माँ को क्या जवाब दूँगा ॥२१, २२, २३॥

मुँह पर पटुका देकर मैना का पिता कहने लगा—हा मेरे मुँह में कालिख लग गई ॥२४॥

मुँह पर दुपट्टा रखकर मैना का भाई रो रोकर कहने लगा—कि हे बहन मैना तुमने दोनों कुलों को डुबो दिया ॥२५॥

मुँह पर अञ्चल देकर मैना की भावज रो रोकर कहने लगी—हा मेरा कहा किसी ने नहीं माना ॥२६॥

विदाई होगई। मैना ने एक गाव पार किया दूसरा गाँव आया तीसरे में उसकी ससुराल पड़ी। मैना की सास आरती लेकर निकली तो बधू के साथ पुत्र देखकर कहने लगीं—अरी यह किससे पैदा हुआ लड़का है? ॥२७-२८।

मैना के पति ने धैर्य के साथ कहा कि हे माँ! मेरा दिन भर तो दरबार की नौकरी में बीतता था पर रात को मैं ससुराल में जाकर रहता था लड़का मेरा ही है ॥२९॥

यह गीत बहुत प्राचीन समय का मालूम होता है या उस समय का हो सकता है जब अपराध का दण्ड शरीर विच्छेद द्वारा या जीते जी चमड़ा खिचवा कर दिया जाता था। इसके सम्बोधन की शैली भी बहुत प्राचीन समय की मालूम होती है। सम्भवत इस गीत का पूर्व रूप चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में रचा गया होगा और तब से आज तक गाँवों मे स्त्रियों द्वारा भाषा वेश बदलता हुआ गाया जाता है।

(२४)

रामा बरह बरिस क उमिरिया त हरि मोरा बिदेसे गइलें हो राम।
रामा बरह बरिस पर अइलनि बगिया में गोनिया गिरवलनि हो राम॥
रामा नगर बोलाइ भेद पुछलें धनिया कवने रगवे हो राम॥१॥
बाबू! राउर धन हथवा क पातरि मुँहवाँ त जोति जागे हो,
रामा बडे रे पुरुखवा क धिअवा तीनो कुलवा रखली हो राम॥२॥
उहवाँ से गोनिया उठवलें दुअराआई उतरलें हो राम॥

रामा चेरिया वोलाइ भेद पुछलें धनिया कवने रँगवे हो राम ॥३॥
वावू ! राउर धनि अँगुठा मोरि चलली घुँघुटवा काढि वइठली हो राम ॥
वावू ! वड़े रे सहेववा के धिअवा तीनहुँ कुलवा तरली हो राम ॥४॥
उहवाँ से गोनिया उठवले अँगन गोनि डालें हो राम ॥
रामा मइया ले दउरलीं पिढइआ, वहिनि लेइ पनिया हो राम ॥५॥
रामा माई वोलाइ भेद पुछलें धनिया कवने रगवे हो राम ॥
वेटा ! तोरि धनि भरली निरोग नजरि निचवाँ रखली हो राम ॥६॥
वेटा ! देहिया त गइली झुराइ मुँहवा जोति वढली हो राम ।
वेटा ! वड़ेरे सजनवाँ क धिअवा तीनू कुलवा रखली हो राम ॥७॥
उहवाँ से गोनियाँ उठवलनि कोठरिया में गोनि डालें हो राम ॥
रामा सूतल धनियाँ जगवलनि जाँघे वइठवलनि हो राम ॥८॥
रामा वहियाँ पकरि भेद पुछलें कहुन धनि कुसल हो राम ।
परभू ! रउरा विनु पनवा न खइलीं सोपरिया नाहि तुरलीं हो राम ॥९॥
परभू ! अगना मोरा लेखे रन वन दुअरा सपन भइले हो राम ।
सामी सेजिया त लोटे कारि नागिनि त रउरे दरस विनु हो राम ।
त रउरे सरन विनु हो राम ॥१०॥

हे राम जब मेरी बारह बरस की अवस्था थी तभी मेरे पति विदेश चले गये थे और बारह बरस पर जब लौटे तो बाग ही में बरधी खोल कर नगर के लोगों को बुला कर भेद लेने लगे कि मेरी स्त्री का क्या हाल है ॥१॥

लोगों ने कहा हे बाबू आपकी स्त्री के हाथ तो सूख गये हैं और मुख उसका वैसे ही तेजवान है जैसा कि एक सती का होना चाहिये।

हे बबुआ वह बड़े घर की लड़की है उसने दोनों कुलों की रक्षा की है ॥२॥

वहाँ से पति अपना सामान लेकर दरवाजे पर आ गया। दासी को बुला कर उसने अपनी स्त्री का भेद लिया कि वह कैसे रहती है ॥३॥

चेरी ने कहा—कि हे बाबू आपकी स्त्री अँगूठा मोर कर तो चलती हैं और घूंघट काढ़ कर बैठती हैं, वह बड़े साहब की कन्या है उन्होंने तीनो कुल को

तार दिया ॥४॥

वहाँ से पति फिर चला और आँगन में आकर बैठा माँ पीढ़ा लेकर और बहन पानी लेकर दौड़ी ॥५॥

पति ने माता को बुलाकर भेद लिया कि हमारी स्त्री किस रंग में है माँ ने कहा— हे बेटा ! तुम्हारी स्त्री तुम्हारे इस विरह में भरी रहती है और सदा नीची निगाह करके चलती है। हे बेटा उसका शरीर तो सूख गया है पर मुंह कीज्योति बहुत ही बढ़ी हुई है। हे पुत्र वह बड़े सज्जन की कन्या है उसने तीनों कुल की रक्षा की है ॥६-७॥

पति वहाँ से उठा और पत्नी की सेज पर आ बैठा सोती हुई अपनी स्त्री को जगाया और प्यार से जघे पर बिठाया। उसकी बाँह पकड़ कर उसने पूछा—हे प्रिये ! अपना कुशल मङ्गल कहो। सती ने कहा—हे प्रभो आपके बिना मैंने पान नहीं खाया सुपारी तक कभी दाँत से नहीं तोड़ी। हे प्रियतम ! आंगन तो मेरे लिये लड़ाई के क्षेत्र की तरह लगता था और द्वार पर निकलना मेरे लिये स्वप्न था। हे स्वामी ! सेज पर आते ही आते काली नागिन लोटा करती थी। तुम्हारे दर्शन के बिना तुम्हारी शरण के अभाव में मैं निराधार थी ॥८॥

इस गीत पर टीका करते हुए प० रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है :—

"इस गीत में प्रगट होता है कि स्त्री के ऊपर अपने पिता, ससुर और पति तीनों कुलों की मर्यादा-रक्षा का भार है। वह स्त्री धन्य है, जिसके सत की प्रशसा दासी से लेकर नगर की साधारण जनता तक करे।"

"स्त्री पर पुरुष का सन्देह प्रायः सर्वत्र पाया जाता है। यह गीत जब बना उसके पहले भी यह सन्देह था और अब भी है। एक ओर यह सदेह, दूसरी ओर धैर्य की पराकाष्ठा ! बारह बारह वर्ष तक स्त्री पति की राह देखती, दिन गिनती बैठी रहती थी। एक तो यही दुःख क्या कम था। उस पर चरित्र विषयक सन्देह ! स्त्री ही में इतना सब सहन करने की शक्ति है। पुरुषों में लक्ष्मण सरीखा ही कोई विवाहित पुरुष इतने वर्षों का ब्रह्मचर्य रख सकता है। इतने पर भी उसके चरित्र पर कोई सन्देह करे तो वह क्रोध को रोक सकेगा या नहीं इसमें सन्देह है। विधाता ने स्त्री के हृदय में वह अद्भुत सहन

शक्ति दी है, जिसकी तुलना संसार में नहीं की जा सकती।"

मैं त्रिपाठी जी के इस कथन से अक्षरशः सहमत हूँ पर स्त्री हृदय को इतना सहन शील बनाने का श्रेय ईश्वर को है या हमारे निष्ठुर समाज को जिसने सदियों ही से नहीं बल्कि मानव सस्कृति के प्रारम्भ ही से अपने नियम ऐसे कठोर बनाये जिससे नारी जाति मात्र को आजन्म पुरुष के शासन में रहना पड़ा। इसमें समाज के आचार्यों ने क्या भलाई समझी थी यह विवाद की आज बात है। हम पाश्चात्य रोशनी के हिमायती इसे महान अत्याचार ही कहते हैं। पर मानव प्रकृति की सूक्ष्मता को समझने वाले हमारे ऋषियों की धारणा गलत हो इसमें बहुतों को आज भी सन्देह है। खास कर तब जब पाश्चात्य स्त्री स्वतन्त्रता के कुफल हमें आज दिखाई दे रहे हैं। फ्रान्स के प्रसिद्ध लेखक Honorede Balzac महाशय भी इसी भारतीय धारणा की पुष्टि करते हुए पाए जाते हैं। उनका कहना है:—

"पति को गवर्नमेण्ट की तरह अपनी गलती वैवाहिक जीवन में कभी स्वीकार न करनी चाहिये। अगर वह ऐसा करता है तो उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है और वैवाहिक जीवन के गौरव में स्त्री जो अपनी शक्ति का प्रदर्शन करती है उसके सामने पति सदा प्रतिभाहीन साबित होगा। यदि वह गलती स्वीकार करता है तो पति का सर्वस्व नष्ट हो जायेगा। और उसी क्षण से स्त्री रियायत पर रियायत पति महाशय से तब तक प्राप्त करने में सफलता पाती रहेगी जब तक वह पति को अपने बिस्तर से खदेड़ देने की रियायत प्राप्त नहीं कर लेती।"

"स्त्री स्वभाव ही से तीक्ष्ण बुद्धि हाजिर जवाब और हास्य प्रवीण होती है और वह जानती है कि किस प्रकार हँसी हँसी में बातों को उड़ा दिया जाता है और बड़ी से बड़ी बात को किस तरह संक्षेप में नगण्य कर दिया जा सकता है। अपने इस स्वभाव से किसी वाद-विवाद में वह पति को हँसी का पात्र शीघ्र बना सकती है इसलिये जिस दिन पत्नी पति को हँसी का पात्र बनाने में सफल होगी। उसी दिन पति के सुख और प्रसन्नता का भी अन्त हो जायेगा क्योंकि पति की शक्ति का ह्रास इसमें अवश्यंभावी है वह स्त्री जो एक बार भी अपने

नहीं। (पानी नहीं है तो न सही) अपनी फटी लुगरी ही हमको दे देती ॥८॥

इसमें व्यंग्य है। ननद अपने मैके गयी है उसे अपने पिता की सम्पत्ति में से और कुछ पाने का हक भले न हो एक पिअरी ! पीली सारी पाने का हक तो उसका नहीं इनकार किया जा सकता। इसमें भावज को दया की कोई बात नहीं थी और फिर भी उसके साथ राजा गोपी चन्द भी थे। उनको भी कन्हावर (पीली धोती) ससुराल से पाने का हक था ! तीसरी बात यह कि रानी ने ही कहकर राजा को वहाँ आने के लिये तैयार किया था। उसको अपने मैके का गर्व था। पर भावज ने पानी तक देना अस्वीकार किया। यदि कन्हावर और पिअरी मिल जाती तो कुछ लाज रह जाती। रख नहीं सकी पर सेवा सत्कार तो किया। फटी लूगरी ही देकर विदाई तो किया। वहाँ भी गरीबी थी इससे नहीं रखा। पर निष्ठुर भावज ने ननद के इन बातों को समझ कर भी साफ फटकार बता दिया।

भावज ने कहा, "हे ननद जी ! फटी पुरानी लुगरी तो मेरी पिटारी में बन्द रखी है। उसका सावन भादों में पोतन (घर पोतने का चीथड़ा) बनाया जायगा ॥९॥

इस फटकार को सुनकर ननद का धैर्य्य छूट गया। रोने लगी कहा ! हाय राम ! हाय विधाता तूने मेरे भाग्य में क्या लिखा है ॥१०॥

राजा ने सान्त्वना दी। कहा, "हे रानी तुमने मेरा कहा नहीं माना। बिपत्ति के समय में कौन किसका सहायक होता है ? कोई नहीं। हे रानी चलो अपने ही देश चलें। वहीं चरखा चला कर, सूत कातकर हम अपने बिपत्ति के दिन काट लेंगे ॥" ॥११,१२॥

इस गीत में भी चर्खा की महिमा का वर्णन है। किसी समय में भारत में चर्खा सब की रोजी चलाने का प्रधान साधन था। पर इसको आज हम करने को तैयार नहीं होते।

(३७)

केरे देले गोहुआँ हो रामा, केरे देले चँगेलिया।
कवन बइरिनिया हो रामा, भेजेले जँतसरिया ॥१॥

सासु देली गोहुँआँ हो रामा, ननदी चँगेलिया ।
गोतिनी वइरिनियाँ हो रामा, भेजेली जँतसरिया ॥२॥
जँतवो न चलइ हो रामा, मकरी न डोलइ।
जँतवा के धइले हो रामा, रोइला जँतसरिया ॥३॥
घोड़वा चढल हो लछुमन, करहीं पुछमरिया ।
केकरी तिरिश्रवा हो रामा, रोंवइ जँतसरिया ॥४॥
तूहूँ ना ई जनल हो लछुमन तोहरीं तिरिश्रवा ।
जँतवा के दूखे हो रामा रोवहूँ जँतसरिया ॥५॥
घोड़वा त बँधलनि हो लछुमन वर के वरोहिया ।
झपटि पइसले हो लछुमन नैना पोछइ लोरवा ॥६॥
केरे देले गोहुँश्राँ हो साँवरि के देले रे चँगेलिया ।
कवनि वइरिनियाँ हो रामा भेजेले जँतसरिया ॥७॥
सासु देली गोहुँआँ हे प्रभुजा, ननदी चँगेलिया ।
गोतिनी वइरिनियाँ ए प्रभु जी भेजेले जँतसरिया ॥८॥
जँतवा ना चले ए प्रभु जी, मकरी न डोलइ ।
जँतवा के धइले हे परभु जी रोइला जँतसरिया ॥९॥
वहियाँ पकरलन लछुमन जँघिया वइठवलन ।
अपने रुमलिए हो लछुमन पोछें नैना लोरवा ॥१०॥

"किसने गेहूँ दिया ? किसने डलिया दी ? किस वैरिन ने तुम्हें जात के घर में आटा पीसने को भेजा ?" ॥१॥

जाँता घर में वैठी हुई और रोती हुई वहू से सखी ने प्रश्न किया ॥१॥

वहू ने कहा, "सास ने गेहूँ दिया। ननद ने चँगेली दी। जेठानी वैरिन ने जाँता के घर में गेहूँ पीसने को भेज दिया। हाय राम जाँता तो चलता ही नहीं। और न मकरी डोलती है। जाँता का हथ्था पकड़े रो रही रही हूँ।" 'मकरी न डोलइ' से मतलब है कि यदि हथ्थे की खूटी ढीली पड़ जाती तो हथ्था ही उखड़ जाता पीसने से जान वचती ॥२,३॥

संयोग से उधर ही से लछमण उसके पति, घोड़े पर चले जाते थे उन्होंने

सखी से पूछा—"किसकी स्त्री जाँता घर में रो रही है ?" ॥४॥

पास खड़ी सखी ने उत्तर दिया, "लछमण तुम नहीं जानते क्या ? तुम्हारी ही स्त्री तो जाँत चलाने के दुःख से जाँत घर में रो रही है।" ॥५॥

लछमण घोड़े से उतर पड़े। बरगद की जटा से घोड़े को बाँध दिया। अपनी आँख में उमड़े आँसू को पोंछते हुए उन्होंने जँतसार में झपट कर प्रवेश किया। पूछा—"बताओ तो किसने तुम्हें गेहूँ दिया ? किसने चँगेली दी और किस बैरिन ने तुमको जाँत घर में भेजा।" ॥६,७॥

सुकुमार स्त्री को सान्त्वना मिली। उसने उत्तर दिया, "सास जी ने गेहूँ दिया, ननद ने चँगेली और बैरिन जेठानी ने मुझे जाँत घर में गेहूँ पीसने को भेज दिया। हे नाथ ! मुझसे न जाँता चलता है और न मकरी ही (हथ्थे की खूँटी) हिलती है कि गेहूँ पीसने से पिण्ड छूटे। हे प्रभु ! मैं जाँता का हथ्था पकड़े इस जँतसार में अकेली रो रही हूँ। मैं करूँ तो क्या करूँ ?" ॥८,९॥

"लछमण ने झट से पत्नी की बाँह पकड़ कर उसे अपनी जाघ पर बैठा लिया और अपनी रूमाल से उसके आँसू पोंछने लगे।" ॥१०॥

इसमे सास, ननद, और जेठानी द्वारा नवबधू पर कैसे कैसे अत्याचार आये दिन होते रहते हैं और किस तरह वह परीशान की जाती है यह स्पष्ट प्रगट होता है। बेचारी सुकुमार बधू से कैसा कठोर काम लिया जा रहा था।

(३८)

पछिम के जँतवा रे पूरब के तेवई कोठा ऊपर जँतवा पीसेलीं रे की ॥१॥
झीनी झीनी सरिया रे झीनी रे वेअरिया छने छने नैना लोर ढारेली रे की ॥२॥
बटवा जे चलत बटोहिया जे पूछेले केकर जोहत बाड़ बटवा नु रे की ॥३॥
केकरि बाट जोहि नयना से नीर ढार कवने बिपतिया तूहूँ रोवेलू रे की ॥४॥
जेहो नवरँगिया लवले फूले बरह मसवा तेकरे बिरिछ तरे बाट जोहीला रे की ॥५॥
जेकरि बिरिछिया राम सेहू परदेस गइले एही दुखवे नयना नीर ढारीला रे की ॥६॥

डाल भरि सोना लेहू मोतिया से माग भरू जाँत छाड़ि मोरे सँग लागहु रे की ॥७॥
आगि लागो सोनवाँ वजर परो मोतिया रे, सत छोड़े कइसे पत रहिहें
नु रे की ॥८॥

पाठक देखें कितना सुन्दर वर्णन है। प्रसाद भी कितना उत्तम है।

पश्चिम का जाँत (जो बहुत भारी होता है) पूर्व की स्त्री (जो बहुत सुकुमार होती है) कोठे के ऊपर पीस रही है ॥१॥

वह महीन साड़ी पहने हुए है। मंद मंद हलकी वायु बह रही है। क्षण क्षण उसकी आँखों से आँसू गिर रहे हैं ॥२॥

रास्ते पर जाता हुआ बटोही (उसको देखकर और लुभाकर) पूछने लगा, "स्त्री तुम किस की राह देख रही हो ? किसकी प्रतीक्षा कर रही हो और नेत्रों से नीर गिरा कर हे कामिनी ! तुम किस विपत्ति के कारण तुम यहाँ रो रही हो ? ॥३,४॥

स्त्री ने उत्तर दिया, "जिसने दरवाजे पर नौरंगी का पेड़ लगाया, जो आज बारहो मास फूला करता है मैं उसी की राह देख रही हूँ। जिसका वह वृक्ष है उसी की प्रतीक्षा कर रही हूँ।"

(इस वाक्य में श्लेष है। एक अर्थ वृक्ष के प्रति लागू होता है जो ऊपर दिया गया है। दूसरा नारंगी वृक्ष को अपने विरही शरीर से उपमा देकर वह कहती है इस शरीर को वही यहाँ लाया, उसी की आशा पर आज भी यह जीता जागता हरा भरा है। यह शरीर रूपी वृक्ष जिसका है उसी की प्रतीक्षा मैं यहाँ इस वृक्ष के नीचे कर रही हूँ। पर जिसका यह नारंगी का वृक्ष है, वह स्वामी परदेश गया हुआ है। उसी के विरह दुःख से मै आँखों से आसू गिरा रही हूँ॥५,६॥

बटोही तो मुग्ध हो चुका था। पापी के पास सिवाय रुपये पैसे के प्रलोभन के और क्या होता ही है कि जिससे वह छल कर सके। (उसकी बुद्धि इतना कहने पर भी नहीं जगी) उसने कहा, "हे तरुणी, तुम एक डलिया सोना (जेवर) ले लो। मोतियों से अपनी माँग भर लो। जांता का कष्ट छोड़ कर मेरे साथ (सुख लूटने) चली चलो।"॥७॥

पर इसके उत्तर में सती ने उसे कामुक तुच्छ समझ कर अधिक कुछ नहीं कहा। केवल इतना ही कहा—"तुम्हारे सोने के जेवरों में आग लगे। मोती पर वज्र पड़े। सत छोड़ने से दुनिया में कहीं पत रहती है।" किसी ने इसी को तो दुहराया है—

सत मत छोड़ो बावरे, सत छोड़े पत जाय ॥८॥

(३६)

सेर भर गोहुआँ रे बाँस के चँगेलिया,
आरे पिसन चलेली जँतसरिया हो राम ॥१॥
जँतवा न चले राम किलवा न डोले,
अरे जुअवा धइले सखी रोवेली हो राम॥२॥
झँझरे झरोखे चढि रजवा निरखले,
केकर तिरिअवा रोवे जँतसरिया हो राम ॥३॥
तू काइ जनब तुहूँ रे सिपहिया रे
तोहरे तिरिअवा रोवे जँतसरिया हो राम ॥४॥
जाँत से उठवलें रे गोद बइठवलें आरे
अपने रुमलिया पोछें नयना हो राम ॥५॥
गोड़ तोरा लागों रे ननदी के भइया
आरे रसे रसे बेनिया डोलावहु हो राम ॥६॥
बेनिया डोलावत अइलें सुखकरे निंदिया
आरे परि गइलें सासु के नजरिया हो राम ॥७॥
बावा खाउँ भइया खाउँ तोहरी बहुअवा
आरे कवन रासयवा बेनिया भेजले हो राम ॥८॥
जनि सासु बावा खाहु जनि ननद भइया खाहु
आरे तोहरे बेटउआ बेनिया भेजले हो राम ॥
आरे तोहरे भइयवा बेनियाँ भेजले हो राम ॥९॥
हमरो बेटउआ करे राजा क चकरिया
कब अइले अउर कब गइले हो राम ॥१०॥

तोहरो बेटउआ करे राजा क चकरिया,

रतियेँ अइलें रतियेँ गइलें हो रान ॥११॥

सेर भर गेहूँ बांस की टोकरी में लेकर बहू जाँता के घर में आटा पीसने के लिए गई। पति के विरह में न उससे जाँता चलता है, न उसकी किल्ली ही हिलती है। वह जूआ पकड़े हुए रो रही है ॥१,२॥

झाँझर झरोखे पर चढ़कर उसके पति ने उसको देखा और पूछा—"किस की स्त्री बँतसार में रो रही है?"॥३॥

स्त्री प्राणेश्वर की आवाज पहचान गई। उसने व्यंग के साथ कहा—'अरे तुम क्या जानोगे कि किसकी स्त्री रो रही है। तुम तो सिपाही ठहरे। बँतसार में अपनी स्त्री का रोना भी तुम नहीं पहचान पाते' ॥४॥

"पति ने स्त्री को तुरंत जाँत पर से उठाया और अपनी गोद में बैठा लिया और अपनी रूमाल से उसके नेत्रों को पोंछने लगा।" ॥५॥

स्त्री काफी थक चुकी थी फिर आनन्दातिरेक से और भी उसे थकान मालूम होने लगी थी। उसने पति से कहा, हे मेरे ननद के भाई! मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ। धीरे धीरे पङ्खा डुला दो ॥६॥

पङ्खा चलाते चलाते स्त्री को सुख की नींद आ गई। पति तड़के उठकर चला गया। पत्नी सोती ही रह गयी—सास की दृष्टि उस पङ्खा पर पड़ी ॥७॥

सास आग बबूला हो उठी। कहने लगी, 'वधू! मैं तेरे बाप भाई को जीते खा जाऊँगी। ठीक ठीक बता किस यार ने तुम्हें यह पङ्खा दी है' ॥८॥

बहू ने कहा, "हे सास! अरी ननद!! तुम लोग क्यों मेरे बाप भाई को खाओगी। तुम्हारे बेटे और भाई ने ही तो यह पङ्खा मुझे दिया है।"॥९॥

सास ने कहा, 'अरे मेरा पुत्र तो राजा की कचहरी में रहता है। वह यहाँ कब आया?' ॥१०॥

बहू ने कहा, 'यह बात सच है कि वे राजा के यहाँ रहते हैं पर वे रात ही में यहां आए थे और रात ही लौट भी गए।' ॥११॥

नौकरी की कितनी बुरी दशा है। अपनी प्रेयसी पत्नी से भी चोरी से मिलना पड़ा। और सास ननद का बहू के ऊपर भी नौकरी के शासन से कम शासन नहीं कि एक साधारण पखे के कारण इतनी बातें सुननी पड़ीं।

(४०)

हमरा सेजरिया राम फुलवा एक गमके,
फूल के गमकिया राम लगले गरमिया ॥१॥
देवरा मोरा लरिका, गदेलवा सैयाँ परदेसिया,
केकरे सिरे ढारों राम इहे रे गरमिया ॥२॥
मचिया बइठल ए राम-सासु ! हो बढइतिन,
इहो उकितिया सासु हमसे बतावहु ॥३॥
हाजीपुर सहरिया बहुअरि लागेली बजरिया,
लेह लेहु आहो बहुअरि सुपुली मउनिया ॥४॥
सउँसे सहरिया बहुअरि घूमि फिरि अइह,
साझि बेरा आहो बहुआ नयका दुकनिया ॥५॥
किया लेबू आहो ए डोमिन ! धनवा कोदइया,
किया लेबू आहो ये बहुआ हाथ के रुमलिया ॥६॥
आगि लागो ए राजा ! धनवा कोदइया,
हम त लेबों ए राजा मु हे के रुमलिया ॥७॥
बरह बरिस पर राम अइले बनिजरवा,
केकरा महलिया ए रामा रोवेला बलकवा ॥८॥
तोहरा महलिया ए बाबू रोवेला बलकवा ॥९॥
अतना बचनियाँ ए रामा सुनहू ना पवलन,
गोड़े मुड़े आहो ए राम-तनले चदरिया ॥१०॥
घर में से निकले राम पतरी तिरियवा,
चिन्हि लेहु आहो ये प्रभु जी ! मुख के रुमलिया ॥११॥
अतना बचनियाँ ये राम सुनहु न पवलें,
छोटे बड़े आहो ये राम करे ले सलमिया ॥१२॥

विरहिणी नायिका कह रही है:—

'मेरी सेज पर एक फूल मँहक रहा है। उस फूल की महक से मुझे गरमी लग रही है। मेरा देवर लड़का है। मेरा स्वामी विदेश है। हे राम, यह गरमी किसके ऊपर डालूँ' ॥१,२॥

'मचिया पर बैठी हुई हे मेरी पूज्य सास! मुझसे तुम इसकी युक्ति बताओ कि यह गरमी कैसे शान्त हो?' ॥३॥

सास ने कहा, 'हे बहू! हाजीपुर शहर में बाजार लगती है। तुम (डोमिन का रूप धारण करके) सुपुली मौनी (सुपुली=छोटा बास का बना सूप। मौनी=बांस की बनी छोटी टोकरी) ले लो। वहीं चली जाओ। (तुम्हारा प्रीतम वहीं है)। दिन में तुम सारा शहर घूम डालना। शाम को हे बहू! तुम अपने नायक (पति) की दुकान पर चली जाना।' ॥४,५॥

बहू ने सास की बतायी युक्ति का पालन किया। सवेरे चलते समय नायक स्वामी ने पूछा, "अरी डोमिन! तुम धान लोगी या कोदो लोगी या मेरे हाथ की रूमाल लोगी"?॥६॥

डोमिन के रूप में बहू ने कहा, "हे राजा, तुम्हारे धान और कोदो में आग लगे। मैं तो तुम्हारे मुँह की रुमाल लूँगी।" ॥७॥

बारहवें वर्ष बनजारा घर लौटा। घर में बालक रो रहा था उसने रुदन सुन कर पूछा, अरे राम, किसके घर में बालक रो रहा है? मा ने कहा, हे बेटा, तुम्हारे ही घर में बालक रो रहा है ॥८,९॥

इस वाक्य को बनजारे ने पूरा सुना भी नहीं कि पाँव से सिर तक चादर तान कर लेट रहा ॥१०॥

घर में से स्त्री निकली और बनजारे के पास जाकर बोली "हे प्रभु जी, अपने मुख के इस रुमाल को पहचान लो।" ॥११॥

इतनी बात के सुनते ही बनजारा उठ कर छोटे बड़े सब को प्रणाम करने लगा ॥१२॥

कभी ऐसा भी समय था जब बधू को घर बैठा कर स्वामी बारह वर्षों तक विदेश रहता था और बहू सतीत्व की रक्षा स्वयं करती थी। विरह असह्य होने

पर वह वेश बदल कर स्वामी के यहाँ जाती और वहाँ से गर्भवती होकर प्रेम प्रणय के चिन्ह के साथ वापिस आती। नायिका की यह हिम्मत सराहनीय ही नहीं adventurous भी है। सच है, सत्य और पवित्रता को रख कर मनुष्य कोई भी कार्य निर्भय होकर कर सकता है। और समाज को अन्त में उसे उचित मानना ही पड़ता है। कितना सुन्दर वर्णन है। यह गीत इतना प्राचीन ज्ञात होता है जब पति की अनुपस्थिति में देवर से पुत्रोत्पत्ति कराने की प्रथा प्रचलित थी।

(४१)

झीन झीन गोहुआ रे दैया बास के चँगेलिया,
पीसन चललीं रे दैया ओही रे जँतसारी ॥१॥
पीसि कूटिय रे दइया चललीं झकझोरी,
बँसवा के खरिकवे दइया फाटे मोरी सारी ॥२॥
हर जोति अइले दइया कुदारि भाजि अइले,
अगना बइठले दइया सासु लइया लावेली ॥३॥
तोहरी बहुरिया बबुआ! छाँटलि छिनरिया,
कनुआ क पुतवा बबुआ खेले झाकझूमरी ॥४॥
देहु ना आहो ये अम्मा ढाल तरुवरिया,
वन पइठि कटबों अम्मा बाँस के छिकुनिया ॥५॥
एक छाकन मरले दइया दूसर छाकन मरले,
खोलहु आहो ये बहुअरि खोलहु फुफुतिया ॥६॥
फुफुती का खोलले ए प्रभु जी जाइबि लजाइ,
उगिहें सुरज मल देबों में बिचरवा ॥७॥
गाइ के गोबरवा दइया अगना लिपवलीं,
गजमोती आही दइया चउका पुरवलीं ॥८॥
एक ओर बइठेले दइया ससुरा भसुरवा,
दूसर ओर बइठले रामा भइया रे सहोदरा ॥९॥
सुनु सुनु आहो रे बहिनी मुड़िया मरोरबों,

राग जँतसार

जहुँ तोरा आहो रे बहिनी हारि होइ जइहैं ॥१०॥
मुअवों मैं आही रे भइया ! गङ्गा धसि पनियाँ,
जहुँ हम जितवों ये भइया मइया भेंट करबों ॥११॥
उगले सुरुज रे मल दिहलों विचरवा,
मुँड़िया गड़वले दइया उहो कुल बोरना ॥१२॥
बहिनी के भइया हो डँड़िया फनवलनि,
डडिया गइलि हा रामा गावा का वहरयाँ ॥१३॥
सुनु सुनु आहो रे सरवा डडिया बिलमावहु,
हाट के सेनुरवा ए सारजी धनि जोगे नाहि नू ॥१४॥
सुनु सुनु भइया ए बीरन डड़िया फनावहु,
टूटलि सनेहिया ए भइया फिरि मति जोर नू ॥१५॥

महीन गेहूँ है । बाँस की चगेली है । अरे दैव, मैं उस जँतसार में पीसने चली ॥१॥

गेहूँ पीस कर लौटती बार बास की पनच के लग जाने से साड़ी फट गई ॥२॥

मेरे पति हर जोत कर और कुदाल चलाकर जब खेत से घर आये और थके मादे आगन में बैठे तो सास ने चुगली की ॥३॥

कहा—'हे बेटा, तुम्हारी बहू छुटी हुई कुलटा है । कानू के पुत्र से यह हाथापाई' कर रही थी । (झाकाझुमरि = हाथापाई) ॥४॥

पुत्र ने कहा, 'हे मा, मुझे ढाल तलवार दो । मैं वन में जाकर बांस की छड़ी (छाकुन = बांस की कैन की छड़ी) काटूंगा ॥५॥

स्वामी ने स्त्री को एक छड़ी मारा । फिर दूसरी छड़ी मारकर कहा—'हे बहू ! अपनी साड़ी खोलो ।' (फूफती = सारी का चूनन जो सामने रहता है) ॥६॥

बहू ने उत्तर दिया—'हे प्रभु साड़ी खोलने पर तुम लज्जित हो जाओगे । कल सूर्य भगवान निकलेंगे । मैं अपना विचार (शपथ) दे दूंगी ॥७॥

पर यह वेश बदल कर स्वामी के यहाँ जाती और वहाँ से गर्भवती होकर प्रेम प्रणय के चिन्ह के साथ वापिस आती। नायिका की यह हिम्मत सराहनीय ही नहीं adventurous भी है। सच है, सत्य और पवित्रता को रख कर मनुष्य कोई भी कार्य निर्भय होकर कर सकता है। और समाज को अन्त में उसे उचित मानना ही पड़ता है। कितना सुन्दर वर्णन है। यह गीत इतना प्राचीन ज्ञात होता है जब पति की अनुपस्थिति में देवर से पुत्रोत्पत्ति कराने की प्रथा प्रचलित थी।

(४१)

झीन झीन गोहुआ रे दैया बाल के चँगेलिया,
पीसन चललीं रे दैया ओही रे जँतसारी ॥१॥
पीसि कूटिय रे दइया चललीं झकझोरी,
बँसवा के खरिकवे दइया फाटे मोरी सारी ॥२॥
हर जोति अइले दइया कुदारि भाजि अइले,
अगना बइठले दइया सासु लइया लावेली ॥३॥
तोहरी बहुरिया बबुआ! छाँटलि छिनरिया,
कनुआ क पुतवा बबुआ खेले झाकझूमरी ॥४॥
देहु ना आहो ये अम्मा ढाल तरुवरिया,
बन पइठि कटबों अम्मा बाँस के छिकुनिया ॥५॥
एक छाकन मरले दइया दूसर छाकन मरले,
खोलहु आहो ये बहुअरि खोलहु फुफुतिया ॥६॥
फुफुती का खोलले ए प्रभु जी जाइबि लजाइ,
उगिहें सुरज मल देवों में बिचरवा ॥७॥
गाइ के गोबरवा दइया अगना लिपवलीं,
गजमोती आही दइया चउका पुरवलीं ॥८॥
एक ओर बइठेले दइया ससुरा भसुरवा,
दूसर ओर बइठले रामा भइया रे सहोदरा ॥९॥
सुनु सुनु आहो रे बहिनी मुड़िया मरोरबों,

जहँु तोरा आहो रे बहिनी हारि होइ जइहें ॥१०॥
मुअबों मैं आही रे भइया ! गङ्गा धसि पनियाँ,
जहुँ हम जितबों ये भइया मइया भेंट करबों ॥११॥
उगले सुरुज रे मल दिहलों बिचरवा,
मुड़िया गड़वले दइया उहो कुल बोरना ॥१२॥
बहिनी के भइया हो डँडिया फनवलनि,
डड़िया गइलि हा रामा गावा का बहरयाँ ॥१३॥
सुनु सुनु आहो रे सरवा डडिया बिलमावहु,
हाट के सेनुरवा ए सारजी धनि जोगे नाहि नू ॥१४॥
सुनु सुनु भइया ए वीरन डड़िया फनावहु,
टूटलि सनेहिया ए भइया फिरि मति जोर नू ॥१५॥

महीन गेहूँ है। बाँस की चंगेली है। अरे दैव, मैं उस जँतसार में पीसने चली ॥१॥

गेहूँ पीस कर लौटती बार बांस की पनच के लग जाने से साड़ी फट गई ॥२॥

मेरे पति हर जोत कर और कुदाल चलाकर जब खेत से घर आये और थके मादे आगन में बैठे तो सास ने चुगली की ॥३॥

कहा—'हे बेटा, तुम्हारी बहू छूटी हुई कुलटा है। कानू के पुत्र से यह हाथापाई कर रही थी। (झाकाझुमरि = हाथापाई) ॥४॥

पुत्र ने कहा, 'हे मा, मुझे ढाल तलवार दो। मैं वन मे जाकर बांस की छड़ी (छाकुन = बांस की कैन की छड़ी) काटूंगा ॥५॥

स्वामी ने स्त्री को एक छड़ी मारा। फिर दूसरी छड़ी मारकर कहा—'हे बहू' अपनी साड़ी खोलो।' (फूफती = सारी का चूनन जो सामने रहता है) ॥६॥

वहू ने उत्तर दिया—'हे प्रभु साड़ी खोलने पर तुम लज्जित हो जाओगे। कल सूर्य्य भगवान निकलेंगे। मै अपना विचार (शपथ) दे दूँगी ॥७॥

'गाय के गोबर से आगन पोता गया। उसपर गजमोती (गजमुक्ता) का चौक भरा गया। एक ओर मेरे ससुर और भसुर बैठे और हाय राम ! दूसरी ओर मेरा सहोदर भाई बैठा' ॥॥८,९॥

स्त्री ने कहा, "हे मेरे सहोदर भाई, सुनो, जो मेरी हार हो जायगी तो तुम मेरे मस्तष्क को (अपनी तलवार का) निशाना बनाना। (मूड़ी-मड़ोरना = गर्दन ऐंठ देना) अथवा मैं गगा के जल में स्वय धस मरूँगी। और यदि मैं जीत जाउगी तो मैं अपनी माता से भेंट करूगी" ॥१०,११॥

सूर्य भगवान का उदय हुआ मैं ने अपना विचार (शपथ) दिया मैं सच्ची साबित हुई। ससुरकुल को बोरने वाले मेरे स्वामी का सिर नीच हुआ। मैंने कहा, "हे सहोदर भाई डॉड़ी फनाओ। (पालकी ठीक करके मुझे ले चलो)। भाई ने वैसा ही किया। जब पालकी गाव के बाहर पहुँची, तब स्वामी ने पुकार कर कहा। हे मेरे साले ! थोड़ी देर पालकी को रोकदो। हे सार जी अपनी बहन को बाजार का सिन्दूर न पहनाओ। अर्थात् दूसरा व्याह मत करो मुझे ही वापस दो" ॥१२,१३,१४॥

इस पर स्त्री ने कहा, "हे मेरे सहोदर भाई ! पालकी बढ़ाओ। हे भाई टूटे हुए स्नेह को फिर न जोड़ो।"

ऐसे गीत कई आए हैं। पर इस गीत में विशेषता यह है कि य अपने ही आप शपथ का प्रस्ताव रखती है और उसके सती साबित होव मायके जाते समय पति उसके दूसरे व्याह करने की बात भी कहता है। जा पड़ता है किसी किसी जाति विशेष में ऐसे अवसरों पर कन्या का दूसरा विव भी कर दिया जाता था।

(४२)

वर तर डोमिनि बीनेले सुपलिया,
अरे वर रे तरे राजवा खेले फुलगेंदवा ॥१॥
हटि हटि खेलु राजा के बेटउवा,
आरे गढ़ि रे जइहें रउरा बाँस, क छिलनवाँ ॥२॥
तोरा लेखे डोमिन बाँस क छिलनवाँ,

आज वे मिठाइयों से भरे दोने (स्मरण हो होकर) मेरे हृदय में चोट पहुँचा रहे हैं।"

"कोठे के ऊपर गेड़ुआ में शीतल जल मँगा मँगा कर तुम मुझे पिलाते थे। वे स्मरण हो हो कर आज मेरे हृदय पर चोट दे रहे हैं। बालम! मुझसे दो बातें कर लो।"

(१०)

वेरी के वेरि तोहि बरजों छएलवा, उखिया जीन बोअ हो गोएँड़वा ॥१॥
कइए महीना लागे कोड़त खनत, कइए महीना कोल्हुअड़िया ॥२॥
छव महीनवा में कोड़त खनत, बरीस दिना कोल्हुअड़िया ॥३॥
सोरहों सिंगार कइके गइलों कोल्हुवड़िया, अँगरिया फेंकि मारे कोल्हुवड़िया ॥४॥
गोड़ तोरा लागी ले सोरही के बछुवा, जुअठिया तूरि हो घरवा आव हो राम ॥५॥
जुअठिया त टूटले कपरो नु फूटले, घइया लठावे घरवा अईले हो राम ॥६॥
किया घइया लठीहें रे माई बहिनिया, किया लठिहें भउजइया हो राम ॥७॥

किसान की युवती पत्नी चाहती है कि पति घर गिरस्ती के कामों से फुरसत पाकर रात को कुछ देर के लिये भी तो उसके पास रहे। पर किसान पति को खेती के कामों से इतनी फुरसत नहीं मिलती है कि अपनी युवती पत्नी से प्रेम आलाप करे। दिन रात काम करते करते उसकी एड़ी चोटी का पसीना एक हुआ रहता है तब कहीं घर में खाने भर को अन्न मिलता है। पर अन्न से ही युवती पत्नी की भूख नहीं मिटती। पत्नी ने बार बार उसे समझाया कि खेती करो पर ईख की खेती मत करो। इसमें बड़ा परिश्रम है और साल भर खेत ही पर गोड़ाई, निराई, सींचाई रखवारी और पेराई में बीत जाता है। पर पति नहीं मानता। ऐसी ही पत्नी का चित्रण इस गीत में किया गया है।

पत्नी कहती है—हे प्रियतम! मैंने बार बार तुमसे कहा कि ईख गाँव के निकट न बोया करो। इसको गोड़ने और सींचने तथा रखवाली करने में कितने महीने लग जाते हैं, और कितने दिन लगाते है कोल्हु चलाने में इसको पेरने और गुड़ बनाने में? ॥१,२॥

"छ महीने तो गोड़ने गाड़ने में लगते हैं और साल भर पर कोल्हु-आड़ का समय होता है" ॥३॥

यह साल भर का विरह मुझसे सहा नहीं जाता। मैंने सोलह शृङ्गार किया और कोल्हुआड़ में (जहाँ ईख पेरी जाती है) पहुँच गई। पर पति ने क्रोध में आकर मुझे डाँटा और अंगार फेंक कर मारा। ॥४॥

मैंने भी क्रोध कर मनही मन मनाया और कोल्हू में जुते हुए बैल से प्रार्थना किया, "हे सुरभी गाय के बाछा मैं तेरे पाँव पड़ती हूँ। तुम जुआठ को तोड़ कर घर भाग जाओ। ऐसा उछलना कि जुआठ टूट जाय" ॥५॥

बाछा जुआठ तोड़कर भाग गया। उसके नीचे बैठे हुए पति के सिर में ऐसी चोट आई कि सिर फूट गया। मजबूर होकर उसे घर पर घाव लठाने (सिर की चोट को कपड़ा जलाकर भर देने और पट्टी बाँध देने को लाठना कहते है) आना पड़ा। ॥६॥

पत्नी प्रसन्न हुई कि उसकी मनोकामना सिद्ध हुई। अब आज तो कोल्हू बन्द ही रहेगा। पति घर रहेंगे। वह व्यंग ध्वनि में पूछने लगी। उसको पति का अगार फेक कर मारना भूला नहीं था। आप का घाव माता जी लाठेगीं या आपकी बहन जी इस पर पट्टी बाधेंगी या भौजी ही इसकी मरहम पट्टी करेंगी ? अर्थात् मैंने तो यह चोट दी है बिना मेरे पट्टी बाँधे घाव का दर्द नहीं कम होगा। आइये मेरे घर में मैं दर्द दूर कर देती हूँ दूसरा अर्थ यह भी है कि आखिर चोट लगी तो मेरे ही यहाँ आना पड़ा मो बहन भौजाई कोई इस चोट के समय काम नहीं आ सकीं।

(११)

रहरी में घुनेला रहरी के खुँटिया, गगरी में घुने हो पिसनवा।
गोरिया जे घुनेले अपन नइहरवा, पिअवा घुनेला कलकतवा ॥१॥
पहिले पहिल हम गवने अइलीं, आगा पड़ल पुरिया रे जउरिया।
पाँच कवर हम जेवहीं ना पवलीं, फेरेला जोबनवा पर रे हथवा ॥
बीखि भइली पूरिया रे जउरिया ॥२॥

मदसे से हम दोंगे अइलीं, राजा राखे पगरी के रे पेचवा।
छएलवा राखे पगरी के रे पेचवा ॥३॥
दोंगे से हम तेंगे अइलीं, राजा करावे गोबरवा के हिलीया।
छएलवा करावे गोबरवा के हिलीया ॥४॥
बरहो बरसि पर पीअवा मोर अइले, अइले पीअवा उमरिया गँवाइ के।
अइले गल गोछवा बढाइ के ॥५॥
तोरा गल गोछवा में तितिकी लगइबों, अइल बलमु उमिरिया गँवाइ के॥६॥

इस गीत में शूद्र जाति की कोई वह गरीब स्त्री अपनी करुणा भरी कहानी कह रही है जिसको डोला से उतरते ही अपने पेट के लिए दूसरे के घर काम करने जाना पड़ा और उस घर के मालिक ने उस पर बुरी नजर डाली वह किस वेदना से कहना शुरू करती है। उपमा वही है जिसे कि उसने अपने आँखों देखी सुनी हैं।

अरहर में अरहर की खूँटी में घुन लग रहे हैं। घड़े में रखा हुआ आटा घुन रहा है। और उधर अपने मायके में गोरी के शरीर में भी घुन लग रहा है अर्थात् उसकी जवानी व्यर्थ बीत रही है और उधर उसका प्रीतम पति भी कलकत्ता में पड़ा पड़ा घुन रहा है।

व्यंगात्मक रूप से अपनी बीतती जवानी का कैसा सुन्दर वेदना भरा चित्र खींचा है। इसका दूसरा अर्थ है कि जिस तरह अरहर की खूटीं खेत में छोड़ देने से घुनने लगती है। आटा गागर में रखा रखा खराब होने लगता है उसी तरह गोरी की जवानी नइहर में रहने से और पति की जिन्दगी विदेश कलकत्ता मे रहने से नष्ट हो रही है।

(१३)

आरे! लुँगी वाले सिपहिया! हमार तोर कइसे बिगड़े ला रे?
गोरी बिटिउवा अग पातरि रे, सिकिअन काजर दे,
बीचे सड़किया पर वइठि के रे—
परदेसी बलमुआ के मन हरि ले रे।
हमार तोर कइसे बिगड़ेला रे?

डसिती नगिनिया त हम मरि जइतों ॥
सूनो रे सखी ! हम जोगिनि होइबों ॥४॥
"हे सखी ! सुनो । मैं योगिन बनूँगी ।"

"प्रियतम की अवाई सुन कर मैंने भोजन बनाया, पर हे सखी ! वे हमारे यहाँ भोजन करने नहीं पधारे नागिन मुझे डस लेती और मैं मर जाती । मुझसे यह दुःख (अपमान का) नहीं सहा जाता । हे सखी मै योगिन बन जाऊँगी ।" ॥१॥

"अपने राजा की अवाई सुन कर मैंने गेडुए में शीतल जल भराया, परन्तु वे पीने नहीं आये । कहीं दूसरी ही जगह जलपान किये । हे सखी ! मुझे नागिन डस लेती और मैं मर जाती यही इच्छा अब हो रही है । हे सखी ! सुन रख अब मैं योगिन बनूंगी" ॥२॥

"अपने राजा की अवाई सुन कर मैंने सुन्दर सुन्दर पान के बीड़े लगाये परन्तु वे उस खाने मेरे यहाँ नहीं आये । ऐसा जी होता है कि नागिन डस लेती और मै मर जाती । हे सखी ! सुन अब मैं योगिन बनूंगी ।" ॥३॥

"अपने बिछुड़े, पति के शुभागमन को सुनकर मैंने सेज बिछाई । (आज तक जब से वे गये हैं कभी सेज बिछाई नहीं थी । सो वे इतने दिनों पर आये भी और मैंने उनकी प्रतीक्षा में सेज भी बिछाई । तो हे सखी ! मेरे राजा सोने नहीं आये । कहीं और ही सो रहे । मुझसे नहीं सहा जाता ।) नागिन डसती और मैं मर जाती । हे सखी अब सुन रखो मैं योगिन बनूंगी ।"

•

मैं सुन्दरि मोरा राजा नगीनवा ॥
सोने के गेडुया गङ्गा जल पानी, पानी ना पीये राजा जाले दखिनवा ॥१॥
मैं सुन्दरि मोरा राजा नगीनवा॥
सोने के थाली में जेवना परोसलीं जेवना ना जेवे राजा जाले दखिनवा ॥२॥
मैं सुन्दरि मोरा राजा नगीनवा ॥

हे सखी, मै तो सुन्दरी हूँ । पर मेरे स्वामी सौन्दर्य के रत्न हैं (पर मुझे दुःख है कि वे मेरे (यौवन रूपी) स्वर्ण गेडुए में रखा हुआ ह

मढ़वे से हम दोंगे अइलीं, राजा राखे पगरी के रे पेचवा ।
छएलवा राखे पगरी के रे पेचवा ॥३॥
दोंगे से हम तेंगे अइलीं, राजा करावे गोबरवा के हिलीया ।
छएलवा करावे गोबरवा के हिलीया ॥४॥
बरहों वरसि पर पीअवा मोर अइले, अइले पीअवा उमरिया गँवाइ के ।
अइले गल गोछवा बढाइ के ॥५॥
तोरा गल गोछवा में तितिकी लगइबों, अइल बलमु उमिरिया गँवाइ के॥६॥

इस गीत में शूद्र जाति की कोई वह गरीब स्त्री अपनी करुणा भरी कहानी कह रही है जिसको डोला से उतरते ही अपने पेट के लिए दूसरे के घर काम करने जाना पड़ा और उस घर के मालिक ने उस पर बुरी नजर डाली वह किस वेदना से कहना शुरू करती है । उपमा वही है जिसे कि उसने अपने आँखों देखी सुनी हैं ।

अरहर में अरहर की खूँटी में घुन लग रहे हैं । घड़े में रखा हुआ आटा घुन रहा है । और उधर अपने मायके में गोरी के शरीर में भी घुन लग रहा है अर्थात् उसकी जवानी व्यर्थ बीत रही है और उधर उसका प्रीतम पति भी कलकत्ता में पड़ा पड़ा घुन रहा है ।

व्यंगात्मक रूप से अपनी बीतती जवानी का कैसा सुन्दर वेदना भरा चित्र खींचा है । इसका दूसरा अर्थ है कि जिस तरह अरहर की खूटीं खेत में छोड़ देने से घूनने लगती है । आटा गागर में रखा रखा खराब होने लगता है उसी तरह गोरी की जवानी नइहर में रहने से और पति की जिन्दगी विदेश कलकत्ता में रहने से नष्ट हो रही है ।

(१३)

आरे ! लुँगी वाले सिपहिया ! हमार तोर कइसे बिगड़े ला रे ?
गोरी बिटिउवा अग पातरि रे, सिकिअन काजर दे,
बीचे सड़किया पर बइठि के रे—
परदेसी बलमुआ के मन हरि ले रे ।
हमार तोर कइसे बिगड़ेला रे ?

डसिती नगिनिया त हम मरि जइतों ॥
सूनो रे सखी ! हम जोगिनि होइबों ॥४॥
"हे सखी ! सुनो । मैं योगिन बनूँगी ।"

' प्रियतम की अवाई सुन कर मैंने भोजन बनाया, पर हे सखी ! वे हमारे यहाँ भोजन करने नहीं पधारे नागिन मुझे डस लेती और मैं मर जाती । मुझसे यह दुःख (अपमान का) नहीं सहा जाता । हे सखी मैं योगिन बन जाऊँगी ।" ॥१॥

"अपने राजा की अवाई सुन कर मैंने गेडुए में शीतल जल भराया, परन्तु वे पीने नहीं आये । कहीं दूसरी ही जगह जलपान किये । हे सखी ! मुझे नागिन डस लेती और मैं मर जाती यही इच्छा अब हो रही है । हे सखी ! सुन रख अब मैं योगिन बनूँगी" ॥२॥

"अपने राजा की अवाई सुन कर मैं
परन्तु वे उसे खाने मेरे यहाँ नहीं आये । ऐसा
और मैं मर जाती । हे सखी ! सुन अब मैं यो

"अपने बिछुडे पति के शुभागमन को
तक जब से वे गये हैं कभी सेज बिछाई नहीं थ
भी और मैंने उनकी प्रतीक्षा में सेज भी बिछाई
नहीं आये । कहीं और ही सो रहे । मुझे न
और मैं मर जाती । हे सखी अब सुन रखो मैं

मद रूपी गङ्गा-जल का पान नहीं करते और दक्षिण देश को प्रस्थान क
रहे हैं।"

"हे सखी मैं सुन्दरी हूँ पर मेरे स्वामी सौन्दर्य के रत्न हैं।"

"हे सखी मैंने (हृदय रूपी स्वर्ण थाल में मनोरथ रूपी) भोज
सजाया पर स्वामी जेवनार नहीं करते अर्थात उसका उपभोग नहीं करते औ
दक्षिण देश के लिये प्रस्थान कर रहे हैं।

स्त्रियों के गीतों में पाठक प्रायः ऐसा पावेंगे कि जहाँ विरह वर्ण
आया है वहाँ सोने के थाल में भोजन परोसना और पति का न खाना, त
सोने के गेडुआ में गङ्गाजल रखना और प्रीतम का उसे न पीना कहा गया है
इससे लोग साधारणत: अविधा द्वारा ही सीधा अर्थ जेवनार और जल से ल
लेते हैं पर वास्तव में बात ऐसी नहीं है। लज्जा शीला ज्ञात यौवना नायि
वहाँ अविधा में, नहीं, बल्कि व्यंजना में बोलकर गेडुआ से अपने उ
सुडौल स्तन का संकेत करती है और गंगा जल से उसमें भरे अपने निर्मल
रस की उपमा देती है। इसी तरह वह सोने की थाल से अपने हृदय की उप
समझाती है। और जेवनार से तदजनित अभिलाषाओं, मनोकांक्षाओं,
सुकुमार भावनाओं का बोध कराती है। परोसना शब्द का अर्थ है सजा स
कर खाने के लिए पात्र विशेष में वस्तु रखना। तो हृदय थाल में अभिला
मनोकाक्षा और सुकुमार भाव को परोसने का अर्थ भी इसी भाव में लगाने
गीत का रस कितना सुन्दर कितना मीठा हो जाता है इसे पाठक मनन क
ही अनुभव करें।

फिर विरह ही में नहीं श्रृङ्गार वर्णन में ऐसे ही प्रयोग मिलते
जैसे किसी ने कहा है —

सोने के गेडुआ गंगा जल पानी, पानी ना पीये निहारे जोबना।
सोने के थरिया में जेवना परोसलों, जेवना न जेवें निहारे जोबना॥

इसका सीधा अर्थ तो साफ है कि पानी न पीकर यौवन निरेखा क
है। पर अगर इसी को ऊपर के बताये अर्थ के अनुसार व्यंजना द्वारा सम
का हम स्पष्ट करें तो अर्थ कितना सुन्दर हो जाता है। अर्थात छाती में

निर्मल प्रेम जल को न देखकर यह कामी पति केवल उसके वाह्य रूप को ही निहार रहा है। अर्थात् उस निर्मल विशुद्ध प्रेम जल का स्वयं पान करके मुझे भी वैसा ही प्रेम जल पान न करा कर मेरे और अपने जीवन का वाह्य रूप ही कामातिरेक में निहार रहा है वैसे ही ऊपर बताये अर्थ के अनुसार हृदय रूपी सोने की थाल में रखे हुए मनोकामना रूपी जेवनार को न पान करने का भी अर्थ समझिये।

(१४)

दरद निबुला लेके अइह हो राजा ॥
जऊँ तुहूँ राजा वेमारी के सुनीह, जऊँ तुहूं राजा वेमारी के सुनीह
पटना से वएदा भेजइह, नवज धरवइह हो राजा ॥१॥
नवज धरवइह हो राजा ॥
दरद निबुला लेके० ॥
जउँ हम राजा हो मरि हरि जाईं
चनन चइली ले गगा पहुँचइह
हो राजा। दरद० ॥२॥
जउँ तोहि राजा हो दिल घबराये, छोटकी सारि लेके जिया वहलइह हो राजा ॥३॥
दरद निबुला लेके अइह हो राजा।

"हे राजा, तुम दर्द रूपी नीबू का बिरवा लगा कर और उसे पोस पाल कर आना। अर्थात जब तुम्हारा दिआ हुआ दर्द इतना बढ़ जाय कि मैं बीमार पड़ जाऊँ तब तुम आना।"

"हे राजा, (इसी बीच) अगर तुम्हे हमारी बीमारी की बात सुनाई पड़े तो (स्वयं मत आना) पटना से वैद्य भेज कर मेरा नब्ज धरवा देना।" (इसमें कितना व्यंग और कितनी वेदना है ? लोक के सामने तुम्हारे इस कृत्य से तुम्हारा यह दोष तो मिट ही जायगा कि पत्नी बिमार पड़ी और दवा नहीं कराई गई। साथ ही सखियां भी मुझे नहीं हँसेगीं पर हे राजा, वास्तव में दवा कराने की अब जरूरत नहीं है, केवल दिखाऊ रूप से नब्ज भर वैद्य से पकड़ा देना कि अपयश भी मिट जाय और मैं अपनी सखियों के सामने अन्त समय हँसी न

मद रूपी गङ्गा-जल का पान नहीं करते और दक्षिण देश को प्रस्थान कर रहे हैं।"

"हे सखी मै सुन्दरी हूं पर मेरे स्वामी सौन्दर्य के रत्न हैं।"

"हे सखी मैंने (हृदय रूपी स्वर्ण थाल में मनोरथ रूपी) भोजन सजाया पर स्वामी जेवनार नहीं करते अर्थात उसका उपभोग नहीं करते और दक्षिण देश के लिये प्रस्थान कर रहे हैं।

स्त्रियों के गीतों में पाठक प्रायः ऐसा पावेंगे कि जहाँ विरह वर्णन आया है वहाँ सोने के थाल में भोजन परोसना और पति का न खाना, तथा सोने के गेडुआ मे गङ्गाजल रखना और प्रीतम का उसे न पीना कहा गया है। इससे लोग साधारणतः अविधा द्वारा ही सीधा अर्थ जेवनार और जल से लगा लेते हैं पर वास्तव में बात ऐसी नहीं है। लज्जा शीला ज्ञात यौवना नायिका वहाँ अविधा में, नहीं, बल्कि व्यंजना में बोलकर गेडुआ से अपने उभरे सुडौल स्तन का संकेत करती है और गंगा जल से उसमें भरे अपने निर्मल प्रेम रस की उपमा देती है। इसी तरह वह सोने की थाल से अपने हृदय की उपमा समझाती है। और जेवनार से तदजनित अभिलाषाओं, मनोकांक्षाओं, और सुकुमार भावनाओं का बोध कराती है। परोसना शब्द का अर्थ है सजा सजा कर खाने के लिए पात्र विशेष में वस्तु रखना। तो हृदय थाल में अभिलाषा, मनोकांक्षा और सुकुमार भाव को परोसने का अर्थ भी इसी भाव में लगाने से गीत का रस कितना सुन्दर कितना मीठा हो जाता है इसे पाठक मनन करके ही अनुभव करें।

फिर विरह ही मे नहीं शृङ्गार वर्णन में ऐसे ही प्रयोग मिलते हैं। जैसे किसी ने कहा है :—

सोने के गेडुआ गंगा जल पानी, पानी ना पीये निहारे जोबना।
सोने के थरिया मे जेवना परोसलों, जेवना न जेवें निहारे जोबना॥

इसका सीधा अर्थ तो साफ है कि पानी न पीकर यौवन निरेखा करता है। पर अगर इसी को ऊपर के बताये अर्थ के अनुसार व्यंजना द्वारा समझने का हम कष्ट करें तो अर्थ कितना सुन्दर हो जाता है। अर्थात छाती मे भरे

निर्मल प्रेम जल को न देखकर यह कामी पति केवल उसके बाह्य रूप को ही निहार रहा है। अर्थात् उस निर्मल विशुद्ध प्रेम जल का स्वय पान करके मुझे भी वैसा ही प्रेम जल पान न करा कर मेरे और अपने जीवन का वाह्य रूप ही कामातिरेक में निहार रहा है वैसे ही ऊपर बताये अर्थ के अनुसार हृदय रूपी सोने की थाल में रखे हुए मनोकामना रूपी जेवनार को न पान करने का भी अर्थ समझिये।

(१४)

दरद निबुला लेके अइह हो राजा ॥
जऊँ तुहूँ राजा वेमारी के सुनीह, जऊँ तुहूं राजा वेमारी के सुनीह
पटना से वएदा भेजइह, नबज धरवइह हो राजा ॥१॥
नबज धरवइह हो राजा ॥
दरद निबुला लेके० ॥
जउँ हम राजा हो मरि हरि जाई
चनन चइली ले गगा पहुँचइह
हो राजा। दरद० ॥२॥
जउँ तोहि राजा हो दिल घबराये, छोटकी सारि लेके जिया बहलइह हो राजा ॥३॥
दरद निबुला लेके अइह हो राजा।

"हे राजा, तुम दर्द रूपी नीबू का विरवा लगा कर और उसे पोस पाल कर आना। अर्थात जब तुम्हारा दिया हुआ दर्द इतना बढ़ जाय कि मैं बीमार पड़ जाऊँ तब तुम आना।"

"हे राजा, (इसी बीच) अगर तुम्हें हमारी बीमारी की बात सुनाई पड़े तो (स्वयं मत आना) पटना से बैद्य भेज कर मेरा नब्ज धरवा देना।" (इसमें कितना व्यग और कितनी वेदना है ? लोक के सामने तुम्हारे इस कृत्य से तुम्हारा यह दोष तो मिट ही जायगा कि पत्नी बिमार पड़ी और दवा नहीं कराई गई। साथ ही सखिया भी मुझे नहीं हँसेगीं पर हे राजा, वास्तव में दवा कराने की अब जरूरत नहीं है, केवल दिखाऊ रूप से नब्ज भर वैद्य से पकड़ा देना कि अपयश भी मिट जाय और मैं अपनी सखियों के सामने अन्त समय हँसी न

जाऊँ ?)। सच है विरहिणी को विरह से अधिक कष्ट अपनी सखियों के सामने पति द्वारा तिरस्कृता होने में होता है ॥१॥

"अगर मैं मर जाऊँ तो तुम चन्दन की लकड़ी कटाना और प्रसन्न होकर मेरी लाश को गगा पहुँचा देना।" ॥२॥

"हे राजा। मेरे मरने बाद शायद तुम्हारा दिल घबड़ाय तो तुम अपनी उस छोटी सी साली को बुला कर उससे अपना दिल बहला लेना।" ॥३॥

"हे राजा तुम दरद रूपी नीबू का विरवा लगाकर और उसे पोस पाल कर बड़ा करके तब ही आना। ऐसे मत आना।"

यह गीत उस पत्नी का है जिसका पति ससुराल तो गया पर वहां अपनी साली से उसका प्रेम हो गया। यहाँ पत्नी उसकी चिन्ता में बीमार पड़ कर मरण शय्या पर पड़ गई तब भी जब वह नहीं आया तो उसने लोक लाज की रक्षा के साथ अपनी हृदय वेदना गा डाला। कितना संयम और कितनी कसक है इस गीत में। करुणा मानों मूर्ति बनकर सामने खड़ी हो जाती है।

(१५)

राजा के बसी बगइचा में बाजे, राजा के बसी बगइचा में बाजे,
मलिनिया होके सुनबि राउर बसी ॥
राजा, राउर बसी सीतार नीअर बाजे ॥१॥
राजा के बसी बजरिया में बाजे, रंडिअवा हो के सुनबि राउर बसी।
राजा, राउर बसी सीतार नीअर बाजे ॥२॥
राजा के बसी सड़किया पर बाजे, सिपहिया होके सुनबि राउर बसी।
राजा राउर बसी सीतार नीअर बाजे ॥३॥
राजा के बसी कुअनवा पर बाजे, पनिहारिन हो के सुनबि राउर बसी।
राजा, राउर बसी० ॥४॥
राजा के बसी अँगनवा में बाजे, भउजिया हो के सुनबि राउर बसी।
राजा राउर बसी० ॥५॥
राजा के बसी घरवा में बाजे, भवहिया होके सुनबि राउर बसी।
राजा राउर बसी० ॥६॥

मनोकामना भी सिद्ध हो जाय। प्रत्येक पुरुष को स्मरण रखना चाहिये कि स्त्री अपने मुख से कुछ नहीं कहती पर संकेतों से ही सभी बातें प्रकट कर देती है। पर इस पर भी यदि हमारे इस नायक सदृश्य पतियों की बुद्धि मारी गई हो तो मूक स्त्री हृदय की साध कैसे पूरी हो? किसी अंग्रेज लेखक ने कहा है।
"women never surrender but always yield"

(१७)

मोरे आचर उड़ि उड़ि जाला हरी।
सोने के थरिया में जेवना परोसलीं।
जेवना जेवे ना अइलें हरी॥१॥
मोरे नयना लागल रहेला हरी।
मोरा आँचर उड़ि उड़ि जाला हरी॥२॥

स्त्री के वक्षस्थल पर से अंचल प्रायः तब बार बार उड़ या हट जाता है जब वह कामातुर रहती है। यह बात पुरुष भले न समझे पर स्त्री की तो यह आप बीती बात ठहरी। वह अपनी विरह वेदना इन्हीं संकेतों द्वारा प्रकट भी करती है।

"हे हरी, हमारे वक्षस्थल पर से अंचल आज उड़ उड़ जाता है।"॥१॥

"मैंने (अपने हृदय रूपी) स्वर्ण थाल में विविध (मनोरथ रूपी) जेवनार को सजा सजा कर परोसा था। (आशा लगाये थी कि तुम आओगे और जेवनार खाओगे अर्थात् मेरी मनोरथों को पूरा करोगे) पर हे निष्ठुर हरि। तुम जेवनार जेवने नहीं आये—नहीं आये। हा, हमारी आँखें तुम्हारी ओर लगी ही रहती हैं। हे हरि! हमारे स्तन से आज अंचल हठात उड़ उड़ जाता है हट हट जाता है। (तुम कहाँ हो?) ॥२॥

कितनी सरल, सुन्दर और स्वाभाविक उक्ति है। शृङ्गार की अतिशयता होकर भी कहीं भी अश्लीलता नहीं आ पायी है। सूनी घड़ियों में जब मन्द मलयानिल चलता हो और पत्नी बीती रात तक पति की प्रतीक्षा में मनोरथों के या भोजन के थाल परोसे बैठी हुई प्रिय मिलन के लिए उत्सुक हो उस समय उसके मन में सुकुमार भावों का उतार चढ़ाव जैसा होता है ठीक वैसा ही इस

गीत में वर्णित है। इतनी कम पंक्तियों में वेदना की कितनी बड़ी गाथा गाई गई है यह पाठक को मनन करने पर ही ज्ञात होगा। इस गीत ने आगत पतिका का रूप सामने खड़ा कर दिया है।

(१८)

आरे हो गइलें पसिंजरवा में देरी, हो गइले ॥
अबहीं मोरे राजा अइले ना रे अइले ना ॥१॥
आरे हो गइले पसिंजरवा में देरी, हो गइले ॥
सोने के थरिया में जेवना परोसलों, जेवना लेले अलसइलीं ॥
आरे जेवना लेले कुम्हिलइलीं ॥२॥
आरे मोरे राजा ना अइले ॥०॥
हो गइले० ॥

पसिन्जर ट्रेन से पति आने वाला था। स्त्री जेवनार बनाकर उसकी प्रतीक्षा करते करते थककर बीती रात गा रही है :—

"पसिन्जर गाड़ी आने में देरी हो गई। अभी तक हमारे राजा नहीं आये। पसिजर में देरी हो गयी। सोने के थाल में जेवनार परोसकर लिये हुए मैं बैठी हूँ। बैठी बैठी अलसा गई। मन कुम्भिला गया। अभी तक हमारे पति नहीं आए।"

यह गीत अवश्य किसी रेल कर्मचारी के क्वार्टर में बैठी हुई स्त्री द्वारा रचा गया है।

(१९)

राजा अँगूठी के नगीना रे ॥ राजा अँगूठी के नगीना रे ॥
राजा मन भावे सोनारिन हो, राजा मन भावे सोनारिन हो ॥
देहु ना सासु हो छुरिया कटरिया, कतल कइ घलओं सोनारिन हो ॥१॥
राजा मन भावे सोनारिन हो ॥०॥
काहे कतल कइ घलवू ए बहुआ, कतेक दिन रहिहें सोनारिन हो ॥२॥
राजा अँगूठी के नगीना हो ॥०॥

जइसे वहे दरिअउवा के पनिया, ओहसे बहि जइहे सोनारिन
राजा अँगूठी के नगीना हो ॥०॥
देहु ना गोतिनी छुरिया कटरिया, कतल कइ घलवों सोनारिन हो ॥४॥
राजा मन भावे सोनारिन हो ॥०॥
देहु ना ननदी छुरिया कटरिया, कतल कइ घलवों सोनारिन हो ॥५॥
राजा मन भावे सोनारिन हो ॥०॥
काहे कतल कइ घलवू ए भउजी, कतेक दिना रहिहें सोनारिन हो ॥६॥
राजा अँगूठी के नगीना हो ॥०॥

'हमारे राजा अंगूठी पर के रत्न हैं। हमारे राजा अगूठी पर के रत्न हैं। राजा का मन सोनारिन पर लुभा गया है। हे सास जी, मुझे छुरी कटारी दे दो। मैं सोनारिन को कत्ल कर डालूँगी। राजा उस पर मोहित है ॥२॥

बहू की इस बात को सुनकर सास ने कहा, "हे बहू, तुम सुनारिन को क्यों कत्ल करोगी? कितने दिन वह तुम्हारे राजा को आकर्षित ही करेगी? जिस प्रकार नदी का जल बह जाता है वैसे ही सोनारिन भी तुम्हारे राजा के मन से बह जायगी। तुम्हारे राजा अंगूठी के नगीना है।" ॥२,३॥

"तब बहू ने अपनी जेठानी और ननद से कहा, "हे जेठानी मुझे छुरी कटारी दो। मैं सोनारिन का गला काट डालूँगी। राजा के मन में वह स्थान कर रही है। हे ननद जी मुझको छुरी और कटारी दे दो। मैं सोनारिन को काट डालूगी। वह हमारे राजा के मन में बस गई है।" ॥४,५॥

जेठानी ने तो कोई उत्तर नहीं दिया, पर ननद ने कहा, "हे भावज, तुम क्यों सोनारिन को निरर्थक काटोगी। वह कितने दिनों तक तुम्हारे राजा को लुभायेगी? तुम्हारे राजा अगूठी के नगीना है। (व्यर्थ की शंका कर रही हो।)" ॥६॥

इस गीत में स्त्री की ईर्षा पराकाष्ठा तक पहुँच गई है। सचमुच वह प्रेम, प्रेम नहीं है, जो अनन्य भावना से ओत प्रोत न हो। कबीर ने कहा:—
"आओ प्यारे मोहना, पलक बीच मुंदि लेहुँ। ना मैं देखौं तोहि को, ना कोइ देखन देहुँ" ॥

(२०)

बाबा मतरिया मोर पइसा के राजी, करेले बूढवा से सादी ॥
आरे मोरे राजा ! मैं थर थर कांपों ॥ आरे मोरे राजा मों० ॥१॥
जब रे बुढवा पलँगीया पर अइले, हमरा से मागे गल चूमा ॥
आरे मोरे राजा ! मैं गन गन कांपों ॥ मैं गन गन कांपों ॥२॥
जब बूढवा गल चूमा लेवे, आरे-गड़ेला पाकल दाढी ॥
मैं थर थर कापों ए मोरे राजा ! मैं गन गन कांपों ॥३॥
बाप मतरिया मोर पइसा के राजी० ॥

पैसे के लोभ में मेरे पिता माता ने मेरा विवाह बुढ्ढे के साथ कर दिया। मैं उसकी डर से थर थर काँप रही हूँ।

"जब बुड्ढा वर पलंग पर गया तो, मुझसे मेरे कपोलों का चुम्बन माँगने लगा। आरे, हे भगवान ! मेरे शरीर में रोमाच हो आया और मैं मारे भय से थर थर काँपने लगी।" पाठक, 'गन गन काँपो' का पर्याय वाची शब्द या वाक्य हमें हिन्दी में ठीक उसी भाव में नहीं मिला। छोटी टेंगर नामक मछली जब पकड़ कर वशी द्वारा जल से बाहर की जाती है और तब जो वह क्रोध पीड़ा, भय और प्रतिहिंसा की भावना से मुंह में वंशी लिये गन गन स्वर करती हूई काँपती है और अक्सर पा काटा मारती है उसी को भोजपुरी में गन गन काँपना कहते हैं। इसमें सुकुमारता, नवोढत्व, भय, क्रोध, प्रतिहिंसा और अज्ञात कोमल भावना की मीठी पर तीखी सिहरन—गुदगुदी भी मौजूद है। ॥१,२॥

"जब बुड्ढे ने मेरे कपोलों का चुम्बन लिया तो उसकी पकी दाढ़ी मेरे गालों में गड़ने लगी और मैं थर थर काँपती रही। अरे हे भगवान मारे भय, क्रोध और घृणा के मैं गन गन कापती रही। अरे मेरे मा-बाप ने पैसे के लोभ में मेरा विवाह एक बुड्ढे के साथ कर दिया।" ॥३॥

यह गीत बहुत छोटा है पर भाव सचमुच बड़ा चोखा है। उस अवस्था का सजीव चित्र सामने खड़ा कर देता है। 'देखन में छोटो लगें, घाव करत गंभीर।' वाली बात इसी से चरितार्थ होती है। बाबू शिवपूजन सहाय जी ने

जब इस गीत को पढ़ा तो 'गन गन कौंपों', के प्रसाद गुण और उसके अर्थ पर मुग्ध हो गये। कहा—इसका पर्याय वाची शब्द 'मुझे हिन्दी या संस्कृत में स्मरण हो रहा है या नहीं, नहीं कह सकता' ॥

(२१)

कल ना परेला बिनु देखले हो, नाहीं अइले गोपाल।
कुबरी बसे ले ओही देसवा हो, जहाँ मदन गोपाल ॥१॥
चनन रगरि के भोरवलसि हो, जसोदा जी के लाल।
झिसिअन बुँदवा बरिस गइले हो, अब मुसरन धार ॥२॥
सून मोरा लागे भवनवा हो, नाहीं अइले गोपाल।
सूरदास बलिहारी हो, चरनन के दास ॥३॥

'अब बिना देखे कल नहीं पड़ता। गोपाल नहीं आये। (हमें शंका हो रही है।) कुबरी उसी देस में बसती है जहाँ मदन गोपाल गये हुए हैं। अवश्य उसने चन्दन घिस कर के मेरे यशोदा के लाल को भुला लिया है।

हा ! वर्षा की फूही धीरे धीरे बरस गई। अब मूसलाधार वर्षा भी होने लगी। हा ! अब तो गृह भी सूना लगने लगा। गोपाल नहीं आये। सूरदास कहते हैं कि हे गोपाल मैं तुम पर बलिहारी हो रहा हूँ। मैं तुम्हारे चरणों का दास हूँ।' ॥१,२,३॥

किसी सूरदास नामधारी ने भोजपुरी में और भी कितने गीत लिखे हैं। जिनका रस और गीत क्रम के अनुसार यथास्थान दिया जायगा।

(२२)

जा चरा आव गइया ए मोहन।
कब से खड़ी खड़ी अरज करत बानी, ठीक भइल दुपहरिया ए मोहन ॥१॥
जा चरा आव गइया ए मोहन ॥
मन जे हो चरवहिया मैं देबों, नाहीं त देबों कमरिया ए मोहन ॥२॥
जा चरा आव गइया ए मोहन ॥
सूरदास प्रभु आस चरन के, हरि के चरन लपटइह ए मोहन ॥३॥
जा चरा आव गइया ए मोहन ॥

गोपी रो रो कर कह रही है। और गोपाल मचल रहे हैं।

"हे मोहन ! जाओ हमारी गाय चरा ले आवो। मैं कब से खड़ी खड़ी तुमसे बिनती कर रही हूँ। पर दोपहर हो गये अभी तक तुम नहीं गये। गाय अभी तक खूटे पर ही बँधी हैं। जाओ, गाय चरा लाओ।' ॥१॥

"तुम्हारा जो मन होगा वही मैं चरवाही की मिहनत मे तुम्हें इनाम दूँगी। कुछ न मागोगे तो काली कमरी ही दूँगी। जाओ गाय चरा लाओ।"॥२॥

सूरदास कहते हैं कि मुझे प्रभु के चरणों की आशा है। हे मन तुम हरि जी के चरणों में लिपट रहना।

(२३)

मरलसि मरलसि मरलसि हो कुबरी जदुआ डललसि हो।
आपु त जाइ बिरिना बन छवले मोर हरि सुधि बिसरवले हो।
कुबरी जदुआ डललसि हो ॥१॥
आपनो ना अइले पतिओ ना भेजले काहे हरी बिसरवले हो ॥२॥
कुबरी जदुआ डललसि हो ॥
यमुना पिअत जल सरजू करे अचवन, आरे यमुना के जल निचकवलसि हो ॥
कुबरी जदुआ डललसि हो ॥३॥

"अरे, कूबरी ने जादू डाल दिया। हरि, जाकर वृन्दावन बैठ गये हमारी कोई सुधि उन्होंने नही ली। क्यों वे हमारी सुधि भूल गये। कुबरी ने जादू मार दिया।"

"खुद आये नहीं। एक पत्र भी नहीं भेजा। क्या कारण है कि वे हमारी सुधि भूल गये ? कुबरी ने जादू डाल दिया कि वे हमारी सुधि भूल गये।" ॥२॥

"उन्हे तो वहाँ यमुना का जल ही पीने को मिलता होगा। सरयू का निर्मल जल तो केवल मुह हाथ धोने भर को मिलता होगा। पर यमुना का जल तो भीतर काला है। मोहन पर कोई बुरा प्रभाव उसने अवश्य डाल दिया। कुबरी ने कहीं उनपर जादू तो नहीं कर दिया।" ॥३॥

गोपी कृष्ण की चिन्ता करना और कुबरी पर शंका लाना कितना सुन्दर और स्वाभाविक है। फिर यमुना का काला जल पीकर कृष्ण का स्वभाव काला हो जाने की उक्ति भी कितनी सुन्दर है।

(२४)

खाइ गइलें हों राति मोहन दहिया ॥ खाइ गइले०॥
छोटे छोटे गोड़वा के छोटे खरउआ,
कइसे के सिकहर पा गइले हो ॥
राति मोहन दहिया खाइ गइलें हो ॥१॥
कुछु खइले कुछु भूइआ गिरवलें,
कुछु मुहवा मे लपेट लिहलें हो ॥२॥
राति मोहन दहिया खाइ गइलें हो ॥
कहेली ललिता सुन ये राधिका,
वसल बिरिजवा उजारि गइलें हो ॥३॥
राति मोहन दहिया खाइ गइलें हो ॥

ललिता सखी सवेरे उठ कर राधिका से कुछ दुखित होकर और कुछ क्रोध में कह रही है। कुछ उलाहना का भी भाव उसके हृदय में छिपा दिखाई दे रहा है। राधिका की वजह से ही कृष्ण उधर आने के लिये आकर्षित हुए थे जिससे उस टोले की उतनी हानि हो रही थी। नहीं तो क्यों ललिता कृष्ण के ऊधम की उलाहना यशोदा को देने नहीं गई? यशोदा तो बेटे के लिये उलाहना सुनने को तैयार ही बैठी रहती थीं। सुनियेः—

"हे राधा, रात मोहन सब दही खा गये।"

"उनके छोटे छोटे पाँवों के छोटे छोटे खड़ाऊँ के छाप सर्वत्र पड़े हैं। वे इतने छोटे होकर किस तरह सिक्हर तक पहुँच पाये यह आश्चर्य है? हे राधा, रात सब दही कृष्ण खा गये!" ॥१॥

"उन्होंने कुछ तो खाया, कुछ पृथ्वी पर गिराया और कुछ मुख मे लपेट लिया। हे राधा, सब दही रात मोहन खा गये।" ॥२॥

"हे राधा, सच कहती हूँ सुनो वे रात बसे बसाये ब्रज का उजार करके भाग गये।" ॥३॥

(२५)

अब ना छोड़बि तोहार जान, मोहन ! करवल फजिहतिया ॥
ठाढ़े कदम तर बँसिया बजवल, सखिया के लिहल लोभाय।
अब ना छोड़बि तोहार जान, मोहन ! ॥१॥
दही वेचे जात रहलों मथुरा नगरिया, दहिया के लेलें छिनवाई।
अब ना छोड़बि तोहार जान, मोहन ! ॥२॥
दही मोर खइल दहेड़ी मोरा फेंकल, गेडुरी के दीहल बहवाइ।
अब ना छोड़बि तोहार जान, मोहन !।
तू त करवल फजिहतिया ॥३॥
अबों से लेके कोठरिया में बन कर, ऊपर से भर जजीरिया।
अब ना छोड़बि तोहार जान, मोहन ! ॥४॥
सूरदास प्रभु आस चरन के, हरि के चरन चित लाव।
मोहन करवल फजिहतिया ॥
अब ना छोड़बि तोहार जान मोहन, तू त करवल फजिहतिया ॥५॥

राधा कह रही है, "हे मोहन, तुम्हारी जान (पिण्ड) अब मैं नहीं छोड़ूँगी। तुमने मुझे बड़ा तग कराया।

"कदम के नीचे खड़े होकर तुमने वशी बजाई, और हमारी सारी सखियों को लुभा दिया। अब मैं तुम्हारी जान नहीं छोड़ूँगी। तुमने ही मुझे संसार में बदनाम कराया।" ॥१॥

"मैं तो दही वेचने के लिये मथुरा नगर जा रही थी। तुमने रास्ते में मेरा दही छिनवा लिया। अब तुम्हारी जान नहीं छोड़ सकती। तुमने ही हमारी फजीहती कराई है।" ॥२॥

"हमारा दही भी खाये ऊपर से दहेड़ी भी फोर डाली, और गेडुरी को बीच यमुना में बहा दिया। तुमने ही हमारी यह दुर्दशा कराई है। मैं अब तुम्हारा पिण्ड छोड़ने वाली नहीं।" ॥३॥

"अब भी समय है। हमको लेकर अपनी कोठरी में बन्द करदो और बाहर से जजीर चढ़ा दो। (कि हमारी बदनामी अधिक न बढ़े।) अब तो मैं तुम्हारा पिण्ड छोड़ती नहीं। तुमने ही मेरी यह बदनामी करायी है।" ॥४॥

"सूरदास जी कहते हैं कि मैं तो प्रभु के चरणों में चित लगाये हूँ। मुझे उन्हीं के चरणों की आशा है। हे मोहन! अब फजीहत मत कराओ। अपने चरणों में अपना लो। मैं अब तुम्हारा पिण्ड नहीं छोड़ सकता। तुमने ही मेरी यह/फजीहती कराई है।" ॥५॥

(२६)

दही बेचे जात रहलीं मथुरा नगरिया,
भोराइ लिहलें हो बिरिजवा के रसिया ॥
सासु के चोरी चोरी दही वेचे जात रहीं,
भोराइ लिहले हो ई गोकुलवाके रहिया ॥२॥
दही मोरा खइले दहेड़ी मोरा फोरले,
बिगारि दिहले हो मोर बारी उमिरिया ॥३॥

गोपी कह रही है:—"अरे, मैं तो दही बेचने मथुरा नगर जा रही थी। इस रसिया ने (मोहन ने) मुझको भुलवा लिया। सास की चोरी से मैं दही बेचने निकली थी। सो इन्होंने गोकुल का रास्ता मुझे गलत बता कर मुझको भुलवा कर अपने पास बिलमा लिया। फिर मेरी दही खा लिया, दहेड़ी फोड़ डाली; और मेरी बारी वयस को भी बिगाड़ डाला। हाय अब मैं कहाँ जाऊँ?" ॥१-३॥

गोपी के इस निवेदन से पाठक! क्या आप का हृदय कृष्ण के अत्याचार पर खीझ नही उठता? उनको दो चार खरी खोटी सुनाने का मन नहीं करता? राधा के इसी काण्ड को पुरुष कवि सूर ने पहले गीत में अभी भक्ति का जामा पहना कर एक दूसरा ही रूप दिया है। पर स्त्री कवियित्री को कृष्ण का निर्जन वन में अकेली राधा पर भुलवा कर अत्याचार करने की घटना को भक्ति का जामा पहनाना सह्य नहीं हुआ। इसमें उसकी जाति का अपमान था। साथ ही इससे राधा के प्रति किये गए अन्याय का स्त्री द्वारा समर्थन भी होता था। अत. उसने कृष्ण को भगवान मान करके भी उनके इस कृत्य की

निन्दा की और उसे वैसेही चित्रित किया जिस तरह से वह संघटित हुआ था।

(२७)

गोरी नैना तोरा बान रे।
काहे के बोअवलू कुसुमिया कुसुम रग देस रे,
काहे के रगवलु चुनरिया छएल परदेस रे ॥१॥
बड़ि जात कुजड़िन के ओढन साथ रे,
सूतेली टाँगि पसारि छएल परदेस रे ॥२॥
बड़ि जाति कोइरिन के खुरपी हाथ रे,
आपन खेत सोहेली पिरितम साथ रे ॥३॥
बड़ि जाति रजपूत के तीहा दिल के,
आपन पति भेजेले रएन के बीच रे ॥४॥
गइया के गोहरइया अहीरवा गइले सोइ रे,
बिना रे केवट नैया डगमग होइ रे ॥५॥
सँढवा मारे सढिनिया अहीरवा गाइ रे,
नउआ त मारे नउनिया कपड़वा खोलि रे ॥६॥
गोरी नैना तोरा बान रे ॥

अहीर के किसी सुन्दर स्त्री को किसी नायक ने प्रलोभन दिया। चुनरी दिखाकर प्रेम की भिक्षा माँगी। कहा, 'हे गोरी तुम्हारी आँखें क्या हैं वाण हैं?' इस पर अहीर की स्त्री, जिसके बगल में उसका हट्टा कट्टा पर दुनिया से अनभिज्ञ पति सो रहा था, और स्त्री अपने मन में काम शर से बिंध रही थी कहने लगी, 'हे भगवान कुसुम (पुष्प विशेष जिससे रग बनाते हैं) रंग का देश है अर्थात् जहाँ कुसुम के रग का बाहुल्य है वहाँ तुमने कुसुम पुष्प क्यों जन्माये या वहाँ उसकी कदर नहीं? हे भगवान! तुमने यह चूनरी क्यों रगाई मुझे क्यों प्रदान किया मेरा छएल परदेश में है। अर्थात् यहाँ रहते हुए भी जब मेरे काम का नहीं तो परदेशी ही है।' ॥१॥

फिर वह आगे अन्य जाति की स्त्रियों की दशा चिन्तन कर अपनी दशा पर पश्चात्ताप करती है। कहती है :—'कुजड़िन की बड़ी अच्छी जाति होती है। उसका ओढ़ना हमेशा उसके साथ रहता है। जहाँ हुआ वहीं पैर फैला कर (किसी यार के साथ) सो रहती है। (कोई उसकी निन्दा नहीं करता) उसका स्वामी भले परदेश में रहे। उसे कोई चिंता नहीं सताती।' ॥२॥

'कोहरिन की जाति क्या ही अच्छी होती है। उसके हाथ में खुरपी रहती है! पति अपने साथ अपना खेत उससे निरवाया करता है। पति का साथ उसे हमेशा बना रहता है।' ॥३॥

'राजपूतिनी की जाति भी एक ही होती है। उसके हृदय में बड़ी हिम्मत है। अपने पति को सग्राम के बीच मे भेज देती है। (सग्राम में भी पति का विछोह उसे नहीं होता)' ॥४॥

"पर हाय, गाय को पुकारने वाला अल्हड़ अहीर घर आते ही आते सो गया। अब विना केवट के हमारी धैर्य्य की नाव डगमगा रही है।" ॥५॥

'अरे, साँड़ तो साढ़िनी को मारता है। अहीर गाय को मारता है। नाइ नाइनि को वस्त्र खोल खोल कर मारता है।'

अहीर की स्त्री के विचार सचमुच सही और सुन्दर हैं। उसकी ईर्षा भी स्वाभाविक ही है। सचमुच पति का विछोह स्त्री के लिए सारी आपदा का कारण है। लाख दुःख उसे रहे पर यदि पति के प्रेम और मिलन की कमी न हो तो उसे कोई दु ख दुःख नहीं मालूम होता। तुलसी ने कहा है—

"जिय विनु देह नदी विनु वारी, वैसहिं नाथ पुरुष विनु नारी ॥"

रहीम ने भी इसी भाव को लेकर कहा .—

घर में लाग मुहि अगिया, वेइ सुख लीन्ह।
पिय के हाथ घरिलवा, भरि भरि दीन्ह ॥

तथा—

टूट मड़इया घर टपकन, टटियाँ टूट।
पिय कर हाथ सिरहनवा, सुख का लूट ॥

वड़ जाति कुरमिन कर खुरपी हाथ।

नित उठि खेत निरावे पति के साथ ॥"

फिर बिहारी ने भी अपनी साहित्यिक भाषा में इसी भाव को यों दुहराया है :—

"पर पाँखें भख काँकरी, सदा घरेई सग ।
सुखी परेवा जगत में तू ही एक विहग ॥"

(२८)

कतेक मरिया मारेला बिअहुआ ए ननदी ।
माटी कोड़े गइलों मों ओही मटिखनवा,
लामी केसिया भींजेला गरदवा ए ननदी ॥१॥
भुंजवा भुजन गइलों गोंड़वा लेनसरिया,
रेसम चोलिया भींजेला पसेनवा ए ननदी ॥२॥
रोटी पोवे गइलों में राम के रसोइया,
रेसम सरिया भींजेला पसेनवा ए ननदी ॥३॥
पानी भरे गइलीं में ओही पनिघटवा,
बाँके छैला रोकेला डगरिया ए ननदी ॥४॥

"हे ननद मेरा बिअहुता पति मुझे कितनी मार मारता है। कितना दुःख देता है।"

"मुझे मटिखान में माटी खोदने जाना पड़ा। हे ननद मेरे लम्बे लम्बे बाल वहा धूल से भर गये। मेरा सारा श्रृङ्गार बिगड़ गया।"

(वहाँ से आई नहीं) कि हे ननद गाँव के लेनसार में चबेना भुजवाने मुझे जाना पड़ा। वहाँ मारे गरमी के हमारी रेशम की चोली पसीने से भीग गई। मेरा सब किया कराया शृंगार नष्ट हो गया।

"फिर लौटते देर नहीं हुई कि मुझे रसोई में रोटी बेलने जाना पड़ा! वहाँ इतनी गरमी थी कि हमारी रेशमी साड़ी पसीने से तर हो गई। रहा सहा श्रृङ्गार भी मिट गया।'

"फिर जब वहाँ से निकली तो मुझे उस पनिघट पर पानी भरने जाना पड़ा। वहाँ बाँके मनचले यार मेरी राह रोकने लगे। हे ननद जो मेरा विअहुता

पति मुझे कितना दु.ख देता है। कितना मार मारता है। (देखो जरा भी सुख नहीं मिलता।)'

सचमुच एक हिन्दू गृहस्थ की पत्नी की सज धज कर पति से मिलने की मनोकामना विरले ही कभी निर्विघ्न रूप से चरितार्थ होती हो। इसी भाव का चित्रण चूल्हा चक्की घर गिरस्ती में पीसने वाली गृहिणी ने इस गीत में किया है।

(२९)

सूरसाम तिआगि गइले जोगिनि कइके हो।
नदिया किनारे कान्ह गइया चरावे, काली कमरिया कान्हें धइके ॥१॥
मोर स्याम तियागि गइले ० ॥
घिरी बिरिना वन के कुञ्ज गलिन में, कान्हा वसिया वजावे ओठन धइके ॥२॥
सूर स्याम तिआगि गइले जोगिनिया कइके ॥

श्रीकृष्ण ने योगिन बना कर मुझे त्याग दिया और आप मुझसे दूर चले गये। "कान्ह काली कमरी कन्धे पर रख कर नदी के किनारे किनारे गाय तो चराते हैं। पर मुझे त्याग कर और योगिन बना कर आप हमारे यहाँ से हट गये।"

"वे वृन्दावन की कुञ्ज गलियों में बंशी को अपने सुन्दर होठों पर रख कर बजाते हैं पर हमारे यहाँ से मुझे त्याग और योगिन बना कर वे सदा के लिए चले ही गये।"

(३०)

सवेरे उठि ववुई जइहें ससुररिया
आजु के दिन सोहावन ए सखिया लगनि मुहूरति घरिया ॥
सवेरे उठि० ॥१॥
आजु के भवन भयावन लागे, छछनत बाड़ी महतरिया।
सवेरे उठि० ॥२॥
आजु के दिनवा से संग छुटत वा, भेंटहु भरि अकवरिया।
सवेरे उठि० ॥३॥

"मैं जिनकी दासी हूँ वे नहीं मिले। मैं जिनकी दासी हूँ वे नहीं मिले" ॥१॥

"हमारा फूस का छप्पर पुराना हो गया। उसकी लम्बी लम्बी घास की बातियाँ नीचे की ओर लटक रही हैं। उनसे होकर पानी की बूंद टपक कर मेरे स्तन पर गिर रही है। हाय राम वे नहीं मिले जिनकी मैं दासी हूँ" ॥२॥

"मैं उनको खोजते खोजते काशी गई। पर वे जिनकी मैं दासी हूँ नहीं मिले।"

"काशी के रहने वाले बड़े अविश्वासी आदमी होते हैं। वे प्रेम कर के दूसरे के गले में फाँसी लगा देते हैं, पर अपने निकल भागते हैं। हाय वे जिनकी मैं दासी बनी वे नहीं मिले"।

इस गीत में रहस्यानुभूति की बातें हैं। संसार के सभी नाते रिश्ते झूठे होते हैं। सच्चा नाता तो केवल परमेश्वर का है और उसका मिलना बड़ा कठिन है।

(३५)

टिकि जा हो मुसाफिर मोरे दुकानि।
सोने के थार में जेवना परोसलों,
जेवना लिहले अलसाइ गइलों जानि ॥१॥
सोने के गेडुआ गङ्गाजल पानी,
गेडुआ लिहले अलसाइ गइलों जानि ॥२॥
पाच पाच पनवा के बिरवा लगवलों,
बिरवा थम्हले अलसाइ गइलों जानि ॥३॥
फूल नेवारी के सेजिया डसवलों,
सेजिया ताकत अलसाइ गइलों जानि ॥४॥
टिकि जा हो मुसाफिर मोरे दुकानि ॥

पति की प्रतीक्षा में बैठी बैठी नायिका ऊब उठी। नित्य ही उनके आने की खबर आती है और नित्य ही बेचारी भोजन बना सेज डसा उनकी प्रतीक्षा करती है। पर वे नहीं आते। इससे खीझ कर आज दुकान पर आये

बटोही से वह ठहर जाने के लिये अनुरोध करती है और अपने धैर्य के दिवाले पन की कहानी यों सुनाती है।

'हे मुसाफिर मेरी दुकान पर आज तुम ठहर जाओ।'

'मैं सोने की थाल में नित्य भोजन परोसती हूँ और रोज उनकी अवाई की प्रतीक्षा में उसे लिए लिए बीती रात तक बैठी बैठी अलसा जाती हूँ (पर वे नहीं आते)।' ॥१॥

'स्वर्ण पात्र में निर्मल गंगा जल रखती हूँ और नित्य बीती रात तक उनकी प्रतीक्षा करती करती थक जाती हूँ।' ॥२॥

'पाँच पाँच पत्ते का पान लगाती हूँ और बीड़ा हाथ में लिए बीती रात तक उनके आने की प्रतीक्षा करते करते नींद आने लगती है।''

'उसी तरह हे पथिक नेवारी पुष्प को चुन चुनकर मैं नित्य सेज बिछाती हूँ और उसे ताकती हुई उनके आने की प्रतीक्षा करती हूँ आखें अलसा जाती हैं, पर वे नहीं आते।'

'इसलिए हे पथिक (अब हमारा धैर्य छूट गया। आज भी ये सब सामान प्रस्तुत हैं।) तुम मेरी दुकान पर टिक रहो। और इनका उपयोग करो।'

स्वयं दूती की कितनी सुन्दर दलील है। किस चातुरी से उद्दीपन का प्रतिपादन करके अपने को कुलटा भी नहीं साबित करती और अपनी अभिलाषा भी प्रकट कर देती है। ऊपर से सारा दोष पति पर रखती है। आप निर्दोष, सती साध्वी बनना चाहती है। और चाहती है पथिक का सहवास भी। संयोग-शृङ्गार के साथ करुणा रस का कितना सुन्दर प्रतिपादन हुआ है।

(३६)

चननिया छटकी, मो का करों राम ॥
गंगा मोर भइया जमुना मोर बहिनी,
चाँन सूरज दूनो भइया।
मों का करों राम। चननिया छटकी ॥१॥

सासु मोर रानी ससुर मोर राजा,
देवरु हवें सहजादा—मों का करों राम ॥२॥
चननिया छुटकी मों का करों राम ॥

इस गीत में एक युवती विधवा प्रकृति और अपनी अवस्था की प्रेरणा तथा देवर के प्रलोभनों से व्याकुल होकर अपना कर्तव्य निश्चय करना चाहती है। कितना मार्मिक और करुण चित्रण है।

कहती है 'हे राम, यह चाँदनी छिटक रही है। मैं क्या करूँ? अब मेरा क्या कर्त्तव्य है। गंगा मेरी माता हैं। धर्म कर्म की रक्षा करने वाली हैं। यमुना मेरी बहन की तरह मेरे लिए शुभ कामना वाली हैं। और आकाश के ये दोनों चाँद और सूर्य मेरे भाई हैं अर्थात भाई की तरह दिन रात मेरी रखवारी कर रहे हैं' ॥१॥

और घर में मेरी सास घर की रानी हैं, स्वसुर बाहर के राजा हैं। (अर्थात् दोनों के अधीन मैं हूँ) पर देवर जी शाहजादा हो रहे हैं अर्थात् मुझे छेड़ रहे हैं। और ऊपर से यह चाँदनी रात छिटकी हुई मेरे भीतर काम भावना उठा रही है। हे राम ऐसी परिस्थिति में जहाँ एक ओर तो धर्म के इतने पहरेदार दिन रात हर घड़ी खड़े खड़े मेरी रखवारी कर रहे हैं और दूसरी ओर चाँदनी का यह उद्दीपन और मस्त जवानी का यह उद्दीपन तथा देवर की यह छेड़खानी मुझे पथ भ्रष्ट होने का सकेत कर रहे हैं, तुम्हीं बताओ मैं क्या करूँ? हे राम मेरा कर्तव्य क्या है यह मुझे बताओ। ॥२॥

पाठक विश्वास रखें लिखने में अतिशयोक्ति नहीं की गई है। स्त्री जिस तरह से प्रेम प्रदर्शन में तथा रस की बातों में पुरुष के सम्मुख स्वभाव से ही चुस्त और अनुदार होती है वैसे वह इन गीतों में भी रस, विरह, काम, प्रेम आदि की बातों को व्यक्त करने में बहुत ही चुस्तगी से शब्दों और वाक्यों का प्रयोग करती है। मनोभाव को व्यक्त करने में सदा व्यञ्जना से ही वह काम लेना चाहती है। चित्र की रेखा खींचते समय वह आवश्यकता से अधिक लाइनों को इस लिये छोड़ देती है कि उसको देखने से चित्र अधिक खुला प्रतीत होगा और उसके निर्मात्री की स्वाभाविक लज्जा का उससे ह्रास

होगा। इस तरह स्त्री कवियित्रियों का प्रयत्न सर्वत्र सीपी में सागर भरने के सिद्धान्त के अनुसार होते हैं। वह खुलना कहीं नहीं चाहती है। इसीसे गीत बहुत छोटे पर भाव बड़े होते हैं। और टीकाकार को सर्व साधारण के लिये अधिक खुलना पड़ता है। और द्विवाचा भी कुछ लिख देना होता है उस परिस्थिति का दिग्दर्शन करने के लिये जिसमें वह गीत गाया गया था।

(३७)

घेरि अइलो बदरिया मो ना जीओं ॥
सोने के थारी में जेवना परोसलों,
जेवना ना जेवें मों ना जीओं ॥१॥
सोने के गेडुआ गङ्गाजल पानी,
पनिया ना पीयें मों ना जीओं ॥२॥
लौंग मों डोभि डोभि वीरवा लगवलों,
वीरवा ना चाभे मों ना जीओं ॥३॥
फूल नेवारी के सेज डसवलों,
सेजिया ना सोवे मों ना जीओं ॥४॥
घेरि अइली बदरिया मों ना जीओं ॥०॥

"हे सखी, बादल घेर आये। अब मेरा जीवित रहना बड़ा कठिन है। आगे के चरणों का अर्थ साफ है।

(३८)

भूलि फिरों मधुवनवा में साम बिना।
पान पेटरिया सरि गइले हो, फुलवा गइले कुम्हिलाय, स्याम० ॥१॥
फूल के गजरा हम साजि गुथलीं, लागे उदास ननलाल बिना,
भूलि फिरौं मधुवनवा में स्याम बिना ॥२॥

"मैं मधुवन में भूली फिरती हूँ, बिना श्याम के मधुवन में मैं भूली फिरती हूँ।"

"हाय हमारे पान पिटारे में रखे रखे ही सड़ गये और फूल धीरे धीरे मुरझा गये बिना श्याम के सब व्यर्थ हुआ ॥१॥

"फूल की माला मैंने सज्जित कर बनाई थी, परन्तु हाय उसका गूँथना बेकार गया हरि नहीं आये। सर्वत्र उनके बिना उदास लग रहा है ॥१॥

"हाय मैं हरि के बिना आज मधुबन में भूली भूली फिर रही हूँ ॥२॥

राधा की कैसी दयनीय दशा कृष्ण के विरह ने कर रखी है। वह अपने हृदय की भावनाओं को बस इन्हीं दो चरणों में उद्दीपकों की चर्चा के द्वारा व्यक्त करना चाहती है। एक ही सञ्चारी भूलि फिरों मधुबन में, के वाक्य में कह कर शेष सञ्चारियों का भी समझ लेने के लिये पाठक से संकेत करा दिया है पाठक देखें, सीपी में सागर यहाँ भरा गया है या नहीं।

(३६)

मारत बा गरिआवत बा, देख इहे कारिखहवा मोहि मारत बा ॥१॥
आँगन कइलों पानी भरि लइलों, ताहु उपर लूलूआवत बा ॥२॥
अस सौतिन के माने माई, हमरा बदर बनावत बा ॥३॥
ना हम चोरिन ना हम चटनी, झुठहूँ अछरंग लगावत बा ॥४॥
सात गदहा के मारि मोहि मारे, सूअरि अस घिसिआवत बा ॥५॥
देखहु रे मोरे पाट परोसिनि, गाइ पर गदहा चढावत बा ॥६॥
पिअवा गँवार कहल नाहीं बूझत, पनिया में आगि लगावत बा ॥७॥
हे अमिका तुही बूझि करी अब, अचरा ओढाइ गोहरावत बा ॥८॥

इस गीत मे जहां एक ओर पाठक पति के पत्नी पर किये गये अत्याचार को सुनेगे और पत्नी के विलाप से रो उठेगे वहाँ दूसरी ओर भोजपुरी के मुहावरे दार प्रयोगों को सुन कर तारीफ किये बिना नहीं रहेंगे। पति पत्नी को मार रहा है और अपढ़ मूर्ख पत्नी चिल्ला चिल्ला कर गोहार मचा रही है। कहती है—

"अरे देखो, यह कलमुँहा मुझे गाली देता है, मारता है।" ॥१॥

"मैंने आँगन बुहारा। पानी भर लाई तिस पर भी मुझे कुवाक्य कह कह कर पददलित कर रहा है। (लुलुआ रहा है)" ॥२॥

"सौत को तो खूब मानता है। पर मुझे सदा दोषी ही ठहराया करता है।"

"मै न तो चोर हूँ। न चटनी हूँ। झूठ मूठ मेरे ऊपर अछरग (दोष) लगा रहा है।" ॥४॥

"मुझको सात गदहे की मार मारता है। ऊपर से सूअर (विहार में दिवाली के दूसरे दिन जीते सूअर को टाँग बाँध कर मवेशियों के सामने अहीर घसीटते हैं और उनसे उसे मरवाते हैं। इसको गाय डाढ़ कहते हैं। अब यह प्रथा नष्ट होचली है इसी से यहाँ सूअर ऐसा घसीटने का मुहावरा है।) घसीट रहा है।" ॥५॥

"हे मेरे पड़ोस की रहने वाली बहने यह तमाशा देखो। गाय के ऊपर गदहा को यह चढ़ा रहा है अर्थात मुझ दीन निर्दोष अबला को इस तरह एक रखेली के कारण अपमानित कर रहा है" ॥६॥

मेरा पति गँवार है। कहा नहीं मानता। निरर्थक यह पानी में आग लगा रहा है। अर्थात जल की तरह शीतल और शान्त मुझ अबला को निरर्थक उभाड़ रहा है, मुझे क्रोध दिला रहा है यानी हमारी शान्त गृहस्थी को जलाना चाहता है ॥७॥

अम्बिका कहते हैं कि "हे भगवान आप ही इसका अब निर्णय करना। यह मूर्ख अब तो मुझे अचल ओढ़ाकर अर्थात अपना बना कर इस तरह शोर मचा रहा है—खुले आम मुझे बदनाम कर रहा है।"

इस गीत को डा० ग्रिअरसन ने अपने 'भोजपुरी ग्रामर' में उधृत किया है।

(४०)

अपने पिया के मों खोजन निकसों, पेन्हि लेलों रँगि लाली चुनरिया ॥१॥
गोकुल खोजलों बिरिनाबन खोजलों, खोजि अइलों कासी नगरिया ॥२॥
जगल खोजलों परबत खोजलों, कतहीं ना मिले मोरे पिया के खबरिया ॥३॥
अमिका पिया के घरहीं में पवलों, मिलि गइले रे मन मोहनी सुरतिया ॥४॥

"मैं लाल रग की चूनर पहन कर अपने प्रियतम को खोजने घर से निकली।" ॥१॥

"मैंने उसकी गोकुल में खोज की, वृन्दावन वन में ढूढ़ा और वहाँ जब

वे नहीं मिले तो काशी नगर में भी जाकर खोज आई" ॥२॥

फिर बन में ढूढ़ा, पहाड़ पर ढूढ़ा, लेकिन कहीं भी हमारे प्रियतम की कोई सूचना मुझे नहीं मिली। अम्बिका कवि कहते हैं कि अन्त में प्रियतम को मैंने अपने ही घर में पाया। बस मुझे मेरा मन हरण करने वाली मोहनी सूरत मिल गई ॥३,४॥

छायावाद की उक्ति है। आध्यात्म पक्ष की कविता है।

(४१)

कवन गुनहिए चुकलों ए बालम, तोर नयना रतनार।
सवती के बतिया करेजवा में साले, कापेला जिअरा हमार ॥१॥
अपने पिया लागि पेन्हली चुनरिया, ताकत देवरा हमार।
अमिका पिया जब हँसि हँसि बोलिहें, करबों मैं सोरहो सिंगार ॥२॥

"हे बालम! तेरे नयन रतनार हो रहे हैं—क्रोध में वे लाल रंग धारण कर रहे हैं। मैंने कौन सी चूक की कि तुम इतने कुपित हो गये?"

"सौत की तीखी बातें ऐसे ही मेरे हृदय में गड़ रही हैं। उस पर तुम्हारा यह क्रोध देख कर हमारा हृदय और थर थर काँप रहा है" ॥१॥

"हाय राम, मैं तो अपने प्रियतम के लिये यह चूंदर पहने थी, पर वे क्रोध से लाल हो रहे हैं। और इधर देवर इसे देख रहे हैं! (ऐसी दशा में इसे उतार फेंकना ही मेरे लिये श्रेयस्कर है)। अब तो तभी मैं सोलह श्रृङ्गार करूँगी जब मेरे स्वामी मुझसे हँस हँस कर बातें करने लगेंगे अन्यथा अब श्रृङ्गार मेरे लिये व्यर्थ है।" ॥२॥

(४२)

धनी चलेली नइहरवा बलमु सुसुकी देइके रोवें।
कोठवा पर रोवें अटरिया पर रोवें, खटिया सिर देइ रोवे बलमु सुसुकी देइ के रोवें ॥१॥
बाग में रोवें बगइचा में रोवें, घरवा केवाड़ी देइ रोवें बलमु सुसुकी देइ के रोवें ॥२॥

"स्त्री मायके जा रही है। पति सिसक सिसक कर रो रहा है। वह कभी

तो कोठा पर जाकर रोता है, कभी अटारी चढ़ कर रोने लगता है, और कभी स्त्री की खाट पर सिर पटक पटक कर रोता है" ॥१॥

"कभी चुपके से पास की अमराई में जाकर रो लेता है तो कभी पुष्प वाटिका में बैठ कर आसू गिराने लगता है। और वहाँ से उठता है तो घर में क्विाड़ बन्द कर सिसक सिसक कर रोना आरम्भ करता है।" ॥२॥

जिस कवियित्री ने इस गीत की रचनाकी होगी सचमुच उसने अपनी आँखों अपने स्नेही पति की यह दशा देखी होगी। और मायके में सूनी घड़ियों में पति विदा होते समय की बातें स्मरण करके इसको गाकर अपने हृदय को हल्का करती रही होगी।

(४३)

असों के सवनवा सइया घरे रहु, घरे रहु ननदी के भाई ॥
हथिअन देवों हथिसरवा, घोड़वन देवों घोड़सार।
तोहरा के देवों प्रभु चितसरिया, करजोरि रहवों मों पास ॥१॥
असों के सवनवा० ॥०॥
घोड़वन देवों सामी, घीवे के मलिदवा, हथियन लवंगियाँ के डारि।
तोहरा के देवों प्रभु घीव खींचड़िया, अचरन करवि बयारि ॥२॥
नीचे नीचे बोअ सामी धनवा, त ऊँचे ऊँचे हेवती कपास।
वीचे वीचे बोअ सैंया केरा नरिअरवा, खेती कर छाड़ वेअपार ॥३॥
असों के सवनवा सैंया घरे रहु० ॥०॥

व्यापारी पति हर साल सावन में व्यापार करने दूर विदेश में निकल जाता था और घर पर उसकी पत्नी का पावस से व्यर्थ व्यतीत हो जाता। लम्बे जीवन में कब तक यह दुःख विरहिणी सहा करे ? जवानी भी बीतती चली जा रही थी। फिर व्यापार का प्रश्न एक दो वर्ष का था नहीं। जीवन पर्य्यन्त का यह प्रश्न था। बेचारी स्त्री को कैसे बोध हो ? उसने तै किया कि व्यापार की जीविका ही छोड़ दी जाय और खेती शुरू की जाय। पर बरसात भर खायँगे क्या ? इसके लिये उसने स्वयं अपने पास से रुपया देना निश्चय किया। उसने दृढ़ निश्चय हो आषाढ़ लगते ही पति के पास जाकर वकालत करनी शुरू की।

फल क्या हुआ ? यह तो ज्ञात नहीं, पर स्त्री की दलील को तो सुन ही लीजिये। कितना सुन्दर भावी सुख मय जीवन का चित्र पति को पत्नी ने समझाया है। सचमुच हर पति इस आदर्श जीवन का चित्र देख कर कम से कम एक बार तो अवश्य उसका अनुसरण करेगा।

"हे प्रियतम, इस साल सावन महीना में तुम घर पर ही रहो। हे ननद जी के भाई ! इस सावन में तुम घर पर ही रहो।"

"मैं तुम्हारे हाथियों के रहने के लिये हथिसार का प्रबन्ध करूँगी। घोड़ों के रहने के लिये अस्तबल बनवा दूंगी। और हे मेरे आराध्य देव, तुम्हारे रहने के लिये मैं अपनी चित्र शाला दूंगी, जहाँ मैं हाथ जोड़ तुम्हारे पास सदा प्रस्तुत रहूँगी।"

"हे स्वामी, इस सावन में तुम घर रहो, हे ननद जी के दुलरूवे भाई ! तुम इस वर्ष वर्षा घर पर ही बिताओ।"

"तुम्हारे घोड़ों को मैं घी का मलीदा (शक्कर और घी मिलाया हुआ रोटी का चूर्ण खाने को दूंगी) हाथियों को लचग की डार खिलाऊँगी और तुमको हे मेरे प्रभु, घी और खिचड़ी परोसूँगी और सामने बैठ कर अपने अचल से हवा करूँगी।"

"हे सैंया ! इस वर्ष का सावन तुम घर ही पर व्यतीत करो। हे ननद जी के भाई ! यह वर्षा घर पर काट दो।"

"हे प्रभु तुम घर पर बैठे न रहना। खेती कराना। उससे कम लाभ नहीं होगा। नीचे के खेतों में तो तुम धान बोना। पानी की दिक्कत नहीं रहेगी। ऊँचे के खेतों में हेवती कपास बोना। (उसकी अच्छी पैदावार होगी। कपास ऊँची जमीन पर बोया जाता है। उसको सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती।) और समतल भूमि वाले खेतों मे तुम बीच बीच में, हे प्रियतम, केला और नारियल लगा देना।

(४४)

बाबू दरोगा जी कवने गुनहिये बन्हलीं पिअवा मोर ॥
ना मोर पिअवा चर रे चमरवा, ना मोर पिअवा चोर।

मोरा त पिअवा मधुआ के मातल, रहलें सड़किया पर सोइ ॥१॥
अनी दुअनी सिपहिया के देवों, पाँच रुपइया जमादार।
ई दूनो जोवना कलक्टर के देवों, पिअवा के लेवों छोड़ाई ॥२॥
वावू दरोगा जी कवने गुनहिया बन्हलीं पिअवा मोर॥

'यह गीत उस समय का है जब अंग्रेजों की लूट भारत में आज से कहीं अधिक बड़े जोर से मची हुई थी। घूस खोरी और व्यभिचार छोटे नौकरों से लेकर बड़े से बड़े पद वाले कर्मचारियों तक चल रहा था।

यह गीत ही इस बात का साची है कि यह सर्व साधारण की जानकारी की बात थी और कोई भी सुन्दर स्त्री या रुपया वाला व्यक्ति रूप और यौवन के बल पर भारी से भारी काम यहाँ तक कि कानून की हत्या भी बड़े से बड़े अफ़सरों से करा सकता था।

रूप गर्विता भठियारिन कह रही है :—

'हे दारोगा जी, आपने किस अपराध में मेरे पति को कैद कर रखा है?' न तो मेरा पति पासी चमार है न वह चोर ही है। अरे हमारा यह पति तो शराब में मस्त था, सड़क पर सो रहा ॥१॥

'हे दारोगा जी आपने किस अपराध में मेरे स्वामी को बाँध रखा है।' ॥२॥

(होश में आइए। इसे छोड़ दीजिए। नहीं तो मैं इसे आपके देखते देखते छुड़ा लूँगी)। (मैं एक दो आना पैसा जमींदार के सिपाही को देकर जमींदार के यहाँ पहुँचूँगी और वहा पाँच रुपया उसे देकर कलक्टर के पास उसके जरिये पहुँच जाऊँगी) फिर वहाँ? आप इन दोनों जोबनों को देखते ही हैं। इन्हीं दोनो जोबनों की डाली कलक्टर के सामने लगाऊंगी और अपने पति को छुड़ा लूँगी।

पाठक विचार करें इन ग्राम गीतों के संग्रह से स्त्री स्वभाव, स्त्री संस्कृति का पता तथा साहित्य विनोद की ठोस सामग्री का संग्रह ही नहीं होता बल्कि जगह जगह ऐतिहासिक तथ्यों का अन्वेषण भी हो जाता है जिनको सिद्ध करने के लिए ऐतिहासिकों को एड़ी चोटी का पसीना एक करना पड़ता है।

यह गीत मुझे एक मुसहर से मिला। नीचे के ११ गीतों का संग्रह भी उसी गाने वाले मुसहर ने दिया।

(४५)

से झुरू झूरू ना फागुन बहेले बयरिया, से झुरू झुरू ना ॥
अपना अटरिया प सूते बारी धनिया, से झुरू झुरू ना फागुन
बहेले बयरिया ॥१॥
कोठवा चढि धनि चितवे पुरुबवा, से नाहीं अइलेहो अलगरजू
बलमुआ। से नाहीं० ॥२॥
आरे, जे मोरा कहिहें पिया के अवनवा, उनके देबों, नइहर
पालल जोबनवा। से उनके देबों० ॥
से उनके देबों हो दूनो हाथ के
कँगनवा। से उनके देबो ०॥३॥

'फागुन की हवा धीरे धीरे झर-झर स्वर से बह रही है। अल्प वयस्का स्त्री अपनी अटारी पर सो रही है और फागुन की हवा धीरे धीरे झुर झुर स्वर करती हुई बह रही है' ॥१॥

उसके मन को इस हवा से उत्तेजना मिली। वह व्यग्र हो कोठे के ऊपर वाली छत पर चढ़ गयी और पूरब की ओर (जिधर उसका स्वामी गया था) देखने लगी। किसी को आता न देखकर निराश हो कहने लगी, 'अरे मेरा अलगरजी बालम नहीं आया। अभी तक नहीं आया। अरे जो कोई मुझे प्रियतम की अवाई की सूचना देगा उसे मैं अपने मायके के पाले हुए यौवन का दान करूँगी। अपने दोनों हाथ के कंगन इनाम दूँगी।'॥२,३॥

सचमुच विरह बावली बाला पति के मिलनार्थ क्या नहीं कर बैठती। इसी से शास्त्रों में सदा बाहर रहने वाले पति की स्त्री को आज्ञा है कि वह दूसरा विवाह कर ले।

(४६)

कवने अवगुनवा पिया हमें बिसरावे ला, पिया जी के मतिआ
बउराइलि हे राम ॥

आधी रात गइले बोलले पहरुआ, धड़ धड़ धड़के ला जियरा
पिया बिनु ए राम ॥
चढल जवानी सैंया माटी में मिलवले, इहो हउए पूरब
कमाई हे राम ॥
आरे कवने अवगुनवा पिया हमरा के जारताड़े, पिया जी के
मतिआ बउराइल हे राम ॥

'अरे किस अवगुण के कारण स्वामी मुझको भुला रहे हैं? उनकी मति मारी गई है।'

'आधी रात में जब चौकीदार बोलता है तब बिना स्वामी के डर के मारे मेरा हृदय धड धड़ करके धड़कने लगता है।"

"हाय, मेरी चढ़ी हुई जवानी को स्वामी ने मिट्टी में मिला दिया। यह तो पूर्व जन्म की मेरी कमाई है। हाय, किस अपराध के कारण मेरे स्वामी मुझे जला रहे हैं। उनकी बुद्धि मारी गई है।"

(४७)

नजर लागलि राजा तोरे बंगले में, नजर लागलि राजा तोरे बँगले में।
जो हम रहितीं बेला चमेली, गमक रहितीं राजा तोरे बगले में ॥

"हे राजा, मेरी नजर तेरे ही बंगले पर लग गई। तेरी आखों ने मुझे वश में कर लिया। यदि बेला चमेली होती तो तुम्हारे बँगले में फूल कर महकती और तुम्हें प्रसन्न करती तथा तुम्हारा सहवास प्राप्त करती।" इस गीत के और चरण भी हैं पर मुझे मिल न सके।

(४८)

"हमरा पिछुअरिआ लवँगिआ के गछिया, से गमकि रहे सारी
रतिया।
देहु मोरे सासु सुपवा बढनिया, लवँगा बहारे हम जाइबि-गमकि
रहे सारी रतिया ॥
लवँगा बहारि हम ढेर लगवलीं, से लादि चलले आहो बनिजरवा
से लादि० ॥

यह गीत मुझे एक मुसहर से मिला। नीचे के ११ गीतों का संग्रह भी उसी गाने वाले मुसहर ने दिया।

(४५)

से झुरू झूरू ना फागुन बहेले बयरिया, से झुरू झुरू ना ॥
अपना अटरिया प सूते बारी धनिया, से झुरू झुरू ना फागुन
बहेले बयरिया ॥१॥
कोठवा चढि धनि चितवे पुरुबवा, से नाहीं अइलेहो अलगरजू
बलमुआ। से नाहीं० ॥२॥
आरे, जे मोरा कहिहें पिया के अवनवा, उनके देबों, नइहर
पालल जोबनवा। से उनके देबों० ॥
से उनके देबों हो दूनो हाथ के
कँगनवा। से उनके देबो ०॥३॥

'फागुन की हवा धीरे धीरे झर-झर स्वर से बह रही है। अल्प वयस्का स्त्री अपनी अटारी पर सो रही है और फागुन की हवा धीरे धीरे झुर झुर स्वर करती हुई बह रही है' ॥१॥

उसके मन को इस हवा से उत्तेजना मिली। वह व्यग्र हो कोठे के ऊपर वाली छत पर चढ़ गयी और पूरब की ओर (जिधर उसका स्वामी गया था) देखने लगी। किसी को आता न देखकर निराश हो कहने लगी, 'अरे मेरा अलगरजी बालम नहीं आया। अभी तक नहीं आया। अरे जो कोई मुझे प्रियतम की अवाई की सूचना देगा उसे मैं अपने मायके के पाले हुए यौवन का दान करूँगी। अपने दोनों हाथ के कगन इनाम दूँगी।'॥२,३॥

सचमुच विरह बावली बाला पति के मिलनार्थ क्या नहीं कर बैठती। इसी से शास्त्रों में सदा बाहर रहने वाले पति की स्त्री को आज्ञा है कि वह दूसरा विवाह कर ले।

(४६)

कवने अवगुनवा पिया हमे बिसरावे ला, पिया जी के मतिआ
[illegible] हे गए ॥

राग झूमर

आधी रात गइले बोलले पहरुआ, धड़ धड़ धड़के ला जियरा
पिया बिनु ए राम ॥

चढल जवानी सँया माटी में मिलवले, इहो हउए पूरब
कमाई हे राम ॥

आरे कवने अवगुनवा पिया हमरा के जारताड़े, पिया जी के
मतिआ बउराइल हे राम ॥

'अरे किस अवगुण के कारण स्वामी मुझको जला रहे हैं? उनकी मति मारी गई है।'

'आधी रात में जब चौकीदार बोलता है तब बिना स्वामी के डर के मारे मेरा हृदय धड़ धड़ करके धड़कने लगता है।"

"हाय, मेरी चढी हुई जवानी को स्वामी ने मिट्टी में मिला दिया। यह तो पूर्व जन्म की मेरी कमाई है। हाय, किस अपराध के कारण मेरे स्वामी मुझे जला रहे हैं। उनकी बुद्धि मारी गई है।"

(४७)

नजर लागलि राजा तोरे बंगले में, नजर लागलि राजा तोरे बँगले में।
जो हम रहितीं बेला चमेली, गमक रहितीं राजा तोरे बगले में ॥

"हे राजा, मेरी नजर तेरे ही बंगले पर लग गई। तेरी आँखों ने मुझे वश में कर लिया। यदि बेला चमेली होती तो तुम्हारे बँगले में फूल कर महकती और तुम्हें प्रसन्न करती तथा तुम्हारा सहवास प्राप्त करती।" इस गीत के और चरण भी हैं पर मुझे मिल न सके।

(४८)

"हमरा पिछुआरिआ लवँगिआ के गछिया, से गमकि रहे सारी
रतिया।

देहु मोरे रामु सुपवा बढनिया, लवँगा बहारे हम जाइबि-गमकि
रहे सारी रतिया ॥

लवँगा बहारि हम ढेर लगवलीं से लादि चलले आहो बनिजरवा
मे लादि० ॥

दमड़ी अधेला के लवँगा बिकइलें, से बुरबकवा लेखा ना जाने-से ई
बुरबकवा लेखा ना जाने ॥

"मेरे पिछवारे लवग का एक पेड़ है। लवग गिर गिर कर सारी रात महका करता है।"

"हे मेरी सास! मुझे, झाड़ू और सूप दो। मैं लवग बटोरने जाऊँगी। यह सारी रात महका करता है।"

"मैंने लवग बटोर कर ढेरी लगा दी। पर अरे! यह क्या? हमारे बनजारे साहब तो उसको लाद कर बेचने चल दिये। (नाहक यह विपत्ति मैंने अपने सर अपने हाथों बुलाई।)"

"दमड़ी और अधेले का तो लवंग बिकेगा। (उसके ऊपर से खरचा पड़ेगा) यह बेवकूफ बनजारा इस हिसाब को नहीं समझता। नाहक मुझे इस जाड़े की रात में कष्ट पहुँचा रहा है)"

(४६)

छोटी चुकी गछिया लगले टिकोरवा, मों ना जानी झरि जाला पतइया
मों ना जानी० ॥१॥
सब कोई देला पइसा कउड़िया, मों ना जानी सैया रुपइया ॥२॥
सब के बलमुआ पतुरिया नचावे, मों न जानी पिया जोगिनि नचावे ॥३॥
सब के बलमुआ रडी से राजी, मों ना जानी पिया लौंड़ा से राजी ॥४॥

इस गीत के प्रथम चरण को आप जितना हो मनन करेंगे उतना ही उससे रस निकलेता। नायिका अज्ञात यौवना है। अपने शरीर को वह एक छोटे वृक्ष से उपमा देती है। और कहती है कि जिस तरह वृक्ष पर छोटे-छोटे फल समय से तो लग आते हैं, पर तुरत उनको छिपाने वाले पत्ते उस वृक्ष से गिर पड़ते है, उसी तरह मेरे शरीर रूपी वृक्ष में ये नव विकसित स्तन रूपी टिकोरे लगे तो सही, पर उस शरीर रूपी वृक्ष का पति रूपी रक्षक जो पत्ते के समान है जिससे यह जीवन ढक सकता था, वह इन नए टिकोरों के उत्पत्ति के साथ ही यहाँ से हट गया। पर इन सारी बातों को नायिका तब तक समझ नहीं सकी जब तक सखी ने खोल कर उसे समझाया नहीं। इमने

इसी भाव का एक चरण बिदेसिया गाना से किसी तरुणी को कहीं जाते सुना था। जो आज तक कानों में वैसे ही गूँजा करता है।

"अमवा मो जरि गइले लगले टिकोरवा कि दिन पर दिन पियराइ
रे विदेसिया"।

अर्थ सरल है।

कामशास्त्र जानने वालों का कहना है कि पत्नी पति के सभी अपराधों को क्षमा कर सकती है। उसके पर स्त्री गमन को भी वह भूल सकती है। पर इसे और इसी के जोड़ी दूसरे दुष्कृत्य को वह आजन्म स्मरण ही नहीं रखती, बल्कि इसी कारण पति से घृणा भी करने लगती है। कितनी स्त्रियों के वैवाहिक जीवन ही इससे नष्ट हो गये हैं। इन वैज्ञानिकों की इस धारणा की पुष्टि जब मुझे अज्ञात यौवना नायिका के गीत से होती है तब उस की तथ्यता निर्विवाद मान लेनी पड़ती है।

(५०)

बाबा मोरे रहलनि बगिया लगवलनि, मों फुलवा लोरहे गइलीं ये
चार गोइयाँ ॥१॥
फूलवा मों लोरिह लोरिह भरलों चगेलिया, सिउ प चढवलीं ये
चार गोइयाँ ॥२॥
सिउ प चढवलीं कवन फल पवलीं, बलमुआ मिलल मोर छोट न ए
चार गोइया ॥३॥
सिउ प चढाइ हम घरवाँ लवटलीं, चउकठिया धइले ठाढ़ सैंया ए
चार गोइयाँ ॥४॥
हमरा ले छोटी छोटी भइली लरिकोरिया, करमवा भइले खोट ए
चार गोइयाँ ॥५॥
कइसे हम धीरज धरीं मन समुझाईं, बजर परे नु पिया बारी ए
उमिरिया ॥६॥
खोलीं खोलीं सासु मोर बजर केवरिया, भीजेला मोर छतिया-नू ये
चार गोइयाँ ॥७॥

सीता बिना मोरि सूनि रसोइया, के मोरा जेवना बनाई ॥३॥
बनवा के दीहल हो माई ॥
रिमि झिमि रिमि झिमि देव बरिसलें, पवन बहे चउआई ।
कवन बिरिछ तर भीजत होइहें, राम लखन दूनो भाई ॥४॥
बनवा के० ॥
भूखि लगे काहाँ भोजनि पइहें, पिआसि लगे कहाँ पानी ।
नींदि लगे कहाँ डासन पइहें, काट कूस गड़ि जाई ॥५॥
बनवा के० ॥
तुलसीदास प्रभु आस चरन के हरिके चरन बलिहारी ।
बनवा के दीहल हो माई ॥६॥

कौशल्या विलाप कर रही हैं पूछती हैं—"हे माई, उन लोगों को किसने बनवास दिया ? हे भाई राम सीता लषमण को किसने बन भेजा ?"

"आगे आगे राम बन चले जा रहे हैं, उनके पीछे लषमण भाई जाते हैं और उनके पीछे सुन्दरी सीता मार्ग जोहती हुई चली जा रही हैं। अरे भाई इनको किसने बनवास दिया ?" ॥१॥

"किसके न रहने से मेरी यह अयोध्या नगरी सूनी हो गई ! किसके बिना यह चौपाल उजाड़ हो गया ? और किसके चले जाने से रसोई घर सूना हो गया ? अरे ! अब मेरा भोजन कौन बनावेगी ?" ॥२॥

"अरे राम के न रहने से मेरी अयोध्या सूनी है और लषमण के बिना यह चौपाल सूना है तथा सीता के चले जाने से रसोई सूना दीख रही है। अब मेरा भोजन कौन बनावेगी ?" ॥३॥

"रिम झिम, रिम झिम, करके मेघ बरस गया, ऊपर से चौआई हवा बह रही है। हाय ! मेरे वे राम लखन दोनों भाई, किस वृक्ष के नीचे खड़े खड़े भीगते होंगे ? किसने बन को भेजा ?" ॥४॥

"भूख लगने पर उन्हें भोजन कहाँ मिलता होगा ? प्यास लगने पर उन्हें पानी कहाँ प्राप्त होता होगा ? और नींद लगने पर वह कहाँ बिछावन पाते होंगे ? वे काट कुश पर सो रहते होंगे और वे काट कुश उनके कोमल अंगों में गड़

जाते होंगे ? हाय, इन कोमल बालकों को किसने बन भेजा ?" ॥४॥

"तुलसीदास जी कहते हैं कि कौशल्या विलाप कर कह रही हैं कि अब तो मुझे प्रभु के चरणों की ही आशा है। मैं उन्हीं के चरणों पर बलिहारी हूँ।"

पाठक देखें तुलसीदास ने भी भोजपुरी को अपनाया है और किस कुशलता के साथ और वह गीत आज ३०० वर्ष बाद भी सब से नीच श्रेणी के लोगों के बीच आज तक गाया जाता है। ऐसे ही कवि की लेखनी सफल कही जायगी जिसका गीत मुसहर की झोपड़ी से लेकर राजमहल तक और रंडी के कोठे से लेकर साधु महात्माओं के आश्रमों तक सर्वत्र एक समान गाया जाता हो।

(५३)

मिनती करीं ले रजा राम लखन फिरि जाना हो घर के ॥
पिता दसरथ जिव प्रान तिअगले, माई जहर लिहली हाथ।
बिआकुल भइले अवधपुर के लोगवा, भैया भरत जे बेहाल ॥१॥
लखन फिरि जाना हो घर के ॥
बन पात ओढ़न, बन पात डासन, बन फल होखेल अहार।
बाघ सिंघ बन बहुत बिआये, रउरा बानी लरिका नदान ॥२।
लखन फिरि जाना हो घर के ॥
जनम जनम हम दास कहाई लें, जहवाँ पठाइबि तहाँ चलि जाई ले।
एक त न जइबों नग्र अजोधिआ, जहाँ प्रान बेचि के बिकाइले ॥३॥
लखन फिरि जाई न घर के ॥
केकई के दोस कुछू नाहीं बाटे, लिखल लिलार ना टरिलें।
'तुलसीदास' प्रभु आस चरन के, अब देवता लोग भइले बलिहारी ॥४॥
लखन फिरि जाना हो घर के ॥

"रामचन्द्र लक्ष्मण से प्रार्थना कर रहे हैं कि हे लक्ष्मण तुम घर को लौट जाओ।" कहते हैं :—

"हे भाई! पिता जी ने प्राण त्याग दिया। माता जी की हालत ऐसी है कि वे हर घड़ी हाथ में विष लिये प्राण देने पर तुली हैं। अवध के सभी लोग

व्याकुल हो रहे हैं, और भाई भरत बिकल हैं। हे लषमण! यह सब जान कर तुम घर को लौट जाओ ॥१॥

"हे भाई! बन में पत्ता ही ओढ़ना पड़ता है और बन के पत्ता का ही बिछावन भी बनाया जाता है। वन के फल फूल ही आहार के लिये एक मात्र साधन हैं। और इसके अतिरिक्त बाघ सिंह बन में भरे पड़े हैं। हे भाई! इसके अतिरिक्त तुम नादान बालक हो। तुम घर लौट जाओ।" ॥२॥

लषमण ने उत्तर दिया, "हे भाई, मैं आपका तो जन्म जन्म का दास हूँ। मुझे आप जहाँ भेजें मुझे जाना ही होगा। परन्तु एक ही जगह नहीं जाऊँगा और वह जगह अयोध्या नगरी हैं जहाँ जाने से मेरे प्राण बेचने से बिक जायेंगे। मैं वहाँ स्वतन्त्र न रह सकूगा। मेरा प्राण दूसरे के आधीन हो जायगा।"

"हे भाई, केकई मा का कोई दोप नहीं है। भाग्य का विधान नहीं मिटता है।" तुलसीदास कहते हैं कि लषमण ने कहा कि हे भाई! मेरी आशा आपके चरणों की है। लषमण के इस वाक्य से देवगण बलिहारी हो गये।

तुलसीदास जी की शब्द योजना इस गीत में वही आज भी रह गई है जिसको उन्होंने प्रथम में रखा था इसमें मुझे शक है। क्योंकि इसमें कहीं कहीं यति भग का दोप है। पर यह अवश्य है कि यह रचना उनकी ही थी। समय के प्रभाव से गीत के स्मरण में त्रुटियाँ आ गई हैं। इसी से तो उनका नाम इसके साथ चला आता है। हमारी स्त्री कवियित्रियों में दूसरे के नाम से अपनी कविता कहने की प्रथा न कभी थी और न आज है। यह प्रथा तो विद्वान पुरुप कवियों ही में मिली है।

(५४)

कठिन बान तू मरलू हो केकई ! भला काम ना कइलू ।
कहेली कोसिला रानी सुन हो केकई ! हम त तोहार कछु नाहीं बिगरलीं ।
बसलि अजोधिया तू काहे के उजरलू, हमरा राम लखन के गँववलू ॥१॥
कठिन बान मरलू हो केकई ! कठिन बान०॥
एक वर मँगितू, दूसर वर मँगितू, माँगि लीतू सोरहो भंडार ।

अपना भरत जी के राज तू दीहि तू, राम के घरवा राखि लीतू ॥
राखि लीतृ प्रान हमार ए केकई ॥२॥
कठिन बान० ॥
जरि जाले राज, जरे सुख सम्पति, हरि बिना जरे ससुरारी ।
'तुलसी दास' प्रभु आस चरन के, आहो तू त चित्रकोट दिखलवलू ॥३॥
कठिन बान०॥

चित्रकूट जाते समय कौशल्या रो रोकर केकई से कह रही हैं ।

"हे केकई, तुमने बड़ा कठिन बाण मारा । अच्छा काम नहीं किया ।"

कौशल्या रानी केकई ! से कह रही हैं कि 'हे केकई ! मैंने तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ा था । तुमने क्यों बसी हुई अयोध्या नगरी को उजाड़ दिया और हमारे राम लक्ष्मण को गवाँ दिया । मैंने तो तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ा था । हे केकई ! तुमने कठिन बाण मुझे मारा ।' ॥१॥

'तुम भले ही एक वर माँग लेती, भले ही दूसरा वर भी माँग लेती, और तुम भले ही सोलहो भण्डार भी माँग कर अपने भरत जी को राज्य देती । पर हे केकई हमारे राम को तुम घर रहने देती—हमारा प्राण भर रहने देती हा, तुम ने बड़ा तीक्ष्ण बाण मारा है ।' ॥२॥

'हे केकई ! यह राज्य जल रहा है, सुख सम्पत्ति भी जल रही है । और राम के बिना यह हमारी ससुराल अयोध्या भी जली हुई है । तुलसीदास कहते हैं कि कौशल्या कहती है कि अब तो मुझे ईश्वर के चरणों की आशा है । हा ! तुमने तो उन्हें चित्रकोट दिखला दिया ।' ॥३॥

कितना सजीव वर्णन है । करुणा का रूप खड़ा कर दिया है । वात्सल्य प्रेम हर वाक्य से टपका पड़ता है—पुत्र की ममता और माता का स्नेह हर अक्षर के साथ साथ लिपटी हुई रो रही है । क्यों ऐसा न हो ! तुलसीदास की लेखनी क्या कमाल नहीं दिखला सकती !

(५५)

घरें आ गइले लछुमन राम अवधपुर आनँद भए ॥
घरें आ गइले० ॥

आवते मिलले भाई भरत से, पाछे कोसिला माई ।
सभवा बइठल देवता सबसे मिलले, अब धनि केकई हो माई ॥१॥
घरें आ गइले लछुमन राम अवध पुर आनँद भए,
अवधपुर आनँद भए ॥
सीता सहिते सिंहासन बइठलें, हलिवँत चवर डुलाई ।
मातु कोसिला अरती उतरलीं, सब सखि मगल गाई ॥२॥
अवधपुर० ॥ अवधपुर० ॥
कर जोरि बोलेलें राम रघुराई, सुनताड़ू केकई हो माई ।
तोहरा परतापे हम जगत भरमली, तू काहे बइठेलू लजाई ॥३॥
अवधपुर० ॥ अवधपुर० ॥
कर जोरि बोलताड़ी केकई हे माई, सुन बाबु राम रघुराई ॥
इहो अकलकवा कइसे के छूटिहें हमरा कोखी जनम तोहार होइ जाई ॥४॥
अवधपुर० ॥ अवधपुर० ॥
दुआपर में माता, देवकी कहइह, हम होईबि कृस्न जदुराई ।
'तुलसीदास'प्रभु आस चरन के, तोहर दुध नाहि पीअबि रे माई ॥५॥
अवधपुर० ॥ अवधपुर० ॥

यहाँ पर तुलसीदास ने केकई और राम का मनोमालिन्य दूर करके राम के हृदय की कसक और केकई की लज्जा को कितने सुन्दर रूप से व्यक्त किया है ।

'राम और लछमण गृह लौट आये । अवधपुर में आनन्द की धूम है ।'

'श्री रामचन्द्र आते ही आते भरत जी से मिले । इसके पीछे कौशल्या के चरण छुए । फिर उन्होंने सभा में बैठे हुए देवतागण से भेंट की । और तब प्रसन्न मन केकई के पाँव पड़े ।' ॥१॥

'तब सीता के साथ सिंहासन पर बैठे । हनुमान चँवर डुलाने लगे । माता कौशल्या ने आरती उतारी और सब सखियाँ एक स्वर से मगल गान करने लगीं ।'॥२॥

"मगल गान समाप्त होने पर राम ने हाथ जोड़कर कहा, हे केकई !

माँ !' सुनती हो । मैंने तुम्हारे प्रताप से जगत भर का भ्रमण किया । तुम क्यों इस तरह लजाकर चुप बैठी हो ।' ॥३॥

केकई ने उठकर आँखों में आँसू भर कहा—हे राम चन्द्र मेरा यह कलंक कैसे छूटेगा ! जानते हो ? जब मेरी कोख से तुम्हारा जन्म हो जायगा तब । अन्यथा यह कलक कभी नहीं छूटेगा ।' ॥४॥

राम ने केकई को क्षमा किया और कहा 'हे माता ! द्वापर में तुम देवकी बनोगी और मैं यदुपति कृष्ण कहलाऊँगा और मैं तुम्हारे गर्भ से प्रकट होऊँगा । पर हे मा ! तब भी मैं तुम्हारा दूध न पीऊँगा ।'

'तुलसीदास कहते हैं कि मुझे तो प्रभु के चरणों की ही एक मात्र आशा है ।'

पाठक ! अन्तिम चरण पर ध्यान दें—'तोहरा दूध नाहि पीअवि ए माई ।'

राम ने हर एक वाक्य से ही अपने १४ वर्षों से गड़े हुए कीट को हृदय से निकाल फेंका है । ठीक है । कितना ही हृदय पवित्र क्यों न हो और उससे मैल कितनी क्यों न धो डाली गई हो पर उस पर की लगी हुई चोट की कसक को कोई तभी मिटा सकता है जब चोट पहुँचाने वाले के हृदय पर भी उसके निकासने से कुछ वैसा ही घाव हो जाय कि जिससे वह समझ सके कि उसकी दी हुई चोट की पीड़ा दूसरे को इसी तीक्ष्णता से अनुभूत हुई होगी । यहाँ राम ने केकई का मुंह माँगा वर उसे दिया तो सही पर अपने हृदय की चोट—जिसे वे १४ वर्षों से हृदय में वहन कर रहे थे अवसर पाकर इस सुन्दर रूप से बाहर किया कि केकई के हृदय में पहले से भी अधिक दुखद्‌घाव आपही आप उत्पन्न हो गया । केकई राम की माता बनेगी । उसका उन्हें बनवास देने का कलंक मिट जायगा । इससे वह कृतकृत्य हो जायगी । पर राम उसका पुत्र होकर भी उसका दूध नहीं पीयेंगे । पाठक ? विचारें तो इस वरदान से केकई को सन्तोष हुआ होगा या पश्चात्ताप ? वह तो सोचने लगी होगी कि इससे तो अच्छा यही था कि मैं जो कलंक वहन करती थी वही किया करती । राम सौत के पुत्र थे । उनके ऊपर किये गये अत्याचार को वह कलंक क्यों अनुभूत

करे ? यदि वह कलंक ही है तब भी वह इस वरदान से अच्छा ही है क्योंकि दूसरे जन्म में तो राम उसके उदर के पुत्र होकर भी उससे उसके पूर्व जन्म के कृत्यों के कारण घृणा करेंगे—उसके दूध को पीने से अस्वीकार कर देंगे। वह अपने आत्मज के इस तिरस्कार को क्यों और कैसे सहन कर सकेगी ? इसलिए केकई राम के इस वरदान से प्रसन्न नहीं बल्कि अधिक दुखित हुई होगी। सचमुच कलाकार तुलसी ने केकई के करतूतों का बदला राम द्वारा उसे इस आत्म-ग्लानि और पश्चात्ताप में दिलवा कर कला के 'सत्य शिव सुन्दरं' की परिभाषा को खूब निभाया है। वह कला कला नहीं जिसमें स्वयं पापी को अपने करतूतों से ही आत्म ग्लानि और पश्चात्ताप न उत्पन्न हो जाय। और वही बात यहाँ हुई भी है। राम ने उदारता अवश्य दिखाई—अपना बड़प्पन भी निभाया, पर एक ऐसी बात कह दी कि जिससे केकई को आत्म ग्लानि से अपने कुकृत्यों के लिए नरक यातना आजन्म भोगना पड़ा।

(५६)

हम त सुनीले सखी राम जी पहुँनवा,
होत बिहाने चलि जइहें हो लाल।
नीको ना लागे सखि अँगना दुअरवा से,
निकहू ना लागे भवनवा हो लाल ॥१॥
हमनीका जनतीं जे राम निर मोहिआ,
त हमहू किरिअवा खिअइतीं हो लाल।
नेहिया लगा के मोरा मोहले सजनवा,
से देखहूँ के भइले सपनवा हो लाल ॥२॥
जो हम जनितीं जे राम जइहें चोरिया,
सपनो सनेहिया ना जोरितों हो लाल।
कहत महेन्दर मोहले सबके परनवा से,
नेहिया लगा के दागा कइले हो लाल ॥३॥

जनक पुर की सखियाँ रो रो कर आपस में कह रही हैं—'हे सखी ! मैं सुनती हूँ। रामजी अतिथि हैं। कल प्रातःकाल ही वे यहाँ से चले जायंगे।'

हे सखी ! मुझे आँगन द्वार कुछ अच्छा नहीं लगता, अर्थात् घर का काम-काज करना कुछ नहीं सुहाता। यह घर आज काटने दौड़ता है। यदि हम जानतीं कि राम जी निर्मोही हैं तो हम पहले ही उनसे प्रेम की शपथ खिला लेतीं। हा, नेह लगाकर सॉजन ने मुझे मोह लिया। अब स्वप्न में भी उनका दर्शन दुर्लभ हो गया या उनका देखना अब स्वप्न हो गया ॥१,२॥

हे सखी ! जो हम जानतीं कि राम चोरी जायँगे तो स्वप्न में भी उनसे स्नेह नहीं लगातीं। महेंद्र मिश्र कहते हैं कि राम ने हम सबका प्राण मोह लिया। उन्होने नेह लगा कर दगा दिया ॥३॥

इस गीत के निर्माण का समय १५-२० वर्ष-पूर्व का है। पाठक देखें कि आये दिन भी कितना सरसगीत भोजपुरी में बन रहे है। महेंद्र मिश्र छपरा जिले के रहने वाले हैं। ये बड़े रसिक जीव हैं। इनको जाली नोट बनाने में सजा भी हो गयी थी। इनके रचे सैकड़ों गीत कई जिलों में गाये जाते हैं। इनके गीतों क तीन सग्रह भी छपे हैं।

(५७)

जोगिनिया बनि हम आइबि हो।
हमरा बलमू जी के कारी कारी जुलफी,
ककही पर ककही चलाइबि हो ॥१॥
हमरा बलमू जी के बड़े बड़े अखिया,
सुरुमा पर सुरुमा लगाइबि हो ॥२॥
हमरे बलमू जी के छोटे छोटे दॅतवा,
मिरवा पर मिरवा चमाइबि हो ॥३॥
हमरे बलमू जी के गोरे बदनवा,
कुरता पर कुरता पेन्हाइबि हो ॥४॥
हमरा बलमु जी के पतरी कमरिया,
धोतिया पर धोतिया पेन्हाइबि हो ॥५॥
हमरा बलमु जी के छोटे छोटे गोड़वा,

पनही पर पनही पेन्हाइबि हो ॥६॥
जोगिनिया बनि हम आइबि हो ॥

इस गीत में श्लेष है। एक पक्ष मे हमे प्रेम विह्वला विरहिणी के प्रेमोद्गार मिलते हैं तो दूसरे पक्ष मे इसी को अनमेल विवाह की बनी हुई प्रौढ़ा नायिका की व्यंग्योक्ति भी कह सकते है। अपने छोटे पति के प्रति खीझ खीझ कर वह यह व्यंग गीत गा रही है।

(५८)

बाबा पइसा के लोभे बिश्राह कइले।
बारह बरिसवा के हमरी उमिरिया,
अस्सी बरिसवा के वर खोजले ॥
मिलहु सखिया रे मिलहु सलेहरि,
मिलि जुलि चलीं जा वर देखले ॥
दाँत जे टूटि गइले चाम जे झूलताड़े,
मथवा के वरवा चँवर भइले ॥
सोरहो सिंगार करिके चटलों अटरिया,
ऊपरा से बुढवा बोलावे लगलें ॥
बाबा पइसा के लोभे बिश्राह कइले ॥

अर्थ सरल है।

राग कहँरुआ

(१)

जब हम रहलीं रे लरिका गदेलवा हाय रे सजनी, पिया मागे
गवनवा कि रे सजनी ॥१॥
जब हम भइलीं रे अलप वएसवा, कि हाय रे सजनी पिया गइले
परदेसवा कि रे सजनी ॥२॥
बरह बरसि पर राजा मोर अइले, कि हाय रे सजनी, बइठे
दरवजवा कि रे सजनी ॥३॥

कोलियन झँकलीं, खिरिकिअन झकलीं, कि हाय रे सजनी,
पिया बहुते नदनवा कि रे सजनी ॥४॥
बाबा के चोरिये चोरिये हजमा पठवलीं, कि हायरे सजनी,
अम्मा भेजे धेनु गइया कि रे सजनी ॥५॥
दिनवा पिअइवों रे दुधवा मरीचिया, कि हाय रे सजनी,
रतिया तेल अवटनवा, कि रे सजनी ॥६॥
अवटि चोवटि छैला कइलों रे सेअनवा, कि हाय रे सजनी,
मागे अलप जोबनवा कि रे सजनी ॥७॥

"जब मै बहुत छोटी बालिका थी तब, हे सजनी, हमारे प्रीतम, गवना माँगने लगे। पर अब जब मैं बालिका से बाला हुई तो हे सखी पिया परदेश चले गये।" ॥१,२॥

"हाय, हे सजनी बारह वर्ष पर मेरे राजा विदेश से लौटे किन्तु बाहर की डेवढ़ी के दरवाजे पर बैठ रहे।" ॥३॥

"हाय, हे सखी, मैं ने जब गली और खिड़की से झाक कर उन्हें देखा तो हमारे पति बहुत नादान दिखाई पड़े।" ॥४॥

"हे सखी, मैने अपने स्वसुर से छिपा कर नाई को पत्र देकर मायके भेजा तो अम्मा ने धेनु गाय भेज दी।' ॥५॥

"हाय रे सखी, दिन में मैं उन्हें दूध और मिर्च पिलाने लगी और रात्रि में तेल का मालिश करने लगी।" ॥६॥

'तेल लगा कर और खिला पिला कर जब मैने प्रियतम को पुष्ट किया तब वे हमारे छोटे जोबन को माँगने लगे।" ॥७॥

(२)

चइत मास घन भइले बदरा, पिया गइले परदेसवा, जोहबि बटिया ॥
जाऊ जाउ रे चिरइया उड़ि जाउ देसवा,
ओहि देसवा में जाके बजइहे बसिया ॥१॥
ओहि देसवा में जाके बजइहे बसिया,
तोर बसिया सबद सुनि अइहें रसिया ॥२॥

उठु उठु रे ननदिया धराउ बतिया,
अपना भैया के जाके निहारु छबिया ॥३॥
मों अलबेली मोर सैयां रसिया,
रस मागे बलमुआ आधे रतिया ॥४॥

"चैत मास आया और आकाश में बादल घने होने लगे। मेरे पति परदेश गये और मैं उनकी बाट जोहने लगी।"

"हे पपीहा, हे कोयल तुम यहाँ से चली जाओ, उड़कर उसी देश में पहुँच जाओ जहाँ हमारे पति हैं। और वहाँ जाकर तुम अपनी सुरीली तान सुनाओ।" ॥१॥

"तुम्हारी तान को सुनकर हमारे रसिक अवश्य चले आवेंगे।" ॥२॥

"हे ननद जी उठो, उठो। अपने घर में दीपक जलाओ। अपने भाई की शोभा देखो।" ॥३॥

"मैं अलबेली हूँ। हमारे बालम रसिक हैं। इस आधी रात को ही मुझसे रस माँगते हैं।"

वियोग का वर्णन मार्मिकता से निभाया गया है। अन्त में संयोग भी हो गया है।

(२)

मो मतवालिन होइ जइबों।
चनन छेइअ छेइ भठिआ वोझइबों,
आरे धीरे धीरे अँचिया लगइबों ॥१॥ मो मतवालिन०॥
सेर भर महुआ सवा सेर पानी,
आरे धीरे धीरे महुआ चुअइबो ॥ मो मतवालिन०॥
अपने मो पिअबों सैंया के पिअइबों।
अरे बिछुरल प्रेम जगइबों ॥ मो मतवालिन, होइ जइबों।

'(अरे हे सखी प्रीतम आने वाले हैं) मैं मतवाली हो जाऊँगी। चन्दन कटाकर भट्ठी बोझाऊँगी और धीरे धीरे उसमें आँच लगाऊँगी। हे सखी ! मैं मतवाली हो जाऊँगी।' ॥१॥

'एक सेर महुआ और सवासेर उसमें पानी डालूँगी और धीरे धीरे शराब निकालूँगी। हे सखी! प्रियतम आने वाले हैं। मैं मतवाली हो जाऊँगी।

'उस शराब को मैं पीऊँगी और सैंया को भी पिलाऊँगी और तब बिछुड़े हुए प्रेम को जगाऊँगी। हे सखी प्रियतम आने वाले हैं। मै मतवाली बनूँगी।'

कितना सुन्दर प्रियतम मिलन की तैयारी है। विरह के सारे अभाव एक ही रात में पूरे करने की तैयारी है।

(४)

आरे बाजत आवे ला ढोल के ढमाका,
से नाचत रे आवे ला ऊ बिधनी कहरवा नु हो ॥१॥
आरे अपना महलिया से रनिया निरेखे,
से कतेक नाच ना उ जे नाचे ला कहरवा हो ॥२॥
आरे अपना अटरिया से रजावा निरेखे,
कँहरवा सँगवा ना रनिया उढरलि जाली हो ॥३॥
आरे एक कोस गइली दुसर कोस गइली,
लागी रे गइले ना उ जे मधुरी पिअसिया हो ॥४॥
गोड़ तोर लागी ला कहरा के छोकडवा,
पगरिया वेचि के ना मोहिके पनिया पिआव हो ॥५॥
गोड़ तोर लागी ला कहरा के छोकड़वा,
पगरिया वेचि के ना मोहि के लडुआ खिआव हो ॥६॥
गोड़ तोरा लागी ला रानी ठकुरनिया,
गहनवा वेचि के ना मोहि के मधुआ पिआव हो ॥७॥
एक कोस गइली दूसर कोस गइली,
सिखावे लगले ना कहारा अपनी अकिलिया हो ॥८॥
अरे, खोलहू हो राजवेटी सोनवा त रूपवा,
पहिर रे लेहु न रनिया कँसवा पितरवा हो ॥९॥

(सुन्दरी ने बोली सुनते सुनते और प्रियतम को मन में चिन्ता करते करते, "आँगन बहार डाला। उसका कूड़ा उठा कर दरवाजे के बाहर फेंक दिया। और तब घड़ा लेकर वह स्त्री पानी भरने चली।" ॥२॥

"घड़ा भर भर कर बड़ी मिहनत से उसने तीर के अरार पर उन्हें चढ़ाया। पर अब वहाँ कोई ऐसा नहीं था जो घड़ों को सर पर चढ़ा दे।" ॥३॥

वह प्रतीक्षा करने लगी इसी बीच "घोड़े पर चढ़े हुए उसका हंस राज नामक देवर सामने आ गया। उसने उससे मिन्नत की कि हे देवर, घड़े को सर पर उठा दो। ॥४॥

देवर घोड़े से उतर गया। उसने एक हाथ से तो घड़ा उठाया और दूसरे हाथ से भावज का अँचल पकड़ कर उसको जाने से रोक लिया ॥५॥

भावज के दोनों हाथ फँसे थे। उसने कहा, "अरे देवर, आँचर छोड़ दो, आँचर छोड़ दो। कोई देख लेगा तो तुम्हारे कठोर भाई से सुना देगा और तब विपत्ति आ जायेगी।" ॥६॥

तुरत उत्तर मिला, "भाई सुनेंगे तो सुनने दो भावज। मैं उनके आगे बिलकुल लड़कपन साध लूगा। वे बुरा मानेंगे तो कैसे ?" ॥७॥

भजन

॥ उधव प्रसग ॥

(१)

धरनी जेहो धनि बिरिहिनि हो, धरइ ना धीर।
बिहवल विकल बिलखि चित हो, जे दुवर सरीर ॥१॥
धरनी धीरज ना रहि हैं हो, बिनु बनवारि।
रोअत रकत के अँसुअन हो, पथ निहारि ॥२॥
धरनी पिया परवत पर हो, हिया चटत डेराइ।
कबहि के पाँव डगमग हो तब काँहा बाटे ठाउँ ॥३॥
धरनी धरकत हिया जनु हो, होखे करक करेज ॥

ढरकत भरि भरि लोचन हो पीया नहिं सेज ॥४॥
धरनी धवल धवरहर हो, चढि चढि हेर ।
आवत पियाना देखों हो, भइली अवेर ॥५॥
धरनी धिक से हो जीवन हो ऊ जाउ वोहाए ।
परदे पुरुष तर आँचर हो जे दिहल डसाए ॥६॥
धरनी धनि धनि से हो दिन हो मिलब जे नाँह ।
सग पवढ़ा सुख बिलसबि हो सिर धरिबाह ॥७॥

धरनीदास कहते हैं—कि वह विरहिणी धन्य है जिसके मन में न धैर्य्य है न धीर है जो विह्वल है विकल है और जिसका चित्त सदैव प्रेम विरह में रोया करता है । और जो विरह दुख में शरीर से दुबली हो गई है ॥१॥

वह विरहिणी धन्य है जो विना बनवारी के एक क्षण भी धैर्य धारण नहीं करती जो पथ निहार निहार कर निरन्तर रक्त के आँसू गिराती रहती है ॥२॥

धरनीदास का पति तो पर्वत पर है । इस पर्वत पर चढ़ते मन डरता है सोचता है कि यदि पाँव डगमगाया तो कहाँ मेरा ठिकाना है । फिर धरनीदास कहते हैं कि मेरा हृदय धड़का करता है । और कलेजे में टीस उठा करती है । नेत्र भर भर कर आँसू ढरा करते हैं । हा हमारा प्रीतम सेज पर नहीं है ॥३,४॥

धरनीदास धवल धौरहर पर चढ़कर खोजते हैं परन्तु प्रियतम आता हुआ दिखाई नहीं पड़ता बहुत देर हो गई है तब भी नहीं आया ॥५॥

धरनीदास कहते हैं कि उसके जीवन को धिक्कार है, वह रहे या जाय । जिसने पर पुरुष की पीठ के नीचे अपना आंचल बिछा दिया अर्थात् उसके साथ प्रेम किया ॥६॥

धरनीदास कहते हैं कि वह दिन धन्य होगा जिस दिन मैं अपने प्रियतम से मिलूँगा और उसके साथ लोटकर अपनी बाँह पर उसका सिर रख कर सुख पाऊँगा ॥७॥

(२)

सखी हो ई दुनो बालक ना बन जोग ।

कइसन हवें तोर मातु पिता हो,
कइसन हवे तोरा नगर के लोग ॥१॥
कइसे जियेले तोर मातु पिता हो,
कइसे जियेले अजोधिया के लोग ॥२॥
तुलसी दास प्रभु आस चरन के,
हरि के चरन पर होई लवलीन ॥३॥
सखी हो ई दूनो बालक ना वन जोग ॥

'हे सखी, ये दोनों बालक वन जाने लायक नहीं।"

'तुम्हारे मा बाप कैसे हैं? तुम्हारे नगर के लोग कैसे हैं कि इन दो सुकुमार बालकों को उन्होंने वन भेज दिया?' ॥१॥

'तुम्हारे मा बाप कैसे जीते है? तुम्हारी अयोध्या के लोग किस तरह प्राण धारण किए हुए हैं?' ॥२॥

'तुलसीदास कहते है कि हरि के चरण की ही आशा है। उन्हीं चरणों पर लवलीन हो जाओ।'

(३)

उमरिया हो बीति गइले प्रभु नाहीं अइले ॥
बरह बरिसि के हमरी उमरिया,
उमिरिया हो बीत गइले० ॥१॥
प्रभु जी के ढूँढ़े अजोधिया मे गइलों,
डगरिया हो भूलि गइले। प्रभु नाहीं अइले ॥२॥
प्रभु जी के ढूँढे फुलवरिया में गइलों,
फूलन अझुराइ गइलों प्रभु नाहीं अइले ॥३॥
तुलसी दास प्रभु आस चरन के
ओहि चरन लपटाइ गइलों प्रभु नाहीं अइले ॥४॥
उमरिया हो बीति गइले प्रभु नाहीं अइले ०॥

राम के विरह में सखी कह रही है।

'अरे मेरी आयु बीत चली पर प्रभु अभी तक नहीं आये। बारह वर्ष की

हमारी अवस्था है, वह भी बीत चली प्रभु नहीं आये।'

'मैं अपने प्रभुजी को ढूढने के लिए अयोध्या चली पर राह भूल गई। मै वहाँ नहीं पहुँच सकी और प्रभु जी भी नहीं आये।'

'मैं अपने स्वामी जी को ढूँढने के लिए फुलवारी में गई। वहाँ फूलों के सौंदर्य में उलझ गयी। हा हमारे प्रभु न आये।'

'तुलसीदास कहते हैं कि मुझे प्रभु के चरणों की आशा है। मैं उन्हीं चरणों से लिपट गया हूँ। मुझे तो उन्हीं की आशा है। हा वे अभी तक नहीं आये।'

(४)

वसहर घरवा के नीच दुअरिया ऐ ऊधो रामा झिलमिलि वाती।
पिया ले मैं सुतलो ऐ ऊधो रामा अँचरा डसाई ॥१॥
जौ (जौं) हम जनितो ऐ ऊधो रामा पिया जइहें चोरी,
रेशम के डोरिया ऐ ऊधो खींचि बँधवा बँधितो ॥२॥
रेशम के डोरिया ऐ रामा ऊधो टूटि फाटि जइहें
वचन के वान्हल पियवा रामा से हो कहाँ पइवों ॥३॥
(इस चरण का शुद्ध रूप भोजपुरी मे गाया जाता है)
'प्रेम क वन्हलका पिअवा जीवे सँगे जइहें ॥३॥
जवनि डगरिया ऐ ऊधो रामा पिया गइले चोरी ॥
तवनि डगरिया ऐ ऊधो रामा वगिया लगइवों ॥
वगिया का ओते ओते रामा केरा नरियर लाई (लइवों) ॥४॥
अँगना मसुरवा ऊधो रामा दुअरा भसुरवा
कइसे के वहर होखूँ रामा वाजेला नेपुरवा ॥५॥
गोड़ के नेपुरवा ऐ रामा फाड़े बाँधि लेवों
अलपा जोवनवा ऐ ऊधो हिरदय (लगइवों) ॥६॥
पात मधे पनवाँ ऐ ऊधो रामा फर मधे नरियर
तिवइ मधे राधा ऐ ऊधो रामा पुरुप मधे (कन्हइया) ॥७॥
कवले पहिरों ऐ ऊधो रामा कतले मनुभों गुनवाँ

सोने के सिधोरवा ऐ ऊधो रामा लागि गइल घुनवाँ ॥२॥
मोरा लेखे आहो ए ऊधो रामा दिनवा भइले रतिया
मोरा लेखे आहो ए ऊधो ! रामा जमुना भयावनि ॥९॥
भनहिं विद्यापति रामा (सुनहु) बृजनारी ॥
धरिजा धरहु ऐ राधा मिलिहैं मुरारी ॥१०॥

इस गीत को जी० ए० ग्रिअर्सन ने जरनल आफ रायल एशियाटि सोसाइटी ग्रेट बृटेन ऐंड आयरलैंड के नई सीरीज पृष्ठ १८८ पर उद्धृत करके य लिखा है :—

The following (quoted above) song perports to be by the celebrated Maithili poet, Bidayapat Thakur, I would draw attention as contradicting a theory put forward with some confident in the Calcutta Review by Babu Shyam Charan Gangul to the effect that the songs of this poet are not known in the Bhojpuri area. This song was written for me by a lady whose home is in Shahabad in the heart of Bhojpur.. ....The meatre is very irregular, probably owing to the fact that the song was originally written in Maithili and trans-formed in the course of centuries into Bhojpuri with-out regard to the quantities of the resultant syllables

"निम्नलिखित (ऊपर उद्धृत हो चुका है) गीत मैथिली के सुविख्यात कवि श्री विद्यापति ठाकुर का रचा हुआ है। बाबू श्यामा चरन गांगुली ने 'कलकत्ता रेव्यू' में पूर्ण विश्वास के साथ अपना जो यह मत प्रकाशित कराया है कि भोजपुरी भाषी प्रदेशों में इन विद्यापति ठाकुर के गीत ज्ञात नहीं हैं उसके प्रतिवाद स्वरूप मैं इस गीत की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करूँगा इस गीत को एक महिला ने जिसका घर शाहाबाद जिला में जो भोजपुरी का

गीत की त्रुटि नहीं पाठ की त्रुटि है। इस गीत का शुद्ध पाठ उसी गीत के साथ कोष्ठ में लिख दिया गया है। उसमें यह दोष नहीं है।

यह गीत १७-१२ के विश्राम से २६ मात्रा का गीत है जिसका निर्वाह आद्योपान्त ठीक तरह से हुआ है। कहीं कहीं एक आध मात्रा की कमी बेशी है सो वह लिखने वाले की गलती और इतने काल से स्मृति रूप में चले आते रहने के कारण स्वाभाविक है। हमको हर गीत के पाठ प्रायः गलत मिले। लिपि भी अधिकाश में सुधारनी पड़ी। तो जब अशिक्षित स्त्रियों के कण्ठ से शताब्दियों से ये गीत गाए जाते रहे और उनका लिखित पाठ कहीं नहीं था तब उनके रूप में—शब्द में गड़बड़ी थोड़ी बहुत हो जानी स्वाभाविक है। और वह क्षम्य भी है।

इस पक्ष की तीसरी दलील उनकी यह है कि इसके 'भलहि, सुनू', आदि शब्द भोजपुरी के नहीं हैं। यह धारणा भी उनको गलत है। क्रिया में 'हि' प्रत्यय लगाकर काल बोध कराने की प्रथा भोजपुरी में आज भी है और पहले भी थी। 'गावहि गीत चलावहिं वान बिनु धनुही ब्रिनु तीर कमान' की पहेली विशुद्ध भोजपुरी है। इसमें 'हि' का प्रयोग हुआ है। वैसे ही 'सुनु' का प्रयोग भी प्रस्तुत पुस्तक के गीतों में अधिक मिलेगा। धरनीदास जी के शब्द प्रकाश के भोजपुरी गीतों में भी ये प्रयोग हुए हैं। 'सुनी', 'सुन', 'सुनु' 'सुनू' आदि प्रयोग आज भी भोजपुरी भाषियों द्वारा नित्य प्रयोग में आते हैं। ये चारों रूप केवल 'सुनो' शब्द के पर्याय वाची हैं।

फिर जब यह मानी हुई बात है कि विद्यापति जी भोजपुरी प्रदेश के सरहद पर रहते थे। पर तब भी वे बगला मे लिखते थे जो उनके निवास स्थान की बोली नहीं थी बल्कि वहाँ से बहुत दूर के प्रदेश में बोली जाने वाली भाषा थी तब यही क्यों न माना जायगा कि भोजपुरी जो उनके निकट की भाषा थी और जिसमे उनका नित्य का ससर्ग था उसमें भी वे अपनी रचना किये थे। अन्य सन्त कवियों की तरह विद्यापति जी भी महान सन्त कवि थे। उनको अपना सन्देश हर भाषा भाषी को सुनाना था। जिस भाषा भाषी से उनका संसर्ग हुआ उसको उसी की भाषा में उन्होंने अपना सन्देश सुनाया। प्रस्तुत पुस्तक के

गीत न० ४, ६, ७, बारह मासा, विद्यापति जी के भोजपुरी गीत है। प्रमाण के रूप में पाठक देख सकेंगे।

हे ऊधो बाँस घर का नीचा दरवाजा है उसमे झिलमिल झिलमिल क्षीण काय दीप जल रहा है।

उसी घर में प्रियतम को लेकर अपना अञ्चल बिछाकर मैं सोई। हे ऊधो! जो मैं जानती कि मेरे प्रियतम चोरी चले जायँगे तो मैं प्रियतम को रेशम की डोरी से खींच कर बाध रखती ॥१,२॥

हे ऊधो! रेशम की डोरी तो टूट जायगी पर प्रेम की डोरी का बाँधा हुआ प्रियतम तो प्राण के साथ ही जायगा। वह कैसे भाग सकेगा? ॥३॥

जिस रास्ता से हे ऊधो! हमारे प्रिययम चोरी गये। हे ऊधो! मैं उसी रास्ते पर बाग लगाउँगी और बाग के किनारे किनारे केला और नारियल के वृक्ष लगाऊँगी। पर हे ऊधो! मेरे आँगन में तो मेरे ससुर तथा दरवाजे पर मेरे जेठ रहते हैं। मै उस बाग को देखने के लिए घर से बाहर होऊँ तो किस तरह होऊं ऐसा करते मेरा नूपुर बजने लगता है ।४, ५॥

हे ऊधो, पैर के पायजेब को तो मैं अञ्चल में बाँध लूँगी और अपने छोटे छोटे जोबन को हृदय में लगा लूँगी और प्रियतम की स्मृति में लगाये हुए बाग को देखने चली जाऊँगी ॥६॥

पत्तों मे पान का पत्ता सुन्दर होता है और फलों में नारियल फल तथा स्त्रियों में राधा और पुरुष में कान्ह सुन्दर और श्रेष्ठ हैं ॥७॥

हे ऊधो! कहाँ तक मै वस्त्र पहनूँ और कहाँ तक गुण सीखूँ और समझूँ? मेरे सोने के सिधोरे में तो घुन लग गया अर्थात् मेरा सुहाग क्षीण होने लगा ॥८॥

हे ऊधो! मेरे लिए तो दिन रात हो रहा है और हे ऊधो! यह सामने की जमुना मेरे लिए भयानक लग रही है। विद्यापति जी कहते हैं कि हे व्रजनारी सुनो! हे राधा! धीरज धरो तुमको कृष्ण मुरारी मिलेंगे।

इस गीत पर टिप्पणी लिखना सूर्य को दीपक दिखाना है। पाठक स्वयं इस धारा में प्रवाहित होकर इसका स्वाद लें।

विद्यापति जी का हास्य रस भी भोजपुरी में मिला है जिसका उद्धरण मैंने अपने 'भोजपुरी ग्राम गीत में गौरी का स्थान' शीर्षक लेख में बरसों पूर्व दिया था। जो का० ना० प्र० पत्रिका में छपा था पृ० २७० में तिथि नहीं स्मरण है। गीत यों हैं :—

देखि हम अइलीं गौरा तोर अँगना।
खेती ना पथारी सिव के गुजर एको ना।
मँगनी के आस बाटे बरीसों दिना॥
पइँच उधार लेवे गइलों अँगना।
सम्पति देखलों एक भाँग घोटना॥
भनहिं विदापति सुनु ऊमना।
सकट हरन करु अइलों सरना॥

(५)

भरत भाई! लवटि जा नु घर के॥
भूखन के भइआ भोजन करइह,
नंगन के पहिरा दीह चीर॥१॥
अवरू परनाम केकई जी से कहीह,
अम्मा कोसिला के धरा दीह धीर॥२॥
राम गइले बन के भरत गइले घरके,
आरे, भरत भाई! लवटि गइले घरके॥३॥
तुलसीदास प्रभु आस चरन के,
हरि के चरन पर होइ लवलीन॥
भरत भाई लवटि गइले घरके॥४॥

"हे भरत भाई, आप घर को लौट जाओ। हे भाई, वहाँ भूखों को भोजन देना और नंगों को वस्त्र पहनाना। और मा केकई से मेरा प्रणाम कहना और मा कौशल्या को धैर्य बधाना।" ॥१,२॥

"राम वन को गये और भरत अयोध्या गये। अरे! भरत घर को लौट गये।" ॥३॥

"तुलसीदास जी कहते हैं कि मुझे प्रभु की आशा है भरत हरि के चरणों में लवलीन होकर घर को लौट गये।" ॥४॥

(६)

साम के सँदेसा ऊधो पाती लेके अइलें जी ॥
गोकुला से पाती अइले छाती से लगवलीं जी।
घुँघुटे के नीचे नीचे उधो से बचवलीं जी ॥१॥ स्याम के० ॥
पतिया लिखत उनका लाजो न लागे जी।
अपना पवरुसवा के भसम कइमे कइलीं जी ॥२॥ स्याम के० ।

"हे सखी, श्याम के संदेश का पत्र लेकर उधो महाराज आये। मैंने गोकुल से आये उस पत्र को छाती से लगाया और अपने घूघट के नीचे से देखती हुई उसे ऊधो जी को देकर पढ़वाया।" ॥१॥

"हे सखी! सन्देशा की पाती उधो जी लेकर आये।"

"हे सखी, पत्र लिखते समय श्याम को लज्जा नहीं आई? वे वहाँ कुब्जा के सग बसकर अपने पौरुष को नष्ट कर रहे हैं।" ॥२॥

(७)

जरा आजा मोहन तू मोरी गली ॥
दरसन करबि नजर भरि देखबि, फेरि मधुबन के जाइबि चली ॥१॥
जरा आ जा तू मोहन! तू मोरी गली ॥
हीरालाल नवछावर करबों, अरे अपना गला के चम्पा कली ॥
जरा आ जा० ॥
सूर स्याम प्रभु आस चरन के, हरि के चरन में ध्यान धरी ॥
जरा आ जा० ॥

"हे मोहन तुम मेरी गली में आजाओ। मै तुम्हारा दर्शन करूँगी, एक दृष्टि देखकर फिर मधुबन को चली जाऊँगी।"

"हे श्याम मै तुम्हारी मोहिनी मूर्ति पर अपने गले की चम्पक कली और हीरा लाल न्योछावर करूँगी।"

"सूरदास जी कहते हैं कि मेरी आशा प्रभु के चरणों तक ही सीमित

है। मैं हरि के चरणों पर ही ध्यान लगाये रहता हूँ।"

(८)

अब ना अवध में रहबों अवधा लगेला उदास।
आगा आगा राम चलेले, पाछे लछुमन भाई ॥१॥
अब ना अवध० ॥
हिरि फिरि जनकी घरवा निरेखे, मन्दिरा लागेला उदास ॥२॥
जहाँ जहाँ राम करेले दतुनिया, हम गेड़ुआ ले ले ठाढ़ ॥
अब ना अवध० ॥
जहाँ जहाँ राम के भूख लगेला, हम जेवना लेले ठाढ ॥३॥
अब ना अवध० ॥
जहाँ जहाँ राम के पिअसिया लगले, हम जलवा ले ले ठाढ ॥
अब ना अवध में० ॥४॥
जहाँ जहाँ राम के अमल लागे ला, हम बिरवा ले ले ठाढ ॥
अब ना अवध में रहबों० ॥
जहाँ जहाँ राम के निनिया लागे, हम सेजिया लेले ठाढ ॥५॥
अब ना अवध में रहबों० ॥

सीता कह रही हैं—'अब अवध में नहीं रहूँगी, अवध अच्छा नहीं लगता उदास लग रहा है। आगे आगे राम चले, उनके पीछे लषमण गये और दोनों के पीछे जानकी फिर फिर कर घर देखती जा रही थीं। यह सोच सोचकर कि मन्दिर उदास लग रहा है। अब अवध में नहीं रहूँगी।' ॥१,२॥

'जहाँ जहाँ राम मुखारी करेंगे मैं गेडुए में पानी लेकर वहाँ खड़ी रहूँगी। जहा जहा वे स्नान करेंगे मैं धोती लिए वहीं प्रस्तुत रहूँगी। जब और जहा राम को भूख लगेगी मै भोजन लिये वहां उसी क्षण पहुँच जाऊँगी। और जहां उन्हें प्यास लगेगी मै वहीं जल लेकर खड़ी रहूँगी। मैं अवध में नहीं रहूँगी। अब अवध उदास लगता है।' ३,४॥

'जब राम को व्यसन की आवश्यकता होगी मैं पान का बीड़ा दूँगी। और जहा उन्हें नींद मालूम होगी वहीं मै सोने के लिए सेज डसा कर प्रस्तुत

कर दूंगी। मैं अवध में नहीं रहूंगी। अवध उदास लगता है।' ॥५॥

(६)

हरि कहाँ गइले बिसराइ के ए ऊधो ॥
घर ना सोहाला भवनवा ए ऊधो ! आरे जब सुधि आवे हरि के ए ऊधो ॥१॥
हरि कहाँ गइले० ॥
जहिया से हरि मोरा गइले मधुबनवा छने छने बरेला करेजवा ए ऊधो ॥२॥
हरि कहाँ गइले० ॥
अपने त जाइ मधुबनवाँ बइठले, आरे हमरी सुधिया बिसरवले ए ऊधो ॥३॥
हरि कहाँ गइले० ॥
नदिया किनारे कान्हा गइया चरवलें, आरे बँसिया बजावें ओठवा धइले ए ऊधो ॥
हरि कहाँ गइले० ॥४॥
सूर स्याम प्रभु तुमरे दास के, हरि के चरनवा के आस ए ऊधो ॥५॥
हरि कहाँ गइले० ॥

गोपी विरह में व्याकुल होकर ऊधो से पूछ रही हैं। 'हे ऊधो, हरि हमें भूल कर कहाँ चले गये ? हे ऊधो जब हरि की सुधि आती है तब घर और भवन कुछ नहीं सुहाता। हे ऊधो, बताओ हमें बिसार कर कान्ह कहाँ गये ?' ॥१॥

'हे ऊधो, जिस दिन हमारे हरि गये उस दिन से हमारा हृदय क्षण प्रति क्षण जला करता है। बताओ हमें भूलकर श्याम कहाँ चले गए ?' ॥२॥

हे ऊधो, हरि जी तो आप मधु बन में जा बैठे और हमारी सुधि बिलकुल भूल गये। बताओ वे कहाँ गये। ॥३॥

कृष्ण नदी के किनारे अपने सुन्दर होंठों पर वंशी रखकर उसे बजाते थे आज, हे ऊधो, हमको बिसार कर वे कहाँ चले गये ? बताओ। ॥४॥

'सूरदास कहते हैं कि गोपी कहती हैं कि हे ऊधो मुझे उनके दर्शन प्राप्त करने के लिये उनके चरणों की कृपा को छोड़ कर और कोई आशा नहीं है।'' ॥५॥

(१०)

कान्हा बिराजें आजु कँहवाँ बतला द ए ऊधो !
जो हम होइतों जल के मछरिया,
कान्हा करिते असनान चरन धोइ पिअतीं ए ऊधो ॥१॥
जो हम होइतीं रामा मोतियन के माला,
कान्हा पहिरिते रे हार त छतिये चमकतीं ए ऊधो ! ॥२॥
जो हम होइतीं रामा मोरवा के पँखिया,
कान्हा जे करिते सिंगार मुकुट पर सोहतीं ए ऊधो ॥३॥
जो हम होइती रामा बास के बँसुरिया,
कान्हा बजइतें मधुर सुर भरितीं ए ऊधो ॥४॥
सूरदास प्रभु आस चरन के,
हरि चरन पर ध्यान चरन चित लइतीं ए ऊधो ॥५॥
कान्हा बिराजें आजु कहवाँ बतला द ए ऊधो ॥

"हे ऊधो, आज कृष्ण कहाँ विराज रहे हैं यह बतला दो।"

"अगर आज मैं जल की मछली होती तो, हे ऊधो, जहाँ कृष्ण स्नान करते होते वहाँ जाकर उनके चरणों को धोकर पीती।" ॥१॥

"यदि मैं मोती की माला होती तो कृष्ण के गले का हार बनती और हे ऊधो ! उनकी छाती पर सदा चमका करती।" ॥२॥

"मैं यदि मोर की पाँख होती, हे ऊधो ! तो वे जब शृङ्गार करते तो उनके मुकुट पर शोभा देती" ॥३॥

"और अगर मेरा भाग्य बाँस की बाँसुरी बनने का होता तो, हे ऊधो ! कृष्ण अपने होठों पर रखकर जब बजाते मैं उसमें मधुर स्वर भरती।" ॥४॥

"सूरदास कहते हैं कि गोपी कह रही हैं कि मुझे एक मात्र कृष्ण के चरणों की ही आशा है। उन्हीं का निरन्तर ध्यान बना रहता है। हे उधो ! अब एक यही कामना है कि मेरा चित उसी में लीन हो जाता।" ॥५॥

"हे उधो, आज कृष्ण कहाँ विराज रहे हैं ?"

यह सूरदास का भजन भोजपुरी में है। इसकी सुन्दरता की क्या

प्रशंसा की जाय। गोपी की कामना कितनी सुन्दर, सुकुमार और साथ ही स्वाभाविक भी है। सूर और तुलसी तो जन हित की प्रेरणा से ही कविता लिखते थे। इसलिये जब उन्होंने देखा कि भोजपुरी को बोलने वाली जनता की संख्या भारत की जन-संख्या में गणना के योग्य है तब उन्होंने उस भाषा में भी कृष्ण और राम भक्ति का प्रचार करना उचित समझा और किया भी। और जो लिखा वह कितना सुन्दर लिखा।

(११)

ब्याकुल कुञ्जबन ढूढ़े सिया रामा।
ढूढ़ें सिया रामा ढूढे भगवाना, ब्याकुल कुज वन ढूढे सियारामा ॥१॥
हम तोसे पूछी ला चकवा चकइया, यहि दहे देखल सिया जी के जात ॥२॥
सोने के मिरिगा मारि हम त लवटलीं—सिया गइली कुटिया भुलाय ॥३॥
ब्याकुल कुज वन ढूढे सिया रामा ॥

ब्याकुल होकर राम सीता को कुंज वन में सर्वत्र ढूँढ़ रहे हैं। भगवान राम ब्याकुल होकर कुंज वन में सीता को ढूँढ़ रहे हैं।

"उन्होंने चकवा चकई को दह में विहार करते देखकर पूछा—'हे चकवा चकई मैं तुमसे पूछता हूँ इस दह में तुमने सीता को कहीं जाते देखा। सोने का मृग मारकर हम जब लौट आये तब सीता कुटी से गायब हो गईं। ब्याकुल होकर राम सीता जी को सर्वत्र कुज वन में ढूँढ़ रहे हैं।"

(१२)

अइसन हलिया हमार उधो साम बिना।
साम बिना दिनानाथ बिना अइसन हलिया हमार उधो साम बिना ॥१॥
धरती सुखली पिरिथिवी सुखली, बिनु जलवा बिनु पानी ॥२॥
गगा जमुनवा ऊधो सुखली, जइसे बिरिजवा के नारी ॥३॥ अइसन०
पातर कुँइयाँ पतर पनिहारिन, पातर गिरिवरधारी ॥४॥
बान्हल घोड़वा घासिना पइहें, कब दोना साम करीहें असवारी ॥५॥
पतिया लिखत मोर छतिया फाटे अग अग सहराई ॥६॥
कहि पठओ ओहा कूबरी से, काहे कान्ह राखे बिलमाई ॥७॥

सूरदास प्रभु आस चरन के, हरि के चरन गुनगाई ॥८॥
अइसन हलिया हमार ऊधो साम बिना ।

गोपी कह रही है । "हे ऊधो श्याम के बिना हमारी ऐसी हालत है । दीनानाथ के न रहने से हमारी दशा ऐसी हो गई है ।"

"धरातल और पृथ्वी जल के बिना सूख रहे हैं । गंगा और जमुना भी पानी के अभाव से इसी तरह सूख गई । जिस तरह ब्रज की नारी कृष्ण के प्रेमजल के बिना सूख रही हैं ।"

"पतला कूआँ है । पनिहारिन भी पतली ही है । और हे ऊधो, कृष्ण भी पतले ही ठहरे । बँधे हुए घोड़े घास क्यों पावेंगे ? कौन ठिकाना कब कृष्ण उन पर सवारी करेंगे ? अर्थात् यह शरीर अब क्यों खिला पिला कर पोसा जाय ? कृष्ण के लिये इसको जिलाना था सो वे आवेंगे या नहीं इसका कुछ ठिकाना नहीं है ।"

"हे ऊधो, पत्र लिखते मेरी छाती फटने लगती है अंग अंग सिहरने लगता है । उस कूबरी से कहला भेजो कि क्यों उसने हमारे कान्ह को बिलमा रखा है । क्यों नहीं आने देती ?"

'सूरदास कहते हैं कि मुझे प्रभु के चरणों की आशा है । मैं उनके चरणों के गुण गाता हूँ ।'

ऊपर के चरण में जो गोपी ने कहा 'पातर कुइया पतर पनिहारिन, पातर गिरिवर धारी ।' वह कितना गम्भीर अर्थ रखता है । किस तरह व्याज से अपने प्रेम की दशा को राधा ने वर्णन किया है । प्रेम का कूप बहुत पतला है । उससे प्रेमजल भरने वाली पनिहारिन अर्थात वह भी पुष्ट नहीं कि उस पतरे और गहरे प्रेम कूप से प्रेम का घड़ा भरकर खींच ले । अब रहे कृष्ण सो उनकी दशा तो बड़ी ही डाँवाडोल हो रही है । वे भी मन के बड़े पतले हैं । मथुरा जाकर कूबरी से लुभा गये । अब किस तरह यह प्रेम-प्रण पूरा हो यही समझ में नहीं आता । कितना बड़ा भाव छोटे से चरण में रख दिया । फिर सूर न ठहरे ।

(१३)

ऊधो हो हरि जी प्रान सनेही ।
प्रान-सनेही, प्रान काढि लीहलें ॥१॥
आप जाइ दुअरिका मे बइठलीं, मोर सुधि बिसरवलीं ॥२॥
आप चलि गइलें दुअरिका बिरजली, कबहीं के नाही साथी भइलीं ॥३॥
ऊधो हरि प्रान काढि लिहलीं०॥
जौं देखलीं ओही कोप-मडप में, तब ही से साथी भइलीं ॥४॥
सूर हौं दास प्रभु आस चरन के, हरि जी के भइलीं दासी ॥५॥
ऊधो हो, हरिजी प्रान सनेही ॥

राधा, ऊधो को उलाहना दे रही हैं। 'हे ऊधो, हरिजी प्राणों के, प्रेमी हैं। वे प्राण के प्रेमी हैं, मुझे छोड़कर तो उन्होंने मेरे प्राण को मेरे शरीर से निकाल लिया।' ॥१॥

'आप तो जाकर द्वारिका में बैठ रहे और मेरी सुधि भुला दी। द्वारिका आप चले गए और वहीं कुबजा और रुक्मिणी के पास बैठ गए अर्थात् जिस तरह से रखेलिनों को पुरुष बैठा लेते हैं। उसी तरह रुक्मिणी ने कृष्ण को अपने यहाँ बैठा लिया। बैठना में यहाँ इसी अर्थ को बोध करा कर राधा भक्त ऊधो के हृदय पर चोट करना चाहती हैं और कहना चाहती है कि तुम जो कृष्ण के प्रेम पर इतराये हुए हो वह तुम्हें भी मेरी ही तरह नष्ट कर देंगे। हे ऊधो, कृष्ण कभी भी साथ देने वाले व्यक्ति नहीं रहे। आज वे मेरी सुधि क्या लेंगे?' ॥२॥

'हे ऊधो, उन्होंने मेरा प्राण निकाल लिया' पाठक, ध्यान दें, 'कबही के ना साथी भइले' और 'ऊधो, ऊ प्रान काढ़ि लिहले' पर कहें तो कितनी मर्मान्तक पीड़ा किस बेबसी और उलाहना के साथ इस छोटी सी मीठी और सुन्दर पदावली में व्यक्त की गई है ॥३॥

'मैंने उनको उसी कोप मण्डप में गोवर्धन पर्वत को जब उन्होंने क्रोध करके उठा लिया था तब, देखा था। और तभी से मैं उनकी सहचरी हो गई।' ॥४॥

'सूरदास जी कहते है कि मुझे तो प्रभु के चरणों की ही आशा है पर

राधा बिलख बिलख कर कह रही हैं 'हे ऊधो उसी गोवर्धन काण्ड से मैं हरि जी की दासी हो गई। हे ऊधो (मैं सच कहती हूँ) हरि मेरे प्राण के प्रेमी मेरे प्रेमी नहीं।' 'प्राण के प्रेमी' श्लेष में हैं।'॥२॥

एक पक्ष का अर्थ है कि वे मेरा प्राण लेकर मुझे मार रहे हैं। दूसरा अर्थ है कृष्ण शरीर के द्वारा किए गए बाह्य उपचारों से प्रसन्न नहीं होते उनको तो प्रसन्नता तब होती है जब कोई उनको अपने प्राण पण से प्रेम करे

(१४)

मन के मोह ना छूटे ए ऊधो ॥
एक समय हरि हमरा घर अइले, हम दही महत रहलीं ॥१॥
हम अभिमानी अरबस कहलीं, चूपे कान्ह चलि गइले ॥२॥
मथुरा खोजलीं गोकुला खोजलीं, पात पात बिरिना बन खोजलीं ॥३॥
कान्हा कहाँदो छपित होइ गइले !
मन के मोह ना छूटे ए ऊधो ॥
चलत चलत हम गइलों कदम तर, पाँव पर धूरि निरखले ॥४॥
खोलि पितम्बर धूरि झारि दिहले ऊमनवा का भइले ए ऊधो ॥५॥
एहि पार मथुरा ओहि पार गोकुला, बिचवा से जमुना बहे ॥६॥
अपने त कान्हा पार उतरले हमरा से कछुना कहे ॥७॥

राधा कहती है:—"हे ऊधो, मेरे मन का मोह नहीं छूटता।"

"एक समय हरि हमारे घर आये मैं बैठी हुई दही मथ रही थी। अभिमान वश मैं ने अरवस उनको किया उनकी ओर उदास रही मैंने नहीं जाना कान्ह कब चुपके से चले गये।"॥१,२॥

"मैंने (व्याकुल होकर) उनकी खोज मथुरा में की गोकुल में भी सब कहीं उन्हे ढूँढा और तब वृन्दावन के हर कुंज के पात को छान डाला पर न मालूम कृष्ण कहाँ लुप्त हो गये, मुझे कहीं नहीं मिले। हे ऊधो, मेरे मन का यही मोह नहीं छूटता।"॥३॥

चलते चलते मैं उस केलि कदम्ब के नीचे पहुँची तो मेरे पाँवों में धूल लग गई थी और मैं थक गई थी। प्यारे कृष्ण ने उसे देखा ने [illegible]

पिताम्बर खोल कर सामने आ उस धूल को झारने लगे। हे ऊधो, कृष्ण का वह मन हाय! अब क्या हो गया ?"॥४,५॥

"इस पार मथुरा है। उस पार गोकुल है। बीच से यमुना बहती है। आप तो कान्ह स्वयं पार उतर गये पर उन्होंने मुझको कुछ नहीं कहा" कैसे पार आना। इस चरण में कितनी वेदना भरी गई है। कृष्ण मुझे निराधार नदी के इसी पार छोड़ कर आप नदी पार कर गये। मै इस काली यमुना को अर्थात् काले ससार को कैसे पार करके गोलोक में उनसे मिलूँ। मुझसे उन्होंने मथुरा, मृत्यु लोक में प्रेम किया था, मेरे साथी बने थे और मुझको यहीं मृत्यु लोक में ही छोड़ कर और बिना कुछ उपाय बताये कि मैं किस तरह पार जाऊं यमुना को पार करके गोकुल गोलोक में चले गये। हाय, ऊधो जी, मेरे मन का यह मोह नहीं छूटता। कितना सुन्दर विरह वर्णन सजीव बन कर सामने खड़ा हो जाता है।

(१५)

अब हरि आगे नाचु मीरा। अब हरि आगे ०॥
मीरा के भाग जब हम जनलों,
राज छाड़ि मीरा भइली फकीरा ॥१॥
जमुना किनारे कान्हा गउआ चरावें,
साठि गोपी एक कान्हा ॥२॥ अब हरि आगे ०॥
हाथे सुमिरिनी मुख में बीरा,
सिर पर तिलक गले विचे हीरा ॥३॥
मीरा के प्रभु गिरवर नागर,
हरिल नाथ मोरे दिल के पीरा ॥४॥

हे मीरा, अब तुम हरि के सामने खुलकर नाचो। तुम्हारे भाग्य को हमने तब जाना जब तुम राज्य त्याग कर फकीर बनी। ॥१॥

यमुना के तीर पर कृष्ण गाय चराते हैं। वहाँ अकेले कृष्ण हैं और उनके साथ साठ गोपियाँ है ॥२॥

"उनके (गोपियों) के हाथ में तो सुमिरनी माला है। मुख में पान

(१७)

मगन भइली मीरा हरि गुनगान ॥
मीरा कारन बाबा जहर पठवलें, खोलि देखसु मीरा हो गइले पान ॥
मीरा कारन बाबा नाग पठवलें, मीरा देखसु ऊत सालिग राम ॥

मीरा हरि नाम ले लेकर मग्न हो गई।

मीरा के लिये उसके बाप ने जहर भेजा। मीरा ने खोल कर देखा तो वह पान बन गया था। मीरा के लिये बाप ने काला नाग पिटारा में बन्द कर भेजा पर मीरा ने उसे खोल कर देखा तो नाग के स्थान पर सालिग्राम की मूर्ति रखी थी।

मीरा हरि नाम ले लेकर मग्न हो गयी।

(१८)

लछुमन कहाँ सिया छोड़ि अइल हो, बनवाँ अँधेरी रात ॥
किया सिया ले गइले रावन राजा, किया सिया ले गइले बाघ ॥१॥
गोड़े महावर मुख में बीरा, मोतिअन भरली माँग ॥
ना सिया ले गइले रावन राजा, ना सिया ले गइले बाघ ॥२॥
ऊ सीता बाड़ी गेडुरा का भीतरा, राम जी करीहें रछुपाल ॥
तुलसीदास प्रभु आस चरन के, हरि के चरन चित लाव ॥३॥
लछुमन कहाँ०॥

राम जब स्वर्ण मृग मार कर लौटे आ रहे थे तब लक्ष्मण को अपनी ओर अकेले आते देखकर वे घबड़ा गये। उन्होंने तुरन्त उनसे प्रश्न किया, 'हे लक्ष्मण, तुम सीता को कहाँ छोड़ आये? इस वन में इस अँधेरी रात में तुमने उनको कहाँ छोड़ दिया? अरे उस सीता को तुम ने अकेली वन में कहाँ छोड़ दिया जिसके पैर में महावर लगी थी, मुख में पान पड़े थे और माँग मोती से भरी थी? अर्थात् जो शृङ्गार करके बैठी थी। क्या उसे रावण हर ले गया या बाघ ने खा डाला कि तुम अकेले चले आते हो? लक्ष्मण ने धीर होकर कहा, "न तो रावन राजा ने ही सीता का हरण किया और न बाघ ने ही उन्हें खाया। सीता को वृत्त परिधि के बीच में हमने कर दिया है। राम उनकी रक्षा करेंगे?"

"तुलसीदास जी कहते हैं मेरी आशा हरि के चरणों की है। हे मन उन्ही हरि के चरणों मे लगे रहो।"

(१९)

मालिक सीता राम सोच मन काहे के करे।
हरिनी हरिना चरेले जँगल में, व्याधा लगवले फास।
कूदि फाँदि के हरिनी निकधि गइली, हरिना का परि गइले फास॥
तनि एक दूरि जाइ हरिनी पुकारेली, सुनु व्याधा मोरि बात।
एक ही बून्दवा के कारन हो, मोरा नाहक जाला राज॥
कुछु दूर जाइ के हरिना पुकारेले, सुनु हरिनी मोर बात।
व्याधा के घरवा खरची खुटइले, खइहें मसुइया के बेचि।
अतना वचनिया व्याधा सुनले, काटि दीहले गल फास।
ई तीनू वैकुण्ठ सिधरले, जनम सवारथ हो जात।
सोच मन काहे के करे मालिक सिता राम॥

'हे मन क्या सोच कर रहा है? सीता राम मालिक हैं। उन्हीं का ध्यान धर।'

हरिणी और हरिण जगल में चर रहे थे। व्याध ने फंदा लगाया। कूद फाँद कर हरिणी तो निकल गई पर हरिण के गले फाँस पड़ गई। कुछ दूरी पर जाकर हरिणी खड़ी हो गई और पुकार कर उसने कहा। 'हे व्याध मेरी बात सुनो एक जल के बूद के कारण ही मेरा राज नाहक नष्ट हो रहा है।' कुछ दूर बँधा हुआ जाकर हरिण ने पुकार कर कहा, 'हे हरिणी तुम मेरी बात सुनो। इस व्याध के घर में खाने को नहीं है। यह मुझे मारकर मेरे मास को बेचकर खायगा। (जाओ तुम प्रसन्न रहना परोपकार में मेरा जीवन जा रहा है। इसकी चिन्ता न करना)'

'इतनी बात जब व्याध को सुनाई पड़ी तो उसने हरिण के गले का फन्दा काट दिया और हरिण को छोड़ दिया।'

'तीनों को ज्ञान हो गया। ये तीनों वैकुण्ठ को प्राप्त हुए और उनका जन्म सफल हुआ।'

यह गीत भीख माँगने वाले ब्राह्मण या भाँट सब कहीं गाते रहते हैं। इससे स्त्रियों को त्याग की शिक्षा आदर्श रूप में मिला करती है। दधीचि आदि की पौराणिक गाथाएँ तो उन्हें न सुनने को मिलती हैं और न उनपर उनकी आस्था ही होती हैं। पर हरिण का त्याग और हरिण का विलाप उनके हृदय के अनुकूल बैठ जाता है और वे इससे त्याग मंत्र को पूर्ण रूप से समझ लेती हैं।

(२०)

हम रघुबर सगे जाइबि माई ॥ हम रघुबर सगे जाइबि माई ॥
बनही में जाइबि वन फूल खाइबि, बनहीं में बिपति गँवाइबि माई ॥१॥
हम रघुबर सगे० ॥
कद मूल लछुमन ले अइहें बनहीं में भोजन बनाइबि माई ॥२॥
हम रघुबर सगे० ॥
कूस डाभ लछुमन लेइ अइहें बनहीं में सथरी बिछाइबि माई ॥३॥
हम रघुबर सगे० ॥
फिरि घुमि रघुबर जब अइहें थाकल, बनहीं में चरन दबाइबि माई ॥४॥
हम रघुबर सगे० ॥

सीता कौशल्या से कह रही हैं 'हे अम्मा मैं रघुबर के साथ जाऊँगी। मैं रघुबर के साथ जाऊँगी।' ॥१॥

'मैं वन में जाऊँगी। वन फल खाऊँगी। और वन ही में विपत्ति भी गवाऊंगी।' ॥१॥

'लछमण कंद मूल वन से ले आवेंगे और मैं वन में ही भोजन बनाऊँगी। हे मा ! मै रघुबर के साथ वन में जाऊँगी।' ॥२॥

'जगल से कुश और डाभ (घास विशेष) काट कर लावेंगे और हे मा वन में ही मै सथरी (घास का विछावन) राम के लिये विछाऊ गी' ॥३॥

रामचन्द्र जब घूम फिर कर जंगल से थके आश्रम पर आवेंगे तब मैं उनके चरण दाबूँगी। हे मा ! मै रघुबर के साथ वन जाऊँगी मुझे जाने दो ॥४॥

(२१)

किरिपा निधान सुजान प्रान पति हरि के सँगे वन जइबों जी।
जो रघुननन संगो ना ले जइहें बिछुरत प्रान गँवइबों जी ॥
कद मूल लछुमन लेइ अइहें, बहु विधि भोजन बनइबों जी ॥
किरिपा निधान सुजान प्रान० ॥
कूस डाभ लछुमन लेई अइहें बहु विधि सथरी डसइबों जी ॥
किरिपा निधान सुजान० ॥

कृपा निधान सुजान प्राणपति के साथ मै बन को जाऊँगी। और यदि प्राणनाथ राम मुझे सँग न ले जॉयगे तो उनसे बिछुरते ही मै प्राण भी छोड़ दूँगी। वन में लक्ष्मण कद मूल वन से ले आवेंगे मै विधिपूर्वक भोजन बनाऊँगी। अरे हे मा! कृपा निधान सुजान प्राणपति राम के साथ मै बन (अवश्य) जाऊँगी। कूस और डाभ (कुश की एक जाति) लक्ष्मण वन से काट कर ले आएँगे और मै उसका (राम के लिये) बिछावन बिछाऊँगी। हे मा, कृपानिधान प्राणपति सुजान राम के साथ मैं वन जाऊँगी। अवश्य जाऊँगी।

(२२)

कइसे करों कल वल सखि हो छल करि गइले वसिवाला ॥१॥
लट पट पाग केसरिया जामा, गरे तुलसी के माला,
कइसे करों कल वल सखि हो छल करि गइले वसीवाला ॥२॥
अपने त जाई दुअरिका बइठले, रोई मरे ली विरिजबाला ॥३॥
कइसे करों कल वल सखि हो छल करि गइले वंसीवाला।
अपने त जाई सवतिन से रिझलें, पी के मरे कइसे विप बाला,
कइसे करों कल वल, सखी हो छल करि गइले वसीवाला ॥४॥
सावन मास घटा घन घेरि अइलें, वाढ़ि गइलें नदी नाला,
कइसे करों कल वल सखी हो छल करि गइले वसीवाला ॥५॥

"हे सखी, बंसीवाले छल करके चले गये। हे सखी, तुम कहती हो कि मैं बल पूर्वक शान्ति धारण करूँ सो मै, कैसे ऐसा करूँ? बंशीवाले

कान्ह तो हृदय पर चोट करके चले गये।" ॥१॥

'कान्ह के सिरपर टेढ़ी मेढ़ी पाग, शरीर पर केसरिया रंग का जामा और गले में तुलसी की माला थी। उनके इस रूप से मैं उन पर मोह गई हूँ। (मैंने उन्हें इस रूप में देख कर भला मनुष्य समझा था पर वे वन्शी वाले तो छल करके चले गये मैं कैसे बल से शान्ति धारण करूँ? ॥२॥

"हे सखी उनके कर्म देखो। आप तो जाकर द्वारिका मे बैठ रहे और यहाँ गोपियाँ रो रोकर मर रही हैं। हे सखी, मैं कैसे यत्न करके कल धारण करूँ? उन्होंने तो हृदय पर घाव कर हमें त्याग दिया है।" ॥३॥

"सखी, और देखो। आप तो जाकर सौत से रीझ गये। अब उनको सौत के वश में पड़े देख कर ब्रज बालाएं बिष पीकर ही तो मरेंगी सो हे सखी, किस प्रकार कल बल धारण करूँ? वन्शी वाले ने तो हृदय में घाव कर हमें त्याग दिया।" ॥४॥

"सावन का महीना है। घनी घटा घिर आई है। सर्वत्र नदी नाले (जो कल पानी के बिना निर्जीव से हो रहे थे वे भी) इस सावन में पानी से भर गये हैं (अर्थात उनकी भी अभिलाषा पूर्ण हो गई) पर वन्शी वाले कान्ह छाती में घाव कर चले गये। मैं बल और शान्ति लाऊँ तो कैसे लाऊँ" ॥५॥

विरहिणी गोपी का विचार कितना स्वाभाविक कितना मार्मिक है। चौथे चरण में स्त्री की सौत से द्वेष करने के स्वभाव का कैसा सुन्दर और मार्मिक चित्रण हुआ है। कान्ह के विरह में सुख मे विष पान कर उनको आशीर्वाद देते हुए प्राण विसर्जन करना विरहिणों के लिए था पर यह कदापि सह्य नहीं कि सौत उनके साथ विहार करे और विरहिणी बिष पान कर मर जाय कि वह निष्कटक हो जाय। इसीको सौत की डाह कहते हैं।

(२३)

साम बिना अइसनि हालि हमारी। साम बिना रघुनाथ बिना
अइसनि हालि हमारी ॥
धरती सुखली पिरिथी सुखली, बिनु बरखा बिनु पानी।

नौका को अपने प्रीतम के साथ भवसागर पार कराऊंगी।'

(२५)

(सग्रह कर्ता की परम पूज्य पितामही श्रीधर्मराज कुंअरिजी से प्राप्त)

सिवजी जे चली लें उतरी बनिजिया गउरा मदिरवा बइठाइ ॥
बरहो बरषि पर अइलों महादेव गउरा से मांगी ले बिचार ॥१॥
एही किरिअवा गउरा हम नाहीं मानबि सूरुज विचार मोही देहु ॥
जब रे गउरा देई सुरुज गोड़ लगली सुरुज जें गइले छिपाय ॥२॥
इहो बिरिअवा गउरा हम नाहीं मानबि अगिनि बिचरवा मोहि देहु॥
जब रे गउरा देई अगिन हाँथ लवली अगिन गइली निझाइ ॥३॥
इहो किरिअवा गउरा हम नाहीं मानबि सरप बिचरवा मोहि देहु ॥
जब रे गउरा देई सरप हाथ लवली सरप बइठले फेटामारि ॥४॥
इहो किरिअवा गउरा हम नाहीं मानबि गगा बिचरवा मोहि देहु ॥
जब रे गउरा देई गगा बीचे पईठली गगा गइली सुखाइ ॥५॥
फाटहु धरती हमहीं समाइबि अब ना देखबि ससार ॥
अतना वचन जब सुनीला महादेव, छाती से लिहलीं लगाइ ॥६॥
अबकी गुनहियाँ गउरा हमरा के बकसहु होइबों मों दास तोहार ॥७॥

शिवजी उत्तर वन की ओर चले और गौरी को घर पर रहने को छोड़ दिया। बारह वर्ष पर जब वे लौटे तो गौरी से सतीत्व का विचार कराने पर उद्यत हुए अर्थात् उनके सतीत्व की परीक्षा लेने लगे।

गौरी ने सत परीक्षा दी पर शिव को उससे सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने कहा, कि मैं इस परीक्षा को नहीं मानूंगा। हे गौरी! तुम सूर्य की परीक्षा दो।

गौरी ने वह परीक्षा भी दी। जब उन्होंने सूर्य को नमस्कार किया तब सूर्य उनके तेज से मलिन होकर छिप गये।

शिव जीने फिर कहा, हे गौरी, मैं इस परीक्षा को भी नहीं मानूँगा। मुझे अग्नि परीक्षा दो।

गौरी देवी ने जब अग्नि मे हाथ डाला तो आग बुझ गई।

शिव ने तब फिर कहा, गौरी देवी ! मैं इस जाँच को भी नहीं मानूगा । मुझे सर्प का विचार दो ।

गौरी ने वह परीक्षा भी दी । जैसे उन्होंने सर्प के ऊपर हाथ रखा कि सर्प काटने के बजाय कुण्डली मार कर चुप बैठ गया ।

शिव ने इतने विचारों में गौरी को उत्तीर्ण पाकर भी उन पर नहीं विश्वास किया और कहा कि इस परीक्षा को भी मैं नहीं मानूगा । मुझे गंगा की परीक्षा दो ।

वाह रे स्त्री धैर्य ! उसको तो अपना सतीत्व साबित करना था । गौरी ने गंगा-परीक्षा भी दी । वे जैसे ही गंगा की बीच धारा में कूदी कि गंगा सूख गई ।

परन्तु अब तो कोई परीक्षा बाकी नहीं थी । और गौरी का सतीत्व सशंकित शिव के सामने पूर्ण रूप से प्रमाणित हो चुका था पर साथ ही टूट चुका था गौरी का धैर्य ! उन्होंने कहा, हे धरती माता ! तुम फट जाओ। मैं तुम्हारी गोद में समा जाऊँगी । मैं अब इस झूठे संसार को नहीं देखूँगी ॥

इतनी बात के सुनते ही शिव जी दौड़ पड़े और गौरी जी को पकड़ कर वक्ष स्थल से लगा लिया ।

पर वाल्मीक के राम तो जब सीता द्वितीय बार अग्नि परीक्षा में उत्तीर्ण साबित हुई और ऋषियों ने उनकी पवित्रता प्रमाणित पाकर उनको अंगीकार करने की आज्ञा भी दी तब सीता को छोड़कर अङ्गीकार नहीं करके प्रजा से अनुमति पूछने लगे । इतने में मौका पा सीता जी पृथ्वी में प्रवेश कर गई । और राम हाथ मलते रह गये । पर गीत का यह रूप तो कोमल हृदया स्त्री कवि को स्वीकार नहीं था । उसने समय के पूर्व शिव को गौरी के सतीत्व के सामने नत मस्तक करा दिया और दुखान्त घटना को सुखान्त कर दिया ।

(२६)

नीचे का गीत शिव के ब्याह का गीत है । यह एक साईं से मुझे मिला था । पर अशुद्धियाँ बहुत थीं गीत लम्बा होने से उसे ठीक स्मरण नहीं था कितने चरण तो गायब ही थे । दो एक शब्दों से ही उनके अर्थ का संकेत

एक मूठी रखिया नउवा के दीहलन, एक मूठी रखिया बम्हना
के दीहलन ॥३१॥
ऊहे राखि लेके दूनो चललन, चलत चलत पएड़ा के धइलन ॥३२॥
उहों जमुना तब बढ़िआ गइलीं, नउआ बम्हना खड़ा हो गइलनि ॥३३॥
उहों जमुना जी थाह हो गइलीं, नउआ बम्हना तब पार हो गइलनि॥३४॥
नउआ रखिआ नउनिया के दीहलसि, नउनिया देखि जरि
छार हो गइलिनि ॥३५॥
एतना बचन तब बोलेली नउनिया, आगि लगाओ में तोराकमइया ॥३६॥
नउआ आगि लागो तोरे इहो कमाई, एही कमाई से लरिका जीहें ॥३७॥
बम् पावन रूप सिव तोहि देखवले तवने पर इनाम ई दीहले ॥३८॥
नाउनि खोलि राखि फेकि दीहली, एहि ले ढेर चुल्ही में लगली ॥३९॥
ऊ रखिया से सोन घर बनल, देखि नउनिआ पछतावे लागलि ॥४०॥
चलल चलल नौवा पंडित के गइले, पाँव पकड़ि पवलग्गी कइलनि ॥४१॥
हमरी भभूतिया पएड़ो में गिरले से, दींहों पंडित कुछु अपना मेंसे ॥४२॥
एतना बचनिया नउवा के सुनके, बोलले पंडित मनमें गुनिके ॥४३॥
आधा भभूतिया लेइ ल ठाकुर, आधा हमरो के रहेतू दीह ॥४४॥
नउआ खोलि भभूति सब लीहले, उहो रखिया नउनिया के दीहले ॥४५॥
बाम्हन देवता काम ई कइलन, एक घर लिपलन दूसरघर लिपलन ॥४६॥
अगना इहरा भर कर दीहलन, ऊपर से चऊक पूरि पूरि लीहलन ॥४७॥
तनी मनी रखिआ तवना पर छिटलन, मारे सोना सिव घरभरि दीहलन॥४८॥
अपना घर से नौआ सुनि अइलन, बाम्हन के हलिया फेनि
फेनि पुछलन ॥४९॥
बचन सुनत पंडित तब बोललन, मनमें बिहँसि बात असि कइलन ॥५०॥
हमार हाल ठाकुर का पूछल, अपने देख ना सब घर भरल ॥५१॥
जाके नउआ देखि खुस भइल, बाबा के रखिया बड़ गुन भरल ॥५२॥
सोचलसि अउरो उठा ले आईं, बाबा के राखि चल ले आईं ॥५३॥
बम् जिओ महादेव सिव ध्यानी ॥ कैलास० ॥

झपट के बोललन बाबा महादेव, जतना मन चाहे राखि उठा लेव ॥५४॥
नउआ तपसी बिटोर बाधि लिहलस, थोरी एक अउरी नगलीं
में धईलसि ॥५५॥
उहाँ से लेके जलदी चललसि चलत चलत घरे जब अइलनि ॥५६॥
देखि नउनिया मने खुस भइली, कहाँ उठवली कहाँ बइठवली ॥५७॥
एक घर लिपलसि दूसर घर लिपली, गठिया ने रखिया खोलि
गिरवलसि ॥५८॥
सिव जी के रखिया घर भर घूमलि, मारे राखि आँगन सब भरल ॥५९॥
थैली के राखिजे बाचल रहलीन, उहो ले जाके खोलि गिरवली ॥६०॥
ओढी में ने छलकि के आनो घर भरल, सात रात दिन
फेकत लागल ॥६१॥
फेकत फेकत नौवा हारि गइल, रखिया बढि के बडेरी गइल ॥६२॥
हारि नउनिया बोललसि बानी, अब का करबि सिव अंतरजामी ॥६३॥
हे हो नउआ तू घर छाड़ि देहु, मड़ई टाटी में चलि रहि लेहु ॥६४॥
महादेव बाबा दीहलन सराप, लालच बाउर कइली पाप ॥६५॥
टाटी मड़इया छाइ रहि जाई सिव के सराप बृथा ना जाई ॥६६॥
बम् बोलो महादेव सिव ध्यानी ॥
गौरी जोग वर ना मिललनि ॥
दाढी बढवलन बार पकवलन मुहवा के दांत सिगरी तुरवलन ॥६७॥
अँगवा खइलन मति बउरालीं, अइसन बिआह बलु नउजीं होखी ॥६८॥
बम् जिओ महादेव सिव ध्यानी ॥
गौरा जोग वर ना मिललन ॥
एतनी बचन बोले बाबा ध्यानी सुन नौवा तपसी पंडित ज्ञानी ॥६९॥
एतना कहनवा मोर करब कि नाहीं देसे देसे नेवता दे अइब
कि नाहीं ॥७०॥
एतना बचन बोले पंडित ज्ञानी, कइसे नाहीं करबि बाबा
सिव ध्यानी ॥७१॥

भोला देखत मैना पुलकित भइलीं, गीति गाइ के परीछन लगलीं ॥१७३॥
सखी सलेहरि मगल गवली, सारी सरहज सबे हरखवली ॥१७४॥
मैना सिव के गोड़े गिरली, मन में प्रेम से गद् गद् भइली ॥१७५॥
फेनि फेनि भोला के रुप सराहसु, गौरी के तप सारथ भाखसु ॥१७६॥
मँड़वा अइलीं भोला भँवरी दिहलीं, पुलकि पुलकि गउरीसात पग चलली १७७॥
भइल बिआह गौरी कोहबर गइली, सारी सरहज सब चाउर कइली ॥१७८॥
अपने हसलीं भोला सब के हसवली, गउरी जुड़वली सिव सब
के जुडवलीं ॥१७९॥
लोही लगते गौरी गवना चलली, माई भउजिया घई घई रोअली ॥१८०॥
भाई भतीजा सब से मेटली, सखी सलेहरि गरवा लगवली ॥१८१॥
सब जन मिलि के देली असीस सेनुर पहिर गउरी लाख बरीस ॥१८२॥
बम् बोलो महादेव सिव ध्यानी ॥
कैलास में वास करीं ज्ञानी ॥

कैलाश में ज्ञानी शिव निवास करते हैं। महादेव शिव के ध्यान करने वाले भक्त गण चिरजीवी हों। शिव की जटा से गंगा बहती हैं। उसमें पार्वती स्नान करती हैं। उन्होंने अपनी तपस्या से अपनी माता को तारा और चारों भुवन के देशों को तारा। फिर भी गौरी के योग्य वर नहीं मिला। ॥१,२॥

"गौरी के घर में मा बहिन कोई नहीं। इससे उनके माथा पर तिलक नहीं चढ़ता अर्थात ब्याह नहीं होता। बिना किसी के पता बताये अच्छा वर घर नहीं मिलता। गौरी को कौन है कि वर ढूढ़ने में परिश्रम करे? उनके योग्य वर नहीं मिला। महादेव के ध्यान करने वाले साधक तुम चिरंजीवी रहो। कैलाश में शिव ज्ञानी वास करते है।" ३, ४॥

"पत्तों में पान का पत्ता बड़ा होता है। तीर्थ स्थानों में चारों धाम बड़ा होता है। अरे इन्हीं का नाम सती पार्वती है। इन्ही के माथे तिलक नहीं चढ़ता। कैलाश में ज्ञानी शिव निवास करते हैं। हे शिव के ध्यानी साधक तुम चिरंजीवी रहो।" ५, ६॥

'कनक पुर नगरी में हेमंचल राजा रहते हैं। उन्हीं के घर पार्वती का जन्म हुआ। उन्होंने पार्वती के लिये सात सौ नदी नाला पार कर ऊधोपुर और माधौपुर आदि नगरी सब कहीं ढूढ़ डाला तब भी गौरी के योग्य वर नहीं मिला। हे शिव के ध्यानी शिव बोलो और चिरजीवी रहो।' ॥७,८॥

पूर्व और पश्चिम मे उदयाचल से लेकर अस्ताचल तक दक्षिण मे लंका पुरी के गढ़ तक उन्होंने वर की तलाश की। फिर पश्चिम मे अयोध्यानगर और उत्तर में धवला गिरि पर्वत तक वर की खोज की; लका मे सोने की धरती मिली पर वर नहीं। अन्य सर्वत्र भी वर घर दोनो कहीं नहीं मिले। हे, शिव के साधक शिव जी को भजो। और चिरंजीवी रहो। ॥९,१०॥

नाई ब्राह्मण कैलास पर्वत पर जाकर शिव के यहाँ धरना देकर बैठ गये अर्थात् जमकर विवाह ठीक करते रहे। पर तब भी गौरी, तुम्हारे योग्य वर नहीं ही मिला। हे, गौरी वे शिव तो सवा बित्ता के पलक बढ़ाये हैं। नव गज लम्बी जटा बाँधे हैं। सवा जग लम्बी दाढी बढ़ी है। और इन शिव जी के गले में सर्प लपटा हुआ है। हे गौरी, तेरे योग्य, वर नहीं मिला। किसी के भाग्य में लड्डू पेड़ा होते हैं। परन्तु शिव की किस्मत मे भंग के गोले ही बदे हैं। किसी के कर्म मे शाल दुशाला लिखा होता है पर शिव के भाग्य में मृगछाला ही है। हे गौरी, तुम्हारे योग्य वर नहीं मिला। हे शिव के साधक चिरजीवी रहो। ॥११,१२,१३,१४,१५॥

पर पार्वती ने मन में कहा "हे शिव, अपना पावन रूप दिखाइयेगा। वह रूप जो सभी सकट के समय दिखाया करते हैं।" और नाई ब्राह्मण से तिलक भेज दिया। नाई ब्राह्मण तिलक लेकर चलते चलते कैलाश जा पहुँचे। उनको रास्ते मे तो दश ही दिन व्यतीत करने पड़े। पर कैलाश पहुंच कर सेवा करके शिव का ध्यान तोड़ने में उन्हें दस मास लग गये। सेवा करते करते दस महीने में शिव की नींद खुली। तब उन्होंने भंग और धतूरे का गोला खाया और नाई को सोने का तथा ब्राह्मण को रूपे का पीढ़ा बैठने को दिया और कहा, "हे नाई और हे ज्ञानी पण्डित बैठते जाओ। हे शिव, के ध्यान करने वालो तुम जिओ। और शिव का ध्यान करो।" ॥१६ से २२॥

तब नव मन मक्खियों ने मंगल गान किया और शुक्र और शनि ने डमरू बजाया और तब महादेव शिव का तिलक चढा। हे शिव के ध्यान करने वाले भक्त गण शिव बोलो और चिरजीवी बनो। ॥२३॥

तब नापित और पण्डित ने तिलक चढाकर शिव से कहा, "हे महादेव आप तो अन्तर्यामी हैं। हम लोगों की कुछ विदाई होनी चाहिये। हमारी विदाई कर दीजिये।" शिव के ध्यानी बम् बोलो और जीवित रहो। ॥२४॥

तब शिव ने कहा, "अरे, हमारे घर में तो पाव भर अन्न नहीं है। मैं भाँग और धतूरे का तो आहार करता हूँ घर में डेहरी और कोठिला क्या बढ़नी तक भी नहीं पाओगे। और वन की पत्ती चबाचबा कर रहता हूँ। मैं किस वस्तु से तुम्हारी विदाई करूँ? कहो तो उन्ही से अर्थात् भंग, धतूरा और बन की पत्ती से ही विदाई कर दूं।" अरे शिव के ध्यानी बम् बोलो बम् बोलो। ॥२५, २६, २७, २८॥

तब नाई और ब्राह्मण ने कहा, 'हे महादेव आप अन्तरयामी हो। हमें उसी राख से विदाई कर दीजिए जिससे आप धुई' रमाया करते हैं।' महादेव जी ने एक मुट्ठी राख तो नाई को, और दूसरी मुट्ठी ब्राह्मण देवता को दी। उसी राख को लेकर दोनों प्रसन्न मन विदा हुए। घोर वन में दूर तक चलने के बाद उनको रास्ता मिल गया। जब मार्ग मिला तब यमुना मिलीं। वे बढ़ी हुई थीं। नाई ब्राह्मण मजबूर हो खड़े हो गये। फिर यमुना तुरन्त थाह में आ गयीं और ब्राह्मण नाई दोनों पार हो गये ॥२९, से ३४ तक ॥

नाई ने राख ला नाइन को दिया। यह राख तिलक के नेग में मिली है यह देख कर नाइन जल मरी। उसने क्रोध में आकर कहा,'तुम्हारे इस कमाई में आग लगा दूंगी। हे नाई, तेरे इसी कमाई से मेरे बाल बच्चे जीते रहेंगे? ऐसी कमाई में आग लगे। तुम कहते हो कि शिव ने तुम्हे अपना पवित्र रूप दिखाया। उसी का इनाम यह राख मिली है।' नाइन ने राख को खोल कर फेंक दिया और कहा कि 'इससे ज्यादा राख की ढेरी तो मेरे चूल्हे में लगी हुई है।' ॥३५ से ३९ तक ॥

जिस राख को नाइन ने बाहर फेंक दिया था उससे वहाँ सोने का घर

बन गया। उसको देखकर नाई पछताने लगा। वह वहाँ से उठा और चलते चलते पण्डित जी के पास पहुँचा। पाँव पकड़ कर उन्हें प्रणाम किया और कहा कि 'हे पण्डित जी मेरी राख तो मार्ग में गिर पड़ी। अपनी राख में से ही कुछ मुझे भी दे दीजिये। ॥४० से ४२ तक॥

इतनी बातें सुनकर पण्डित जी ने मन में विचारा और कहा, 'हे ठाकुर! आधी भभूत तुम लेलो आधी मेरे लिये छोड़ देना।' पर नाई जब राख खोलकर लेने गया तो सब राख ले लिया और उसे घर ले आकर नाइन को दिया॥ ४३ से ४५ तक॥

उधर ब्राह्मण देवता ने एक काम किया। उन्होंने घर आँगन, सहन को लीप डाला और फिर अपना आँगन और बाहर की गली भी साफ करके उन्हे लीप दिया। उन पर चौक पूर कर उन्हें और पवित्र बना दिया। फिर उस पर वही राख छिड़क दिया। बस सोना चाँदी से घर भर गया। इसकी सूचना जब नाई को मिली तो वह ब्राह्मण के पास आया और उनसे बार बार उनका हाल पूछा। तब नाई के वाक्य सुनकर ब्राह्मण देवता मन में हँसे और हँसकर बोले, 'तुम मेरा हाल क्या पूछते हो? देख आओ सब घर सोने चाँदी से भरे पड़े हैं' ॥४६ से ५१ तक॥

नाई ने जाकर उन्हें देखा और बहुत प्रसन्न हुआ। कहा कि 'शिव बाबा की राख में बड़े गुण हैं। हे महाराज, चलिये थोड़ी सी और राख उठा लावें। उसमें तो बड़े गुण हैं। शिव के साधक शिव भजो और जीवित रहो। शिव ज्ञानी कैलास में निवास करते हैं।' ॥५२, ५३ ॥

नाई के कैलाश पहुँचते ही शिवजी ने डाँट कर कहा, 'तुझे जितना मन हो राख उठा ले।' इस पर तपसी नामक नाई ने राख बटोर कर पूरा चलने भर बाँध लिया और कुछ थोड़ी सी राख जेबों में भी रख ली। वहाँ से वह राख लेकर जल्दी से रवाना हुआ और तेज चलता चलता जब घर पहुँचा तब नाइन, उसे राख सहित लौटते देख कर बहुत प्रसन्न हुई। मारे खुशी के वह नहीं समझ सकी कि नाई को कहाँ उठावे और कहाँ बैठावे। झट उसने एक घर को लीपा फिर दूसरे को भी तुरत पोत डाला और गाँठ से राख खोलकर

सब जगह गिरा दिया। तब शिव के उस राख का प्रभाव ऐसा हुआ कि वह राख सारे घर में घूम गई और मारे राख के सर्वत्र घर आँगन भर गया। तब नाई ने (सोचा कि बची राख को भी छोड़ कर उसका प्रभाव देखें।) थैली की जो राख बची थी उसको भी वहीं ले जाकर गिरा दिया। अब राख इतनी बढ़ी कि बचे घर भी भर गये और नाई नाइन को सात दिन रात राख फेंकते फेंकते लग गया, नाई हार गया तब भी राख नहीं फेंकी जा सकी। उल्टे बढ़कर वह बड़ेरी तक छू गयी। तब नाईन हारकर कहने लगी, "हे अन्तर्यामी शिव अब क्या करोगे। हे नाई अब तुम इस घर को छोड़ दो। चलो मड़ई बाध कर हम लोग अन्यत्र रह जायँ महादेव बाबा ने यह शाप दिया है। लालच बुरी चीज है। मैंने बड़ा पाप किया। टाटी मड़ई छाकर अन्यत्र कहीं रहते जाँय शिव का शाप व्यर्थ नहीं जायगा।" शिव के ध्यान करने वालो शिव शिव बोलो। गौरी योग्य वर नहीं मिला। शिव दाढ़ी बढाये रहते हैं। बार भी पके ही है। मुँह के दाँत भी सब टूट गये हैं। भाँग खाते हैं। मति सदा बौराई रहती है। ऐसा विवाह बल्कि न हो वही अच्छा है। हे महादेव शिव के भजने वाले तुम जीते रहो। गौरी के योग्य वर नहीं मिला। ॥५४ से ६८ तक॥

विवाह ठीक हो गया था। तिलक भी चढ़ गया था अब बारात जानी थी। इसलिये शिव ने बारात की तैयारी की। उन्होंने नाऊ ब्राह्मण से कहा, "हे ज्ञानी पण्डित और तपस्वी नाई मेरी बात सुनो। तुम लोग मेरा कहना करोगे कि नहीं? मेरे विवाह का निमन्त्रण देश देश में जाकर दे आओगे कि नहीं?" इस पर ब्राह्मण ने कहा, "हे ध्यानस्थ शिव महाराज मैं आपका कहना कैसे नहीं करूंगा।" और नापित और ब्राह्मण देश देश मे निमन्त्रण देने के लिये उठ कर चल पड़े। उन्होंने कीट पतग को निमन्त्रित किया। विभिन्न जीव जन्तुओं को निमन्त्रण दिया। चींटी, माटा, भूत और बेताल को नेवता दिया। ॥६१ से ७४ तक।

इधर शुक्र के दिन बारात सजी और शनिश्चर को देव वेला मे रवाना हुई। हाथियों ने अपने मुख से मसाल जलाया और सिआर और कुत्तों ने मार्ग दिखाया। शिव बारात सज कर कनकपुर के लिये चले उन्होंने मार्ग में कोढ़ी

सब जगह गिरा दिया। तब शिव के उस राख का प्रभाव ऐसा हुआ कि वह राख सारे घर में घूम गई और मारे राख के सर्वत्र घर आँगन भर गया। तब नाई ने (सोचा कि बची राख को भी छोड़ कर उसका प्रभाव देखें।) थैली की जो राख बची थी उसको भी वहीं ले जाकर गिरा दिया। अब राख इतनी बढ़ी कि बचे घर भी भर गये और नाई नाइन को सात दिन रात राख फेंकते फेंकते लग गया, नाई हार गया तब भी राख नहीं फेकी जा सकी। उल्टे बढ़कर वह बड़ेरी तक छू गयी। तब नाईन हारकर कहने लगी, "हे अन्तर्यामी शिव अब क्या करोगे। हे नाई अब तुम इस घर को छोड़ दो। चलो मड़ई बाध कर हम लोग अन्यत्र रह जायँ महादेव बाबा ने यह शाप दिया है। लालच बुरी चीज है। मैंने बड़ा पाप किया। टाटी मड़ई छाकर अन्यत्र कहीं रहते जाँय शिव का शाप व्यर्थ नहीं जायगा।" शिव के ध्यान करने वालो शिव शिव बोलो। गौरी योग्य वर नहीं मिला। शिव दाढ़ी बढाये रहते हैं। बार भी पके ही हैं। मुँह के दाँत भी सब टूट गये हैं। भाँग खाते हैं। मति सदा बौराई रहती है। ऐसा विवाह बल्कि न हो वही अच्छा है। हे महादेव शिव के भजने वाले तुम जीते रहो। गौरी के योग्य वर नहीं मिला। ॥५४ से ६८ तक॥

विवाह ठीक हो गया था। तिलक भी चढ़ गया था अब बारात जानी थी। इसलिये शिव ने बारात की तैयारी की। उन्होंने नाऊ ब्राह्मण से कहा, "हे ज्ञानी पण्डित और तपसी नाई मेरी बात सुनो। तुम लोग मेरा कहना करोगे कि नहीं? मेरे विवाह का निमन्त्रण देश देश मे जाकर दे आओगे कि नहीं?" इस पर ब्राह्मण ने कहा, "हे ध्यानस्थ शिव महाराज मैं आपका कहना कैसे नहीं करूंगा।" और नापित और ब्राह्मण देश देश में निमन्त्रण देने के लिये उठ कर चल पड़े। उन्होंने कीट पतग को निमन्त्रित किया। विभिन्न जीव जन्तुओं को निमन्त्रण दिया। चींटी, माटा, भूत और बेताल को नेवता दिया। ॥६६ से ७४ तक।

इधर शुक्र के दिन बारात सजी और शनिश्चर को देव बेला मे रवाना हुई। दानवों ने अपने मुख से मसाल जलाया और सियार और कुत्तों ने मार्ग दिखाया। शिव बारात सज कर कनकपुर के लिये चले उन्होंने मार्ग में कोढ़ी

की प्रतिष्ठा नष्ट कर देंगे।' ॥११० से ११६ तक॥

तब गौरी के घर के सभी वयोवृद्ध पुरुषों ने मिलकर आपस में सलाह की कि अब बिना महादेव को बुलाये यह पार होने को नहीं है। तब दो चार व्यक्ति शिवजी के पास गये और हाथ जोड़कर सामने खड़े हो विनती करने लगे। 'हे शिव आप अन्तर्यामी हैं। अब तो गौरी के घर में कुछ सामग्री (खाने का सामान) नहीं बचा। शुक्र और शनैश्चर ने जो कुछ सामान इकट्ठा था सब खा डाला। अब आप ही के हाथों में गौरी की प्रतिष्ठा है। हे शिवजी, गौरी की प्रतिष्ठा तो आपकी ही प्रतिष्ठा है। उसकी दुर्दशा तो आपकी ही दुर्दशा होगी! दोनों प्रतिष्ठायें आपकी ही हैं। अब हम लोगों के वश की बात नहीं रही।' ॥११७ से ११९ तक॥

तब महादेव जी ने हँसकर कहा, 'अच्छा थोड़ी रसद और कहीं से ले आओ।' ॥१२०॥

इस पर गौरी की ओर से दो व्यक्तियों ने कहा, 'हे शिवजी, हम सब कह रहे हैं घर में कुछ अब शेष नहीं है।' ॥१२१॥

तब शिव ने कहा, 'अरे दो एक चावल तो अवश्य कहीं न कहीं गिरे ही होंगे। उन्हीं को ले जाकर परोसो।' ॥१२२॥

वहाँ से सब लोग घर आये और भंडार से दो चार चावल बिनकर शुक्र और शनि के सामने धर दिये। उन्हीं चावलों को भोजन कर इन दोनों की तृप्ति हो गई। फिर उन्हीं दो चार चावलों से टोकरी की टोकरी भर गईं। और सारी बारात भोजन करके तृप्त हो गई। जो बचा उसे ले जाकर लोगों ने जब घर में रखा तो उनके धरते ही धरते सारा घर अन्न से भर गया। फिर उसमें से उफन कर दूसरे के घर भी भर गये। और अन्न के आधिक्य से सभी कोठियाँ (अन्न रखने के स्थान) फट गये। ॥१२३ से १२६ तक॥

तब सैना ने कहा, 'अब तो भोजन करने को कोई बाकी नहीं बचा। अब चलो दूल्हा को बुलाओ। मण्डप सजाओ और परछन का सामान ठीक करो। पाँचों पंचों को बुला भेजो। बाजा गाजा सब ले आओ। नेवतहरियों की बारात द्वारे लगेगी इसकी सूचना पहुँचाओ। हाथी घोड़ा आदि सवारी

शुक्र और शनिश्चर नामके दो चेले है। सर्व प्रथम वे ही भोजन करें। तब पीछे सारी बारात भोजन करने जायगी ॥९६, ९७॥

इस पर गौरी की ओर से आये हुए व्यक्तियों ने कहा, 'ये दो आदमी जाकर क्या करे गे ? केवल बदनामी भर होगी। वहाँ बाजार और सड़क पर सर्वत्र रसद फेंकी हुई है। पानी के लिये तालाब ताल सब भरे पडे हैं। हमारी प्रार्थना है कि सब के साथ आप भी चलते और मन्डप की शोभा बढ़ाते। वहाँ नाना प्रकार के भोजन बने हैं। सब आपकी आशा देखते पड़े हैं।' ॥९८ से १००॥ तक ॥

इसको सुनते ही डाँट कर महादेव जी ने कहा, 'बम् बोलो ! शिव के ध्यान करने वालो बम् बोलो। तुम अपनी बात तो करते हो और मेरी कही हुई बातों पर ध्यान तक नहीं देते। उन्हें छोट देते हो' ॥१०२॥

शिव जी की डाँट सुनकर सब डर गये। ग्राम बासी थर थर काँपने लगे। सब ने कर बद्ध होकर प्रार्थना की और कहा कि हे शुक्र और शनिश्चर महाराज आपही चलिये ॥१०३, १०४॥

शुक्र और शनिश्चर उठकर भोजन करने चले। सब ने उन्हें लिवा जाकर स्थान पर बैठा दिया। पहले भोजन थोड़ा थोड़ा परसा गया। फिर टोकरी में भर भर कर दिया जाने लगा। वे दोनों सात दिन और सात रात तक लगातार भोजन करते रह गये। जो कुछ भी सामने था रत्ती रत्ती उन्होंने पेट में डाल लिया तब भी भूख लगी रही और इधर सभी सामग्री समाप्त हो गई। तब शनिश्चर ने खीझकर कहा, 'अभी तो यह पेट भरा नहीं। हे शुक्र चलो उठो अब पानी पीओ।' १०५ से १०९ ॥

यह सुनकर गौरी की ओर से दो चार वयोवृद्ध आये और हाथ जोड़कर विनती करने लगे 'आप क्यों अभी पानी पीजिएगा। अभी एक घर रसद और बची है। वह लायी जा रही है। वह रसद भी ले आकर परोसी गई और उसे भी शुक्र और शनिश्चर ने झटपट खा डाला। तब डाँट करके उन दोनों ने कहा, 'आप लोग समझ रखें कि यदि हमारी क्षुधा तृप्त नहीं हुई तो हम लोग आप के सब हित नातों के पास जा जाकर आपकी शिकायत करके आप

की प्रतिष्ठा नष्ट कर देंगे।' ॥११० से ११३ तक॥,

तब गौरी के यहाँ के सभी वयोवृद्ध पंचों ने मिलकर आपस में सलाह की कि अब बिना महादेव की कृपा के यह काम होने को नहीं है। तब दो चार व्यक्ति शिवजी के पास गये और कर बद्ध होकर सामने खड़े हो विनती करने लगे। हे शिव आप धन्य हो। अब तो गौरी के घर में कुछ सामग्री (खाने का सामान) नहीं बचा। शुक्र और शनैश्चर ने जो कुछ सामान इकट्ठा था सब खा डाला। अब आप ही के हाथों में गौरी की प्रतिष्ठा है। हे शिवजो, गौरी की प्रतिष्ठा तो आपकी ही प्रतिष्ठा है। उसकी दुर्दशा तो आपकी ही दुर्दशा होगी! दोनों प्रतिष्ठायें आपकी ही हैं। अब हम लोगों के वश की बात नहीं रही।' ११० से ११६ तक॥

तब महादेव जी ने हँसकर कहा, 'अच्छा थोड़ी रसद और कहीं से ले आओ।' ॥१२०॥

इस पर गौरी की ओर से दो व्यक्तियों ने कहा, हे शिवजी, हम सच कह रहे हैं घर में कुछ अब शेष नहीं है।' ॥१२१॥

तब शिव ने कहा, 'अरे दो एक चावल तो अवश्य कहीं न कहीं गिरे ही होंगे। उन्हीं को ले जाकर परोसो। ॥१२२॥

वहाँ से पंच लोग घर आये और भंडार से दो चार चावल बिनकर शुक्र और शनि के सामने धर दिये। उन्हीं चावलों को भोजन कर इन दोनों की तृप्ति हो गई। फिर उन्हीं दो चार चावलों से टोकरी की टोकरी भर गई। और सारी बारात भोजन करके तृप्त हो गई। जो बचा उसे ले जाकर लोगों ने जब घर में रखा तो उनके धरते ही धरते सारा घर अन्न से भर गया। फिर उसमें से उफन कर दूसरे के घर भी भर गये। और अन्न के आधिक्य से सभी कोठियाँ (अन्न रखने के स्थान) फट गये। ॥१२३ से १२६ तक ॥

तब मैना ने कहा, 'अब तो भोजन करने को कोई बाकी नहीं बचा। अब चलो दुलहा को बुलाओ। मंडप सजाओ और परछन का सामान ठीक करो। पाँचों पवनों को बुला भेजो। बाजा गाजा सब ले आओ। नेवतहरियों को बारात द्वार लगाने इसकी सूचना पहुँचाओ। हाथी घोड़ा आदि सवारी

जनवासे (बारात ठहरने का स्थान) को भेज दो। गुरु और पुरोहित जी को शीघ्र बुलाओ। नाई बारी को शीघ्र आने की खबर दो। बम् बोलो अरे, शिव के भक्त बम् बोलो। शिव ज्ञानी कैलास में निवास करते हैं।' ॥१२७ से १३२ तक ॥

तब महादेव बाबा ने बारात सजाई और गण नायकों ने धूधूक (बड़ी दुदुभी) बजाया। (बिगुल बजते ही बारात सज गई) डाकिनी और शाकिनी खप्पर ले झम्म झम्म कर के नाचने लगीं। बिना सिर के बैताल ठठ्ठा मार मार कर हँसने लगे। बिना पाँव के पिशाच गण इधर उधर दौड़ने लगे। किसी के नाक कटी है तो किसी के कान ही नहीं हैं। कोई एक आँख का काना है तो किसी की दोनों आँख ही चौपट हैं। कोई गदहे पर चढ़ा है तो कोई मूसक को ही सवारी बनाये हैं। कुत्ते और सिआर भूक भूक बाजा बजा रहे हैं। गण नायक लोग हँसते और खेलते हुए आगे बढ़े। वे कभी गाल (बम बम करके) बजाते है तो कभी तुरही फूकते हैं। दोनों गाल और तुरही क्रम से बजाते चले जा रहे हैं। ॥१३२ से १३८ तक।

'शिव ने अपने पवित्र रूप को असगल बनाया। उन्होंने सवा बित्ते की पलक बनाली सवा गज की दाढ़ी बढ़ाई और नव गज की जटा सजाई शेष नाग को गले मे लटकाया और विषैली नागिन जिनकी तालू फूट चुकी थीं कानों पर बैठी। थुथुर साँप का बटुका (कङ्गन) बँधवाया और आप महा गलित कोढ़ी का रूप बना कर आगे बढ़े फिर नव मन गदे चीथड़ो को शरीर पर लाद लिया। उन पर असख्य मक्खिया भनकने लगीं एक वृद्ध बैल पर उलटा सवार हो गये उसके मुँह की ओर तो अपनी पीठ को और पूछ का लगाम बनाया। चीव्ह और कौआ आकाश मे उड़कर उनपर छाया करने लगे। और चमगीदड़ों ने अपने डैने खोल कर शिव पर छत्र लगाया इस प्रकार जब बारात सज चुकी तब शिवजी ने प्रस्थान करने की आज्ञा दी। १३९ से १४७ तक ॥

तब बारात गाती, नाचती, रोती और हँसती हुई द्वारचार के लिये चली, बारात के पीछे पीछे देवता गण हुलस हुलस कर चलने लगे और शिव के (असगल) रूप को देख देख कर मन में मुस्काने लगे। ब्रह्मा और विष्णु तो

मुख पर रुमाल दे देकर भीतर ही हँसने लगे। पर शेष देव गण तो ठठ्ठा मार मार कर हंसने लगे। जब बारात दरवाजे लगी तब स्त्रियां सज सज करके परिछन के लिये दरवाजे से बाहर हुईं। जैसे ही मैना देवी आगे बढ़ीं वैसे ही शिव जी पागल बन गये और गले के सर्प फूफकार छोड़ने लगे। नाइन ने उसे देखा और हाय, हाय करके कलश, सूप, लोरहा (परिछन के सामान) को वहीं पटक दिया और भाग चली। (पर मैना को भय कहाँ ? उसे तो शोक ने घर दबाया) उसके मुख से निकला, "हाय मेरी गौरी तो जीते ही मर गई।" और वाक्य समाप्त होते ही होते वह मूर्छित होकर वहीं गिर पड़ीं। एक पर एक गिरती हुई सब सखियाँ भाग चलीं। वे फिर फिर कर पीछे की ओर देखती जाती थीं और भागतीं जाती थीं। मन्डप से भी सब स्त्रियां भाग चलीं वहाँ अकेली गौरी कलश के पास बैठी रह गईं ॥१४८ से १५६॥

तब गौरी के मन में चिन्ता हुई और उन्होंने शिव की पूर्व प्रीति को मन में स्मरण किया। पूर्व जन्म की अपनी करनी और शिव का बार बार समझाना, दक्षराज के यज्ञ का नाश, अपना जल कर भस्मीभूत हो जाना, और फिर शिव की तपस्या करना सब को उन्होंने सोचा और अपने मन मे ध्यान किया। और तब (व्याकुल और अधीर होकर) कहने लगीं, "हे शिव, बस कीजिये, बस कीजिये। आपने बहुत दण्ड दिया। मै अपने पूर्व जन्म की कमाई पा चुकी। यह (विवाह) यज्ञ आपका ही है। मै भी आपकी ही हूँ। और यह लोक लाज सब आप ही की है—अब और क्या शेष है जिसके लिये मैं अभागिनी जीवित हूँ ? आप सहायता करें नहीं तो वैसी बात कहें। इतना कहते गौरी की आँखों से आँसू गिरने लगे और उन्होंने पलकें मूंद ली। फिर मन में बिलख बिलख कर विनती करने लगीं। हे महादेव आप अन्तर्यामी हो। मेरी सभी बातें आप जानते हो। अब रक्षा कीजिये नहीं तो आज्ञा दीजिये यह तन भी सती की तरह जल जाय।" ॥१५७ से १६६ तक॥

पार्वती के इस आर्त पुकार को जानकर शिव जी हँसे। पुरानी प्रीति पूर्ववत जाग उठी। फिर यह सोच कर कि सती अब चेत गई अपना अपराध आप ही समझ गई। शिव जी मुस्कराये। तब उन्होंने अपना पावन रूप धारण

किया और (मडप पर अकेली शोकमग्ना बैठी हुई) गौरी की आँखों में प्रवेश किया अर्थात् उन्हें दर्शन दिया। गौरी (पावन रूप का) दर्शन पाकर धन्य धन्य कह कर शिव के पैरों पर गिर पड़ीं और प्रेम में विभोर हो गईं। वह गद्गद् होकर फिर बोलीं, "हे शिव इस रूप को अब मेरी माता जी को दिखा दीजिये। हे स्वामी आप धन्य हैं। अब मेरी माता जी को बचाइये।" पार्वती के इस वचन को सुन कर शिव भगवान बाहर दरवाजे पर आये और सखियों ने उनके पावन रूप देख दौड़ कर मैना को जगाया। भोला को देखकर मैना पुलकित हो गई। गीत गा गाकर उनका परिछन होने लगा। तब तक सखियाँ भी आ गई और मंगल गाने लगी। साली सरहज सब हर्षित हुईं। परिछन के बाद मैना ने शिव को प्रणाम किया और मन में मारे प्रेम के गद्गद् हो उठीं। वे बार बार भोला के रूप को सराहने लगीं और कहने लगीं कि गौरी की तपस्या अब सफल हुई। भोला मडप में आये और पार्वती के साथ भाँवर घूमे। गौरी पुलक पुलक कर भाँवर के सात पग चलीं, विवाह हुआ तब गौरी और शिव कोहवर (सुहाग भवन में) गये वहाँ साली और सरहज ने शिव जी से व्यग परिहास करना प्रारभ किया। शिव स्वय हँसे और सब उपस्थित स्त्रियों से हँसी कर उन्हें भी हँसाया। इस तरह उन्हों ने गौरी की कामना को पूरी किया साथ ही ससुराल के अन्य स्त्रियों की लालसा को भी पूरी किया। ठीक देव वेला मे शुक्रोदय के साथ ही गौरी का गवना हुआ। गौरी माता मैना और भावज को पकड़ पकड़ कर जाते समय बहुत रोईं भाई और भतीजों से भेट कर अपनी सखियों के गले लगीं। सब ने मिल कर एक साथ गौरी को आशीर्वाद दिया कि तुम लाख वर्ष तक सिन्दूर धारण करो। हे शिवके ध्यान करने वाले बम् बोलो, बम् बोलो। ज्ञानी शिवजी कैलाश पर्वत पर निवास करते हैं।
॥१६७ से १८९ तक॥

(२७)

बउरहवा देखलो ये ननदी कमरिया ओटले, जाला रे॥
भाग धतुरवा चबात जाला गरवा मिरिग छाला रे॥
बउरहवा देखलो ए ननदी ०॥

बूट बएल पर चढल जाला सगवा में लेले बैताला रे ॥
वउरहवा देखलों ए ननदी ०॥
हाथ त्रिसूल गले मुँडमाला गौरी के वर मतवाला रे ॥
वउरहवा देखलो ए ननदी ०॥

"भोली भाली ग्रामीण बहू मार्ग में शिव को जाते देखकर आश्चर्य चकित हो अपनी ननद से कह रही है । 'हे ननद मैंने पागल शिव को तो अभी देखा कमरी ओढ़े चले जा रहे थे । भग और धतूरे की पत्ती चबाते हुए गले में मृग छाला लपेटे हुए वे चले जा रहे थे । वे वृद्ध बैल पर चढ़े हुए मस्त आगे बढ़ते जा रहे थे और उनके संग में बैताल थे । उनके हाथ में त्रिशूल था । गले में मुंड माला थी । हे ननद गौरी का वर तो निरा मतवाला है । मैं ने अभी उसे देखा वह सनकी है ।"

कितना स्वाभाविक चित्रण है । भोली भाली ग्राम बधू हृदय शिव के इस रूप से अधिक कह ही क्या सकता है ?

(२८)

तोरे पर वारीं सँवलिया हो दुलहा, तोरे पर वारीं सवलियाँ हो दुलहा ॥
सिर पर चीरा, कमर-पट पीला ओढ़े के गुलाबी चदरिया हो दुलहा ॥१॥
तोरे पर वारी सवलियाँ हो दुलहा ॥तोरे०॥
गरे वीच हीरा मुख वीच बीरा, त्रिहसनि करेला कहरिया हो दुलहा ॥२॥
तोरे पर वारीं सवलियाँ हो दुलहा ॥तोरे०॥
छैला,छबीला,नोकीया,रँगीला, पहीरे ले जामा केसरिया हो दुलहा ॥३॥
तोरे पर वारीं सवलियाँ हो दुलहा ॥तोरे ०॥
भहुओं कमान, नयन वान तानि मारे, भरि भरि के काजर जहरिया
हो दुलहा ॥४॥
तोरे पर वारी सवलियाँ हो दुलहा, तोरे ॥
मिथिला के डोमिनि सलोनी सुकुमारी, लागेली सारी सरहजिया
हो दुलहा ॥५॥
तोरे पर वारीं सवलियाँ हो दुलहा, तोरे ॥

सुधि बुधि भूलि भइली प्रेम मतवारी, पड़तहीं बाँकी नजरिया हो दुलहा ॥६॥
तोरे पर वारी सवलिया हो दुलहा० तोरे ०॥
अब त तोहार हम पीछवा ना छाड़बि, सग जइबों अवध नगरिया
हो दुलहा ॥७॥
तोरे पर बारी सवलियाँ हो दुलहा० तोरे०॥
सरपत मड़इया बनाइ के बसबों तोहरे महल पीछु अरिया हो दुलहा ॥८॥
तोरे पर बारी सवलियाँ हो दुलहा ॥ तोरे ॥
सरजू किनारे हम जाके वहारबि, साझ सबेरे दुपहरिया हो दुलहा ॥९॥
तोरे पर बारी सवलियाँ हो दुलहा० तोरे ॥
ओहि ठइयाँ मिलबि नहाये जब जइब, प्रान जीवन धनु धरिया हो दुलहा ॥१०॥
तोरे पर बारी सवलियाँ हो दुलहा, तोरे ॥
तोरे लागि मागबि दुकाने दुकाने, कउड़ी त बीच बजरिया हो दुलहा ॥११॥
तोरे पर बारी डोमिनिया हो दुलहा० तोरे०॥
नेहू लगलि नाहीं जइहों अनत केइ, असहीं बितइबों उमिरिया हो दुलहा ॥१२॥

जनक पुर की डोमिन दुलहा के रूप में राम को देखकर उन पर मोहित हो कहती है —

साँवले रग के दुलहा मै तुझ पर वारि गई। सिर पर पाग है, कमर मे पीत वस्त्र है, और गुलाबी चादर ओढ़े हो हे दुलहा! मै तुम पर बलिहारी हूँ।

तुम्हारे गले मे हीरे का हार है। मुख मे पान का बीरा है। और हे साँवले तुम्हारी हँसी तो मेरे हृदय में कहर मचा देती है। मै तुम पर बलिहारी हू ॥२॥

तुम छैला हो छबीले और नोकीले हो और कितने सुन्दर केसरिया जामा पहने हो। हे साँवलिया! मै तुम पर बलिहारी हूँ ॥३॥

तुम्हारी भौंहे कमान हैं। कटाक्ष के बाण तान तान कर मार रही है। और यहीं तक नहीं उन बाणों को वे काजल रूपी विष से भर भर कर चला रही है। और मै घायल हो रही हू। हे दुलहा मै तुम पर बलिहारी हूँ ॥४॥

हे साँवलिया मै मिथिला की सलोनी और सुकुमारी डोमिन हूँ। मैं

भी आप की साली सरहज रिश्ते में लगती हूँ। मैं आप पर बलिहारी हूँ ॥५॥

हे दुलहा आपको तिरछी नजर पड़ते ही मैं अपनी सुधि बुधि भूल कर आपके प्रेम में बावली हो गई हूँ। हे साँवलिया मैं आप पर बलिहारी हूँ ॥६॥

हे, राम आपका पीछा अब नहीं छोड़ूँगी। आपके संग मैं अवध नगरी चलूगी। और वहाँ सरपत की कुटिया बना कर आपके पीछे बसूंगी। मैं आप पर बलिहारी हूँ ॥७,८॥

हे प्रियतम, (मैं आपको कलंकित नहीं करूँगी) मैं सरयू नदी का किनारा सवेरे, शाम और दोपहर को जाकर बहार कर साफ करूँगी और आपसे उसी स्थान पर जब आप स्नान करने जायँगे तो मिल लिया करूँगी। हे मेरे प्राण जीवन रूपी धनुष बाण को धारण करने वाले राम जी मैं आप पर वार गई वार गई। ॥९,१०॥

हे राम मैं (आप पर अपना बोझ नहीं दूगी आपके पूजा अर्चन के लिये भी मैं आपसे कुछ नहीं मागूगी) मैं आपके लिये बीच बाजार में दुकान दुकान घूम कर कौड़ी कौड़ी भिक्षा माँगूगी (और उसी से अपना गुजर करूँगी और आपको पूजा करूँगी) मैं आप पर वार गई ॥११॥

हे प्रियतम, अब यह प्रेम की लता दूसरे ठौर नहीं जायगी। यह अब इसी तरह (आजन्म त्याग व्रत धारण कर आपके प्रेम मे) अपनी आयु व्यतीत कर दूँगी। हे सांवलिया अब मैं तुम पर वार गई। ॥१२॥

पाठक विचारें इस गीत मे प्रेम का कितना सुन्दर और आदर्श रूप मिथिला की डोमिन ने खींचा है। कितनी सुन्दर सूक्तियो हैं। भावना को किस सूक्ष्मता और स्वाभाविकता स व्यक्त किया गया है। एक मलिक के मुख से जब मैंने इस भजन को सुना, तब मैं इतना विभोर हो गया था कि एक ओर तो डोमिन द्वारा वर्णित राम का कल्पित चित्र मेरी आखों के सामने दिखाई पड़ रहा था और दूसरी ओर सलोनी, सुकुमार पर त्यागी योगिनी के रूप में डोमिन का स्वरूप महल के पीछे कुटिया मे, सरजू तीर साझ सबेरे और दुपहरी में रास्ता बहारने और राम के आने और दर्शन करने की प्रतीक्षा करते

अतर गुलाब राति दिन ऊड़े, दिन राति गाइ उड़ाई ॥
हिलमिल रहनि सवति सग सोवल, हमसे करेल बड़ाई ॥३॥ जा०॥

अर्थ सरल और साफ है।

(३४)

होली (भजन)

वन चलें ले दूनो भाई कोऊ समुझावत नाहीं।
आगे आगे राम चलतु हैं, पीछवा लछुमन भाई।
ताहि पीछे सीता सूनरि सोभा वरनी ना जाई ॥१॥ कोई समुझावत०॥
केकरा बींना सून अजोधेआ, केकरा बिना चौपाई।
केकरा बिना मोरी सूनी रसोइया, के मोरे भोजन बनाई ॥२॥
कोई समुझावत नाहीं ॥
भूख लगे कहाँ भोजन पइहें, पिआसि लगे कहाँ पानी।
नीनि लगे कहाँ डासन पइहें, काँट कूस गड़ि जाई ॥४॥
कोई समुझावत नाहीं० ॥

अर्थ सरल और साफ है।

(३५)

धिमिर धिमिर डमरू बाजेला सिव भइलें असवार।
वसहा बैल चढि उमत आवेलें जगत देखलो ना जाय।
धियाले मे उडवि, धियालेमे बूड़वि, धिया ले मे धँसवि पताल।
अइसन वउराह वर के धिया मे ना देवों, वलू गौरा रहिहें कुआर ॥
जनि आमा उडहु जनि आमा बूडहू जनि आया धँसहु पताल।
पुरव जनम केर लिखल तपसिया मे कइसे मेटल जाय ॥
जाटा देखि डेरइवू हो वेटी, भभूति देख घार।
सवति देखि वेटी मनहीं झुरइबू कवना विधि भुगतवु राज ॥
जाटा मोरे लेखे अगर चदन, भभूति मोरा अहिवात।
सवति मोरा लेखे सखिया सलेहरि, ओही विधि भुगत विराज ॥

विवाह का समय है। शिव अपने अद्भुत साज सामान से बारात ले आये हैं। उसको देख मैना का मातृ हृदय सन्तप्त हो उठता है। मैना ने झट निश्चय कर लिया कि चाहे जो हो, ऐसे बौराह वर से गौरी का विवाह कदापि न होगा। रंग भग होते देख गौरी ने हस्तक्षेप किया। माँ बेटी का तर्क वितर्क और अन्त में बेटी का शिव के प्रेम पर सतोष पूर्वक आत्मोत्सर्ग करना कितना सुन्दर स्वाभाविक तथा हृद्गत भावों का द्योतक है यह देखते ही बनता है। बारात और शिव का वर्णन कितना संक्षिप्त साथ ही सजीव है। अर्थ देखिये—

"धीरे धीरे डमरू बज रहा है। शिव जी सवार हुये। बसहा बैल पर चढ़े उमते हुये (ऊँघते हुये) चले आरहे हैं। उनका यह ऊँघना मुझसे देखा भी तो नहीं जाता।"

"मैं कन्या को लेकर उड़ जाऊँगी, कन्या को लेकर डूब मरूँगी। अथवा कन्या को लेकर पाताल में समा जाऊँगी किन्तु ऐसे बौराह वर को मैं कन्या नहीं दूँगी। चाहे वर कुमारी ही क्यों न रहे।"

"माँ! तुम उड़ो मत, बूड़ो मत, पाताल में मत समाओ! पूर्व जन्म का लिखा हुआ तो यह तपस्वी है। यह किस तरह मिटाया जा सकता है।"

(३६)

फुल लोर्हे चलली गउरादेई राम ओही फुलवारी।
बसहा बैल चटल महादेव लावेले गोहारी॥
फूल जानि लोढ गउरा हमरि दोहाई।
लोढल फुल ए गउरा देबों छितिराई॥
उँहवा से अइली गउरादेई राम बइठे मन मारी।
पूछेली माई मैँदागिन बिलम कहाँ होई॥
हमरा से का पूछेलू आमा पुछु सखिया से रामा।
बसहा चढ़त महादेव राम राखे बिलमाई॥
मति तोरा गइली ए गउरा अकिलि भुलाई।
आपन पुरसवा ए गउरा सेहु ना चिन्हाई।

पुष्प चुनने के लिये गौरी उसी पुष्प वाटिका में गईं या जान

बूझकर माता के द्वारा भेजी गईं। बसहे बैल पर चढ़े भिखारी शिव आ पुकारने लगे। उन्होंने तोड़े हुये फूल बिखेर देने की धमकी दी और आ दुहाई देते हुए बिना आज्ञा के फूल तोड़ने से मना किया।

वहाँ से गौरी घर आईं और मन मार बैठ गईं। माँ ने पूछा—" कहाँ हुई।" उत्तर मिला—"मुझसे क्या पूछती हो सखियों से पूछ लो सखियों ने कहा—"बसहे बैल पर चढ़े हुये शिव ने आकर विलमा लिया था

माँ ने कहा—"अरे गौरी तेरी बुद्धि मारी गई! तुझे अपना पुरुष नहीं पहचान पड़ा?"

(३७)

मोरे उमता बउरहवा सिव केने गइले रे माई।
भुला गइले रे माई॥
जवनी बटिए महादेव जइहें लोगवा देखि डेराई।
लोगवा देखि पराई॥
केहू नाहीं हितवा अइसन असनिया दे बइठाई।
मोरा उमता बउरहवा॰॥
सिवजी का गोड़वा में फटली बेवाई।
जे सिव घरवा अइतें करितीं दवाई॥
मोरा उमता बउरहवा॰॥
गाया खोजलों कासी खोजलों कतहीं ना मिले।
सिव हई भोला ए माई॥
मोरा उमता बउरहवा सिव भुला गइले रे माई॥

"हे माँ मेरे ऊँघते बौराह शिव किधर गये। हे माँ! मेरे ऊँघते बौरा शिव भटक गये। जिस मार्ग से महादेव जायेंगे लोग देखकर डरेंगे औ भागेंगे। हमारा कोई ऐसा हितू नहीं जो उन्हें आसन देकर बैठावेगा। हे माँ मेरे बौराहे शिव कहाँ गये? शिव जी के पाँव में बेवाय फटी है यदि वे घ आते तो मैं उनकी दवा करती। हे माँ मेरे शिव भूल गये। मैंने गया औ

काशी में उन्हें खोजा। वे भोले शिव कहीं नही मिले। मेरे ऊँघते बौराह शिव भटक गये।"

(३८)

तोहें के बुधि देला ए उमता।

लालि पलगि पर पचरग के तकिया छाड़ि भुइआँ लोट ए उमता॥
साल दुसाल सिव मनहीं ना भावे मृगछाला ओढि वइठ ए उमता॥
खोआ मलाई सिव मनहीं न भावे भाँग धतूर घोरि पीअ ए उमता॥
सोने के गजरा मोतिन के माला छाड़ि सरप गले लाव ए उमता॥
कोठा अटारी सिव का मनहीं ना भावे टुटही मड़इआ में वइठ ए उमता॥
तोहें के बुधि देला ए उमता॥

"हे उमता (मतवाले) तुमको कौन बुद्धि देता है, कौन सिखाता है कि लाल पलँग और पाँचों रंग की तकिया को छोड़ कर पृथ्वी पर लेट रहते हो? शाल-दुशाले शिव को अच्छे ही नहीं लगते और हे उन्मत्त तुम मृगचर्म ओढ़कर वैठ रहते हो। तुमको (ऐसी) बुद्धि कौन देता है? हे उन्मत्त तुम्हें खोआ मलाई तो अच्छी नहीं लगती किंतु भाँग धतूर घोंट कर पी लेते हो। सोने के गजरे और मोती की माला छोड़कर तुम सर्प गले मे लपेटे रहते हो। कोठा और अँटारी तुम्हारे मन को नहीं सुहाती और टूटी झोपड़ी में वैठ रहते हो। तुमको कौन बुद्धि देता है।"

(३९)

माई पूछे धिअवा से जे अवरु हेतु लाइ,
कइसे कइसे रहलू ए गउरा वउरहवा का पासें।
कइसे कइसे रहलू ए गउरा तपसिया का पासें॥
भउजी जे रहतू ए आमा कहितों नमुझाई,
तोहरो त सुनले ए आमा करेज फाटि जाई।
भँगिया पीसत ए आमा हथवा खिअहइलें,
धतूर मलत ए आमा जिअरा अकुलइलें।
अइसे अइसे रहलीं ए आमा तपसिया का पासें।

बाघछाला डासन ए आमा मृगछाला ओढन।
भसम की झोरिआ ए आमा से हो सिरआसन ॥
अइसे अइसे रहलीं ए आमा जोगिया का पास।
लटियनि लटियन ए आमा नाग फुफुकारे,
जटवनि जटवनि ए आमा बिछिआ बिअइले।
ओइसे ओइसे रहलीं ए आमा जोगिआ का पास ॥

और और कारणों से माता कन्या से पूछती है कि हे गौरी। किस भाँति तुम बौराहे शिव के पास रहीं? उस तपस्वी के पास कैसे रहीं?

गौरी ने कहा—'हे अम्मा! यदि तुम भावज होती तो मैं कुछ समझा कर कहती भी। तुम्हारा कलेजा तो सुनते ही फट जायगा। हे अम्माँ! भाँग पीसते पीसते तो मेरा हाथ घिस गया। धतूरे को मलते मलते मेरा जी ऊब गया। हे माँ! इस तरह मैं बौराहे के पास रही। हे माँ! व्याघ्र चर्म तो बिछौना और मृगचर्म ओढ़ना था। हे माँ! भस्म की झोली तो सिरहाने (तकिए का काम देती थी) थी! इस तरह से हे माँ! मैं योगी के पास रही। हे माँ—बाल की लटों में नाग फुफकारा करते और जटाओं में बिच्छू बच्चे दिये रहते थे। हे माँ! इस तरह मैं योगी के पास रही।'

(४०)

मोर सिव चललें बिआह करे हो। आहो मोर०॥
आँधी पानी घेरि अइलें हो॥
आँधी अधकउलि अइले पानी छछकाल अइले हो॥
आहो भींजत भीजत सिव अइले ओरी तरे ठाढ भइले हो॥
खोल गौरा खोल गौरा सुबरन केवरिआ नु हो॥
आहो गौरा खोल ना सुवरन केवरिआ त ओरी तरे ठाढ भइलीं हो॥
काँटी मोरा तेलवा ना वोरसी मोरा आगीवाड़े हो॥
कोरवा सुतल बेटा गनपत ओरी तरे सिव लोटि रहीं हो॥
काँटी भरल तेलवा बोरसी भरल आगीवाड़े हो।
खटिआ सुतल बेटा गनपति ठनगन गौरा मति कर हो॥

कँगला के धिअवा भिखरिआ के बहिनी तू हो।
आहो तोहरा बाप मोरा हाथे बेचलनि गौरा ठनगन मति कर हो॥

अरे! हमारे शिव विवाह करने चले। अरे! हमारे शिव विवाह करने चले।' आँधी चलने लगी—और पानी बरसने लगा। आँधी से अँधेरा हो आया। पानी से (छछकाल) कीच और पानी सब ओर भर गया।

अरे! भीगते भीगते शिव आये और ओरी के नीचे खड़े हुए पुकारने लगे 'अरी गौरी स्वर्ण कपाट खोलो। अरी गौरी! स्वर्ण कपाट जल्द खोलो। मैं ओरी के नीचे खड़ा खड़ा भीग रहा हूँ।'

गौरी ने कहा—'मेरे तेल की कोटी में तेल नहीं है कि इस अँधेरे में दीप जलाकर केवाड़ खोलूँ। न बोरसी में लकड़ी के अभाव से आग ही है कि अँजोर करके कपाट खोलूँ। मैं स्वयं भी खाली नहीं। गोदी में बेटा गणपति सो रहा है। हे महादेव! आज रात ओरी के ही नीचे सो रहिये।'

शिव ने मुस्करा कर मानिनी के मान से टुक आहत होकर कहा 'अरे! कोटी में तो तेल भरा है। बोरसी में आग भी भरी है। और बेटा गणपति तो खाट पर सो रहा है। हे गौरी! तुम झंझट न मोल लो॥ तुम कंगाल की कन्या हो। भिखारी की बहन हो। तुम्हारे पिता ने तुम्हें मेरे हाथ बेच दिया है। हे गौरी! मुझसे ठनगन न करो।'

कितना सुन्दर चित्रण है हास्य और करुणा दोनों रसों के सम्मिश्रण का कितना सुंदर परिपाक हुआ है।

(४१)

आईं ए माई! सपना के करीना विचार।
कवना देस बजन एक बाजेला, केकर होला बिआह॥
तूही अयानी गौरा! तूही गियानी गौरा! तूही पंडितवा के धीय।
मोरग देस बजन एक बाजेला, सिवजी के होला बिआह॥
किआ हो महादेव! चोरिनी से चटनी? किआ हम कोखिआ विहीन?
किआ हो महादेव! सेवा से चुकलीं! काहे कइलीं दूसर बिआह?
नाहीं ए गौरा देईं! चोरिनी से चटनी। नाहीं तूहूँ कोखिआ विहीन।

नाहीं ए गौरा देई ! सेवा से चुकलू भावी कइलसि दोसर विश्राह ।
पहिरु गौरा देई ! इश्ररी से पीश्ररी सवति परिछि ब्लु लेहु ।
किश्रा मोरी हउई जर रे जिठानी किश्रा हउई पूत बहुश्रारि ।
इहो त हई मोरा जनमे के सवतिया मोरा पीठि दरेली श्रँगार ।
डड़िश्रा उघारि जब देखेली गउरा देई, इत हई बहिनी हमार ।
तीनू भुवन बहिनी ! बर नाहीं जूरल भइलू तू सवति हमार ॥

गौरी कह रही हैं "हे मा ! मेरे स्वप्न का विचार करो । रात मैंने एक स्वप्न देखा है कि किसी देश में बाजा बज रहा है और किसी का विवाह होने जा रहा है । सो हे माँ ! किस देश में यह बाजा बजता है और किसका विवाह हुआ है ?"

गौरी की माँ शिव के दूसरे विवाह के होने की बात सुनकर खिझी हुई थी ही । गौरी पर भी नाखुश थी कि इतनी भोली है कि इस सबध में कुछ ज्ञान ही नहीं रखती । उन्होंने झल्लाकर कहा—'श्ररी गौरी ! मुझसे क्या पूछती है । तुम खुद ही तो मानी ज्ञानी हो तुम स्वयं ही पडित की कन्या भी हो । श्ररी । बावली ! यह बाजा मोरंग देश में बजता है और तुम्हारे शिव जी का ही दूसरा विवाह हो रहा है ।'

माता के इस सरोप व्यग को सुनकर गौरी के होश अब ठिकाने आये ? उनको अब चेत हुआ । वे दौड़कर शिव के पास गईं और पूछाः—'कहिए भगवान् ! मे पूछती हू कि क्या मैं चोरनी हूँ या चटनी हूँ ? या मैं वन्ध्या हूँ अर्थात् बाझ हूँ । यह भी बताइये कि मैं क्या कभी भी आप की सेवा से चूकी हूँ ? यदि नहीं तो आपने क्यों दूसरा विवाह किया ?'

शिव ने कहाः—हे गौरी देवी ! तुम न तो चोरनी हो न चटनी ही हो और न तुमसे कभी मेरी सेवा मे चूक ही कोई हुई और न तुम सन्तान विहीन बाँझ स्त्री ही हो हे देवी ! क्या कहूँ यह प्रारब्ध था कि दूसरा विवाह करना पड़ा । हे गौरी देवी ! पीला वस्त्र पहनो और अपनी सौत को परीछ कर उतार लाश्रो ।'

गौरी ने कहाः—'अरे यह क्या मेरी जेठानी है ? या यह मेरे पुत्र की

वहू है कि मैं परीछने जाऊँ, अरे ! यह तो हमारी जन्म की सवति है ! यह सदा से मेरी पीठ पर अगार मलती चली आई है।'

परन्तु इतना रोस करने पर भी सती का जी पति से विरोध करने का नहीं हुआ पति की आज्ञा का उलघन गौरी से नहीं हो सका। छाती पर पत्थर रखकर वह सौत परीछने के लिए निकल पड़ीं। डोंड़ी का ओहार उघार कर उन्होंने जो भीतर देखा तो चिल्लाकर कह पड़ी—'अरे ! यह तो हमारी वहन है। हे वहन ! तीनों लोक में तुझे कहीं वर नहीं मिला कि तुम मेरी सौत बनने यहाँ आई ?'

कितना मार्मिक वर्णन है।

(४२)

सिव जी जे चलले उतरी वनिजिया गउरा मदिलवा वइठाइ हो ॥
वारह वरिस पर अइले महादेव गउरा से मागेले विचार हो ॥
ए गउरा से मागेले विचार हो ॥
राम दोहाई परमेसर किरिए दोसर पुरुस कइसन होइ हो।
एही किरिअवा गउरा ! हम नाहीं मानवि अगिनि विचरवा मोहि देहु हो ॥
जव रे गउरा देई अगिनि हाथ लिहली अगिनी गइली मुरुझाई हो ॥
इहो किरिअवा गउरा ! हम नाहीं मानवि तुलसी विचरवा मोहि देहु हो ॥
जव हो गउरा देई तुलसी हाथे लिहली तुलसी गइली झुराई हो ॥
इहो किरिअवा गउरा ! हम नाहीं मानवि सुरुज विचरवा मोहि देहु हो ॥
जव हो गउरा देई सुरुज माथ नवली सुरुज छपित होई जाइ हो ॥
इहो किरिअवा गउरा ! हम नाहीं मानवि गगा विचरवा मोहि देहु हो।
जव हो गऊरा देई गगा में धसली गगा में परि गइले रेत हो।
इहो किरिअवा गउरा ! हम नाहीं मानवि सरप विचरवा मोहि देहु हो ॥
जव हो गउरा देई सरप हाथ लिहली सरप वइठेला फेटा मारि हो।
फाटहु धरती ! हमहूँ समाइवि अव नाहीं देखवि ससार हो।
अवकी गुनहिए गउरा ! वकसहु हमराके होई जइवों दास तोहार हो ॥

शिव जी तो चले उत्तरा खण्ड की ओर और गौरी को मंदिर में बैठा

गये। बारह वर्ष पर महादेव आये। और गौरी से विचार माँगने लगे। बारह वर्ष पर महादेव आये और गौरी से उनके सतीत्व का प्रमाण माँगने लगे।

गौरी ने कहा, 'राम की दुहाई है, परमेश्वर की शपथ है, मैंने नहीं जाना कि दूसरा पुरुष कैसा होता है।'

शिव ने कहा हे गौरी! यह शपथ मैं न मानूगा। मुझे अग्नि-परीक्षा दो। जब गौरी देवी ने आग को हाथ में लिया तो आग ठंडी हो गई।

महादेव ने पुनः कहा—'हे गौरी! इस शपथ को भी मैं नहीं मानूंगा। मुझे तुलसी की परीक्षा दो। जब गौरी देवी ने तुलसी के बिरवा को हाथ में लिया तो वह सूख गया'॥

शिव ने पुनः कहा— "हे गौरी इस शपथ को मैं नहीं मानूगा, मुझे सूर्य की परीक्षा दो।" जब गौरी ने सूर्य को माथा नवाया तो सूर्य भगवान छिप गये।

महादेव ने कहा—"अरी गौरी! इस शपथ को मैं नहीं मानूँगा। मुझको गंगा की परीक्षा दो।" जब गौरी देवी ने गंगा में प्रवेश किया तब गंगा में रेत पड़ गई।

महादेव ने इस बार फिर कहा—'हे गौरी! इस शपथ को भी मैं नहीं मानूँगा, मुझको सर्प की परीक्षा दो।' जब गौरी ने सर्प को हाथ में लिया तब सर्प कुण्डली मार कर बैठ गया।

इस परीक्षा के बाद गौरी देवी से अधिक नहीं सहा गया बारह वर्ष का वियोग ही बिना आधार अकेली कुटिया में क्या कम यातना थी कि अब यह परीक्षा पर परीक्षा ली जारही है। उन्होंने वसुन्धरा को सम्बोधन करके कहा— "हे धरती माता! तुम फट जाओ मैं तुम में समा जाऊँ। अब इस संसार को मैं नहीं देखूँगी।"

तब शिव ने चिल्लाकर पुकारा—'हे गौरी देवी, इस बार मेरा अपराध क्षमा करो। अब से मैं तुम्हारा दास हो कर रहूँगा। किन्तु इस वाक्य को सुनने के पूर्व ही गौरी जी वसुंधरा में प्रवेश कर चुकी थी और शिव हाथ मलते रह गये थे या वे यह वाक्य सुनकर शंकर को क्षमा कर पुनः उनके लिये रह गईं, यह

कुछ साफ नहीं है। केवल शिव से हार्दिक पश्चाताप करा और क्षमा मँगाकर ही कवियित्री चुप हो जाती है। कितना सुंदर अंत है। दुखान्त और सुखान्त दोनों का मिश्रित रस है।

पाठक कहेंगे कि इसमें तो राम सीता की कथा शिव के साथ मिला दी गई है। मेरा निवेदन है कि यह गीत इतिहास नहीं है, यह तो अशिक्षिता कवियित्री के मन का उद्‌गार है। इसके रस आदि पर विचार करें और वर्णन शैली की सरलता देखें। ऐतिहासिक खोज के लिये तो पुराणों के पन्ने उलटने चाहिये थे। इस पुस्तक में ही नहीं सर्वत्र के लोक गीतों में आप देखेगे कि राम के लिये कृष्ण आये है अयोध्या के लिये मथुरा आया है, शिव की जगह पर राम और राधा की जगह पर सीता का प्रयोग हुआ है। इससे पता चलता है कि स्त्रियों को अपना भाव प्रगट करना मुख्य ध्येय रहा है। हम पुरुषों ने ही तो उन्हें साक्षर होने से वञ्चित रखा है वे कूपमण्डूक हैं। उन्हें ठीक जानकारी इन बातों की नही है।

न० ३१ भजन से न० ३६ तक सात भजन मेरे 'भोजपुरी ग्राम गीत मे गौरी का स्थान' नाम लेख से लिये गये है। जो द्विवेदी अभिनन्दन ग्रंथ के लिये बाबू शिव पूजन सहाय जी के आग्रह से लिखा गया था पर विलम्ब से लेख पहुँचने के कारण उसमें न जाकर वह काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित हुआ पाठक यह भी स्मरण रखे कि ये सब गीत मुझे अपनी पूजनीया पितामही श्री धर्मराज कुँअरि जी से मिले थे।

बारहमासा

बारहो मास मे ऋतु प्रभाव से जैसा जेसा मनोभाव अनुभूत होता है उसीको जब विरहिणी ने अपने प्रियतम के प्रेम में व्याकुल होकर जिस गीत में गाया है उसी का नाम 'बारह मासा' है। इसके एक ही मात्रा होते हों सो बात नहीं है। धरणीदास जी का बारह मासा कुछ दूसरे ही तरह का है। पलटूदास जी का 'बारह मासा' भी दूसरी तरह का है। विद्यापति सूरदास जी के 'बारह मासों' का तर्ज दूसरा है। पर प्रचलित तर्ज के अन्य बारह मासे

प्रायः सर्वत्र एक ही तरह के होते हैं। फिर भी उनके मात्रा और छन्द में कुछ भेद हो जाता है निम्नलिखित बारह मासा धरनीदास जी का है। इसमें टेक के बाद छंद का प्रयोग है।

(१)

चलु मनवा मानि निज मानुस जहाँ बसे प्रान पिआर हो।
हिलि मिलि पाच सलेहरि, अवरु पाँच परिवार हो॥

छन्द

परिवार जोरि वटोरि लेहू गउरि खोरिन लावहू।
बहुरि समय सरूप अस ना, जाने कब तू पावहू॥
बइसाख हो वनि बनि धनी, नखसिख करहु सिंगार हो।
पहिरहु प्रेम पीतम्मर सुनि लेहु मन्त्र हमार हो॥१॥
सुनि लेहु मत्र हमार सूतरि हार पहिनु एकावरी।
छाड़ि मान गुमान ममता आजो समझि तेबावरी॥
जेठ जतन करु कामिनी! हा जनम अकारथ जात हो।
जोवन गरब जनि मूलहू करि लेहु कछुक उपाय हो॥२॥
करि लेहु कछुक उपाय ना फिर दुःख पाय पछिताय हो।
जब गाँठी गरथ ना छूटि है तब ढूँटतो ना पाइ हो॥
अजहूँ असाढ समझु चित याहिदेस हित वा न कोई हो।
अद्भुत अरथ दरब सबे सपनो ना आपन होइ हो॥३॥
आपन नही कछु सपन सब सुख अंत चलबू हारि के।
माता पिता परिवार पुनि तोहि डालिहनि परिचारि के॥
सावन सँकोच करहु जनि धावन पठावहु चोख हे।
बहुत दिवस भटकल भवन मे अब जनि लावहु धोख हे॥४॥
जनि धोख लावहु चोख धावहु अब कहावहु पीय के।
तब कोटि करत उपाय चिंता मिटि हे ना ई जीव के॥
भामिनी! भरल जोवन तन सम भजहु भादों मास हे।
पत त रहिहें अपने पति से ना त होइहें उपहास हे॥५॥

होइहें उपहाँस जग में मानि कारज निज कर करहु।
समुझि नेह सनेह स्वामी हरखि ले हिरदय धरहु ॥
आसिन विरह विलासिनी! पिया मिलहु कपट खोलि हे।
जा दिन कंत रिसाइहें तब मुखहु न अइहें बोलि हे।६॥
मुख बोलि ना कछु आई हो भरमाइबू हर घर घरी।
तब कहँवा कूप खनाइबू जब आगि छपरा पर परी ॥
कातिक कुसल तबहीं सखी! जब भजिहु पिया के जानि हे ॥
बहुरि बिछोह ना कबहिं होखिहें जुगहि जुग तुम रानि हे ॥७॥
जुग रानि होइ बू मानि जिय धरु ध्यान कोइ न दूसरो।
हित लागि खेत निसारि आपन बीज डारति ऊसरो ॥
अगहन उत्तर दीहल सखी हम अबला अतावर हे।
जतन करत बने ना कछु कठिन कुटिल संसार हे ॥८॥
कुटिल इहो संसार बलु जीव जाउ जोबन अब सही।
निजु कन्त जब अपनाइहें चलि आइहें घर बैस हीं ॥
पूस पलटि सिताइली प्रगटाइ परम आनन्द हे।
घर घर सगरे नगर सब मेटल दुसह दुख दंद हे ॥९॥
दुःख मेटल चन्द मेटल फन्द सभनि छुड़ाइला।
पुलकि बारहिं बार मिलि परिवार मंगल गाइला ॥
माघ मुदित मन छिन छिन दिन दिन बढ़ला सोहाग हे।
नइहर भरम मिटाके गइले ससुरे सक न लाग हे ॥१०॥
नहिं लाग सासुर सकबुन सखी! रंक जनु राजा बने।
निज नाव मिलले बाहि गइले सकल कलि विख दुख भगे।
फागुन परल अमिअ फल सखि झरेउ सकल दुख पात हे।
निस दिन रहल मगन हिय अइसन सुख कहिओ ना जात हे ॥११॥
कहि जात न सुख महा मूरत्ति सुरति जहँ ठहराइला।
सुनि विमल बारह मास के गुन दास धरनी गाइला ॥१२॥
अर्थ :—हे मन! चैत मास में तुम अपने पाचों साथी और पचीसों

परिवार के साथ हिल मिलकर वहाँ चलने का दृढ़ निश्चय करो जहाँ तुम्हारे प्राण पति हैं।

हे गौरी ! तुम अपना परिवार जोर बटोर लो। देर मत करो। मालूम नहीं फिर ऐसा स्वरूप किस समय में फिर पाओगी। वैसाख मास में बन ठन के नख से सिख तक शृंगार करो और प्रेम रूपी पीताम्बर धारण करो यही हमारा तुम्हारे लिये उपदेश है ।॥१॥

हे सुन्दरी ! हमारा मन्त्र मानो, एकावरी का हार पहन लो। री बावरी तू आज भी अपना मान गुमान और ममता त्याग कर प्रियतम से प्रेम करो। हे कामिनी ! जेठ आ गया यत्न करो। अकारथ जीवन जा रहा है। अपनी जवानी के गर्व में न भूलो। कुछ तो उपाय अपने भविष्य के लिये कर लो ॥२॥

अपने दुख पाप का कुछ उपाय कर लो नहीं तो पीछे पछताओगी, जब तुम्हारे गाठ की गुत्थी नहीं छूटेगी तो प्रियतम को ढूँढ़ने से भी नहीं पाओगी। अभी आषाढ़ ही है समझ कर देखो। इस देश में तुम्हारा कोई सुभचितक नहीं है। ये जो अद्भुत असख्य अर्थ और द्रव्य हैं वे सब स्वप्न में भी तुम्हारे नहीं होंगे ॥३॥

यहाँ अपना कुछ नहीं है। यह सब सुख साज स्वप्न है। अन्त में सब हार कर चलना होगा। ये माता पिता परिवार तुम्हें फिर लालच देकर गिरा देंगे। सावन आ गया, सकोच न करो। तेज धावन भेजो। बहुत दिन घर में भटके। अब धोखा में मत पड़ो, ॥४॥

हे सुन्दरी ! धाखा में मत पड़ो। तेज दौड़ो। अपने पति की बनो। तुम्हारे कोटि उपाय करने पर भी जीव की चिन्ता नहीं मिटेगी। हे भामिनी ! तुम्हारा यौवन भरा शरीर है। इस तन से भादों मास में प्रियतम को भज लो नहीं तो तुम अपने पति के बिना पतित रहोगी और ससार में तुम्हारा उपहास होगा ॥५॥

अरी ! तुम्हारा जग मे उपहास होगा। ऐसा मान कर ससार में अपना काम करो। अपने स्वामी का प्रेम और स्नेह समझ कर अपने हृदय में उसे रक्खो। हे विरह में विलास करने वाली सुन्दरी आश्विन मास आ गया कपट

खोल कर अपने प्रियतम से मिलो। समझ लो जिस दिन कंत असन्तुष्ट होंगे उस दिन तुम्हारे कण्ठ से वाणी नहीं निकलेगी ॥६॥

मुख से जब वाणी नहीं निकलेगी तब तुम द्वार द्वार पर भ्रमित रहोगी और तब कहाँ कूप खनाओगी, जब तुम्हारे छप्पर में आग लग जायेगी। हे सखी! कातिक आ गया अर्थात् तीसरा पन बीत गया। तुम्हारा कुशल तभी है जब पिया को जानो और भजो। जब प्रियतम को जानोगी और उनका भजन करोगी तब युग युग तुम रानी रहोगी और फिर तुम्हारा वियोग कभी नहीं होगा ॥७॥

युग युग की रानी बन कर भी प्रियतम को हृदय में सम्पूर्ण न जानकर और दूसरे को ध्यान में लाकर री! बावरी!! तू अपने हित के सारे खेत को भूलकर अपना बीज ऊसर में डालती हो। हे सखी! अब जब अगहन आया अर्थात् चौथा पन शुरू हुआ तब तुम उत्तर देती हो कि मैं अबला स्त्री की अवतार हूं। मुझसे इस कठिन कुटिल ससार में कुछ करते धरते नहीं बनता ॥८॥

यह ससार कुटिल है जीव भले ही चला जाय यौवन भी नष्ट हो जाय। मुझसे कुछ यत्न करते नहीं बनता। जब हमारे कंत हमें अपनावेंगे तो वे स्वय ही बिना किसी प्रयत्न के मेरे घर वैसे ही चले आवेंगे। पूस मास आया है। शीत परम प्रिय आनन्द उत्पन्न करके पलट आया और इस नगर रूपी देही के घर घर के सब दुसह दुःख को मिटा गया ॥९॥

हे सखी! प्रियतम ने मुझसे भेंट किया मेरे दुख नष्ट हो गये। मैं अपने सभी फन्दों से छूट गई। प्रियतम से पुलक पुलक कर बार बार मिलती और अपने परिवार का मंगल गाती हूँ। माघ मास आ गया। मैं प्रसन्न मन हूँ। मेरा सुहाग दिन दिन क्षण क्षण बढ रहा है। मेरे मायके का भ्रम मिट गया। ससुराल का डर भी अब नहीं लगता ॥१०॥

हे सखी! सुनो अब मुझको ससुराल का डर इसी तरह नहीं लगता मानो रक राजा हो गया हो। मैं अपने स्वामी से गले मिलकर और उनकी बांह पकड़ कर कलि के सारे विष को जीत गई। फागुन मास आया। अमृत फल फल गया और पात रूपी सब दुःख झड़ गये। रात दिन हृदय ऐसा मग्न

रहता है कि सुख कहा नही जाता है ॥११॥

हे सखी ! मुझसे उस महा मूर्ति के दर्शन सुख का वर्णन नहीं किया जाता जहाँ मैं अपनी सुरति को ठहराती हूँ। धरनी दास कहते हैं कि मैं इन विमल बारह मासों के गुणों को सुनकर आज बारह मासा गा रहा हूँ।

यह सन्त कवि धरनीदास जी का रचा हुआ ३०० वर्ष पूर्व का बारह मासा है। पाठक इसकी विचार प्रौढता और वर्णन शैली पर विचार करें। कितनी सुन्दर रहस्यानुभूति है।

(२)

चइत अजोधिया में जनमें राम, चनन लिपवलों सगरो धाम।
सुबरन कलसा धइलों भराइ, सब रहि गइले धइले धाम॥
आरे पठवली बइरन केकई बनवा बालक मोर ॥१॥
बइसाख मास रितु भीखम घाम, पवन चलत जइसे बरिसत आग।
जइसे जल बिनु तड़पेले मीन, पिआसल होइहें लखन रघुबीर॥
आरे कवनेरे बिरिछ तरे। ई दुख दीहली केकई। पठवली० ॥२॥
जेठ मास लूह लागेला अग, राम लखन बन सीता सग।
हरि के चरनवा कमल समान, धधनेली धरती अवरू असमान॥
धरत होइहें पग कइसे राम। पठवली० ॥३॥
असाढ मास घन गरजेला घोर, चहके चिरइयाँ कुहुँकेला मोर।
कलपेली कोसिला अवधपुर धाम, बन भीजें मोरा लछुमन राम॥
कवना रे बिरिछ तरे। पठवली बइरन० ॥४॥
सावन मास सरग साधेला तीर, गूँजेले भँवरा फिरेले भुजग।
ठाढि कोसिला अवधपुर धाम, बनवाँ भीजें मोरे लछमन राम॥
झमकि झरी बरिसेले। पठवली बइरन० ॥५॥
भादों मेघवा गिरेले अपार, घर बइठले सगर ससार।
बड़े बड़े बुँदिया बरसत नीर, भीजत होइहें श्री रघुबीर॥
रएनि अँधिअरिया। पठवली० ॥६॥
अइले ए सखि ! मास कुआर। धरम करेला सगरो ससार।

आजु जो होते अजोधिया मे राम। नेवतती बाम्हन देतीं दान।
भरि भरि थरिया मोती। पठवली० ॥७॥
कातिक मास सखि! आवेली दिवारी घर घर दिअवा लेसेली नर नारी।
मोर अजोधिया परल अँधियारी सब सखियाँ मिलि गंगा नहाली॥
रहीं अब कइसे? बन मोर बलका पठवली बइरनि केकई॥८॥
अगहन करेलनि कुँअर सिंगार। सिआवहिं बसतर सोने के तार।
पाट पटम्मर कुलही के मानि। माथे चीरा जड़ल कलीदार॥
गरवा बैजन्ती के हार। पठवली बइरन केकई० ॥६॥
पूस मास सखि! परेला तुसार। रएनि चले जइसे खरग के धार।
बिनु ओढना मोरे लछुमन राम। कलपे कोसिला अजोधियाधाम॥
कइसे करीं मोर जनम जरि गइले। पठवली० ॥१०॥
माघ मास रितु होखे बसन्त। सूत बिदेस तन तजि गइले कंत।
बइठल भरत डोलावसु चँवर, जो आजु होतें मोरा लछुमन राम॥
जनम के जोड़ी। पठवली ॥११॥
फागुन रंग खेलेले सब कोई। अइसन रितु मैं गववलीं रोई॥
बइठल भरत जी घोरें अबीर। का पर छिरकों बिना रघुबीर॥
देली दुख केकई। पठवली ॥१२॥

कौशल्या विलाप करती हैं :—

चैत मास में राम ने अयोध्या में जन्म लिया था। मैंने चन्दन से सारा राज भवन लिपवाया था। स्वर्ण कलश भरवा कर रखवाया था। हाय, कैकेयी वैरिन ने मेरे बालकों को बन भेज दिया॥१॥

वैसाख में भीषण घाम होता है। ऐसी लूह चलती है जैसे आग बरस रही हो। जिस तरह जल के बिना मछली तड़पती है वैसे ही वन में बिना जल के राम लक्ष्मण प्यासे किस वृक्ष के नीचे तड़पते होंगे? हाय, कैकेयी बैरिन ने मुझे यह दुःख दिया। उसने मेरे बालकों को बन मे भेज दिया॥२॥

अरे, जेठ मास में लूह चल रही है। और राम और लक्ष्मण सीता के साथ बन में हैं। राम के चरण कमल समान कोमल हैं और पृथ्वी और आस-

मान दोनों अग्नि की तरह जल रहे हैं। हाय, राम किस तरह से चलते होंगे? ओह! कैकेयी वैरिन ने मेरे लड़कों को वन भेज दिया ॥३॥

आषाढ़ मास में मेघ जोर से गरजता है। चिड़ियाँ चहकती हैं और मोर बोलता है। पर हाय, मैं कौशल्या, इस अवधपुरी धाम में कलप रही हूँ? हाय, मेरे लछमण राम वन में किस वृक्ष के नीचे भीगते होंगे। वैरिन कैकेयी ने मेरे बालकों को वन भेज दिया ॥४॥

सावन मास आकाश तीर साध साध कर पृथ्वी पर छोड़ रहा है। अर्थात् घोर मूसला धार पानी बरस रहा है। (पानी का भौंरा) पानी पर खूब गूँज रहा है और पृथ्वी पर सर्वत्र सर्पराज भ्रमण करते हैं। पर हाय, समय के इस दुर्दिन में राम को छोड़कर मैं कौशल्या यहाँ इस अयोध्या धाम में खड़ी हूँ और वन में मेरे राम लछमण भीग रहे हैं? हाय, झम झम कर पानी बरस रहा है। वैरिन कैकेयी ने मेरे लड़कों को वन भेज दिया ॥५॥

भादों में अपार जल पड़ता है। सारा संसार अपने अपने घर में इस समय बैठा हुआ है। बड़ी बड़ी बूँदों से मेघ बरस रहा है। हाय, कहीं श्रीरामचन्द्र जी भीग रहे होंगे? हाय, इस पर यह रात्रि कितनी अँधेरी है? वैरिन कैकेयी ने मेरे पुत्रों को वन भेज दिया ॥६॥

हे सखी? कुआर मास आया। इस मास में सारा संसार धर्म करता है। अगर आज राम अयोध्या में होते तो मैं भी ब्राह्मणों को निमंत्रण देती। और थाल भर भर कर मोती दान करती। हा! कैकेयी वैरिन ने मेरे बच्चों को वन भेज दिया ॥७॥

हे सखी, कातिक मास में दीपावली आई। घर घर में नर नारी दीप जला रहे हैं। पर मेरी अयोध्या आज अँधेरी पड़ी हुई है। सब सखियाँ मिल जुलकर गंगा स्नान करती हैं। यह देख कर मन व्याकुल हो उठता है। हाय अब किस तरह से रहूँ? वैरिन कैकेयी ने राम लछमण को वन भेज दिया ॥८॥

अगहन मास में कुँअर शृङ्गार करते हैं। स्वर्णतार जड़ित वस्त्र अर्थात् जरतारी के वस्त्र सिलाते हैं। पाट पाटम्बर ही कुल की मर्यादा है। अर्थात् जाड़े

में पाटपाटम्बर से कुल की मर्यादा ज्ञात होती है। माथ पर पगड़ी हो और शरीर पर कलीदार अंगा हो और गले में वैजयन्ती हार हो। पर हाय (हमारे यहाँ तो कोई पहनने वाला है ही नहीं) कैकेयी वैरिन ने बच्चों को वन में भेज दिया ॥६॥

हे सखी! पूस मास में कड़ाके का जाड़ा पड़ता है। रात्रि में पश्चिमी पवन तलवार की धार ऐसा तेज और काटने वाला चलता है। मेरे लछमण और राम के पास कोई ओढ़ने का वस्त्र नहीं है। वे किस तरह इस जाड़े में रहते होंगे? अयोध्या धाम में कौशल्या यह सोच सोच कर दुखी है और कहती है हे सखी! अब कौन उपाय करूं? मेरा जीवन जल गया। वैरिन कैकेयी ने मेरे बच्चों को वन भेज दिया ॥१०॥

माघ मास वसन्त ऋतु का आगमन है। इसमें बसंत पंचमी मनाई जाती है। पर हमारा पुत्र तो विदेश में है और पति शरीर त्याग कर चल दिये। भरत जी बैठे बैठे (राम के खड़ाऊ पर) चँवर डुलाया करते हैं। हा! आज जो मेरे लछमण और राम की जीवन भर एक साथ रहने वाली जोड़ी (अवध) में होती? हाय, कैकेयी ने मेरे बालकों को वन में भेज दिया ॥११॥

फागुन मास में सब कोई रंग खेलता है। पर हा! ऐसे ऋतु को मैं रो रोकर गवाँ रही हूँ? भरत जी बैठे बैठे अबीर घोलते हैं और पूछते हैं कि बिना राम के मैं इसे किस पर डालूँ? हा यह वज्र दुःख कैकेयी वैरिन ने राम लछमण को वन भेज कर दिया ॥१२॥

बारह-मासा गीत की उपक्रमणिका में पं० रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है कि "दिहात के लोग बारहमासा का गाना और सुनना बहुत पसन्द करते हैं क्योंकि एक साथ ही वे बारह महीनों के सुख दुःख का स्रोत देखने लगते हैं, और उसके साथ अपने अनुभव को मिलाकर एक नवीन सुख का रस लेने लगते हैं।" पण्डित जी का कथन अक्षरशः उपर्युक्त गीत को सुनते या पढ़ते समय चरितार्थ होता है। इसमें कितनी सुरतगी और साथ ही स्वाभाविकता और रस परिपाक है। इस गीत को गाये जाते सुनने पर हृदय कैसा रस के साथ बहने लगता है यह सुनने वाला ही अनुभव कर सकता है।

(३)

आली हो, बिनु साम सुन्नर सो कल ना परे हो ॥

पहिल मास लगलें कातिक आन, बिरह बिथा तन लागेले बान।
जिया मोरा तलफत निकसत प्रान, कवने विधि राखों पापी प्रान ०
से कल ना परे हो० ॥१॥

अइले हो सखि ! अगहन मास। का पर राखों जीवन आस।
सूर स्याम बिन सून भइले धाम। बिनु पिया नीक न लागे काम ॥
से कल ना परे हो० ॥२॥

पूस मास पाला परेला तुसार। बिनु पिया जाड़ा जाइ ना हमार ।
लपटि केसे सोवों बिनु रघुवीर ? हनि हनि मोर करेजवा में तीर ॥
से कल ना परे हो० ॥३॥

माघ मास रितु लागे ला बसन्त ! आजुओ ना पवलों पिया तोर अंत ॥
लिखीं कइसे पतिया के ले जाइ। के निरमोहिया के दिही समुझाइ ॥
से कल ना परे हो० ॥४॥

फागुन में सब घोरे' अबीर। मैं कइसे घोरों बिना रघुबीर ।
जरत जइसे होरी उठत ओइ से लूक। बिरह अगिन तन दिहलें फूक ॥
से कल ना परे हो० ॥५॥

चइत मास बन फूलले फूल। हमारा बलमुआ गइले भूल ॥
ठाढ सरजू में मीजिले हाथ अइसन समैया पिया छोड़ले साथ ॥
से कल ना परे हो० ॥६॥

बइसाख मास गवना के बहार। दिन सब बीतेले ठाढे दुआर ॥
कब दोनों अइहें न रहे मन धीर। रहि रहि उठेला करेजवा में पीर ॥
से कल ना परे हो० ॥७॥

जेठ मास बरसाइत होय। बर पूजे निकसी सखि सब कोय।
हा ! सखि, कइके सोरहो सिगार। मथवा के बेंदिया अजबबहार ॥
से कल ना परे हो० ॥८॥

अषाढ मास बड़ बरसत मेह। परले फफोरा सगरे देह।

विरह तन जरले लगले लूक। बरखा के फुहिया भेले तन फूँक॥
से कल ना परे हो० ॥९॥

सावन मास मे हरिअर रूख। हमार कँवल गइल बिनु पिया सूख॥
झूली झुलुहा कटने बिनु रघुबीर। तलफे ला प्रान ना निकले तीर॥
से कल ना परे हो० ॥१०॥

भादो मास जल गरजे गभीर। हमरे नयन भरि अईले नीर॥
जिया मोरा डूबे अवरू उतराय। नाथ खेवैया परदेस में छाय॥
से कल ना परे हो० ॥११॥

कुआर मास वन बोलेला मोर। उठु उठु गोरिया अइले बलमु तोर॥
अइलनि पियवा पुजवलिन आस। एही से गवलीं बारह मास॥
से कल ना० ॥१२॥

विरहिणी विलाप करती है। हे सखी! बिना श्याम सुन्दर के कल नहीं पड़ रहा है। उनके प्रस्थान करने के बाद पहला मास कार्तिक का आया। हे आली! उसमें विरह व्यथा के बाण शरीर में बेधने लगे। इससे कल नहीं पड़ता। ॥१॥

हे सखी फिर अगहन मास आया। अपने इस जीवन की आशा किस पर रखूँ? सूरदास कहते हैं कि श्याम के बिना वह स्थान सूना सा हो रहा है। बिना प्रिय के कोई काम अच्छा नहीं लगता। इस लिये हे सखी! किसी तरह कल नहीं पड़ता। ॥२॥

पूस मास में पाला और तुषार पड़ रहा है। बिना प्रियतम के मेरा जाड़ा नहीं जा रहा है। बिना रघुबीर के किससे लिपट कर सोऊँ? तान तान कर बाण कलेजे में मदन मार रहा है। इससे हे सखी कल नहीं पड़ता ॥३॥

माघ मास ऋतु राज है इसमें वसन्त आरम्भ होता है। (वसंत पंचमी) हे प्रियतम! पर आज भी तुम्हारा अंत मैं नहीं जान पाई मैं पत्र कैसे लिखूँ? उसे कौन लेकर जायगा और कौन निर्मोही प्रियतम को समझा कर देगा? सो हे सखी! कल नहीं पड़ता ॥४॥

फागुन मास में सभी अबीर घोल रहे हैं। पर हाय! बिना रघुबीर के मैं

अबीर कैसे घोलूँ ? होली की तरह जल रही हूँ ! भीतर लूह की तरह (विरह का झंझावात) उठ रहा है । हाय, विरहाग्नि ने मेरे शरीर को फूँक डाला । सो किसी तरह कल नहीं पड़ रहा है । ॥५॥

चैत मास में तमाम बन में फूल फूल रहे हैं । पर मेरे बालम इस मस्ती के मास में भी मुझे भूल गये । मैं खड़ी खड़ी सरयू में (चिन्तन करती हुई) हाथ मल रही हूँ । हाय ऐसे मस्ती के समय में प्रियतम ने साथ छोड़ दिया ! सो हे सखी किसी तरह कल नहीं पड़ता ॥६॥

वैशाख मास में सर्वत्र बधू ससुराल जा रही हैं । इसी की आज बहार है । पर मेरे सारे दिन प्रतीक्षा में दरवाजे पर खड़े खड़े बीत जाते हैं हा ! अब कौन ठिकाना है कि कब प्रियतम आवेंगे । अब मन में धैर्य्य भी तो नहीं रहा (कि आशा बनी रहे) रह रह कर हृदय पीड़ा उठ रही है । हे सखी सो कल नहीं पड़ रहा है । ॥७॥

आषाढ़ मास में मेघ बहुत बरसने लगा । सारे शरीर पर फफोले पड़ गये अर्थात् एक एक बूँद तप्त जल ऐसा शरीर पर लगता है और उससे सर्वत्र फफोले उठ गये हैं । हे सखी ! विरह ने लूह के ऐसा शरीर को भस्म कर दिया । इस वर्षा की फूहियाँ शान्ति देने के बजाय शरीर को ही फूँक रही हैं । सो कल पड़े तो कैसे पड़े ? ।" ॥६॥

जेठ मास में तमाम वर गवना कराने के लिये आये हैं । वर पूजन के लिये सभी सखियाँ सोलहो श्रृङ्गार कर करके निकली हैं । उनके माथे पर बेंदी अजब शोभा देती है । सो हे सखी कल नहीं पड़ता, बिना श्याम सुन्दर के शान्ति नहीं मिलती ॥८॥

श्रावण मास में पेड़ हरे हो रहे हैं । पर मेरा कमल रूपी कलेजा प्रियतम के बिना सूख गया । मैं बिना रघुवीर के कैसे झूला झूलूँ ? मेरे प्राण तड़प रहे हैं पर मदन का तीर जो बिध गया है निकल नहीं रहा है । सो कल नहीं पड़ रहा है । ॥१०॥

भादों का महीना बड़ा गम्भीर होता है । मेरी आँखों में आँसू भर आये हैं । मेरे प्राण डूब और उतरा रहे हैं । मेरी नाव का खेने वाला विदेश में बसा

हुआ है। इससे कल नहीं पड़ रहा है।" ॥११॥

कुवार मास आया। वन में मोर बोलने लगे। हे गौरी, उठ देख तेरा पति आया है। प्रियतम आये। आशा पूरी हुई इसी से बारह मासा गा रही हूँ ॥१२॥

(४)

जेठ मास बाबा मोर बीअहलन असाढ बुनवा टपके ला रे।
सावन सैयाँ सेज सुतली भदउआँ देहि गरुआवेला रे॥
कुआर में गरभ जनइलन कातिक देहिआ धमके ला रे।
अगहन पिआ सुनि पवलनि मनहीं मनवा हुलसे ला रे।
पूसवा में उठलो ना जाला बइठलो ना जाला रे॥
मघवा बसन्त बनाई ला फागुन रंग घोरी ला रे॥
चइत में बबुआ जनमले बइसाख त छठिया जे पूजी ला रे॥

जेठ मास में मेरे पिता ने मेरा विवाह किया। आषाढ़ मास में बूँदे टपकने लगीं। श्रावण में पति की सेज पर सोई और भादों में देह भारी होने लगी। क्वार के महीने में गर्भ मालूम होने लगा। कार्तिक के महीने में कुछ कुछ ज्वर सा होने लगा। अगहन महीना में गर्भ की सूचना पति को मिली तो वे मन ही मन प्रसन्न होने लगे। पूस के महीने में उठना बैठना कठिन हो गया। माघ मास में बसन्त मनाया और फागुन में रंग घोल कर देवर के साथ होली खेली। चैत मास में बालक ने जन्म लिया और बैशाख में मैंने छठ व्रत किया।

(५)

कन्हैया नाहीं अइले, कन्हैया के ते आई।
सीतल चंदन अंग लगावति, कामिनि करत सिंगार।
जा दिन से मन मोहन बिछुरे, सनकै मास असार।
कन्हैया नाहीं० ॥१॥

एक त गोरिया अँगवा के पातरि, दुसरे पिया परदेस।
तिसरे मेह झमाझम बरसे, सावन अधिक अँदेस॥
कन्हैया नाहीं अइले० ॥२॥

भादों रएनि भयावनि ऊधो, गरजे अवरू घहराय।
लवका लवके ठनका ठनके, छतिया दरद उठि जाय।
कन्हैया नाहीं अइले० ॥३॥

कुआरे कामिनि आस लगवली, जोहली पिया के बाट।
अबकी बेरि जो हरि मोर अइहें, हियरा के खुलिहें कपाट।
कन्हैया नाहीं अइले० ॥४॥

कातिक पूरनमासी ऊधो, सब सखि गगा नहायँ।
हम अस अबला परम सुनरिया, केहिके गोहनवाँ जायँ।
कन्हैया नाहीं अइले० ॥५॥

अगहन ठाढी अँगनवा ऊधो, चहु दिसि उपजल धान।
पिया बिनु करकेला मोर करेजवा, तनवा से निकसत प्रान।
कन्हैया नाहीं अइले० ॥६॥

पूसहिं कुहिआ परि गइले ऊधो, भींजि गइले तन के चीर।
चकई चकवा बोली बोलेलनि, ओहि जमुना के तीर।
कन्हैया नाहीं अइले० ॥७॥

माघ कड़ाका जाड़ा ऊधो, सब सखी रुअवा भरावें।
हमरो बलमुआ परदेसवा छवले, पिया बिनु जाड़ न जावे।
कन्हैया नाहीं अइले० ॥८॥

फागुन फगुआ बीति गइल ऊधो, हरि नाहीं अइले मोर।
अबकी जब हरि मोर अइहें, रग खेलबि झकझोर।
कन्हैया नाहीं अइले० ॥९॥

चैत फूले बन टेसुल ऊधो, भवँरा पइठि रस लेइ।
का भँवरा तू लोटा पोटा, काहे दरद मोहि देइ॥
कन्हैया नाहीं अइले० ॥१०॥

बैसाख बाँस कटइतों ऊधो, रचि रचि अटा छवइतीं।
तेहि चढि सूततीं सग कन्हैया, अँचरन करितीं बयारि॥
कन्हैया नाहीं अइले० ॥११॥

जेठ तपे मृग डहिया ए ऊधो, धधके पवन हहराई ।
अइले पियवा विदापति मिलले, जियरा के जरनि बुताई ।
कन्हैया आजु० ॥१२॥

हे ऊधो जी, कृष्ण नहीं आये ? कृष्ण को लिवा लाइये ।

कामिनि (अर्थात् राधा) शीतल चदन अंग में लगाती हैं और तब श्रृङ्गार करती है ताकि श्रृगार के करने से जो विरहाग्नि उत्पन्न हो वह शांत हो जाय (और श्रृङ्गार इसलिये करती हैं कि कृष्ण का स्मरण हो होकर विरहाग्नि प्रज्वलित हो । जिस दिन से मन मोहन बिछुड़े हैं उसी दिन से आषाढ़ महीना सनक गया अर्थात पागल हो गया है (खूब बरस रहा है।) कन्हैया नहीं आये उन्हें लिवा लाइये ॥१॥

एक तो गोरी योंही अंग की पतली है । दूसरे उसके प्रियतम परदेश में हैं । तीसरे झमाझम बादल बरस रहे हैं । सावन में उसके प्राण जाने का अधिक भय है । कन्हैया नहीं आये उन्हें लिवा लाइये ॥२॥

हे ऊधो जी भादों की भयानक रात गरजती है और घहराती है । बिजली चमकती है ठनका ठनकते हैं । मेरी छाती में पीड़ा उठ खड़ी होती है । कन्हैया नहीं आये । उन्हे लिवा लाइये ॥३॥

क्वार महीना में कामिनी आशा करके प्रियतम की बाट जोहती है । सोचती है कि इस बार जो मेरे प्रियतम आ जायँगे तो मेरे हृदय के कपाट खुल जायँगे । पर हे उधव जी हरि नहीं आये । उनको लिवा लाइये ॥४॥

हे ऊधव, कार्तिक की पूर्णिमा को सब सखियाँ अपने अपने प्रियतम के साथ गंगा स्नान करती हैं । पर हाय, मैं परम सुन्दरी अबला किसके साथ स्नान करने जाऊँ ? कन्हैया नहीं आये उधव जी, जाइये उन्हें लिवा लाइये ॥५॥

अगहन महीना में मै (प्रतीक्षा मे) आँगन में खड़ी रहती हूँ । और चारों ओर धान के खेत लहलहा रहे हैं । हाय, प्रियतन के बिना मेरा कलेजा फटता जा रहा है । और शरीर से प्राण निकल रहे है । हे ऊधव कृष्ण नहीं आये । आप जाइये उन्हे लिवा लाइये ॥६॥

पूस में झींसी पड़ गयी । मेरे शरीर के वस्त्र भीग गये। और उधर

यमुना तीर चकवा चकई बोल रहे हैं। हे उधो कन्हैया नहीं आये जाकर लिव लाइये ॥७॥

माघ महीना में कड़ाके का जाड़ा पड़ता है। सब सखियाँ रजाई में रु भरा रही हैं। पर हमारे प्रियतम परदेश में जाकर बस रहे हैं। बिना उन जाड़ नहीं जाता है। उधो जी कन्हैया नहीं आये जाकर लिवा आइये ॥८॥

हे ऊधो जी, फाल्गुन मास में फाग बीत गया, पर तब भी मेरे ह नहीं आये। अबकी बार जो हमारे हरि आवेंगे तो खूब धूम धाम से र खेलूँगी। उधो जी हरि नहीं आये जाकर लिवा लाइये ॥९॥

हे उधो, चैत में टेसू (पलाश) वन वन में फूल रहा है। और भौंरे उ फूलों में पैठ पैठ कर रस पान कर रहे हैं। अरे मस्त भ्रमर तू पुष्प पराग से धू धूसरित हो पृथ्वी पर क्या लोट पोट रहा है। अरे निष्ठुर मुझे क्यों प्रियतम क स्मरण करा करा कर हृदय में पीड़ा उत्पन्न कर रहा है। हे ऊधो कन्हैया न आये। जाओ लिवा लाओ ॥१०॥

हे ऊधो बैसाख मास में (यदि प्रियतम पास होते तो) मैं बाँस व वाती और छत पर रच रच कर सुन्दर छप्पर छवाती और उस अटारी पर उ छप्पर में कृष्ण जी के साथ सोती और अचल डुला डुला कर उनको ह करती। हे उधो कन्हैया नहीं आये, जाकर उन्हे लिवा लाओ ॥११॥

हे ऊधो, जेठ महीना में मृगदाह नक्षत्र अत्यन्त तपता है। वन ह हवा हहरा हहरा कर बहती है। उस महीना में प्रियतम आये और विद्याप कहते हैं कि विरहिणी से मिल गये और उसके हृदय की जलन मिट गयी ॥१२

(६)

भोर में कातिक परेला जाड़।
मोहि छोड़ि कन्ता भइले बनिजार ॥
मोना झुलवि हो ॥१॥
अगहन मास जे पहिली सनेह।
चलु गोरिया नैहर अपना गेह।
पान फूलले कापड़ चीन्ह।

कन्त बिछोह दई दुख दीन्ह ॥
मोना झुलवि हो ॥३॥

पूस मास पिया बरत तोहार ।
मैं बरती पाचों अतवार ॥
नहाइ धोइ के दीहीं असीस ।
जीअहु कन्त तू लाख बरीस ॥
मोना झुलवि हो ॥४॥

माघ मास घन परेला तुसार ।
काँपे हाथ अवरु थर थर गात ॥
काँपहू सेज तुरगहि खाट ।
मों नाही जइहों तू सब जाव ॥
मोना झुलवि हो ॥५॥

फागुन मास बहे फगुनी बयारि ।
तरवर पात सबहि झरि जाँय ॥
जो में जनितिउँ फगुनी बहार ।
हरि जी के रखितिउँ नैन छिपाय ॥
मोना झुलवि हो ॥५॥

चैत मास बन फूलले टेसु ।
गोरिया पठवली पिया के सनेसु ॥
सुनि सनेस पिया अजहूं न आय ।
ई दुनो नैना रोय गवाँय ॥
मोना झुलवि हो ॥६॥

बइसाख मास सब मगल चार ।
अनिहनि गवना बिअहिहनि बारि ॥
छइहन माड़ो गइहन गीत ।
कन्त के पंथ जोहत मोहि बीत ॥
मोना झुलवि हो ॥७॥

जेठ मास वर साइत होय।
वर पूजन निकसीं सब लोय ॥
अँगुरी मे अधरा कजरवा क रेख,
फिरि फिरि कन्त मोर मुख देख ॥
मोना भुलवि हो ॥८॥

असाढ मास असाढ़ी जोग।
घर घर मदिर सजें सब लोग ॥
चिरई चिरँगुल खोता लगाय।
हमरा बलमु परदेस में छाय ॥
मोना भुलवि हो ॥९॥

सावन मास सखि अधिक सनेह।
पिय विनु भूलेउँ देह ओ गेह ॥
पहिरलीं कुसुमी उतरलीं चीर।
पिया विनु सोहे न माँग सेनूर ॥
मोना भुलवि हो ॥१०॥

भादो मास जल गहिर गँभीर।
दामिनि दमके धारे न धीर ॥
ठनका ठनके मेह घहराय।
सेज छाड़ि धनी रोइ गवाँय ॥
मोना भुलवि हो ॥११॥

कुवार मास वन वोलेला मोर।
आउ आउ गोरिया वलमु अइले तोर ॥
अइले वलमुआ पुजली आस ॥
पूरल 'विदापति' वारह मास ॥
मोना भुलवि हो ॥१२॥

अर्थ सरल है। यह गीत विशुद्ध भोजपुरी रूप में न लिख कर पंडित रामनरेश त्रिपाठी जी ने अपनी कविता कौमुदी में हिन्दी मिश्रित भाषा का

प्रयोग किया है। सम्भव है वह उन्हें वैसा ही मिला हो और युक्त प्रांत के मध्य के किसी जिले से यह उन्हें मिला हो जहाँ इसका विकृत रूप वैसा हो गया हो। त्रिपाठी जी इसे मैथिल कोकिल 'विद्यापति' जी द्वारा प्रणीत नहीं मानते। इसका प्रमाण भी नहीं देते। पर विद्यापति जी के कई अन्य गाने भी मुझे भोजपुरी के मिले हैं। और विद्यापति जी का भोजपुरी भाषी प्रदेश में रहना भी सिद्ध है। इससे भोजपुरी में उनका कहना स्वाभाविक ही मालूम होता है खास कर तब जब सूर और मीरा के गीत जो भोजपुर प्रान्त से सुदूर के थे मिलते हैं। विद्यापति जी तो मिथिला में रहते थे काव्य भी उनका मैथिली में है जो भोजपुरी की सगी बहन है।

(७)

प्रथम मास असाढ़ हे सखि ! साजि चलेला जलधार हो ॥
उमडि घुमडि मेह बरसन लागे भीजि गइली लामी केस हो ॥
एहि प्रीति कारन सेत बान्हल सिया उदेसे श्रीराम हो ॥१॥
सावन हे सखि ! सब्द सुहावन रिमिझिम बरसेले बूँद हो ॥
सब के बलमुआ रामा घर घुमि अइले हमरो बलमु परदेस हो ॥
एहि प्रीति कारन सेतु० ॥२॥
भादो हे सखि ! रएनि भयावनि दूजे अन्हरिया राति हो।
मलकाजे मारे रामा ठनका जे ठनके, सेहु देखि जिअरा डेराय हो ॥
एहि प्रीति कारन सेतु० ॥३॥
आसिन हे सखि ! आस लगवलीं आस न पूरले हमार हो।
आस जे पूरले रामा कुबरी सवति चेरा जिनके त राखेली लोभाय हो ॥
एहि प्रीति कारन सेतु० ॥४॥
कातिक हे सखि ! पूरन महीना सब करें गंगा असनान हो ॥
सब सखि पहिने रामा पट हे पितम्बर हम धनि गुदरी पूरान हो ॥
एहि प्रीति कारन सेतु० ॥५॥
अगहन हे सखि ! अग सोहावन चहुं दिसि उपजल धान हो ॥

चकवा चकइया रामा केलि करतु हैं से देखि जिया हुलसाय हो ॥
एहि प्रीति कारन सेतु० ॥६॥
पूस हे सखि ! ओस परि गइली भीजि गइली लामी केस हो ॥
चोलिया जे भीजे रामा काट कटरवा केरा जोबन भीजेला अनमोल हो ॥
एहि प्रीति कारन सेतु० ॥७॥
माघ हे सखि ! आए बसन्त ऋतु ओरहि गइली जाड़ अब सेस हो ॥
सब सखि सूते रामा-अपना बलमू सगे हमरा बलमू परदेस हो ॥
एहि प्रीति कारन सेतु० ॥८॥

हे सखी ! प्रथम मास आषाढ़ मे जल की धारें सज सज कर बह रही हैं। उमड घुमड करके मेह बरसने लगे और मेरे लम्बे लम्बे केश भीग गये। हे सखी, इसी प्रेम के कारण श्रीरामचन्द्र जी ने समुद्र में सेतु बाँधा था ॥१॥

हे सखी ! सावन महीना में रिमझिम रिमझिम मेघ बरसता है। इस मास का शब्द सुहावना है। हे राम, सब किसी के प्रियतम परदेश से घूमकर घर चले आए पर मेरे बालम अभी तक परदेश में पड़े हैं ॥ इसी प्रेम के कारण श्रीरामचन्द्र जी ने सीता के उद्देश से समुद्र मे पुल बाँधा था ॥२॥

भादों महीना में, हे सखी, ऐसे ही निशा भयावनी होती है फिर ऊपर से यह अँधियारी और हृदय कपा रही है। अरे राम ! मेरी आँखें कैसी चमक उठती हैं जैसे यह बिजली गरजती और चमकती है। इसको देख देख हृदय कैसा डर जाता है। इसी प्रेम के कारण रामचन्द्र जी ने सीता को प्राप्त करने के उद्देश से समुद्र मे सेतु बाँधा था ॥३॥

आश्विन महीना में, हे सखी ! आशा थी प्रियतम मिलेंगे। पर वह मेरी आशा पूरी नहीं हुई। परन्तु कूबरी सौत की आशा अवश्य पूरी हुई जिसने मेरे कत को लुभा रखा है। इसी प्रेम के कारण हे सखी ! रामचन्द्र ने सीता को प्राप्त करने के लिए समुद्र में सेतु बाँधा था ॥४॥

हे सखि ! कार्तिक मास पूर्ण महीना है। सब सखियां गगा स्नान करती है सब माथी रेशमी वस्त्र पहन रहीं है पर हा मैं पुरानी गूदरी पहने हूँ। इसी प्रेम के लिए श्री रामचन्द्र जी ने सीता के लिए समुद्र में सेतु बाधा था ॥५॥

अगहन मास हे सखि आगे ही से सुहावना मालूम हो रहा है। चारों ओर धान उपजा हुआ है। चकवा चकई केलि कर रहे हैं। इसको देखकर हृदय हुलसा करता है। इसी प्रीति के लिए रामचन्द्रजी ने समुद्र में पुल बाँधा था ॥६॥

पूस में हे सखि। ओस पड़ने लगी। उससे मेरे लम्बे लम्बे केश भीग गये और विभिन्न काट कटाव की मेरी चोली भी भीगने लगी तथा भीगने लगे मेरे अनमोल जोबन। इसी प्रीति के लिये श्रीरामचन्द्रजी ने सेतु, सीता के उद्देश से बाधा था ॥७॥

माघ महीना में, हे सखि, वसन्त का शुभागमन् हुआ और जाड़े के दिन भी इसी साथ समाप्त हुए। सब सखियां अपने प्रियतम के साथ सो रही हैं पर हमारे प्यारे बालम! विदेश में पड़े हैं। इसी प्रीति के लिए हे सखि! श्रीरामचन्द्र जी ने समुद्र में सेतु बाँधा था ॥८॥

इस गीत के अन्त के शेष चार मासों के वर्णन वाले चरण नहीं मिले। हजारीबाग जेल में यह गीत हजारी बाग के एक वालंटिअर से प्राप्त हुआ था। शेष चरण उसे स्मरण नहीं थे। पर इस गीत की पदावली और चन्द क्रियाओं के प्रयोग जैसे 'गइलो अइलो' इत्यादि से इस गीत के कर्ता विद्यापति जी मालूम होते हैं।

(८)

एहि पार गंगा राम ओहि पार जमुना, बीचे कदमिया के गाँछ जी ॥
ओहि गाँछ ऊपर कागा बोले, बोले विरहिया के बोल जी ॥१॥
गाई के गोबर पिअरी माटी, सीता जे महल लिपावहीं ॥
ओही महल भीतर सासु सोवें, बहुअरि बेनिया डोलावहीं ॥२॥
सासु! हो दुख केसे कहों, राऊर बेटा परदेस जी ॥
खरच मांगत तड़पि बोले, बोले विरहिया के बोल जी ॥३॥
गाई के गोबर पीअरी माटी, सीता जे महल लिपावहीं ॥
ओही महल भीतर गोतिनी सोवे, बहुअरि बेनिया डोलावहीं ॥४॥
गोतिनी! हो दुःख केसे कहों, राऊर देवर परदेस जी ॥

खरच मागत तड़पि बोले, बोले बिरहिया के बोल जी ॥५॥
गाई के गोबर पीअरी माटी, सीता जे महल लिपावहीं ॥
ओही महल भीतर ननद सोवें, बहुअरि बेनिया डोलावहीं ॥६॥
ननदी हो दुख कासे कहीं, राउर भइया परदेस जी ॥
खरच मागत तड़पि बोले, बोले बिरहिया के बोल जी ॥७॥

हे राम, इस पार गंगा और उस पार यमुना हैं और बीच में कदम्ब का पेड़ है। उसी कदम्ब के वृक्ष पर काग विरह की बोली बोल रहा है ॥१॥

गाय के गोबर और मिट्टी से सीता का महल लीपा गया है और उसी महल के भीतर सास शयन करती हैं और बहू उनको पंखा झल रही है। पंखा झलते झलते उसने कहा, 'हे सास ! मैं अपना दुख किससे कहूँ ? आपका पुत्र परदेश है। जब मैं अपने लिये खरचा माँगती हूँ तो डाँट कर जवाब दे देता है और ऊपर से यह काग विरह की बोली बोल रहा है ॥२,३॥

पर इस पर सास ने जब कुछ ध्यान नहीं दिया तब बहू ने इसी तरह (४ से ७ तक के चरणों में) आँगन महल लीप कर जेठानी से तथा ननद से क्रम से यही बातें पंखा झल कर कहा पर किसी ने कुछ सुनवाई नहीं की। इस गीत से पता चलता है कि नवागता बहू का सम्मिलित परिवार में पति के विदेश रहने पर कितना दुख पूर्ण जीवन बीतता है। घर भर की सेवा करना, खाना पीना भी वैसे ही और ऊपर से दो पैसे हाथ पर भी नहीं मिलते कि कुछ अपना निजी काम चले। विरह कष्ट इसके अलावे सताता रहता है।

(९)

एहि पार गंगा रामा ओहि पार जमुना, बीचे कदम केरा गाछ जी ॥
गाछ ऊपर कागा बोले बोले बिरहिया के बोल जी ॥१॥
चिलमा चढवइत रामा जरली चिटुकिया, जरि गइले कवल करेज रे ॥
कागा हो तोके दूध भात देबों, सोनवा मढइबों दूनो ठोर रे ॥२॥
जाइ के बोलहु कागा पिया जी के देसवा, बोल बिरहिया के बोल जी ॥
सावन कंत बिदेस छवले, कइसे के धारे धनिया धीर जी ॥३॥

बिरहिणी भोजन कर के चिलम चढ़ा रही थी कि इसी बीच काग बोल

उठा। उसे पति स्मरण हो आया और चुटकी जल गयी। साथ ही कलेजा भी विरह अग्नि से झुलस उठा। वह विलाप करने लगी।

इस पार गंगा है और उस पार यमुना बह रही हैं। बीच में कदम्ब का एक पेड़ है। उस वृक्ष पर काग विरह की बोली बोल रहा है। (उस बोली को सुनकर) चिलम चढ़ाते चढ़ाते मेरी चुटकी जल गयी और जल गया कमल रूपी कलेजा। हे काग, मैं तुमको दूध भात दूँगी और तुम्हारे दोनों ठोर सोने से मढ़वा दूँगी। तुम पिया के देश जाकर बोलो और यही विरह की बोली बोलो। कहना कि सावन के महीने में कन्त विदेश छाये हैं उनकी स्त्री किस तरह धैर्य धारण करे?

कितनी सुन्दर विरह व्यथा कही गयी है। इसको जब सावन मास में झूले पर स्त्रियाँ उच्च स्वर में हृदय के आवेग के साथ गाती हैं तो दृश्य में विरहिणी और उसकी वेदना के रूप सामने खड़े हो जाते हैं। इस गीत को मैं ने अपनी पूजनीया माता जी से झूला पर अपनी आठ दश वर्ष की अवस्था में सुना है। उस समय माता जी जब अन्य स्त्रियों के साथ चलते झूले पर पञ्चम स्वर में इसे गाती थीं तो भी इसके स्वर ने मेरे हृदय में जैसी मीठी चोट की थी वह आज भी मुझे स्मरण है। गीत कुछ लम्बा है पर मुझे इतना ही स्मरण था। पाठक इतने ही में सन्तोष करें इसमें भी अन्य बारहमासे के समान बारहोमास का वर्णन अवश्य रहा होगा।

(१०)

बहेले बयारि पुरवइया ये सजनी कइसिन सुनुगेला आगि जी।
चिलम चढ़वइत जरली चुटुकिया जरि गइले कवल करेज जी ॥१॥
आगि लगावों रामा कोइरी कोइरिया जरिजा तमकुआ के खेत जी,
चिलमा चढ़वइत जरली चुटुकिया, जरि गइले कँवल करेज जी ॥२॥
केई कहेला बेटी नित उठि बोलइयों केई कहेला छव मास जी।
केई कहेला बहिनी काजे परोजवें, केई कहेला दुरि जाहु जी ॥३॥
अम्मा कहेली बेटी नित उठि बोलइयों, बाबा कहेले छव मास जी।
भइया कहेले बहिनी काजे परोजवें, भउजी कहेली दुरि जाहु जी ॥४॥

किया तोर भउजी रे नून तेल ढरलों, किया रे कोठिलवा पेहान जी।
किया तोर भउजी रे भैया लाई जोरलों काहे कहेलू दूरि जाहु जी ॥५॥
नाहीं मोर ननदी नून तेल ढरलू नाही रे कोठिलवा पेहान जी।
नाहीं मोर ननदी भइया लाई जोरलू, ओठवे कारन दूरि जाहु जी ॥६॥
केई जे देला राम अन धन सोनवा, केई जे लहरा पटोर जी।
केई जे देला रामा चढन के घोड़वा, केई महुरवा के गाँठि जी ॥७॥
अम्मा जे देलीं राम अन घन सोनवाँ, बाबा जे लहरा पटोर जी।
भइया देलें रामा चढन के घोड़वा, भउजी महुरवा के गाँठ जी ॥८॥
अम्मा के सोनवा राम उठि पठि जइहें, फाटि जइहें लहरा पटोर जी।
भइया जे घोड़वा रामा नगर कुदइहें, भउजी अपजश हाथ जी ॥९॥

पूर्वी हवा वह रही है। हे सखी! उपली में धीरे धीरे आग सुलग रही है। चिलम चढ़ाते हुए मेरी चुटकी जल गयी। अर्थात् पूर्वी पवन के बहने से प्रियतम का ध्यान हो आया जिससे चुटकी जल गयी, साथ ही विरह ताप से कलेजा भी जल गया। हे राम, कोइरी (मुराई) कोड़ार (तरकारी बोनेवाला खेत) में आग लगे, और उसके तम्बाकू के खेत जल जायँ जिसके कारण चिलम चढ़ाते समय मेरी चुटकी जल गयी। और जल गया विरह व्यथा से कमल समान मेरा हृदय ॥१,२॥

कौन कहता है कि मैं कन्या को नित्य ही बुलाऊँगा और छः मास पर उसे बुलाने की बात कौन कहता है? और कौन ऐसा कहता है कि बहन को काज परोजन पर ही बुलाऊँगा और कौन यह कहता है कि नहीं उसे दूर ही रहने दो? ॥३॥

मेरी मा कहती हैं कि बेटी को नित्य ही बुलाऊँगी। पिता जी कहते हैं कि नहीं उसे छठे छमास बुला लिया करूँगा। पर मेरे भाई जी कहते हैं कि हे बहन मैं तुम्हे त्योहारों पर बुला लिया करूँगा। और भावज कहती है कि नहीं तुम दूर हो जाओ ॥४॥

ननद ने भावज से कहा—हे भावज, मैंने आप का क्या नमक तेल चुराया था आपके भंडार की ढेहरी खोलकर अन्न निकाला अथवा आप के स्वामी

से मैंने कभी आप की शिकायत की जो आप मुझे दूर जाने के लिए कह रही हैं ? ॥५॥

भावज ने कहा, हे ननद तुमने नमक तेल नहीं निकाला, न देहरी से अन्न ही चुराया और न अपने भाई से मेरी शिकायत ही कभी की। मैं तुमको केवल तुम्हारी कड़ी जबान के कारण ही दूर जाने के लिए कह रही हूं ॥६॥

मुझको किसने अन्न धन और स्वर्ण दिये ? किसने सम्पत्ति सौभाग्य की वस्तु और रेशमी वस्त्र दिये ? किसने चढ़नेको घोड़ा दिया और किसने विष की गांठ बाँधकर साथ भेजा ? ॥७॥

मा ने अन्न धन और स्वर्ण दिये। पिता ने लहरा पटोर दिया। भाई ने चढ़ने के लिये घोड़ा दिया और भावज ने विष की गांठ दी। मा का सोना खर्च हो जायगा, लहरा पटोर भी फट जायगा और भ्राता के दिये हुये घोड़े को प्रियतम चढ़कर नगर में कुदावेंगे, पर भावज जी के हाथ केवल अपयश ही रह जायगा क्योंकि उसकी विष की गांठ मेरा प्राणान्त करेगी ॥८,९॥

(११)

असों के सवना सइआँ घरे रहु, घरे रहीं ननदी के भाय ॥
साँप छोड़े ला साँप केचुल हो, गंगा छोड़ेली अरार।
रजवा छोड़े ला गृह आपन हो, घरे रहीं ननदी के भाय ॥१॥
घोड़वा के देबों महेलवा त हथिया लवँगिया के डार।
रउरा के प्रभु देबों घीव खीचड़िया, घरे रहीं ननदी के भाय ॥२॥
नाहीं घोड़ा खइहें महेलवा, हाथी ना लवँगिया के डाढि ॥
नाहीं हम खइबों घीव खिचड़िया, नैया बरधी लदबों विदेस ॥३॥
नैया बहि जइहें मँझधरवा, बरधि चोर लेइ जइहें रे।
तोहि प्रभु मरिहें पटवरवा, घरे रहीं ननदी के भाय ॥४॥
नैया मोर जइहें धीरहिं धीरे, बरधी न चोर लेइ जइहें रे।
तोहि धनि बेचबों मुगलवा हाथे करबों में दूसर बिआह ॥५॥

हे स्वामी, हे मेरी ननद के भाई, इस वर्ष के सावन में आप घर पर ही

रहो। अरे साँप अपना केंचुल छोड़ रहा है, गंगा अपना किनारा छोड़ रही हैं हे राजा, आप अपना गृह छोड़ रहे हैं? अरे ननद जी के भाई आप इस सावन में घर रहें। मैं आपके घोड़े को महेला खिलाऊँगी, हाथी को लवँग की डाल कटवा कर खाने को दूंगी। और हे मेरे प्रभु आपको घी और खिचड़ी भोजने के लिए दूंगी। हे ननद जी के भाई घर ही पर रहिये (विदेश न जाइये) ॥१,२॥

स्वामी ने कहा, हमारे हाथी लवँग की डार नहीं खायेंगे। घोड़ों को महेला नहीं रुचेगा और मुझे भी घी खिचड़ी पसन्द नहीं। मैं नाव और बरधी विदेश के लिए लादूंगा ॥३॥

स्त्री ने कहा, आपकी नाव गंगा की भीषण बीच धार में बह जायगी। बरसात में बरधी को चोर चुरा लेंगे और हे प्रभु, आपको भी घटवार (घाट पर रहने वाले मल्लाह चोर) मार डालेंगे। इसलिये इस सावन में आप घर रहें ॥४॥

पति ने कहा, अरे मेरी नाव धीरे धीरे जायगी और बरधी को चोर नहीं चुराने पावेंगे। हे धनि, मैं तुमको मुगल के हाथ बेच दूंगा और अपना दूसरा व्याह करूँगा ॥५॥

निष्ठुर व्यवसायी पति ने अपनी स्त्री की एक बात न सुनी वल्कि अन्त में उसे बेचकर दूसरा विवाह करने का भी भय दिखाया। जान पड़ता है कभी प्रचुर धन देकर मुगल स्त्रियों को खरीदते भी थे।

(१२)

एही देसवा मोर जनम बीति गइलो, केहु नाहीं लावे पिया के
खबरिया। सन्तो हो ॥
आइल मास असाढ़ आस मोरा लागल रे की।
गगन घटा मेघ बरीसन लगले भींजि गइली चुनरी विरह उर जागे ॥
सन्तो हो ॥ यही देसवा० ॥२॥
सावन सुरतिया लगवलों पिया के कइसे पाइत्रि रे की।

भादवँ मास रएनि अँधिआरी, गुरु बिना भ्रम लागल उर भारी।
सन्तो हो। यही देसवा० ॥२॥

कब मिलिहैं पति मोर नयन भरि देखबि रे की।
कवन जतनिया हम लाई ए सजनी, आसिन मास बीति गइली रजनी॥
सन्तो हो०। यही देसवा० ॥३॥

फूल कमल कुम्भिलइले भँवरवा डरि भागल रे की।
विरहा लागि सखी भीजे अँगिया कासे कहाँ केहू न पूछे बतियाँ।
सन्तो हो। यही देसवा० ॥४॥

कन्ता रहे परदेस कातिक निअराइल रे की।
भरि भरि नीर नयन भरि आवे, सब सुख सखी मोरा मनहुँ न भावे।
सन्तो हो। यही देसवा० ॥५॥

इसी देश में मेरा जीवन बीत गया। कोई प्रियतम का सन्देश नहीं लाता।

आषाढ़ का महीना आया। मेरी आशा प्रियतम मिलने की लगी थी। गगन मंडल में घटा उमड़ आई। मेघ बरसने लगे। मेरी चूनर भीग गई। हृदय में विरहाग्नि उत्पन्न हो गई। हे सन्तो कोई प्रिय का सन्देश नहीं लाता। इसी देश में मेरा जीवन बीत गया॥१॥

सावन में ध्यान लगाये थी कि अपने प्रियतम को अवश्य पाऊँगी। भादों के महीना में भयानक अँधेरी रात में मार्ग प्रदर्शक गुरु के बिना हृदय में बड़ा भ्रम उठ रहा था। हे सन्तो इसी देश में आयु बीती चली जा रही है कोई प्रियतम का सन्देश नहीं लाता॥२॥

हा! मेरे प्रियतम मुझे कब मिलेंगे? मैं कब उनको आँख भर कर देखूँगी? हे सखी! मैं कौन यत्न करूँ? आश्विन मास की रजनी भी तो ऐसे ही बीत गयी। हा! इसी देश में मेरा जीवन बीत गया। हे सन्तो! कोई प्रियतम का सन्देश नहीं लाता॥३॥

कमल का फूल कुम्भला गया। भँवरा डर कर भाग गया। विरह लगने से अँगिया भीग रही है। हाय, मैं किससे विरह व्यथा कहूँ? मेरी बात कोई

नहीं पूछता ? हा ! इसी देश में जीवन बीत गया, कोई प्रियतम का सन्देश नहीं देता ॥४॥

कातिक निकट आ गया। प्रियतम अभी तक परदेश ही में हैं। आखों में रह रह कर नीर भर आते हैं। हे सखी सब सुख है पर एक भी मेरे मन को नहीं भाता। हे सन्तो ! कोई प्रियतम का सन्देश नहीं लाता। मेरा जीवन इसी देश में बीत गया ॥५॥

इस गीत के भी सात मास के सात चरण मुझे नहीं मिले। उनमें अवश्य कबीर साहब का नाम होगा। यह उन्हीं की रचना ज्ञात होती है।

(१३)

कवन उपाय करों मोरी आली स्याम भइले कूबरी बस जाई ॥
चइत मास मोंहि मदन सतावे बइसाख दैव दुखदाई,
जेठ मास तन तपत घाम में कह वृष भान दुलारी ॥१॥
कवन उपाय करों० ॥
चढत असाढ नभ घेरि अइले बदरा, सावन मास बहे पुरवाई।
भादों अगम डगरिया ना सूझे, जल से भरि गइले ताल तलाई ॥२॥
आसिन मास सरद रितु आइल, कातिक में सखी लेली रजाई।
अगहन अधिक कलेस स्याम बिनु, नैहर से हम सासुर आई ॥३॥
पूस मास सखि परत तुसारी, माघ पिया बिनु जाड़ न जाई।
फागुन का सग रग हम खेलबि, सूर स्याम बिना जदुराई ॥४॥ कवन०

अर्थ साफ और सरल है।

(१४)

मास असाढ गगन घन गरजे ले, सब सखि छान्हि छवाई।
हम वऊरी पिया बिनु डोलउँ, सूने मदिल बिनु साई ॥१॥
सावन मेघ बरसे मोरी सजनी, कोइलि कुहुक सुनाई।
हम बऊरइलों पिया बिनु व्याकुल, तलफत रएन बिताई ॥२॥
भादँव गरुअ गँभीर सखी हो, करिया घटा नभ छाई।
चमकेला बिजुली घोर घन गरजे, सूनी सेज पिया नाहीं ॥३॥

कुआर मास सब हिलि मिलि सखियाँ, झूले माँगन आई ।
हमरे बलमु परदेस बिलमि रहले, उन बिना कुछु ना सोहाई ॥४॥
कातिक घर घर सब सखि मिलि के रचि रचि भवन बनाई ।
हम पापिन प्रीतम बिना सजनी, रोइ रोइ दिनवाँ बिताई ॥५॥
अगहन अगम सनेह सबे सखी, पिया सँगे गवना जाई ।
देखि देखि मोरा बिहरेला करेजवा, पिया बिना जिया अकुलाई ॥६॥
पूस मास परदेस पिअरवा, आवन के सुधि नाहीं ।
काइ करी कत जाई सखी हो, कवन बैरनि बिलमाई ॥७॥
माघ तुसार परे लगले सजनी, कन्ता ना पाती पठाई ।
अइसन निपट कठोर पिअरवा, निपटे सुधि बिसराई ॥८॥
फागुन मास आस सब टूटल, जोगिन बनि के धाई ।
गएब नगरिया के गलियन गलियन, पिया पिया सोर मचाई ॥९॥
चइत चित्त चिन्ता अति बाढल, तन मन भसम चढाई ।
निस वासर हम राह जोहत रहीं, नयनन नीर झरि लाई ॥१०॥
बइसाख मास बसी धुनि सजनी, मन कत तलफ मचाई ।
बिरह सरपवा डसेला मोरे हियरा, तन मन सब बउराई ॥११॥
जेठहिं जब ई गति भइल सजनी, निरखि परल एक झाई ।
सुनवा मँदिल एक मूरति दरसल, देखते जियरा जुड़ाई ॥

आषाढ़ मास में गगन में घन गरजने लगे और सब सखियाँ अपना अपना छप्पर छवाने लगीं । परन्तु हा ! मैं पगली प्रियतम के बिना पागल बनी इधर उधर डोलती फिरी । मेरा मंदिर बिना साँई के शून्य पड़ा रहा ॥१॥

अरी सजनी ! इस श्रावण मास में मेघ जोर जोर से बरसने लगा और उसी में कोयल अपनी कूक भी सुनाने लगी । मैं प्रियतम के बिना व्याकुल होकर पागल बन गयी । और तलफ तलफ कर तप तप करके रात बिताने लगी ॥२॥

हे सखी ! यह भादों मास गम्भीर और बोझ सा मालूम हो रहा है । तमाम आकाश में काले काले बादल छा रहे हैं । बिजली चमकती है और घनी

घटा गर्जन कर रही है । पर हा ! मेरे प्रियतम नहीं हैं । मेरी सेज सूनी है ॥३॥

इस कुआर मास में सब सखियाँ हिल मिल करके झूला मेरे पास माँगने के लिये आई । पर हा ! मेरे बालम तो परदेश में बिलम रहे । उनके बिना मुझे कुछ भी नहीं सुहाता है ॥४॥

कार्तिक मास में सब सखियाँ मिल मिल करके अपना अपना घर लीप पोत कर (दिवाली के लिये) सुन्दर बना रही हैं । लेकिन सखी ! मैं पापिन प्रियतम के बिना रो रोकर दिवस बिता रही हूँ ॥५॥

इस अगहन मास में सभी सखियों के मन में पहले से प्रेम उमड़ा हुआ है । सब अपने अपने प्रियतम के साथ गवन जा रही हैं । यह देख देख कर अरे मेरे भीतर से विरह उमड़ रहा है प्रिय के बिना हृदय अकुला उठा है ॥६॥

इस पूस मास में भी प्यारा परदेश ही में रहा । घर आने का मानो उसे कोई विचार ही नहीं हो रहा है । हे सखी ! अब मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? किस बैरिन ने मेरे प्रियतम को बिलमा लिया ? ॥७॥

हे सजनी ! इस माघ में तो तुषार गिरने लगा और कन्त ने एक पाती तक नहीं भेजा ! हा ! ऐसा अत्यन्त कठोर प्यारा है कि उसने मेरी सुधि बिलकुल ही भुला दी ॥८॥

हा ! इस फागुन मास में मेरी सभी आशायें टूट गईं । निराशा में योगिन का रूप धारण करके सर्वत्र दौड़ने लगी और अपरिचित नगर की गली गली पिया पिया का शोर मचाने लगी ॥९॥

इस चैत मास में प्रिय मिलन की चिन्ता इतनी बढ़ी कि मैंने शरीर और मन दोनों पर भस्म चढ़ाया और रातों दिन प्रियतम के आने की प्रतीक्षा में नेत्रों से आँसू की झड़ी लगाये रही ॥१०॥

इस वैशाख मास में हे सखी ! प्रियतम की वंशी की धुनि की स्मृति ने मन में कितनी तड़पन उत्पन्न कर दी । हा ! विरह रूपी सर्प ने मेरे हृदय को डँस दिया । अब मेरा तन और मन बुद्धि हीन होकर नितान्त उन्मत्त हो गया ॥११॥

हे सजनी ! जेठ मास में जब मेरी ऐसी दयनीय दशा हो गई तब प्रियतम की एक छाया सी झलक पड़ी । और हृदय के शून्य मन्दिर में एक मूर्ति का दर्शन मिला । अहा ! उसे देखते ही जीव को शान्ति मिल गई ॥१२॥

पलटू दास जी का परिचय उनके सोहरों के उदाहरण के साथ दिया जा चुका है । प्रस्तुत बारह मासा उन्हीं का रचा है । इसमें कितने सुन्दर रूप से उन्होंने ईश्वर मिलन की गाथा गाई है । जब इतनी तल्लीनता हो तब कहीं ईश्वर की झलक मिले । अनुभूति कितनी सत्य और स्वाभाविक रूप से प्रगट हुई है । छायावाद का कितना सुन्दर नमूना है । यह गीत पलटू दास के प्रकाशित संग्रह में भी छपा है । पाठ भेद कुछ अवश्य है ।

(१५)

सखी ! मोरे पिया के खबरिया ना आइल हो ।
चारि वेद के टाट बिछावल, तेहि पर कीने दुकनियाँ हो ।
सत सेर मन परेम तरजुई, नाम के मारी ला टेनियाँ हो ॥१॥
सुरति सबद कइ बएल लदाइला, ज्ञान के लादीं लदनियाँ हो ।
सहर जलाल पुर मूड़ मुँडवली, अवध तोरलों कर धनियाँ हो ।
पलटू दास सत गुरू बलिहारी, पवलों भगति अमनियाँ हो ॥२॥

अरी सखी ! आज तक मेरे प्रियतम की कोई खबर नहीं आई । चार वेदों का जो टाट (बिछावन विशेष) बिछा है उस पर आज तक मैं दुकान छानती चली आई और इस दुकानदारी में सत्य के सेर और मन के तराजू का प्रयोग कर प्रियतम के नाम की रट की टेनी (तौलने समय जो उँगली से दबा कर दुकानदार तराजू की डंडी को वजन में कम सामग्री तौलने के अभिप्राय से एक ओर दबा देता है उसी को भोजपुरी में टेनी मारना कहते हैं) भी खूब मारती रही ॥१॥

हे सखी ! आज तक सुरति और शब्द (अनहद शब्द) की बरधी लादती रही और ज्ञान का व्यापार करती रही । जलालपुर शहर में मैंने मूँड मुड़ाया और अवध (अयोध्या) में अपनी करधनी तोड़ी । पलटू दास कहते हैं कि सत गुरु की बलिहारी है कि जिनकी कृपा से प्रीतम की अमनियाँ (मौज करके खूब

सौंफ किये गये बर्तन या किसी वस्तु को अमनियाँ किया हुआ कहते हैं। उसी अर्थ में अमनियाँ का यहाँ भक्ति के साथ प्रयोग हुआ है) भक्ति अर्थात् निर्मल स्वच्छ भक्ति मिल गई। कितना सुन्दर अध्यात्म पक्ष में विरह वर्णन है।

अलचारी

'अलचारी' शब्द लाचारी का अपभ्रंश है। लाचारी का अर्थ विवशता आजिजी है। उर्दू शायरी में आजिज़ी पर खूब गजलें कही गयी हैं और आज भी कही जाती हैं। वास्तव में पहले पहल भोजपुरी में अलचारी गीत का प्रयोग केवल आजिज़ी विवशता के भावों के प्रदर्शन के लिये ही होता था। पर समय के दौरान में इस छन्द का प्रयोग अन्य भावों के लिए भी होने लगा।

(१)

चिठिया जे लिखी लिखी भेजेले सँवरिया,
मोर कन्हैया जी घरे चलि आवसु ना।
आरे सब केहु आवेला हथिया से घोड़वा,
मोर कन्हैया जी [1]सेवारे चढ़ि आवसु ना।
चिठिया जे लिखी लिखी भेजेले सँवरिया,
कान्हा घाटे घाटे नैया लेइ आवहु जी।
चिठिया जे लिखी लिखी भेजेले सवरिया,
कान्हा धीरे धीरे बंसिया बजावसु जी।
आरे बंसिया सबद सुनि उठे ले सँवरिया,
साँवरि धीरे धीरे जेवना बनावसु जी।
आरे जेवना जेवत कान्हा मने मुसकइले,
आरे लपटि धरेले मोर बहिया जी ॥१॥

अर्थ साफ है। [1]सेवार = नाव।

(२)

बारहि बार तोहि बरजों मोर सामी,
ते उतरी बनिजिया मति जइह मोरे सामी ॥

उतरी वनिजिया के उतरी वगालिन ,
से रखिहें करेजवा लगाइ मोर सामी ॥
वारहि वार तोहिं वरजो मोर सामी ,
से अनका सेजरिया मति जइह मोर सामी ॥
अनका सेजरिया जव जइव तू हूँ सामी ,
से उतरि जइहें तोहरा मुखवा के पानी[२]॥
हमरा सेजरिया जव अइव मोर सामी ,
से तू हूँ होइव रजवा हमहूँ पट रानी ॥१॥

अर्थ सरल है ।[२] उतरि जइहें मुखवा के पानी' = चेहरे का सौन्दर्य नष्ट हो जायगा । वनिजिया = वन प्रदेश । सेजरिया = शय्या ।

(२)

वारहि वार तोहिं वरजों मोर सामी, से झँझरी नैया जनि चढिह मोर सामी ।
झझँरी नैया जव चढ़लीं मोर सामी, से तर भइली नैया ऊपर भइले पानीं ॥
जव तर भइली नैया ऊपर भइले पानी, त मारि के डुबुकिया रउरा पार होइ जाईं ॥
मारि डुवुकिया रउरा पार होइ जाईं, त केस रउरा झलके सेवारवा के नाईं ॥
केस राउर झलके सेवारवा के नाईं त दाँत रउरा चमके विजुलिया के नाईं ॥
दाँत रउरा चमके विजुलिया के नाईं , त वोल रउरा वोलीलीं मयनवा के नाईं ॥
वोल रउरा वोलीला मयनवा के नाईं , मे चाल रउरा चलीला फिरंगिया के नाईं ॥

हे स्वामी, मै वार वार आपसे मना करती आई कि आप झंझरी नाव पर मत चढ़ना । पर आप नहीं माने । झझरी नाव पर चढ ही गये । फल हुआ कि नाव नीचे डूब गई और पानी ऊपर भर गया । हे स्वामी, जब नाव डूब गई और पानी भर गया तब आप क्या देखते हैं । डूबकी मार तैर कर पार हो जाइये । और जब डुवुकी मार तैर कर पार हो रहे थे तब आपका केश सेवार के ऐसा झलक रहा था और जब केश सेवार सदृश दीख रहा था तो दाँत की पंक्तियाँ बिजली की तरह चमक रहीं थी । एक ओर दाँत की पंक्तियाँ (मुख

खुलने पर) बिजली की तरह चमकती थीं तो दूसरी ओर आप मैना की तरह मीठी बोली बोल रहे थे। हे प्रियतम, आप मैना की तरह जहाँ मीठी बोली बोलते हो वहाँ फिरंगियों (अँग्रेजों) की तरह चाल भी शान से चलते हो।

नौका डूब जाने पर तैराक स्त्री स्वय तैरती हुई और पति को साथ साथ तैराती हुई और उत्साह देती हुई किनारे आई। उसी समय का यह गीत है। इसका रचना काल अँग्रेजों के आगमन के बाद का ज्ञात होता है।

खेलवना

इस गीत में अधिकाश वात्सल्य प्रेम ही गाया जाता है। करुण रस के जो गीत मिले वे उद्धृत हैं। खेलवना से वास्तविक अर्थ है बच्चों को खेलने वाले गीत, पर अब इसका प्रयोग भी अलचारी की तरह अन्य भावों में भी होने लगा है।

(१)

सोने के खरउआ आवेले कवन साहि, अम्मा के दुआर भइले ठाढ
मोरे ललना ॥
चलहु अम्मा रे हमरी महलिया हमरी बहुआ वेहाल बाड़ी ललना ॥
जाहु बबुआ रे अपनी महलिया दुलहिन के बोलिया खिआल बाड़ें ललना ॥
अब ना जीअबों ललना कि अपना ना जीअबों ॥१॥
सोने के खड़उआँ आवेले कवन साहि, ठाढ़ भइले भउजी के दुआर मोरे
ललना ॥
चलहु भउजी रे हमरी महलिया हमरी धनिया वेहाल बाड़ी ललना,
अब ना जिअबों, ललना, कि अब ना जीअबों० ॥
जाहु बबुआ हो अपनी महलियाँ दुलहिन के झगरा इआदि बाड़ें ललना ॥
कि अब ना जिअबों, ललना, कि अब ना जिअबों० ॥२॥
सोने के खड़उआ अइले कवन साहि, ठाढ भइले बहिनी दुआर मोरे ललना ॥
चलहु न बहिनी रे हमरी महलिया, हमरा घरे रनिया वेहाल बाड़ी ललना ॥
कि अब ना जीअबों, ललना, अब ना० ॥

जाहु ना भइया रे अपनी महलिया भउजी के खुदुका इश्रादि वाड़ें ललना।
इश्रादि वाड़े ललना कि अब ना० ॥३॥
सगरे नगरिया घूमि फिरि अइले ठाढ भइले धनि के दुआर मोरे ललना ॥
सगरी नगरिया धनि घूमि फिरि अइलीं केहु ना वाड़े तोहार मोरे ललना ॥
अबकी गरहवा से ऊपर होइबों सामी सासु जी के चइला ले कपार फोरबों
ललना ॥ कपार फोरबों ललना० ॥४॥
जी गइलीं, ललना, जुडाइ गइलीं, ललना, अबकी नोहकटिया से ऊपर होइबों
गोतिनी के झोंटा धइ लसार देबों ललना० ॥
अबकी बरहिया से ऊपर होइबों ननदी के छुरी लेके सीना फरबों ललना
सीना फरबों ललना० ॥५॥
बबुआ गेंना खेलिहें ललना जुड़ा जइबों ललना कि जी जइबों ललना
कि जी जइबों ललना० ॥६॥

सोने के खड़ाऊँ पर अमुक शाह आये और अपनी माता के दरवाजे पर खडे हुए। उन्होंने कहा, हे मा! मेरे महल में चलो। मेरी स्त्री की प्रसव पीड़ा से बुरी दशा हो रही है। माता ने कहा, अरे पुत्र अपने महल में जाओ। मैं नहीं जाऊँगी। तुम्हारी बहू की कड़ी कड़ी बातें मुझे स्मरण हैं। ॥१॥

सोने के खड़ाऊँ पर चढ़ कर अमुक.... महाशय अपनी भावज के दरवाजे आकर खड़े हुए और कहा, अरी भावज, मेरे महल मे चलो प्रसव पीड़ा से मेरी पत्नी की दशा बुरी है। वह अब नहीं जीऊँगी अब नहीं जीऊँगी कह कर रो रही है। भावज ने कहा, 'हे देवर! तू अपने महल वापिस जाओ। मुझे बहू की बोली स्मरण है। 'अब नहीं जीऊँगी, अब नहीं जीऊँगी, वह क्या कह रही है।" ॥२॥

सोने के खड़ाऊ पर अमुक शाह. चढ़ कर अपनी बहन के महल में गये और कहा "हे बहन मेरे महल मे चलो मेरी रानी की दशा प्रसव पीड़ा से बहुत बुरी है। 'वह अब न जीऊँगी, अब न जीऊँगी' कह कह कर रो रही है।"

बहन ने कहा, 'हे भाई, अपने महल मे तुम जाओ। मुझे भौजी की

मार याद है। वह नहीं भूलेगी।' ॥३॥

फिर पति ने सारे नगर में घूम फिर कर सब से चलने के लिये कहा; पर सबने यही उत्तर दिया। तब लाचार हो अपनी स्त्री के दरवाजे आकर वह खड़ा हुआ और कहा, 'हे, पत्नी मैं सारे नगर में घूम फिर आया पर कोई तुम्हारा शुभेच्छु नहीं है।'

कटु भाषी पत्नी ने इस पर सरोष होकर कहा, 'अबकी बार मैं इस ग्रह से निपट जाऊँ तो सास जी का सिर चैला से तोड़ दूँगी।' ॥४॥

हे ललना, अब तो मैं जी गई (पुत्र उत्पन्न हो गया)। अब की नोह कटिया का रस्म समाप्त हुआ नहीं कि गोतिनी का बाल पकड़ कर खूब घसीटूगी। और बरही रस्म से छुटकारा पाकर ननद की छाती छुरी से चीर दूँगी। हे, स्वामी, (मुझे इनकी फिक्र नहीं है) मेरा बच्चा गेंदा खेलेगा बस उसी को देखकर मैं तृप्त हो जाऊँगी। जुड़ा जाऊँगी। जी जाऊँगी।'

कर्कशा नारि का जीता जागता नमूना है।

(२)

माई उठे उठे कमरि से पीरा अबना जीअबि हो।
सासु के देहु न बोलाई भँडारवा सँऊपबि हो ॥१॥
माई उठे कमरि से पीरा अब ना जीअबि हो ॥
ननदी के देहु न बोलाई रसोइआँ सँउपबि हो ॥
माई उठे कमरि से० ॥२॥
माई गोतिनी के देहु न बोलाइ बलकवा सऊँपबि हो।
माई उठे कमरि से० ॥३॥
माई ! सइयाँ के देहु ना बोलाई सँनुखिया सऊँपबि हो ॥
माई उठे कमरि से० ॥४॥
माई घरि रात गइले पहर राति गइले जनमेले होरीला हम जीअबि हो ॥५॥
सासु के देहु बोलाई भँड़रवा हमरे हटे, धरे हमरे सिरे हाथ भँड़रवा हमरे हटे ॥६॥
ननदी के देहु बुलाइ रसोइया हमरे हटे। अब हम जीअबि हो० ॥७॥

गोतिनी के देहु बोलाई बलकवा हमरे हटें । अब हम जिअबि हो० ॥९॥
सइयाँ के देहु बोलाई सनुखिया हमरे हटे । धरू हमरे सीरे हाथ अब हम
जिअबि हो ॥१०॥

गर्भवती गृहिणी को प्रसव वेदना शुरू हुई और वह अपने जीवन से निराश हो कहने लगी :—

अरे अरे मेरी कमर में वेदना शुरू हुई । अब मैं नहीं जीऊँगी । मेरी सास को कोई बुला दो मैं उन्हें भडार सौंपूँगी । मेरी कमर में पीड़ा शुरू होने लगी अब मै नहीं जीऊँगी ॥१॥

अरे मेरी ननद को कोई बुला नहीं देता कि मै उन्हें रसोई सौंप दूँ ? मेरी कमर में पीड़ा प्रारम्भ हो गई । अब मैं नही बचूगी । ॥२॥

अरे मेरी जेठानी को कोई बुला दे । मै अपना बालक उनको सौंपूँगी मेरी कमर में प्रसव वेदना रह रह कर होने लगी । अब मै नहीं जीऊँगी । ॥३॥

अरे कोई मेरे सैंया को बुला दे मैं उन्हे अपना सन्दूक सौंप दूँ । अरे मा, कमर में वेदना उठने लगीं । अब मैं नहीं जीऊँगी । ॥४॥

एक घड़ी रात बीत गई । पहर रात जाते जाते बालक ने जन्म लिया । अब मैं जीऊँगी । सास को बुला दो भडार मेरा ही है । वह मेरे सिर पर हाथ रखे और आशीर्वाद दें । भण्डार मेरा ही है । ॥५,६॥

अरे मेरी ननदजी को बुला दो । रसोई मेरी है । अब मै जी गई । अरे जेठानी को बुला दो । बालक मेरा ही है । अब मै जी गई । अरे स्वामी को बुला दो । मै कह दूँ कि सन्दूक मेरा ही है अब मै जीऊँगी । वे हमारे मस्तक पर हाथ रखकर मुझे आशीर्वाद दें । ॥७,८,९,१०॥

इस गीत मे सबसे प्यार की जानेवाली सुलक्षणा गृहिणी के प्रसव वेदना का और पुत्रोत्पत्ति का वर्णन है पूर्व की कर्कशा गर्भिणी से यह कितनी भिन्न है ।

———

जवनी हाथे गढले रे सोनारा ककही केरे साल ए ॥४॥
रोवेले सोनरा के मइया लटि धुने रे केस ए ।
अबकी गुनहिया सातो बहिनी माफ करो हमार ए ॥५॥
रोवेले सोनारा के जोइया लटि धूनि रे केस ए ।
अबकी गुनहिए जगदम्बा मइया सेनूरा बकसे मोर ए ॥६॥
गढि दीहे ए ककही सीतलि माई जी जोरी दीहले रे साल ए ।
सोने के मचीअवे जगतारनि झारति बाड़ी लामी केस ए ॥७॥

अरे शीतला माता की कघो किस चीज की बनी है ! उसमें किस चीज के साल लगे हैं ? और किस वस्तु की बनी मचिया पर बैठकर सातो बहन लम्बे लम्बे बाल झारती हैं । ॥१॥

शीतला माता की कघी सोने की है और उसमें रूपे के साल लगे हैं । और सोने की मचिया पर बैठकर जगदम्बा केस झारती हैं ॥२॥

फूल मती माता की कघी टूट गई । उनकी बाह में उससे मोच आ गई । उन्हें क्रोध आया और वह सोनार के घर पहुँची । वहाँ पहुँच कर उन्होंने कहा, "अरे सोनार तेरी जाघ निर्बल हो जाय । और तुम्हारी उस बाँह में धुन लगे जिस हाथ से तूने कघी के साल बनाये थे । ॥३, ४॥

इस पर स्वर्णकार की मा (लट धुन धुन) सर पीट पीट कर रोने लगी । और कहने लगी, हे माता अब की बार अपराध क्षमा करो । मेरी गोद भरो । सोनार की स्त्री सर पीट पीट (केश धुन धुन) कर रो रो कहने लगी, 'हे जगदम्बे अबकी बार अपराध क्षमा करो । मेरा सिन्दूर छोड़ दो । हे शीतला जी फिर से यह कघी गढ़ देगा और टूटे साजों को भी बना देगा । हे जगतारिणी मा आप सोने की मचिया पर बैठ कर बार झारना ॥५, ६, ७॥

(३)

कजरू से जब चलली सीतलि मइया झालरि डड़िया फनाई जी ॥१॥
लाले लाले डड़िया ए माई जी सबूज ओहार जी ।
लागि गइले बतीसो कहार जी ॥२॥
डड़िया फनाई जब चलली जगदम्मा हो माई जी,

वेनी=चोटी। पर यहाँ अलवेली का अपभ्रंश ज्ञात होता है। वेनी के अर्थ से भी मतलब लगाया जा सकता है। अर्थात् स्त्री तो सुन्दर है पर उसके बाल वेनी गूँथने लायक नहीं हैं। बहुत छोटे हैं।

(५)

लिखि चिठिया जनक जी भेजेले, बाँचि रहे लें सीरी राम हो।
राम बिआहन जनकपुर चललें, भली भाँति सजेले बराति हो ॥१॥
हाथिन साजीले घोड़न साजी ले, साजी ले भरथ भुआल हो।
राम जी के घोड़वा भले भाँति साजीले, सीता के सोरहो सिंगार हो ॥२॥
जब बरिअतिआ दुअरवा अइली हो, मागे दुअरवा के नेग हो।
घर में के भाड़ि देहरी देइ पटकलनि, सत्रू के धिया जनि होइजी ॥३॥
कलसा का ओते ओते बेटी बिनती करे, बाबा से अरज हमार हो।
गाडल गड़ुआ उखारो मोरे बाबा, राखों जमीदारे के नाँव जी ॥४॥
ई धिअवा मोर बएरनि भइली, भइली करेजवा के सूल हो।
इहे रे बिटिअवा मोर गजना करवलसि साजन लोग बइठाइ हो ॥५॥
से सामी मोरे सभवा बइठले, पेहू नाहो उतरिया देइ हो।
से सामी मोरे कर जोरि बिनवेले, नई नई करे ले सलाम हो ॥६॥

जनक ने पत्र लिखकर भेजा। श्री राम ने उसे पढ़ कर रख दिया। राम जनकपुर को व्याह करने चले और पूर्ण रूप से बारात साजने लगे। हाथी घोड़ा साजे गये और भरत जी स्वयं सजकर तैयार हुए ॥१॥
रामचन्द्र का घोड़ा भली भाँति सजाया गया और इधर सीता जी का भी सोलह शृंगार किया गया ॥२॥

जब बारात दरवाजे पर पहुँची तब राम ने दुआरचार का नेग मांगा जनक ने घर के भीतर रखा हुआ अन्न का खाली भाण्ड देहरी पर ला पटका और व्यग्र होकर कहा शत्रु को भी कन्या न उत्पन्न हो ॥३॥

कलश की ओट से कन्या ने विनय किया कि पिता जी से मेरी एक प्रार्थना है। हे पिता, अपना गड़ा हुआ माल (गड़वा=जो गाड़ा गया हो।) उखाड़िये और अपने जमीन्दार होने का नाम निभाइये ॥४॥

पिता ने कहा, 'अरे यह कन्या मेरी बैरिन हुई और हमारे कलेजे का शूल बन गयी। इसी पुत्री ने मेरी ऐसी गजना (फजीहत) इतने सज्जनों को दरवाजे पर बैठा कर कराई ॥५॥

उधर माता कह रही थी, अरे मेरे ऐसे स्वामी सभा में बैठकर बिनती कर रहे हैं और कोई (बारात वाला) उत्तर तक नहीं देता। अरे मेरे ऐसे स्वामी (जो कन्या तक को अपनी इज्जत के सामने शत्रु समझते थे) हाथ जोड़ जोड़ कर बिनती करते हैं और झुक झुक कर सब को प्रणाम करते फिरते हैं ॥६॥

(६)

लिखि लिखि पतिया भेजेले जनक राजा, देहु दसरथ जी के हाथ जी।
से पाती बाँचे ले राजा दसरथ जी, सभवा में सभ के सुनावे जीं ॥
हमरे घरे बाड़ी बारी सीता धिया, तोहरे घरे राम कुँआर जी ॥१॥
अगहन दिनवा कुदिन राजा जनक, आवे देहु जेठ बइसाख जी।
पण्डित बोलाइबि लगन सोचाइबि, रामहि कराइबि बिआह जी ॥२॥
गाई के गोबर अँगना लिपावल, गज मोती चउक पुरायो जी ॥
अलस कलस पुरहथ ले धरावल, मानिक दिअरा बरावल जी ॥३॥
भइले बिआह चलेले राम कोहबर, सरहज छेकेंली दुआरि जी ॥
हमार नेग जोग दीहीं वर सुन्नर, तब रउरा कोहबर जाईं जी ॥४॥
बाड़ा सबेरे में बिदा जे सुनीला, जीअबि ए सखि कइसे जी ॥
माता जी ए सखी ओइसे जे रोवेली, जइसे समुद्र के धार जी ॥५॥
माता मीलबि पिता जीव मीलबि, भउजी मीलबि धाई के ॥
बड़ा प्रेम से बहिनी मीलबि, अवना आइबि भव सागर जी ॥६॥

राजा जनक ने पत्र लिख कर भेजा और आज्ञा दी वह राजा दशरथ के ही हाथ में दिया जावे। उस पत्र को राजा दशरथ ने अपनी भरी सभा में सभी सज्जनो को सुना करके पढ़ा। उसमे लिखा था 'मेरे घर सीता जी क्वाँरी हैं। आप के घर में रामचन्द्र कुँआरे हैं। उन्होंने उत्तर दिया हे राजा जनक विवाह के लिए ठीक समय नहीं है। अगहन चैत बैसाख आने दीजिये पण्डित बुलाकर लग्न शोध कराऊँगा और राम का विवाह सीता से करूँगा ॥१,२॥

गाय के गोबर से आगन लिपाया गया। उस पर गज मुक्ताओं का सुन्दर चौक बनाया गया। उस पर पुरइथ यानी चावल रख कर कलस वगैरह रखाया गया और उन पर माणिक दीप आदि जलाये गये ॥३॥

तब विवाह हुआ और राम कोहबर (सुहाग भवन) चले। वहाँ सरहज ने दरवाजा रोक कर कहा, 'हे सुन्दर वर, मेरा नेग दे दीजिये तब आप सुहाग भवन मे प्रवेश करे' ॥४॥

उधर सीता रो रो कर अपनी सखियों से कह रही है, 'हे सखी ! सुनती हूँ कि बड़े तड़के विदाई होगी मैं किस तरह घर छोड़कर जीऊँगी। हे सखी ! मेरी मा इस तरह रो रही हैं जिस तरह समुद्र का धार बहता हो ॥५॥

'हे सखी, मै माता जी से और पिता जी से मिलूँगी। भावज से दौड़ कर मिलूँगी। और बड़े ही प्रेम से अपनी बहन से मिलूँगी। हे सखी, अब फिर इस भव सागर में नहीं आऊँगी' ॥६॥

(७)

बेटी, जाहि दिन जनम तोहार भदउआँ के राति परीवा,
राम जी काहे लागी जनमेली मोर बिटिया।
हँसुआ खोजी त बेटी पसँघी ना मीले,
सितुहे छिलवली तोरे नार बिटिया ॥
राम जी काहे लागी जनमेली मोर बिटिया ॥१॥
पुरुब खोजलों बेटी पछीमो खोजलों,
खोजलों सहर गुजरात बिटिया ॥ राम० ॥२॥
तोरे जोग बेटी हो वर नाहीं मिलले,
कइसे करबि कन्यादान बिटीया ॥राम०॥३॥
पुरुब गइलों बेटी पछीमों त गइलों,
गइलों ओरीसा जगरनाथ बिटिया ॥राम०॥४॥
तोरे जोग बेटी हो वर एके मिलले,
मीलेले राज कुँआर बिटिया ॥राम०॥
राम जी एहो लागी जमली मोरि बिटिया ॥५॥

अछुत काँपे ला चन्नन काँपे ला,
· काँपे ला कुसवा के डाढि बिटिया ॥राम०॥६॥
बीच मड़उआ बाबा मोर कापी ले,
जाँघ बइठवले आपन बिटिया ॥राम०॥७॥
जनि कापुहु अच्छुत जनि कापहु चनन ।
जनि काँपु कुसवा के डाढि बिटिया ॥राम०॥८॥
जनि काँपु बाबा हो जाँघे तेले धिअवा,
भले करव कन्यादान बिटिया ॥
राम जी एही लागी जनमेली तोरि बिटिया ॥६॥

हे कन्या, जिस दिन तुम्हारा जन्म हुआ उस दिन भादों की रात थी और तिथि थी परिवा। हे भगवन ! किस लिये मुझे तूने बेटी का जन्म दिया। मैं नाल काटने के लिये हँसिया खोज रहा था। पर वह नहीं मिली। आग जलाने की लकड़ी भी (पसँघी = लकड़ी का वह कुन्दा जो सौर गृह के दरवाजे पर धीमी आँच जलता रहता है)। नहीं थी। हे कन्या, सीप से मैंने तेरा नाल कटवाया। हे भगवान्! किस हेतु मेरे घर कन्या का जन्म दिया ? ॥१॥

अरी कन्या मैंने तेरे लिये वर पूर्व दिशा में खोजा, फिर पश्चिम दिशा में तलाशा और गुजरात शहर में दुलहा खोजा। पर तेरे योग्य वर मुझे, कहीं नहीं मिला। हा, मैं कैसे कन्या दान करूँगा। दैव, तूने किस हेतु मेरी कन्या का जन्म दिया ? ॥२,३॥

हे वेटी, मैं पूर्व गया और पश्चिम भी गया और अन्त में ओरीसा में जगन्नाथपुरी तक पहुँचा। वहीं तुम्हारे योग्य वर राजकुमार मिला हे बेटी, इसी विवाह के ही लिए बेटी का पिता के घर जन्म होता है। ॥४,५॥

(मंडप में) अक्षत काँप रहा है। चदन काँप रहा है। और उधर कुश की डाल भी कांप रही है। और बीच मडप में अपनी कन्या को जाँघ पर, कन्या दान के लिये बैठाये हुये, पिता काँप रहे है। हा दैव, किस हेतु आपने मेरे घर कन्या का जन्म दिया ? ॥६,७॥

हे अक्षत, कांपो नहीं। चदन, तुम भी न कांपो। हे कुश की डाल तु

भी भय न कर। हे पिता, जाँघ पर कन्यादान हेतु कन्या को बैठाये हुये तुम भी न काँपो शुभ विधि से भलीभाँति कन्यादान कर दोगे। डरो मत। ईश्वर, ने इसीलिये तुमको कन्या दिया ॥८,६॥

यहाँ कन्या के जन्म से लेकर विवाह तक गरीब पिता को कठिनाइयों और विपदाओं तथा चिंता का सजीव करुण चित्रण कितना सुंदर उतरा है। कन्यादान करते भी पिता यज्ञ के निर्विघ्न पार हो जाने की कामना से भय वश थर थर काँप रहा है और यहीं तक नहीं, मंडप के निर्जीव अक्षत, चंदन और कुश भी काँप रहे हैं। कन्या का विवाह हिंदू समाज में कितना विघ्न बाधापूर्ण और जिम्मेदारी का कर्त्तव्य समझा जाता है यह इस गीत से साफ प्रकट होता है। फिर भी समाज की कुरीतियाँ और दहेज की प्रथा हमारे कितने घरों को आये दिन बिगाड़ रही हैं।

(८)

बेरिहिं बेर तोहि बरजों ए बेटी हो, सुरुज के जोते जनि जाहु ए ॥
सुरुज के जोतिये चनरमा छपित होखे, चन्द्र बदन कुम्भिलाई ए ॥
कही तू तए बेटी! तमुआ तनइतों हो, कहितू त छत्र गटइतों ए ॥
काहे लागी बाबा! हो तमुआ तनइब, काहे लागी छत्र गढइब ए ॥
आजु के राति बाबा तोहरे मड़उआ, काल्हि सुबुध बर के साथ हो ॥
अब त भइलीं पर गोत्री ए बाबा! तोहार धियवा अब ना बानी हो ॥
खोरवनि खोरवे हो बेटी! दुधवा पीअवलीं, बेटा से अधिका दुलार हो ॥
दुधवा के नेकी नाहीं दीहलू हो बेटी! लगलू पराया बर के साथ हो ॥
दुधवा के नेकी दीहें भइआ हो कवन भइया, हम पर गोत्री तोहार हो ॥

पिता ने कन्या से कहा, मैं बार बार तुम से मना करता रहा कि सूर्य की ज्योति में न जाओ। सूर्य की ज्योति के कारण से चन्द्रमा छिप जाता है तुम्हारा भी चंद्रवदन कुम्भला जायगा। हे बेटी, कहती तो मैं तुम्हारे लिये खेमा खड़ा कर देता और यदि कहती होती तो छाता बनवा दिये होता।

इस पर कन्या ने उत्तर दिया, हे पिता, क्यों खेमा खड़ा कराओगे और क्यों छाता ही बनवाओगे। आज की रात मैं तुम्हारे मंडप में हूँ, कल बुद्धिमान

वर के साथ होऊँगी। अब तो मैं पर गोत्री बन गई।। तुम्हारी कन्या अब नहीं रही।

पिता ने दुखी होकर कहा, हे बेटी, मैंने तुम्हे कटोरा भर भर कर दूध पिलाया, और अपने पुत्र से अधिक तुम्हारा दुलार किया। सो हे बेटी, उस दूध की नेकी तूने नहीं निभाया बल्कि मुझे भूल कर पराये वर के साथ लग गयी।

कन्या ने उत्तर दिया, हे पिता, उस दूध की नेकी मेरा अमुक भाई • •• देगा। मुझे तो तुमने अपना पर गोत्री बना दिया।

यह गीत उस समय का ज्ञात होता है जब विवाह कन्या के सामने ऐसी लज्जा की वस्तु नहीं समझा जाता था और उसकी सम्मति के साथ ठीक होता था। अतः कन्या उस संबंध में लज्जा वश कुछ बोलती ही नहीं हो सो बात नहीं थी। लाड़ से पाली गई कन्या ने पिता से किस तरह सच्ची सच्ची बातें कहीं है। इससे यह भी प्रगट है कि कन्याओं में समय के अनुसार अपने को बना लेने की कैसी अद्भुत शक्ति है।

(९)

बाबा ना देखों बाग बगइचा, बाबा ना देखों घनी फुलवारी ॥
कहाँ दल उतरी ॥
बेटी ला देखों बाग बगइचा, बेटी ला देखों घनी फुलवारी।
महुआ दल उतरी ॥
बेटी! किया तोर दान दहेज थोर, बेटी किया तोर नायक छोट।
काहे रे मन बेदिल ॥
बाबा! ना मोरे दान दहेज थोर, बाबा ना मोरे नायक छोट।
नाहीं मन बेदिल ॥
बाबा! एकहि बाते रउरा चुकलीं, बाबा हम गोरिया वर साँवर।
ओही रे मन बेदिल ॥
बेटी! साँवर साँवर मति करू, बेटी! साँवर श्री भगवान।
उहे रे वर सुन्दर ॥

बेटी ! वरवा के माई बड़ी फूहर, बेटी लावेली तीसिआ के तेल-
त घमवा सुतावे ओही रे वर साँवर ॥
बेटी तोहार मयरिया बड़ी गिहिथिन, बेटी लावे लीं तेल फुलेल-
त छहवाँ सुतावेली ओही रे बेटी सुन्दर ॥
बेटी रगर छिपा भरि चन्नन, बेटी लावना समधिन के बेटा ।
उहे वर सुन्दर ॥

कन्या पिता से पूछ रही है । हे पिता, मेरी दृष्टि में कोई ऐसा बाग या बगीचा या कोई घनी फुलवारी नहीं दीखती जहाँ बारात ठहराई जाय । बारात कहाँ ठहरेगी ?

पिता ने कहा, हे बेटी, मैं बाग बगीचा लगा दूँगा । घनी फुलवारी भी लगा दूँगा । पर बारात तो मंडप में ही उतरेगी ।

"हे बेटी, तुम्हारा मन बेदिल देख रहा हूँ । सो क्यों ? क्या तुम्हारा दान दहेज मैंने कम दिया या तुम्हारा वर छोटा है कि मन तुम्हारा गिरा हुआ है ?"

कन्या ने उत्तर दिया, पिता जी, न तो मेरा दान दहेज ही कम है न मेरा नायक ही छोटा है । और न मेरा मन ही बेदिल है । परन्तु हे पिता, आप एक ही बात में चूक गये और वह यह है कि मैं गोरी हूँ और वर 'सांवर' वर्ण है । इसी से मेरा मन कुछ गिरा हुआ है ।

पिता ने कहा, बेटी सांवर, साँवर, न कहो । सांवर वर्ण तो श्री भगवान हैं और वे ही वर सब से सुन्दर भी हैं । बात असल यह है कि वर की माता बड़ी फूहर है । अरी बेटी, वही वर को तीसी का तेल लगाती थी और धूप में सुलाती थी । उसी से वर का रँग साँवला हो गया परन्तु तुम्हारी माता गृह कार्य कुशल है । वह अपनी कन्या को तेल फुलेल लगाती रही और धूप में न सुला कर छाया में सुलाती रही । इसी से उसकी कन्या सुन्दर है । तुम भी थाल भर चन्दन रगरो और समधिन के पुत्र को लगाओ तब देखो वही वर सुन्दर दीखेगा ।

यह गीत तो तब का है जब कन्या की राय भी विवाह में ली जाती

थी। स्वयवर प्रथा के टूटने के बाद जब ब्राह्मण विवाह क्षत्रियों में प्रारम्भ हुआ उस समय का यह गीत ज्ञात होता है क्योंकि पिता कन्या से और कन्या पिता से बिना सकोच भाव के विवाह के प्रबन्ध के सम्बन्ध में, वर के पसन्द और ना पसन्द होने के सम्बन्ध में खुलकर बातें कर रहे हैं।

(१०)

आमवा मोजरी गले, कोइलरि बसेर लेली हो।
ताहि तरे बनिया उतरि गइले मोती सारी छानि देले हो ॥१॥
घरवा से निकले ली कवनि बेटी, कीनि नादीं बाबा मोती सारी हो।
बाबा, कहेले बेटी हम निरधन, कहाँ पइबों मोती सारी हो ॥२॥
अतना बचन जब सुनली त चलि भइली ससुरवा देसे हो।
अँतरहि भेंटे ले कवन दुलहा कइसे सुगवा चलि अइलू हो ॥३॥
आमवा मोजरी गइले, कोइलरि बसेर ले ली हो।
ताहि तर बनिया उतरि गइले, मोती सारी छानि देले हो ॥४॥
बाबा कहे ले बेटी हम निरधन, कहाँ पइबों मोती सारी हो।
ए चुप होखु धनिया ! तू चुप होखु, पटोरवे लोर पोंछ हुए ॥५॥
ए हम जइबों राजा का नोकरिया त मोती सारी बेसाहि देबों हो।
मोती सारी पेन्हेली कवन बेटी, देख बाबा मोती सारी हो ॥६॥
भुगुतहु हो बेटी ! भुगुतहु, मोती सारी भुगुतहु हो।
हम तोरा माई बाप निर्धन, तोर सुख देखि बिहसबि हो ॥७॥

"आम में बौर लग गये। कोमल बसेरा लेने लगी अर्थात् आ गयी। उसके नीचे बनिया ने आकर अपनी सारी और मोती की दुकान छान दी। घर से अमुक कन्या बाहर निकली और अपने पिता से बोली 'हे पिता मुझे सारी और मोती खरीद दो !' पिता ने कहा, 'हे बेटी, मैं निर्धन आदमी ठहरा सारी और मोती कैसे पाऊँगा ?'" ॥१,२॥

इतनी बातें सुन कर अमुक कन्या अपने ससुर के देश चल निकली। वहाँ अन्दर जनान खाने में एकान्त स्थान में अमुक दूल्हा से उसकी भेंट हुई। दूल्हे ने पूछा, हे सुन्दरी, तुम कहाँ और कैसे चली आई ? ॥३॥

कन्या ने कहा, मेरे मायके में आम में मंजरी लग गयी। कोयल आ आकर उस पर यमने लगी। और उसी वृक्ष के नीचे बनियों ने देशावर से आकर मोती और सारी की दुकान छान दिया। पर मेरे पिता कहते हैं कि हे बेटी मैं निर्धन हूँ। मैं मोती, और सारी कहाँ पाऊँगा ? इस पर दूल्हे ने सान्त्वना देते हुए कहा, हे धनि, चुप हो, चुप हो। वस्त्र से आँसू पोछो। मैं राजा के यहाँ नौकरी करने जा रहा हूँ तुमको मोती और सारी खरीद दूँगा।

इस तरह अमुक कन्या ने सारी और मोती पहन कर प्रसन्न हो अपने पिता से कहा, हे पिता ! मेरी सारी और मोती देखो ॥८,९,६॥

इस पर पिता ने प्रसन्न होकर कहा, हे कन्ये, सारी और मोती का तुम भोग करो। तुम्हारे मा बाप निर्धन हैं। तुम्हारे सुख को देख कर वे प्रसन्न होते हैं। ॥७॥

इस गीत में सही सही घटना को कन्या ने गाकर अपने मन के भावनाओं का स्वाभाविकता चित्रण किया है। देहाती मूर्ख कन्या काव्य की बारीकियाँ क्या जाने कि उसे अलंकारों से विभूषित कर उक्ति चमत्कार दिखावे ? उसको समझने के लिये हमें उसके अनुसार अपने मन को बनाना पड़ेगा। तभी हम उसके दुख दर्द और कामनाओं तथा उनकी पूर्ति के आह्लाद को समझ सकते हैं। पर इस गीत में काव्य न हो सो बात नहीं है प्रथम चरण में कितना सुन्दर प्रकृति वर्णन है। साथ ही आम के मोजरने और कोयल के बसेर लेने से बसन्तागमन की सूचना और स्त्री के मन में सुकुमार भावनाओं की जाग्रति का होना भी कैसे सुन्दर रूप से व्यंजना द्वारा व्यक्त हुआ है।

(११)

अमवा ने मीठ इमिलिया ए बाबा, बाबा महुआ में लागि गइले कोंच
साजन गइ घेरि अइलनि हो ॥१॥
कोठवा उठवली अटरिया हो बाबा, बाबा खिरिकिन लवलीं केवाड़—
साजन गइ घेरि अइलनि हो ॥२॥
पइसि जगावेली बेटी हो कवन बेटी, बाबा काहे रउरा सोईं निरभेद—
साजन गइ घेर अइलनि हो ॥३॥

सेहू सासु पारी गारी हमरा के दीह जनि उनकर जबाव ।
कलश का ओते ओते बोले ली मँदागिनि सुनीं रउरा सीता जी के बाप ॥
हमरा सीता के नाथ रउरा आनि दीहीं तबे रहिहें प्रान हमार ।
मड़वाँ के बास धइले बोलेले जनक सुनी सीता जी के माय ।
जेकर सीता जी हई सेही ले ले जाला त बात ना रहिहें हमार ॥

अवध से बारात आई ! जनकपुर में शोर हुआ । सुन्दर चारू अनमोल घोड़े पर सवार वर को बटोरने के लिये छैल छबीली अपने अपने घर से निकलीं । वे वर का परछिन कर अगवानी के बाद कहती हैं कि हमारे भाग्य अत्यंत बड़े हैं । राजा जनक अपने सिर की पगड़ी को जमीन पर पावड़ बिछा देते हैं और प्रसन्न मन कहते हैं कि मैं राम को कहाँ ठराऊँ कि उन्हें तकलीफ न हो । उन्होंने मण्डप को छवाया, जहाँ कलश रखवाये और तब लग्न मूहूर्ति का विचार कराया और सीता जी को लेकर चौक पर मण्डप में जा बैठे । अहा ! शोभा देखो सीता जी का राम जी से आज व्याह है ।

सखी सहेली यह कहती हैं कि हमें विदाई की कोई खबर नहीं । सुनती हूँ कि विदाई कल ही होगी । हाय हम सीता के बिना कैसे जीयेंगी । रो रही है ।

उधर मंडप का बाँस पकड़े जनक जी सीता को समझा कर कह रहे हैं । हे सीता ! मेरी बात सुनो । तुम्हारी सास संमार ऊपर है । संसार ऐसा ही मानता है । वह हमको गाली देंगी पर तुम उनका उत्तर न देना ।

यह सुनकर कलश की आड़ में खड़ी खड़ी सीता की माता, मंदाकिनी, जनक से कहती हैं, 'हे सीता जी के पिता सुनिये, आप मेरी सीता को वापिस ला दें । तब तो मेरे प्राण बचेंगे । अन्यथा नहीं ।'

मण्डप का बाँस पकड़े हुए जनक उत्तर देते हैं, हे सीता की मा सुनो । सीता जिसकी है वह उसको लिये जा रहा है । मेरी बात वहाँ नहीं रहेगी ।

(१३)

सावन सुगना ! गुर घीव खीअवलीं चढ़त बूँट के दाल ।

अब सुगना ! तू भइल नेअनवा बेटी के वर खोजे चाहु ॥
उड़ल उड़ल तू जाइयो रे सुगना ! बइठेहु सबद ओनाय ।
डढ़िये ओनायेहु पखना फुलायेहु चितयेहु नजरि घुमाय ॥
जे वर सुगना ! तू देखीह सुनर हो जेकर चाल गम्भीर ॥
जेहि घर सुगना तू सम्पति पइह वोही घर रचिहैं विआह ॥३॥
हेरलीं वर मैं सजुग सुलच्छन भहर भहर मुँह जाति ।
साठि वरद मे चरनी पर देखलीं वोहि घर रचेलों विआह ॥४॥

हे सुआ ! मैंने तुमको सावन में घी और गुड़ तथा चैत में चने की दाल खिलाकर पाला । अब तुम सयाने हो गये । जाओ, मेरी कन्या के लिये वर ढूँढ लाओ ॥१॥

हे सुआ ! तुम उडते उड़ते चले जाना और शब्द सुनकर बैठ जाना । डाल पर बैठे बैठे तुम चुपचाप शब्द सुनकर और नजर घुमाघुमाकर पंख फुला फुला कर इधर उधर देखते रहना । हे सुआ ! जिस वर को तुम सुन्दर देखना और जिसकी चाल गम्भीर पाना और हे सुआ ! जिसके घर मे तू सम्पति देखना उसी के यहाँ विवाह ठीक करना ॥२,३॥

सुगे ने कहा, "मैंने अच्छे लक्षणों वाला और सदा सजग रहने वाला घर ढूँढ लिया है । उसके मुख की ज्योति दमकती हुई सदा उसके मुख पर चमका करती है । उसकी चरनी पर मैंने साठ बैल बँधे पाये । उसी के घर विवाह ठीक किया" ॥४॥

वर की तलाश आज हिंदू समाज में बड़ी कठिन समस्या हो गई है । जिस दिन कन्या जन्म लेती है उसी दिन से पिता माता को उसके विवाह की चिंता लग जाती है । माता के लिये तो सदा वर की बातें सोचते रहना नित्य की दिनचर्या हो जाती है । सभी काल में उसके मन में यही भावना बैठी रहती है कि कन्या के लिये कैसे अच्छा वर मिल जाय । यही बात इस गीत में माता अपने पाले हुए तोते को वर खोजने के लिये भेजकर सिद्ध कर रही है । भारत से यह दहेज कुप्रथा जो कन्या के जन्म को घर में अभिशाप बना रही है, कब उठेगी ।

(१४)

बाबा जे चललनि मोर बर हेरन पाट पटम्मर डारि ।
छोट देखि बाबा करबे ना करिहें बड़ नाहीं नजरि समाय ॥१॥
आरे आरे बाबा सुघर बर हेरिह हम बेटी तोहरी दुलारि ।
तीनि लोक में हम भइलीं सुन्नरि हँसी ना करइह हमार ॥२॥
उसरे में गोड़ि गोड़ि ककरी बोअवलों ना जानो तीत कि मीठ ।
देसवा निकसि बेटी तोर बर हेरलों ना जानों करम तोहार ॥३॥
पूरब खोजलीं पछिमों में खोजलीं खोजलीं में दिली गुजरात ।
तोहरे जोग बर कतहूँ ना पवलीं अब बेटी रहहु कुँआरि ॥४॥
पूरब खोजल पछिमों खोजल खोजल दिली गुजरात ।
चारि डेग भुइँ नगर अजोधिआ दुइ बर हउँए कुँवार ॥५॥
ऊ बर माँगे बेटी घोडा ओ हाथी मागे मोहर पचास ।
ऊ बर माँगे बेटी नौलख दायज मोरे बूते देइ न जाय ॥६॥
जेकरा नाही बाबा हाथी ओ घोड़ा नाहीं होखे मोहर पचास ॥
जेकरा ना होखे बाबा नौलाख रुपया ते बर हेरे हरवाह ॥७॥
हर जोति आवे कुदारी गड़िभाँजि आवे बइठे मुँह लटकाय ।
उनही के तिलका चढ़इह मोरे बाबा ऊ बर तिलका न लेय ॥८॥
आसन देखि बाबा डासन दीह मुख देखि दीह बीरा पान ।
अपनी सपति देखि दायज दीह बर देखि दीह कन्यादान ॥९॥

रेशमी वस्त्र और पीताम्बर ओढ़ कर मेरे पिता मेरे लिए वर खोजने चले हैं। छोटे वर से तो वे मेरा विवाह करेंगे ही नहीं और बड़ा वर उनकी आँख में समायगा ही नहीं ॥१॥ कन्या ने पिता से कहा:—

'हे पिता ! सुंदर वर ढूँढना। मै तुम्हारी दुलारी बेटी हूँ। तीनों लोक में मैं सुंदरी हूँ। देखना मेरी हँसी न कराना' ॥२॥

इस पर टुक खीझकर—पिता ने कहा, "ऊसर को गोड़ गोड़ कर मैंने ककड़ी बोआई है। पर नहीं, कह सकता ककड़ियाँ मीठी होंगी कि तीती। देश विदेश निकल कर हे बेटी ! मै तुम्हारे लिये वर खोजता हूँ। नहीं जानता

तुम्हारे भाग्य में क्या है। वर अच्छा मिलेगा या बुरा !" ॥३॥

मैंने पूर्व दिशा में वर तलाशा, पश्चिम भी खोजा, दिल्ली गुजरात भी वर खोजने से बाज नहीं आया। पर, हे बेटी, कहीं भी तुम्हारे योग्य वर नहीं मिला। अब तुम कुँवारी ही रहो ॥४॥

कन्या को यह बुरा लगा। उसने कहा, 'हे पिता, तुमने वर के लिये पूरब भी ढूँढ़ा और पश्चिम भी ढूँढ़ डाला। दिल्ली और गुजरात में भी वर ढूँढ़ ही लिया। पर चार कदम पर अयोध्या नगरी है यहाँ जो दो वर क्वाँरे हैं ? ॥५॥

इससे पिता को और चोट लगी उन्होंने कहा, हे बेटी, वे वर घोड़ा-हाथी, पचास मोहरें तथा नौ लाख रुपया माँगते हैं। मेरी हिम्मत तो इतना दहेज देने की नहीं है ॥६॥

इस पर कन्या ने व्यंग कर के कहा, "हे पिता जी तब जिसके पास हाथी-घोड़ा न हो, पचास मोहरें न हों, और जो नौ लाख रुपये का दहेज न दे सके तो वह फिर हल जोतने वाला ही वर ढूँढ़े ? जो हल जोत कर और खेत में कुदाल से काफी खेत गोड़ कर जब घर आवे तो मुँह लटका कर बैठा रहे। हे पिता, तो तुम भी ऐसे ही वर को तिलक चढ़ाना। वे वर दहेज नहीं लेंगे।" ॥७,८॥

इस वाक्य से कन्या ने दहेज कुप्रथा को तो कोसा ही है साथ ही पिता पर भी व्यंग किया है कि केवल दहेज भय से ही जो अच्छा वर खोजने से डर कर तुम मुझे आजन्म क्वारी रहने को सलाह देते हो तो अच्छा है हलवाहे से ही मेरा ब्याह कर दो वही दहेज नहीं माँगेगा। किन्तु आवेग में आकर पिता के क्वारी रहने के ताने का उसने जवाब तो दे दिया पर तुरत अपने को सभाल भी लिया। कहा :—

"हे पिता, जैसा आसन हो वैसा ही उस पर डासन विछाना भी उचित है। मुह देख कर ही पान का बीड़ा खिलाना अच्छा है। सो पिता जी, आप अपनी सम्पत्ति देखकर ही दायज देना पर कन्या के योग्य वर देख कर ही कन्या दान देना उसमें भूल न करना अर्थात् धन सम्पत्ति का विचार तुम अपनी

सम्पत्ति और धन के अनुसार करना पर वर के विचार में कन्या के योग्य वर होने का ख्याल अवश्य रखना।''

इस गीत में पाठक देखेंगे कि कन्या निःसकोच होकर अपने विवाह के बारे में पिता से तर्क वितर्क कर रही है और अपनी रुचि प्रगट करना भी नहीं भूलती। साथ ही पिता को अपनी स्थिति का भी ख्याल रखने का आदेश करती है, पर वर के चुनाव में वह किसी तरह की त्रुटि नहीं चाहती। धन आदि का विचार पिता अपनी सम्पत्ति के अनुसार सोच विचार कर कर ले, पर वर को तो उसे कन्या के अनुकूल ही योग्य, सुन्दर और उचित वयस वाला चुनना चाहिये।

(१५)

कवन गरहनवाँ बाबा साँझे जे लागेला कवन गरहनवा भिनुसार।
कवन गरहनवाँ बाबा औघट लागे कब दोनों उगरह होइ ॥१॥
चन्द्र गरहनवाँ बेटी साँझि जे लागे सुरुज गरहनवा भिनुसार।
धीअवा गरहनवाँ बेटी औघट लागेले कब दोनों उगरह होइ ॥२॥
काँपइ हाथी रे काँपइ घोड़वा काँपइ नगरा के लोग।
हथवा में कुस लेले काँपे ले बाबा कब दोना उगरह होइ ॥३॥
रहँसइ हाथी रे रहँसइ घोड़ा रहँसइ सकल बराति।
मँडवे मुदित मन समधी रे बिहसइ भले घर भइल बिआह ॥४॥
गंगा में पइठि बाबा सुरुज गोड़े लागे मेरि बूते धिया जनि होय।
धिअवा जनम जब दीह हो बिधाता जब घरे सम्पति होय ॥५॥

इस गीत के प्रायः सभी चरण कुछ उलट फेर के साथ गीत नं० १ विवाह के गीत, में आ गये हैं। 'ग्राम गीत' में भी इसके सभी चरणों के सम्पन्न इतने ही चरण का एक गीत है। जिसका भाव इसी गीत के समान है। पर भाषा सुलतानपुर जिले की भाषा सी ज्ञात होती है। पर गीत नं० १ में जो इससे बहुत बड़ा है, रस की पुष्टि अधिक हुई है।

कन्या पूछती है, 'हे पिता, कौन ग्रहण रात में लगता है और कौन दिन में? कौन ग्रहण असमय लगता है और उसका उग्रह कब होता है' ॥१॥

पिता कहता है, 'हे बेटी, चन्द्रग्रहण रात में लगता है। और सूर्य ग्रहण दिन में। कन्या ग्रहण का कोई ठिकाना नहीं कि कब लगे। और कब छूटे ॥२॥

हाथी कांप रहे हैं। घोड़े कांप रहे हैं। नगर के लोग सब कांप रहे हैं। और हाथ में कुश लिये हुए पिता जी काँप रहे हैं। न मालूम कब उस कन्या विवाह से छुट्टी मिलेगी ॥३॥

हाथी प्रसन्न हो रहे हैं, घोड़े प्रसन्न हो रहे हैं, सारी बारात प्रसन्न है, मण्डप के नीचे बैठा हुआ समधी भी प्रसन्न है कि अच्छे घर में मेरे पुत्र का विवाह हुआ ॥४॥

पर विवाह होने पर पिता गंगा में पैठकर सूर्य भगवान् को नमस्कार कर विनती कर रहे हैं कि हे बिधाता, मेरे बल पर कन्या न देना। कन्या का जन्म तभी हो, जब घर में सम्पत्ति हो ॥५॥

कन्या विवाह के कष्ट या इस गीत के अर्थ को वे ही पाठक भलीभाँति हृदयांगम कर सकेंगे जिन्हें अपनी कन्या का विवाह करना पड़ा हो।

(१६)

पुरुब पछिम मोरे बाबा क सगरवा पुरइनि हालर देइ।
तेहि घाटे दुलहा धोतिया पखारहु पूछेइँ दुलहिन देई बात ॥१॥
केकर हव तूँ नतिया से पूतवा कवने बहिनिया के भाय।
कवना बनिजिया चलले बर सुन्नर केकरे सगरा नहाउ ॥२॥
अजवा कवन सिंह के नतिया रे पुतवा कवनी कुँअरि के भाय।
नेनुरा बनिजिया चलीला हम सुन्नरि ससुरा के सगरे नहाउँ ॥३॥
एतना बचन सुनि दुलही कवन कुँवरि धाइ मइया लगे जाँय।
जे बर रउरा मइया! नगर ढुढ़ाईं से बर सगरे नहाय ॥४॥
राम रचोइया भऊजी कवन कुँवरि धाइ भऊजी लगे जाइँ।
जे बर भऊजी रउरे नगर ढूढ़ाईं से बर सगरे नहायँ ॥५॥
आवहु ननदोइया पलँग चढ़ि बइठहु कूँचहु मगही पान।
अपना धमिनिया के डढ़िया फँनावहु ले जाहु बपरनि दुआर ॥६॥

सम्पत्ति और धन के अनुसार करना पर वर के विचार में कन्या के योग्य वर होने का ख्याल अवश्य रखना।''

इस गीत में पाठक देखेंगे कि कन्या निःसंकोच होकर अपने विवाह के बारे में पिता से तर्क वितर्क कर रही है और अपनी रुचि प्रगट करना भी नहीं भूलती। साथ ही पिता को अपनी स्थिति का भी ख्याल रखने का आदेश करती है, पर वर के चुनाव में वह किसी तरह की त्रुटि नहीं चाहती। धन आदि का विचार पिता अपनी सम्पत्ति के अनुसार सोच विचार कर कर ले, पर वर को तो उसे कन्या के अनुकूल ही योग्य, सुन्दर और उचित वयस वाला चुनना चाहिये।

(१५)

कवन गरहनवाँ बाबा साँझे जे लागेला कवन गरहनवा भिनुसार।
कवन गरहनवाँ बाबा औघट लागे कब दोनों उगरह होइ ॥१॥
चन्द्र गरहनवाँ बेटी साँझि जे लागे सुरुज गरहनवा भिनुसार।
धीअवा गरहनवाँ बेटी औघट लागेले कब दोनो उगरह होइ ॥२॥
काँपइ हाथी रे काँपइ घोड़वा काँपइ नगरा के लोग।
हथवा में कुस लेले काँपे ले बाबा कब दोना उगरह होइ ॥३॥
रहँसइ हाथी रे रहँसइ घोडा रहँसइ सकल बराति।
मँड़वे मुदित मन समधी रे बिहसइ भले घर भइल बिआह ॥४॥
गंगा में पइठि बाबा सुरुज गोड़े लागे मेरि कूते धिया जनि होय।
धिअवा जनम जब दीह हो विधाता जब घरे सम्पति होय ॥५॥

इस गीत के प्रायः सभी चरण कुछ उलट फेर के साथ गीत नं० १ विवाह के गीत, में आ गये हैं। 'ग्राम गीत' में भी इसके सभी चरणों के सम्पन्न इतने ही चरण का एक गीत है। जिसका भाव इसी गीत के समान है। पर भाषा सुल्तानपुर जिले की भाषा सी ज्ञात होती है। पर गीत नं० १ में जो इससे बहुत बड़ा है, रस की पुष्टि अधिक हुई है।

कन्या पूछती है, 'हे पिता, कौन ग्रहण रात में लगता है और कौन दिन में? कौन ग्रहण असमय लगता है और उसका उग्रह कब होता है' ॥१॥

पिता कहता है, 'हे बेटी, चन्द्रग्रहण रात में लगता है। और सूर्य ग्रहण दिन में। कन्या ग्रहण का कोई ठिकाना नहीं कि कब लगे। और कब छूटे ॥२॥

हाथी काँप रहे हैं। घोड़े काँप रहे हैं। नगर के लोग सब कांप रहे हैं। और हाथ में कुश लिये हुए पिता जी काँप रहे हैं। न मालूम कब उस कन्या विवाह से छुट्टी मिलेगी ॥३॥

हाथी प्रसन्न हो रहे हैं, घोड़े प्रसन्न हो रहे हैं, सारी बारात प्रसन्न है, मण्डप के नीचे बैठा हुआ समधी भी प्रसन्न है कि अच्छे घर में मेरे पुत्र का विवाह हुआ ॥४॥

पर विवाह होने पर पिता गंगा में पैठकर सूर्य भगवान् को नमस्कार कर विनती कर रहे हैं कि हे विधाता, मेरे बल पर कन्या न देना। कन्या का जन्म तभी हो, जब घर में सम्पत्ति हो ॥५॥

कन्या विवाह के कष्ट या इस गीत के अर्थ को वे ही पाठक भलीभाँति हृदयांगम कर सकेंगे जिन्हें अपनी कन्या का विवाह करना पड़ा हो।

(१६)

पुरुब पछिम मोरे बाबा क सगरवा पुरइनि हालर देइ।
तेहि घाटे दुलहा धोतिया पखारसु पूछेइँ दुलहिन देईं बात ॥१॥
केकर हव तूँ नतिया से पूतवा कवने बहिनिया के भाय।
कवना बनिजिया चलले वर सुन्नर केकरे सगरा नहाउ ॥२॥
अजवा कवन सिंह के नतिया रे पुतवा कवनी कुँअरि के भाय।
सेनुरा बनिजिया चलीला हम सुन्नरि ससुरा के सगरे नहाउँ ॥३॥
एतना वचन सुनि दुलही कवन कुँवरि धाइ मइया लगे जाँय।
जे वर रउरा मइया! नगर ढूढाई से वर सगरे नहाय ॥४॥
राम रसोइया भऊजी कवन कूँवरि धाइ भऊजी लगे जाइँ।
जे वर भऊजी रउरे नगरा ढूढ़ाई से वर सगरे नहायँ ॥५॥
आवहु ननदोइया पलँग चढ़ि बइठहु कूँचहु मगही पान।
अपना कमिनिया के डडियाँ फँनावहु ले जाहु बएरनि हमार ॥६॥

की भऊजी तोरा नूनवा चोरवली की तेल दीहों ढरकाइ।
की भऊजी तोरा भइया गरिअवलीं जवने गुना बएरनि तोहार ॥७॥
ना ननदी मोरा नूनवा चोरवली ना तेल देलू ढरकाय।
ना ननदी मोरा भइया गरिअवलू बोली गुना बएरनि हमार ॥८॥

पूर्व पश्चिम तक लम्बा मेरे पिता का तालाब है। इसमें पुरइन (कमल के पत्त) लहरा रहे हैं। उसी तालाब के घाट पर दुलहा धोती पछार रहा है। उससे दुलहिन बात पूछती है ॥१॥

तुम किसके नाती हो और किसके हो पुत्र ? तुम किस बहन के भाई हो ? हे, सुंदर वर, तुम किस वस्तु का व्यापार करने घर से बाहर निकले हो ! और किसके तालाब में स्नान कर रहे हो ? ॥२॥

वर उत्तर देता है—'अमुक सिंह मेरे पितामह हैं और अमुक देवी का मैं भाई हूँ। हे सुन्दरी, सिन्दूर का व्यापार करने के लिये हम निकले हैं और अपने स्वसुर के तालाब में स्नान कर रहे हैं'॥३॥

यह बात सुनते ही अमुक कन्या अपनी मा के पास दौड़कर गई और कहने लगी—मा, जिस वर को आप नगर भर ढूँढ़ती रहीं वह वर तो तालाब पर स्नान कर रहा है ॥४॥

कन्या की भावज अमुक कुँअरि रसोई घर में थी कन्या वहाँ दौड़कर गई और कहने लगी— हे भावज ! जिस वर को मा ने सारा नगर ढुँढ़वा डाला वह वर इसी तालाब पर स्नान कर रहा है ॥५॥

भावज ने कहा, हे ननदोई, आओ पलंग पर बैठो और महोबे का पान खाओ। अपनी स्त्री के लिये पालकी सजाओ और मेरी इस बैरिन को घर ले जाओ ॥६॥

इस पर ननद ने कहा, हे भौजी, तू मुझे बैरिन क्यों कहती हो ? क्या मैंने तुम्हारा नमक चुराया है या तेल गिरा दिया है ? या हे भावज, क्या मैंने तुम्हारे भाई को गाली दी है कि तुम मुझे बैरिन कहती हो ?॥७॥

भावज ने कहा, ननद जी, न तुमने मेरा नमक चुराया न तेल ही ढुलकाया और न मेरे भाई को गाली ही दी। केवल तुम्हारी बोली के कारण

ही मैं तुम्हें वैरिन कह रही हूँ ॥८॥

इस गीत पर टिप्पणी लिखते समय श्री पं० रामनरेश जी त्रिपाठी ने ऐतिहासिक खोज की अनेक बातें कहीं हैं जो इसके अर्थ को समझने में गड़बड़ी उत्पन्न कर देती हैं। कन्या की अवस्था के प्रौढ़ होने का जो कुछ प्रमाण वे देते हैं वह भी ठीक नहीं जँचता। और वर कन्या को देखने के लिये आया है यह भी उनका गलत ही धारणा है। इस अर्थ से गीत का रस ही फीका पड़ जाता है। गीत में जो कन्या का वर से अकस्मात तालाब पर भेट कराई गई है, उससे बातें कराकर उसके आने का कारण पुछवाया गया है। वह कन्या की अवस्था प्रौढ़ नहीं सिद्ध करता। फिर वर से जो परिचय दिलाकर स्वसुर के तालाब पर स्नान करने की बात और सिन्दूर का व्यापार करने निकलने का व्यंगोत्तर दिलाया गया है यह वर के युवा होने का प्रमाण है। फिर कन्या का मा और भावज के पास दौड़ी जाकर वर के आने की बात कहना, तो कन्या की मुग्धावस्थाओं अज्ञात-ज्ञात-यौवना होने के निर्विवाद प्रमाण हैं। गरीब वर द्विरागमन कराने के लिये ससुराल अकेले आया है। स्वसुर के तालाब पर स्नान करने में उसे देर हो गयी। वाञ्छनीय समय पर उसके न पहुँचने से कन्या के घर में चिंता हुई। उसकी मा ने वर को गाँव में खोज-वाया कि कहीं वह आकर ठहरा तो नहीं है। पर कहीं पता नहीं चला। मा दुखित थी। भावज भी सारी तैयारी करके दुखित ही थी। मुग्धा कन्या अकस्मात तालाब पर खेलती हुई पहुँची तो वर को देखकर उसे शंका हुई कि यही वर तो नहीं है। क्योंकि पूर्व परिचय तो था नहीं। और तब वार्ता हुई इस के साथ अर्थ समझने में गीत का पूरा रस और सच्चा चित्र सामने आ जाता है। वर का सिंदूर का व्यापार करने के लिए निकलने का बहाना करना बिलकुल स्वाभाविक है। ससुराल में एक किशोरी कन्या उससे उसका पता पूछकर आने का हेतु पूछ रही है। उसके उत्तर में परिहास के साथ उसका वह उत्तर कितना सुंदर उतरा है।

(१७)

राजा जनक अइलें नहाई के मनहीं उदासल हो।

कवन चरितर आजु भइलें धनुष तर लीपल हो ॥१॥
हम नाहीं जानी लो ए हरी पूछिल सीता जी से हो।
सीता के सखिया बहुतहुती जनकजी के आगन हो ॥२॥
जनक जी सीता के बुलाईले जाँघ बइठाईलें हो।
बेटी कवने हाथ धनुष उठवलू कवने हाथे लीपेलू हो ॥३॥
बाँयें हाथे धनुहा उठाईला दहीने हाथे लीपीला हो।
इहे चरितर आजु भइले धनुहातर लीपल हो ॥४॥
जनक मने पछितावेले मने में दुखित होलें हो।
अब सीता रहली कुँआरी जनम कइसे बीतहि हो ॥५॥
काहे के बाबा पछिताल त मन मे दुखित होल हो।
अब हम पूजबों भवानी त राम बर पाइबि हो ॥६॥
कंचन थरिया गढावेली आरती सजावेली हो।
चलू न सखी फूलवरिया त पूजीं भवानी हो ॥७॥
घुमरि घुमरि सीता पूजेली पूजेली भवानी हो।
परसन होईं न भवानी त पूरईं मनोरथ हो ॥८॥
देवी जे हँसेली ठठाइ के बड़ा रे परसन से हो।
पुजिहें मन के मनोरथ राम बर पावेलू हो ॥९॥

राजा जनक स्नान करके उदास मन घर आये। पूछने लगे कि आज यह क्या अद्भुत काम हुआ कि धनुष के नीचे लीपा हुआ है ॥१॥

जनक की रानी ने कहा, हे नाथ मैं नहीं जानती। सीता जी से पूछिये। आपके आँगन में सीता की बहुत सी सखियाँ भी हैं ॥२॥

जनक ने सीता को बुलाकर प्यार से जाँघ पर बैठाया। और पूछने लगे ? बेटी किस हाथ तूने धनुष उठाया और किस हाथ से लीपा ?

सीता ने उत्तर दिया, मैंने बायें हाथ से धनुष उठाया। और दाहिने हाथ से धरती लीप दिया। यही अद्भुत बात आज हुई कि धनुष के नीचे पृथ्वी लीपी गई है।

जनक मन ही मन पछताने लगे और इस बात से दुखित हुए कि अब

सीता कुमारी रहेंगी उसका जीवन कैसे बीतेगा।

इस पर सीता ने कहा, "हे पिता, पछताते क्यों हो और मन में दुखित भी क्यों होते हो ? अब मै भवानी की पूजा करूँगी और राम को वर प्राप्त करूँगी।"

सीता ने सोने की थाली बनवायी, उस पर आरती सजायी और अपनी सखियों से कहा, चलो फुलवारी में चलें और भवानी की पूजा करें।

सीता घूम घूम कर (परिक्रमा करके) भवानी की बार बार पूजा करती हैं और प्रार्थना करती हैं कि हे देवी, प्रसन्न होइये, मेरे मनोरथों को पूर्ण कीजिये।

देवी बहुत प्रसन्न हो ठट्ठा मार कर हँस पड़ी और बोलीं—बेटी तुम्हारे मन के मनोरथ पूर्ण होंगे। और तुमको राम वर मिलेंगे।

(१८)

नीले नीले घोड़वा छयल असवरवा कुरखेते हनइ निसान।
खिरिकी उघेरि के अम्मा जी निरखीं धिआ दस आउरि होइ ॥१॥
भइल बिआह परल सिर सेनुर नव लख दायज थोर।
भितरां क भाँड़ि बहर देइ मरली सवुरू के धिया जनि होय ॥२॥

नीले घोड़ों पर जो छैल सवार है, वह ऐसा वीर है कि मानो कुरुक्षेत्र के रणस्थल में वह विजय पताका फहरा रहा हो या शत्रु का निसान (झंडा) विध्वस कर रहा हो। उसको जब खिड़की खोल कर मा देखती है तब उसका जी हुलसता है और वह चाहती है कि मुझे दश कन्यायें और होतीं कि ऐसे वीर जामाता मिलते ॥१॥

परन्तु जब कन्या का विवाह हो गया, उसके माँग में सिंदूर पड़ गया और नौलक्ष का दहेज भी वर पक्ष से थोड़ा ही समझा गया पर यहाँ घर खाली हो चुका था। मा बेचारी ने भीतर का बरतन भाण्ड सब बाहर लाकर पटक दिया और पछता कर कहा शत्रु को भी कन्या न हो ॥२॥

किस तरह दहेज की कुप्रथा के कारण आज आये दिन कितने घर नष्ट हो रहे हैं और उनके माता पिता कन्या के अभिशाप केवल इसलिये

समझने पर बाध्य हो जाते हैं कि इनके जरिये उनके घर गिरस्ती का ही मटिया मेट हो जाता है।

(१९)

ऊँच ऊँच बखरी उठावे मोरे बाबा ऊँचे ऊँचे राख मोहार।
चान सुरुज दूनो किरनी बगन दे निहुरे न कन्त हमार ॥१॥
अम्मर सेनुरा मगाव मोरे बाबा पिया से भराव मोरी माँग।
सुघर बमना से गँठिया जोरावहु जनम जनम अहिवात ॥२॥
अम्मर डँड़िया फनाव मोरे बाबा बिदवा कराव हमार।
सात परगवे सगे चलि कै हो बाबा अब हम भइली पराइ ॥३॥

हे पिता ऊँचे ऊँचे मकान बनाओ और उनमें ऊँचे ऊँचे दरवाजे रक्खो जिससे चन्द्रमा और सूर्य दोनों की किरणें अन्दर प्रवेश करके कुछ देर रह सकें और मेरे स्वामी को प्रवेश करने समय झुकना न पड़े ॥१॥

हे पिता, अमर करन वाला सिंदूर मगाओ और पति से मेरी मांग भराओ। सुन्दर ब्राह्मण से मेरा गँठ बंधन कराओ जिससे जन्म जन्मांतर तक मेरा अहिवात बना रहे ॥२॥

हे पिता, अमर करने वाली पालकी सजाओ और मेरी विदाई करो। पर हे पिता, शोक है कि सात पग (पराये) साथ चल कर मैं अब दूसरे की हो गयी। तुम्हारी नहीं रही।

कन्या की विवाह की महत्वकांक्षा तभी तक रही जब तक वह पिता बिछोह की बात नहीं सोची थी, पर विदा की बात सोचते ही उसका हृदय फटने लगा और उसे आश्चर्य हुआ कि सप्तपद चल कर ही मैं पराये की हो गयी और पिता माता से मेरा सम्बंध छूट गया। कितना संक्षेप में कितना मर्मान्तक वाक्य कहा गया है। कन्या की मनोकामना भी कितनी स्वाभाविक है।

(२०)

काहे बिनु सून अँगनवा ये बाबा काहे बिनु सून लखराँव।
काहे बिनु सून दुअरवा ये बाबा काहे बिनु पोखरा तोहार ॥१॥
धिया बिनु सून अँगनवा ये बेटी कोइलरि बिनु सून लखराँव।

पूत विनु सून दुअरवा ये वेटी हंस विनु पोखरा हमार ॥२॥
कइसे के सोहे अँगनवा ये वावा कइसे सोहे लखराँव ।
कइसे के सोहे दुअरवा ये वावा कइसे सोहे पोखरा तोहार ॥३॥
घरम से धिअवो जनमेली ये वेटी सेवा से आम तैयार ।
तपवा से तो पुतवा जनमले वेटी दान से हंसा मझधार ॥४॥
का देइ वोधव धिअवा के वावा का देइ अमवा के गाछ ।
का देइ पुतवा समोधव ए वावा का देइ हंसा मझधार ॥५॥
धन देइ विटिया समोधवइ ये वेटी जल देइ समोधवों लखराँव ।
भुइँ देइ पुतवा समोधवइ ये वेटी अन देइ हंस मझधार ॥६॥
का देखि मोहे जनवास ये वावा का देखि रसना तोहार ।
का देखि हियरा जुड़इहैं ये वावा का देखि नयना जुड़ाय ॥७॥
धिया देखि मोहे जनवसवा ये वेटी अमवा से रसना हमार ।
पुतवा से हियरा जुड़इहैं ए वेटी हंसा देखि नैना जुड़ाय ॥८॥

कन्या ने पिता से पूछा, 'हे पिता ! हे पिता, किसके बिना आँगन सूना होता है ? और किसके बिना लखराँव (लाख आम के पेड़ों का बाग) सूना है ? किसके बिना द्वार सूना दीखता है और किसके बिना तुम्हारा तालाब सूना है ? ॥१॥

पिता ने कहा—हे बेटी ! कन्या के बिना आँगन सूना होता है, कोयल के बिना लखराँव, पुत्र के बिना द्वार और हंस के बिना मेरा तालाब सूना है। ॥२॥

कन्या ने पूछा, आँगन कैसे शोभित हो सकता है ? लखराँव कैसे सुंदर दिखेगा ? तुम्हारा द्वार कैसे सुंदर हो सकता है ? और तुम्हारा तालाब कैसे भला मालूम होगा ?

पिता ने कहा, हे बेटी ! धर्म से कन्या जन्म लेती है। सेवा से आम सुंदर दीखता है। तप से पुत्र पैदा होता है। और दान से हंस मझधार जल में जीते हैं।

कन्या ने पूछा, हे पिता ! क्या देकर तुम कन्या को संतुष्ट करोगी ।

क्या देकर लखरौंव को ? और क्या देकर पुत्र को ? तथा क्या दे मझधार में हंस को प्रसन्न करोगे ? ॥५॥

पिता ने कहा—बेटी धन देकर कन्या को मैं सन्तुष्ट करूँगा। जल देकर लखरौंव को, भूमि देकर पुत्र को और अन्न देकर मझधार में लगे हंस को प्रसन्न करूँगा ॥६॥

इस पर कन्या ने पुनः पूछा—हे पिता ! जनवासे के लोग क्या देखकर मोहित होंगे ? किस चीज से तुम्हारी जीभ मोहित होगी ? क्या देखकर तुम्हारा हृदय शीतल होगा ? तथा क्या देखकर तुम्हारे नेत्र तृप्त होंगे ? ॥७॥

पिता ने कहा, कन्या को देखकर जनवासे के लोग मोहित होंगे। आम से मेरी जीभ सन्तुष्ट होगी। पुत्र से हृदय शीतल होगा और हंस को देखकर मेरे नेत्र तृप्त होंगे ॥८॥

(२१)

कहवहिं के गढ थवई जिन्ह महल उठाये, कहवहिं के पतिसहवा गढ़ देखन अइले। ॥१॥
बाहर होई गढ देखलो जइसे चित्र उरेहल, भीतर होइ गढ देखलों जइसे कुन्दन कुन्दावल ॥२॥
ताहि पइठि सुतले कवन बाबा रानी बेनिया डोलावें, कवरहिं बोलेली कवन बेटी बाबा नीद भल आवे ॥३॥
कुछ रे सुतीला कुछ जागीला बेटी नींदो न आवे, जाही घरे कन्या कुवाँरि बेटी नींद कइसे आवे ॥४॥
लेहु ना कवन बाबा धोतिया हाथे पान बीरवा, करु ना समधिया से मिलनी माथ सिरनवाइ ॥५॥
गिरि नवे पर्वत नवे हम त ना नई ले, बेटी ! तोहरे कारन हम जग में माथ नवाईं ॥६॥

वह थवई कहाँ का था जिसने यह महल उठाया। यह बादशाह कहाँ का है जो गढ़ देखने आया है ॥१॥

बाहर जो मैंने गढ़ देखा तो ऐसा जान पड़ा मानो चित्र खींचा हुआ है।

भीतर घुस कर गढ़ देखा तो ऐसा मालूम हुआ कि मानो कुंदन किया हुआ है ॥२॥

ऐसे गढ़ में प्रवेश करके अमुक पिता शयन करते हैं। रानी पंखा झल रही हैं। किवाड़ की ओट में खड़ी खड़ी अमुक कन्या ने कहा, पिता जी आपको खूब नींद आ रही है ? ॥३॥

पिता ने कहा, हे बेटी कुछ तो सो रहा हूँ और कुछ कुछ जगा भी हूँ; जिसके घर में क्वारी कन्या हो भला उसे नींद कैसे आ सकती है ? ॥४॥

कन्या ने कहा, हे अमुक पिता ! हाथ में धोती और पान का बीड़ा लेकर समधी से सिर नवा कर भेंट करो ॥५॥

मनस्वी पिता ने कहा, हे बेटी, पहाड़ पर्वत नवते हैं, पर मैं तो माथा नहीं नवाता, परंतु हाँ तुम्हारे कारण मुझे जगत में माथा भी नवाना पड़ा।

हा ! मनस्वी पिता को बेटी कारण अपने से गये गुजरे समधी के सामने भी सर नवाना पड़ता है। पिता को कन्या के विवाह की चिंता कितनी सताती है यह इसी एक मार्मिक वाक्य से प्रगट होता है जिसे पिता ने दीर्घ निश्वास के साथ कन्या से कहा—

जाहि घरे कन्या कुवाँरि बेटी ! नीद कइसे आये ?

(२०)

बावा बावा, गोहरावौं बावा नाहीं जागैं, देत सुनर एक सेंनुर भइलू पराई ॥१॥
भैया भैया गोहरावों भैया नाहीं बोलेलें, देत सुघर एक सेंनुर भइउँ पराई ॥२॥
बनवा में फूलेली बेइलिया अतिहि रूप आगरि, मलिया त हाथ पसारे तू हौसि जा हमार ॥३॥
जनि छूवा, ये माली, जनि छुव, अवहीं कुवाँरि वानी आधी राति फूलिहैं बेइलिया त होइबों तोहार ॥४॥
जनि छूअ ए दुलहा जनि छूअ अवहीं कुवाँरि वानी जब मोरे बावा सँकलाये हे तब होइबों तोहारि ॥५॥

बाबा, बाबा, कहकर पुकार रही हूँ। बाबा जागते ही नहीं। कोई एक

सुदर पुरुष सिंदूर दे रहा है। हा! मैं पराई हुई जा रही हूँ ॥१॥

भैया भैया कहकर पुकार रही हूँ। भैया बोलते ही नहीं। कोई एक सुघर पुरुष सिन्दुर दे रहा है। हा, मैं पराई हुई जा रही हूं ॥२॥

वन मे अत्यन्त रूप का घर बेइल फूली हुई है। माली हाथ पसार कर कह रहा है कि तुम हमारी बनो –तुम हमारी बनो ॥३॥

बेइल (बेचारी कांपती हुई कह रही है) हे माली। मुझे न छूना मुझे न छूना। मैं अभी कुमारी हूं। आधी रात को जब यह बेइल फूलेगी तब वह तुम्हारी होगी ॥४॥

उधर कन्या दूल्हे से कह रही है—हे दूल्हा, मुझे मत छूओ, मुझे मत छूओ। अभी मैं कुमारी हूँ। जब मेरे बाबा मुझे सकल्प देंगे अर्थात् कन्यादान कर देंगे तब मै तुम्हारी होऊँगी ॥५॥

इस गीत की टिप्पणी में पं० रामनरेश जी त्रिपाठी ने लिखा है वर के रूप और गुण का वरदान करके फिर कन्या अपनी तुलना लता से और वर को माली से करती है। स्त्री लता की तरह फूले फलें और पुरुष माली की तरह उसे सींचे, सँभाले, सँवारे और उसका सुख भोगे। कैसी अर्थ युक्त तुलना है।

अन्त में कन्या कहती है कि जब तक पिता नहीं समर्पण करता तब तक वह दूसरे की नहीं हो सकती। इस गीत के समय में कन्या स्वतत्र नहीं रह गई कि वह अपनी इच्छा से योग्य वर से विवाह कर सके। गीत में आदि से अंत तक करुणा रस लहरा रहा है।

पण्डित जी ने जो टिप्पणी लिखी है उसमें अतिम वाक्य को छोड़ शेष न लिखते तो पाठक गीत का अर्थ अधिक समझते। कन्या ने अवश्य अपने को बेइल पुष्प की लता से तुलना दी है और पति को माली कहा है। पर कहीं भी माली को उसने उस अर्थ में नहीं व्यक्त किया है जिस अर्थ को पण्डित जी ने ऊपर लिखा है। स्त्री लता की तरह फूले फले पति माली की तरह उसे सींचे, सँभाले, सवारे और उसका सुख भोगे। ऐसा अर्थ समझा कर गीत का सौंदर्य ही नष्ट कर दिया गया है।

और सरसतम बात प्राण और सौंदर्य है।

यहाँ प्रथम के १, और २ चरण में कन्या ने यह कह कर कि पिता पिता पुकारती हूँ, पर पिता नहीं जागते, भाई भाई पुकारती हूँ पर भाई भी नहीं बोलते। एक सुंदर वर मेरी माँग में सिन्दूर दे रहा है और मैं पराई हुई जा रही हूँ। अपनी पितृ भक्ति की, अपनी विवशता की ओर इस आश्चर्य भरी भावना को कि सिंदूर दान देकर ही मैं पिता माता से छुड़ा कर पराई की बनायी जा रही हूँ। कितने सुदर रूप से, सजीव और करुण तरह से व्यक्त किया है। इसको सुनते ही कन्या की आजिजी विवश तथा मूक वेदना भरी दीन आर्त सूरत सामने खड़ी हो जाती है। इस वाक्य से दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि ज्ञात यौवना कन्या विवाह होने के पूर्व ही, गंधर्व विवाह करने पर उद्यत पति से एकात में साक्षात हो जाने पर, पिता और भाई को पुकारती है और जब वे नहीं बोलते तब पति के सिंदूर दान से घबड़ा कर अपने पराई होने की बात पर खेद प्रगट करती है। पर साथ ही वह ज्ञात यौवना है। पति के इसके बाद की छेड़खानी पर, उसे उत्तेजना मिलती है पर वह सँभालकर अपने को बेला का फूल करार देकर पति को समझाती है कि जिस तरह सुन्दर बेला पुण्य वन मे फूलता है और माली उस पर आसक्त हो उसको अपनाना चाहता है पर वह अधखिली पुष्प कली कहती है कि हे माली अभी मैं क्वारी हूँ। मुझे मत छुओ। आधी रात को जब मैं पूर्णरूप से विकसित हो उठूँगी तब मैं तुम्हारी स्वत. हो जाऊँगी, उसी तरह हे दूल्हे, मुझ क्वारी को भी तुम तब तक न छुओ जब तक मेरे पिता अर्ध रात्रि के समय लग्न होने पर मुझको तुम्हारे हाथ संकल्प नहीं देते। जब वे सकल्प देंगे तब मैं भी अर्ध रात्रि के बेला-पुष्प ऐसा स्वच्छन्द खिल उठूँगी और तुम्हारी हो जाऊँगी। अभी धैर्य धारण करो।

इस गीत में ग्रामीण कवियित्री ने प्रथम दो चरणों में जहाँ करुण रस की धारा बहा कर पाठक पाठिकाओं के हृदय को पिघला दिया है वहाँ बाद के दोनों चरणों में ज्ञात यौवना कन्या से विशुद्ध पर पवित्र संयोग शृङ्गार कहला कर, ऐसी शोखी भरी, काव्यमयी तथा उक्ति पूर्ण वार्ता करवाई है कि शृङ्गार

उपज कर भी करुणा की आड़ में छिपा रहता है और अपना दर्शन पाठक को तब तक नहीं देता जब तक पाठक उस करुण सरोवर में डुबकी मार कर उसमें डूबे हुए सयोग शृङ्गार को पकड़ कर बाहर नहीं लाते।

(२२)

की इहो दुलहा रामा अमावा लोभइले की गइले बटिया भुलाय।
कब से रसोइया लिहले हम बइठल जोहत बानी एकटक राह ॥१॥
दुलहिन रानी ना अमावा लोभइलीं ना गइलीं बटिया भुलाय।
बाबा के बगिया कोइलरि एक बोलेली कोइलि सबद सुनिला ठाढ ॥२॥
चिठिया लिखि एक पठवेली दुलहिन देइ कोइलरि देई के हाथ।
तनि एका बोलिया नेवरितिउ कोइलरि देई परभु मोरा जेवन के ठाढ ॥३॥
चिठिया एक लिखि पठवेली कोइलरि दिहो दुलहिन देईके हाथ।
अइसने बोलिया तुहू बोलितू दुलहिनि देई बलमू के लेतिउ बिलमाय ॥४॥

वधू ने कहा, 'हे प्रियतम! तुम आम देख करके लुभा गये, या रास्ता ही भूल गये कि इतनी देर हो गयी? मैं कब से भोजन लिये बैठी बैठी तुम्हारा मार्ग जोह रही हूँ'॥१॥

पति ने कहा, 'हे मेरी प्यारी रानी! न मैं आम देखकर लुभाया और न मार्ग ही भूल गया था। मेरे बाबा के बाग में एक कोयल बोल रही है। मैं उसी की बोली सुन रहा था।' ॥२॥

इस पर स्त्री ने कोयल के पास लिख कर भेजा—हे कोयल रानी! तुम जरा देर के लिये अपनी बोली बन्द करो; मेरे प्राणनाथ भोजन के लिये खड़े हैं ॥३॥

कोयल ने उत्तर लिखकर दुलहिन के पास भेजा—हे दुलहिन रानी! मेरी ऐसी बोली बोल कर तुम अपने दुलहे को मुग्ध क्यों नहीं कर लेती हो कि मेरे पास बोली बन्द करने को लिखती हो?

इस गीत द्वारा कितना सुन्दर और सरस रूप से वधू को कोयल ऐसी मीठी बोली बोलने का उपदेश दिया गया है।

(२४)

खाइ लेहू खाइ रे लेहू दहिया से रे भातवा ।
तोहरी बिदइया ए बेटी बड़े रे भिनुसार ॥१॥
बिरना कलेउवा ऐ अम्मा हसी खुसी दीहीला ।
हमरा कलेउवा ऐ अम्मा दिहेलू खिसिआइ ॥२॥
हम बिरना ऐ अम्मा जन्मे एक के संगी ।
सगे संगे खेलहीं ऐ अम्मा खइलीं एक सग ॥३॥
भइआ के लिखल ऐ अम्मा बाबा कइ राजवा ।
हमरा लिखल ऐ अम्मा घर बड़ी दूरि ॥४॥
अँगना घूमि घूमि बाबा रे जे रोवैले ।
कतहूँ ना सकीला हा बेटी के नेपुरवा झनकार ॥५॥

कन्या का विवाह हो चुका । दूसरे दिन वह विदा होने वाली है माता कहती है, हे बेटी ! दही भात खा लो । कल बड़े सवेरे तुम्हारी विदाई है । ॥१॥

कन्या ने कहा, मा भैया को तो तुम बड़ी हँसी खुशी से कलेवा देती थी । पर मेरा जलपान तुम नाराजी के साथ दिया करती थी । ॥२॥

भाई और मैं दोनों एक साथ जन्म लिये थे । साथ साथ खेले और साथ साथ खाये थे । ॥३॥

भैया को तो पिता जी का राज्य लिखा है । पर मुझे हे मा ! बड़ी दूर घर जाना है । कन्या के विदा होने पर पिता आँगन में घूम घूम कर रो रहा है । कह रहा है हाय ! बेटी के पाजेब की आवाज अब कहीं सुनाई नहीं पड़ती । ॥४,५॥

(२५)

मोरे पिछुवरवाँ लवँगिया के बगिया लवँग फूले आधी रात रे ।
वोहि लवँगवा के सीतलि बेअरिया मँहके बडे भिनुसार रे ॥१॥
तेहि तर उतरे ले सोनरा बेटवना गहना गढ़े अनमोल रे ।
सभवा बइठि बाबा गहना गढ़ावें बिछुवा में घुघुरू लगाउ रे ॥२॥

गढ सोनरा कँगना-गढ तूहूँ वेसर तिलरी मे हीरा जड़ाउ रे।
मानिक मोती से वेंदिया सँवारहु जे चमके बेटी तेरा माँग रे ॥३॥
अतना पहिरि बेटी चउका जे बइटली बेटी के मन दलगीर रे।
गोर वदन बेटी साँवर भइली मुँहवा गइल कुम्भिलाइ रे ॥४॥
की तोरा बेटी रे दायज थोरवा की बोलेला भैया खिसिआइ रे।
की तोरा बेटी रे सेवा से चुकली काहे तोर मुहँवा उदास रे ॥५॥
ना मोरे बाबा रे दायज थोरवा नाहीं भैया बोले खिसिआइ रे।
ना मोरे बाबा हो सेवा से रउरा चुकलों यहि गुन मुहवा उदास रे ॥६॥
तब त कहले बाबा निअरे बिआहवि बिअहल देसवा के ओर रे।
नैहर लोग दुलम होइहें बाबा रहवि बिसुरि बिसूरि रे ॥७॥
'बोलिया त जइसन बोलल् बेटी मरल् करेजवा में बान रे।
अगिले के घोड़वा बीरन तोर जइहे पीछे लागि चारि कहार रे ॥८॥

मेरे पिछवारे लौंग का बाग है। लौंग आधी रात में फूलती है। उस लौंग से बहुत शीतल हवा आती है। वह बड़े सवेरे खूब महकती है ॥१॥

उस लौंग के नीचे सोनार का लड़का उतरा है, जो बड़े अनमोल गहने गढ़ता है। सभा में बैठे हुए पिताजी गहना गढ़ा रहे हैं। और बिछुवे में घुघुरू लगवा रहे है ॥२॥

हे सोनार कगन गढ़ दो। वेसर बना दो। तिलरी में हीरा चढ़ा दो। वेदी को मानिक और मोती से सँवार दो। जिससे मेरी बेटी की माँग चमक उठे ॥३॥

गहना बन गये। बेटी गहने पहन कर वेदी पर बैठी। पर उसका मन उदास था। यह देख पिता ने पूछा, हे बेटी, तुम्हारा गोरा रग साँवला हो गया। और मुँह कुम्भिला गया। क्या मैंने तुम्हें दायज थोड़ा दिया? या तुम्हारा भाई तुमसे नाखुश होकर बोला? अथवा हे बेटी, मैंने तेरी सेवा में कोई चूक की? क्यों तुम्हारा मुह उदास है? ॥४,५॥

कन्या ने कहा, 'हे पिता, न तो मेरा दायज ही थोड़ा है और न भैया ने ही रज होकर बातें की। हे पिता, आपके सेवा में कोई चूक भी नहीं हुई।

केवल इसी बात से मन उदास है कि आपने कहा था कि निकट ही ब्याह करेंगे पर आपने वैसा न करके मुझे देश के एक छोर पर ब्याह दिया। हे पिता, मेरे नैहर के लोग दुर्लभ हो जायँगे। मैं बिसूर बिसूर कर रह जाऊँगी। पर कोई नैहर का नहीं मिलेगा। ॥६,७॥

पिता ने कहा, हे कन्या, तुमने जैसी बात कही उससे कलेजा में बान लग गया। तुम्हारे पीछे ही घोड़े चढ़कर तुम्हारे भाई तुम्हारे पास जायँगे और उनके पीछे ही विदाई के लिये कँहार जायँगे।

(२६)

घरवा से निकसेली वेटी हो कवन देई, भइली देवढिवा धइले ठाढ़ रे।
सुरुज के उगले उगले किरिनिया छिटिकले गोर वदन कुम्हिलाय रे ॥१॥
कहि तू त मोर वेटी छत्र छवईतीं नाहीं तनइती ओहार रे।
कहि तू त ए वेटी सुरुज अलोपित हो गोर वदन रहि जात रे ॥२॥
कहि के मोरे वावा छत्र छवाइव हो काहि के तनइव ओहार रे।
कहि के मोरे वावा सुरुज अलोपवि हो एक दिना के वात हो ॥
आजु क दिन वावा तोहरे मडउआ हो विहने सुनर वर के साथ रे ॥३॥
खोरवन ए वेटी दूधवा पिअवलीं हो दहिया खिअवलीं छालीदार रे।
दूधवा के नीरवा वेटी फाटहू ना पावल चललू सुनर वर साथ रे ॥४॥
काहि के वावा मोरे दुधवा पिअवल हो दहिआ खिअवल छालीदार रे।
जानत रहल वेटी पर घर जइहें हो नाहक कइल मोर दुलार हो ॥५॥

घर से अमुक देवी निकलीं ड्योढ़ी का दरवाजा पकड़ कर खड़ी हुईं। सूर्य उदय हो चुका था। किरणें भी छिटक चुकी थीं। उनसे सुकुमार कन्या का मुख कुम्हला गया था ॥१॥

पिता ने पूछा—बेटी कहो तो छत्र छवा दूँ या परदा डलवा दूँ, या कहो तो किसी तरह सूर्य के धूप को ही रोक दूँ, जिससे तुम्हारा कोमल मुख न कुम्हलाने पावे ॥२॥

कन्या ने कहा—हे पिता, तुम छत्र क्यों छवाओगे? परदा ही क्यों डलवाओगे? और क्यों धूप को ही रोक दोगे। एक दिन की तो और बात

है ? आज तुम्हारे मण्डप में मैं हूँ। कल अपने सुन्दर वर के साथ चली जाऊँगी ॥३॥

पिता ने कहा, हे बेटी, मैंने कटोरे भर भर कर दूध पिलाया और और साढ़ीदार दही खिलाया। दूध का पानी फटा भी नहीं कि तुम सुंदर वर के साथ जाने पर उद्यत हो गयी ॥४॥

कन्या ने कहा—हे पिता, क्यों तुमने दूध पिलाया ? क्यों साढ़ीदार दही खिलाया ? तुम तो जानते ही थे कि बेटी पराये घर जायगी। फिर मेरा दुलार क्यों किया ? ॥५॥

(२७)

हटिया सेंनुरा महँग भइले बाबा चुनरी भइले अनमोल।
यहि सेनुरा के कारन रे बाबा छोड़लों मैं देस तोहार ॥१॥
बाबा केर बेटी दसे कोस बिअहबों भउजी कहें कोस पाँच।
माई कहें बेटी नगर अजोधिआ निति उठि प्रात नहइहे ॥२॥
बाबा देलनि अनधन सोनवाँ मैया देली लहरा पटोर।
भैया देले चढन के, हाँ, घोड़वा भउजी देली आपन सोहाग ॥३॥
बाबा के सोनवा नवें दिन खइलों फाटि गइले लहरा पटोर।
भैया के घोड़वा नगरे गवँवलीं भउजी के बाढ़े अहिवात ॥४॥
भइआ कहे बेटी नित उठि अइह बाबा कहे छठें मास।
भैया कहे बहिनी काज परोजन भउजी कहे कस बात ॥५॥

कन्या अपने मायके की बातें उससे कह रही है।

हे पिता ! बाजार में सिन्दूर महँगा हो गया। चूँदर अनमोल हो गई इसी सिन्दूर के कारण मैंने तुम्हारा देश छोड़ दिया ! ॥१॥

पिता कहते थे कि दस ही कोस की दूरी पर मेरा ब्याह करेंगे। भाई कहते थे कि पाँच ही कोस पर ब्याह होगा। माता जी कहती थीं कि अयोध्या नगरी में ब्याह होगा कि नित्य उठ कर प्रात स्नान करने को मिलेगा।' (पर सब ने इतनी दूर ब्याह दिया)

'पिता ने अन्न और धन तथा सोना दिया था मा ने रेशमी वस्त्र दिये थे।

भाई ने चढ़ने के लिये घोड़ा दिया था और भावज ने सोहाग सिन्दूर प्रदान किया था। परन्तु पिता का सोना कुछ ही दिनों में खा चुकी। माता के दिये हुए रेशमी वस्त्र भी फट गये। भैया का दिया हुआ घोड़ा भी नगर के लोगों के काम में खतम हो चुका। परन्तु भौजी का दिया हुआ अहवात बढ़ रहा है। ईश्वर करे बढ़ता जाय।

पिता ने कहा था कि नित्य उठकर मै तुम्हारे पास आऊँगा। मा ने कहा था छठवें मास अवश्य जाँयगे। भाई ने वादा किया कि पारिवारिक काम में अवश्य बुलाएँगे। पर भौजी ने कहा था कि यह सब बातें कैसी हैं अर्थात झूठी हैं। (सो भौजी की ही बात सत्य हुई सभी भूल गये)'

(२८)

सोवत रहलिउँ मैं मैया के कोरवा भैया के कोरवा हो।
मोरी भौजी जे तेल लगावे त बरवा गुहन लगली हो ॥१॥
अइली नउनिया ठकुराइन त वेदिया चढ़ि बइठेली हो।
ऊ त लालि महावरि देली त चलन चलन कहेली हो ॥२॥
एक कोस गइली दूसर कोस तिसरे में विन्दावन हो।
धनि झलरी उघारि निरेखे ली मोरे बाबा के केहू नाहीं हो ॥३॥
नीला घोड़ा चीतकाबर चढ़ल दूलहा बोलेले हो।
हथवा में लिहले कमान आपन हम हईं रे हो ॥४॥
भूखिया में भोजन खिअइबों पिआसिया में पानी देइबों हो।
धनियाँ रखबों में हियरा लगाइ बबैया बिसरावहु हो ॥५॥

अज्ञात यौवना कन्या की कितनी सुन्दर कहानी है। कहीं किसी तरह की कृत्रिमता नहीं। सीधा सादा भाव अद्योपान्त कहा गया है। और अन्त में पति ने जो सान्त्वना दी है वह कितना सुन्दर उतरा है। सुनिये—

विवाह के अर्थ से भी अनभिज्ञ बालिका कन्या कहती है,मै अपनी माता की गोद में सो रही थी कि मेरी भावज आई और तेल लगाकर बाल गूंथने लगी ॥१॥

फिर नाइन आई और वेदी पर चढकर बैठ गयी। उसने लखित महा-

वर लगाया और चलने चलने का शोर मचाने लगी। ॥२॥

मै एक कोस गई। दूसरा कोस पार हुआ। तीसरे में वृन्दावन आया मैंने पालकी की झालर उठाकर जो बाहर देखा तो मेरे बाबा का कोई आदमी वहाँ नजर नहीं आया ॥३॥

एक नीले रग के चितकबरे घोड़े पर चढ़े हुए पति ने, जो हाथ में तीर कमान लिये हुये था कहा, हे धनि ! मै ही तुम्हारा अपना हूँ। मैं भूख लगने पर खिलाऊँगा। प्यास लगते ही पानी दूँगा। और तुम को हृदय में लगाकर रक्खूँगा। तुम अपने पिता को भूल जाओ। ॥४,५॥

बालिका कन्या की ये अबोध सरल बातें तथा पति का सुन्दर सन्तोष कितने सरस है।

(२६)

मोरे पिछुअरवा लवँगिया के बिरवा लवँगि चुए अधी राति।
लवँगि बीनि बीनि ढेर लगवलों लादिले बनिजार ॥१॥
लादि चलेला वनिजारवा के बेटवा कि लादि चलेले पिआ मोर।
हमरो के पालकी सजाऊ रे पिअरवा मोरा तोरा जुरल बा सनेह ॥२॥
भूखन मरबू पिआसन मरबू पान बिनु ओठ कुम्भिलाई।
कुसवा सायरि धनि, डासन पइबू अग छिलाइ छिल जाई ॥३॥
भूख में सहिबों पिआस में सहिबों पान डारबि बिसराई।
तोहरे साथ पिया जोगिन होइबों ना सग बाप ना माई ॥४॥

मेरे पिछवारे लौंग का पेड है। आधी रात को लौंग चूती है। मैंने लवग बीन बीन ढेर लगा दिया। अब बनजारा (व्यापारी) उसे लाद रहा है। ॥१॥

बनजारा का पुत्र, मेरा पति, लवग लाद कर विदेश चलने को उद्यत हुआ। मैंने कहा, हे मेरे प्राण प्यारे ! हम और तुम दोनों स्नेह से बँधे हैं। मेरे लिये भी पालकी सजाओ। मैं भी तुम्हारे साथ चलूगी।

पति ने कहा, हे प्रिये ! तुम विदेश चलोगी तो भूखों मरना पड़ेगा। प्यास के मारे व्याकुल हो जाओगी। पान के अभाव में तुम्हारे होठ कुम्भला

जायँगे। कुश की चटाई तुम्हें सोने को मिलेगी जिससे तुम्हारे कोमल शरीर छिल छिल जायँगे। इस लिये तुम साथ न चलो।

इस पर पत्नी ने कहा, हे प्रियतम ! मै भूख सह लूँगी। प्यास भी रोक लूँगी। पान को भूल जाऊँगी। और हे प्राण प्यारे ! मैं तुम्हारे साथ जोगिनी होऊगी। मै न मा के साथ रहूँगी न बाप के। मुझे अपने साथ ले चलो।

सती सीता ने भी तो राम से वन कष्ट समझाने पर कहा था—

राखिय अवध जो अवधि लगि, रहत जानिये प्रान।
दीन बंधु सुंदर सुखद, सील सनेह निधान॥

ठीक है सती साध्वी पत्नी का सुख एक मात्र पति के साथ रहने ही में है। और शायद वैसे ही 'सील सनेह निधान' एक पत्नी व्रती पति का जीवन सुख भी प्रेयसी पत्नी के साथ ही रहने में भी है। इसी से तो बिहारी ने कहा—

(२०)

कहवाँ से सोना अइले कहवाँ से रूपा अइले हो।
एहो कहवाँ से लाली पलँगिया पलँगिया जगमोहनि हो॥१॥
कासी से सोना अइले गया जी से रूपा अइले हो।
एहो सैयाँ सग लाली पलँगिया पलँगिया जगमोहनि हो॥२॥
भीतराँ से रोवेली मयरिया अचरवन आँसू पोंछेली हो।
ए हो मोरी बिटिया चलेली बिदेस कोखिया मोरि सूनि भइले रे॥३॥
दुअरहिं रोवेलें बाबा पटुकवन लोरि पोंछेलें हो।
मोरी धिया चलली विदेस भवन मोरा सून भइले हो॥४॥
भीतराँ से रोवेलनि भइअवा पगरिया आँसू पोंछेले हो।
मोरी बहिनी चलेली विदेस पीठिया मोरि सूनि भइल हो॥५॥
ओबरी में भउजी जी रोवेलीं चुनरिया आँसू पोछेली हो।
आहो ! मोरी ननदी चलेली विदेस रसोइया मोरी सूनी भइली हो॥६॥

अरे ! कहाँ से इतना सोना आया। कहाँ से इतना रूपा आया ?

अरे ! कहाँ से यह जग मोहने वाली लाल पलंग आई है ? ॥१॥

काशी से सोना आया है। गया से रूपा आया है। और स्वामी के साथ यह लाल पलग आई है जो ससार के मन को अपनी सुन्दरता से मोह लेती है। ॥२॥

अदर माताजी रो रो कर अचल मे आँसू पोछ रही है और कहती है कि अरे ! मेरी कन्या परदेश चली। मेरी कोख सूनी हो गई। ॥३॥

उधर बैठक मे पिता जी रो रो कर दुपट्टे मे आँसू पोंछ रहे हैं और कह रहे हैं कि हा, मेरी बेटी परदेश चली। मेरा घर सूना हो गया। ॥४॥

और भीतर घर मे भैया रो रहे है और अपनी पगड़ी से आँसू पोछ पोंछ कर कह रहे हैं कि अरे ! मेरी बहन परदेश चली, मेरी पीठ खाली हो गई। कोई सहायक न रहा। ॥५॥

और ओबरी में बैठी बैठी मेरी भावज रो रो कर चूनर से आँसू पोछती हैं और कहती है कि अरे ! मेरी ननद जी परदेश चली। अब मेरी रसोई सूनी हो गई। ॥६॥

कन्या की विदाई का जीता जागता चित्र कितना सुन्दर खींचा गया है। कन्या ससुराल में पहुँच कर वहीं अंतिम विदा का दृश्य मानस पट पर चिंतन कर कर के आँसू आज भी बहा रही है। कन्या का कौन ऐसा माता पिता होगा जिस की आखों में इस गीत को सुन कर आँसू न उमड़ आवेंगे।

(३१)

सूतल रहलों मइया जी के कोरवा नींदिया उचटि गइली मोर।
केकरे दुआरे मइया बाजन बाजेले केकरे रचल बा बिआह ॥१॥
तुहीं बेटी आउरि तुहीं बेटी बाउरि तुहीं बेटी चतुर सयानि।
तोहरे दुआरे बेटी बाजन बाजे तोहरे रचल बा बिआह ॥२॥
नाहीं सीखिलीं मैया हम गुन अवगुनवा नाहीं सीखली रसोई।
सासु ननद मैया मोहिं गरीअइहें मोरे बूते सहि ना जाई ॥३॥
सिखि लेहू ए बेटी गुन अवगुनवा सिखि लेहू राम रसोई।
सासु ननदि बेटी जो गरिआवें लेइलिहे अँचरा पसारि ॥४॥

मैं मा की गोद में सो रही थी कि सहसा मेरी नींद उचट गयी। पूछा, हे मा! किसके दरवाजे पर बाजा बजता है? किसका विवाह होने जा रहा है। ॥१॥

माने कहा हे बेटी तुम्हीं तो एक घर में हो अच्छी या बुरी एक ही लड़की हो तुम्हारे ही दरवाजे पर बाजन बज रहा है। तुम्हारा व्याह होने जा रहा है। ॥२॥

कन्या ने कहा, हे मा, मैंने न कोई गुण सीखा न अवगुण ही जाना। और न मैंने रसोई बनाना ही सीखा। सो हे मा, ससुरे में मुझे सास ननद गाली देंगी। उसको सहना मेरे वश की बात नहीं होगी। ॥३॥

मा ने कहा, बेटी, गुण अवगुण सब सीख लो। और अच्छी रसोई बनाना भी सीख लो। जब तेरी सास ननद तेरी मा को गाली दें तो आँचल पसार कर उसे ले लेना, सहन करना ॥४॥

(३१)

आरे आरे काला भँवरवा आँगन मोरे आवहु।
भवँरा! आजु मोरे काज बिआह नेवता देइ आवहु ॥१॥
नेवता दीह तूँ अरगन परगन अवरू ननिआउर हो।
एक नहिं नेवतीह वीरन भैया जेइ हमारा से रुठलनि हो ॥२॥
सासु भेंटेली आपन भइया ननदी आपन वीरन हो।
कोइलरि छतिया उठे घहरि दैया में उठि भेंटो काहि हो ॥३॥
आरे आरे काला भँवरवा आँगन मोरे आवहु हो।
भँवरा फिरि से नेवत देइ आउ वीरन मोरे आवहिं हो ॥४॥
आरे आरे जोगिनि भाँटिनि जनि कोई गावहु हो।
आजु मोरा जियरा विरोग वीरन नाहि अइलनि हो ॥५॥
आरे आरे चेरिया लहँड़िया दुवारा झाँकि आवहु हो।
केहिकर घोड़ा ठहनाय दुवारे मोरे भीर भइले हो ॥६॥
आगे आगे चउरा चँगेरवा त पियरी गहागह हो।
नीले घोड़ा भैया असवार त डँड़िया भउजी मोर हो ॥७॥

अरे ! कहाँ से यह जग मोहने वाली लाल पलग आई है ? ॥१॥

काशी से सोना आया है। गया से रूपा आया है। और स्वामी के साथ यह लाल पलग आई है जो ससार के मन को अपनी सुन्दरता से मोह लेती है। ॥२॥

अंदर माताजी रो रो कर अंचल मे आँसू पोछ रही है और कहती हैं कि अरे ! मेरी कन्या परदेश चली। मेरी कोख सूनी हो गई। ॥३॥

उधर बैठक में पिता जी रो रो कर दुपट्टे मे आँसू पोंछ रहे हैं और कह रहे हैं कि हा, मेरी बेटी परदश चली। मेरा घर सूना हो गया। ॥४॥

और भीतर घर में भैया रो रहे हैं और अपनी पगड़ी से आँसू पोंछ पोंछ कर कह रहे हैं कि अरे ! मेरी बहन परदेश चली, मेरी पीठ खाली हो गई। कोई सहायक न रहा। ॥५॥

और ओबरी मे बैठी बैठी मेरी भावज रो रो कर चूनर से आँसू पोछती हैं और कहती है कि अरे ! मेरी ननद जी परदश चली। अब मेरी रसोई सूनी हो गई। ॥६॥

कन्या की विदाई का जीता जागता चित्र कितना सुन्दर खींचा गया है। कन्या ससुराल में पहुँच कर वहीं अंतिम विदा का दृश्य मानस पट पर चितन कर कर के आँसू आज भी बहा रही है। कन्या का कौन ऐसा माता पिता होगा जिस की आखों में इस गीत को सुन कर आँसू न उमड़ आवेंगे।

(३१)

सूतल रहलीं मइया जी के कोरवा नींदिया उचटि गइली मोर।
केकरे दुआरे मइया बाजन बाजेले केकरे रचल बा बिआह ॥१॥
तुहीं बेटी आउरि तुहीं बेटी बाउरि तुहीं बेटी चतुर सयानि।
तोहरे दुआरे बेटी बाजन बाजे तोहरे रचल बा बिआह ॥२॥
नाहीं सीखिलीं मैया हम गुन अवगुनवा नाहीं सीखली रसोई।
सासु ननद मैया मोहिं गरीअइहें मोरे बूते सहि ना जाई ॥३॥
सिखि लेहू ए बेटी गुन अवगुनवा सिखि लेहू राम रसोई।
सासु ननदि बेटी जो गरिआवें लेइलिहे अँचरा पसारि ॥४॥

मैं मा की गोद में सो रही थी कि सहसा मेरी नींद उचट गयी। पूछा, हे मा! किसके दरवाजे पर बाजा बजता है? किसका विवाह होने जा रहा है। ॥१॥

माने कहा हे बेटी तुम्हीं तो एक घर में हो अच्छी या बुरी एक ही लड़की हो तुम्हारे ही दरवाजे पर बाजन बज रहा है। तुम्हारा ब्याह होने जा रहा है। ॥२॥

कन्या ने कहा, हे मा, मैंने न कोई गुण सीखा न अवगुण ही जाना। और न मैंने रसोई बनाना ही सीखा। सो हे मा, ससुरे में मुझे सास ननद गाली देंगी। उसको सहना मेरे वश की बात नहीं होगी। ॥३॥

मा ने कहा, बेटी, गुण अवगुण सब सीख लो। और अच्छी रसोई बनाना भी सीख लो। जब तेरी सास ननद तेरी मा को गाली दें तो आँचल पसार कर उसे ले लेना, सहन करना ॥४॥

(३१)

आरे आरे काला भँवरवा आँगन मोरे आवहु।
भवँरा! आजु मोरे काज बिआह नेवता देइ आवहु ॥१॥
नेवता दीह तूँ अरगन परगन अवरू ननिआउर हो।
एक नहिं नेवतीह वीरन भैया जेइ हमारा से रुठलनि हो ॥२॥
सासु भेंटेली आपन भइया ननदी आपन वीरन हो।
कोइलरि छतिया उठे घहरि दैया मे उठि भेंटो काहि हो ॥३॥
आरे आरे काला भँवरवा आँगन मोरे आवहु हो।
भँवरा फिरि से नेवत देइ आउ वीरन मोरे आवहिं हो ॥४॥
आरे आरे जोगिनि भाँटिनि जनि कोई गावहु हो।
आजु मोरा जियरा विरोग वीरन नाहि अइलनि हो ॥५॥
आरे आरे चेरिया लहेंड़िया दुवारा झाँकि आवहु हो।
केहिकर घोड़ा ठहनाय दुवारे मोरे भीर भइले हो ॥६॥
आगे आगे चउरा चँगेरवा त पियरी गहागह हो।
नीले घोड़ा भैया असवार त डँड़िया भउजी मोर हो ॥७॥

आरे आरे जोगिन भौटिन सभ कोई गावहु हो।
मोरा जियरा भइलवा हुलास बीरन मोर आवेलें हो ॥८॥
आरे आरे सासु गोसाईं करहिया चढ़ावहु हो।
आज मोरा जियरा हिलोरै बीरन मोरे आवेलें हो ॥६॥
अस जनि जानहु बहिनी त भैया दुखित बाड़े हो।
बहिनी बेचवों मैं फाँड़े क कटरिया चउक लेइ आइब हो ॥१०॥
अस जनि जानहु ननदी की भौजी दुखित बाड़ी हो।
ननदी बेचवों मैं नाके क बेसरिया पीअरिया लेइ के आइब हो ॥११॥
कहवाँ उतारौ चउरा चँगेरवा त पियरी गहागह हो।
कहवाँ भेटों बीरन भैया त कहवाँ भउजी मोरी हो ॥१२॥
ओबरी उतारो चउरा चँगेरवा त पियरी गहागह हो।
डेवढी भेटौं बीरन भैया त अँगना भउजी मोरी हो ॥१३॥
लहँगा ले अइले बीरन भैया पिअरी कुसुम केरा हो।
अँगिया ले अइला मोरी भउजी चउक पर के चूँनरि हो ॥१४॥
हँसि हँसि पहिरेलीं ओढेलीं सुरुज मनाइबेलि हो।
बढइ बबैया तोर बेल मान मोर राखेउ हो ॥१५॥

हे काला भौरा! मेरे आगन मे आयो। हे भौरा! आज मेरे यहाँ विवाह का कार्य है। तुम जाकर निमन्त्रण द आओ ॥१॥

तू जवार और परगना भर सर्वत्र निमन्त्रण देना और निमन्त्रण देना ननिहाल में पर एक मेरे भाई को नेवता मत देना जिनसे में रूठी हूँ ॥२॥

सास और ननद अपने अपने भाई से भेंट कर रही है। पर कोइलरि की छाती यह देख घहरा उठी। वह सोचने लगी कि हाय! मेरे भाई नहीं आये में किससे भेंट करूँ? ॥३॥

वह पछता कर कहने लगी, हे काले भौरा! मेरे आगन में आयो। हे भौरा भैया के पास जाकर फिर से निमन्त्रण दे आओ कि वह अवश्य इस विवाह में आवे। ॥४॥

अरी जोगिनों (लड़का सारी पहन कर जो नाचता है उसे जोगिन कहते

हैं। होली में जोगिन के नाच की अधिक प्रथा है। शादी विवाह में भी यह नाच किया जाता है) और अरी भाटिनो। तुम कोई गाओ मत। आज मेरे हृदय में वियोग दु:ख हो रहा है। मेरे भाई नहीं आये ॥५॥

अरी, चेरी! जाओ दरवाजे पर झाँक कर देखो तो किस का घोड़ा हिनहिना रहा है? मेरे द्वार पर किस लिये भीड़ लगी हुई है ॥६॥

दासियों ने द्वार पर से लौट कर कहा, हे रानी आप के भाई आये हैं। उन्हीं का घोड़ा हिनहिना रहा है और उन्ही की वजह से दरवाजे पर भीड़ लगी है ॥७॥

रानी ने झाँक कर देखा और आनन्द से बोल उठी अरे आगे चावल से भरा हुआ चँगेरा है (बड़ी टोकरी) और गहगहाती हुई पिअरी है अर्थात पीले रंग से दमकती हुई धोतियाँ और अन्य वस्त्रादि तथा आभूषणादि सामान उसके पीछे नीले सब्जे घोड़े पर सवार मेरे भाई हैं और उनके पीछे पालकी में चढ़ी मेरी भावज चली आ रही हैं। ॥८॥

अरी जोगिन, अरी भाटिनो, तुम सब गीत गाओ। आज मेरे हृदय में हुलास भरा है। मेरे भाई आ गये। ॥९॥

हे घर की मालकिन मेरी सास जी, कृपा कर कराही चढ़ाओ अर्थात पूड़ी बनाओ मेरा हृदय आज मारे आनन्द के हिलोरे ले रहा है। आज मेरे भाई आ गये हैं। ॥१०॥

भाई ने बहन से कहा, हे बहन, ऐसा मत समझना कि भाई ग़रीब है। कुछ नहीं तो मैं अपने कमर की कटार बेचकर चौक जरूर लाता। ॥११॥

भौजाई ने कहा, हे ननद जी, ऐसा मत समझना कि भौजाई ग़रीब है। मैं अपने नाक की बेसर बेचकर भी पीला वस्त्र अवश्य ले आती। ॥१२॥

रानी ने सास से पूछा, यह चावल से भरा चंगेरा तथा पीअरी कहाँ उतारूँ? और कहाँ रखूँ? मै अपने भाई से कहाँ भेंट करूँ? और भौजी से कहाँ मिलूँ? ॥१३॥

"चावल का चँगेरा और पिअरी (उसे कहते हैं कि धोती जेवर वस्त्र भूषण आदि सामान सज कर जो मायका से कन्या के बच्चे के लिये भेजा

जाता है) ओबरी (कोहबर = वह निश्चित घर जहाँ वेदी के बाद अन्य शुभ कर्म हुआ करते हैं। स्त्रियाँ बच्चा भी यहीं जनती हैं। विवाह में वहू भी पहले चौठारी तक वहीं रखी जाती है) मे रखो ड्योढ़ी पर यानी जनानखाने से बाहर निकलने वाले घर में भाई से मिलो और आँगन में भौजाई से भेंट करो सास ने कहा।

रानी ने कहा, मेरे भाई लहँगा और कुसुम रंग की सारी लाये हैं और भावज चोली तथा चौक पर पहनने की चूँदर लायी है।"

हँस हँस कर रानी ने मायके के कपड़े पहने। फिर वह सूर्य्य को मनाने लगी, हे सूर्य्य नारायण मेरे पिता के परिवार की लता फूले फले जिन्होंने आज मेरा मान रख लिया।

इस गीत की टिप्पणी में प० रामनरेशजी त्रिपाठी ने लिखा है "इस गीत में भाई से रूठी हुई बहन के मन का चढ़ाव उतार ऐसा चित्रित किया गया है कि क्या कोई महाकवि वैसा कर सकेगा ?" मैं भी पंडित जी की बातों का समर्थन करता हूँ।

(३२)

सोने के पिढवा रे राम नहइलनि झट के ले लामी हो केस रे।
निकलि न आवहु माई कोसिला देई राम के आरती उतारु रे ॥१॥
का हम राम क आरती उतारो मन मोर बहुत उदास रे।
आजुक रतिया में कइसे बितइबों राम चलेले ससुरार रे ॥२॥
जनि माई ऊमिल जनि माई धूमिल जनि मन करहु उदास रे।
आजुक रतिया जनक के दुअरवा काल्ह होइबों दास तोहार रे ॥३॥
जब राजा राम बिआहन चलले माता सूरुज नावे माथ रे।
राम बिअहि जब घरवा लवटि हे तोहें देवों दुधवा के धार रे ॥४॥
भइल बिआह परल सिर सेनुर हाथ जोरि सीता ठाढ रे।
अइसन असीस दीह मोरे बाबा बिलसों अजोधिया के राज रे ॥५॥
दुधवा नहावो बेटी पुतवन फरिह कोखियन झालर लागु रे।
बरह बरसि राम बन के सिधरिहें तोहरा के रावन हरि लेइ रे ॥६॥

बाउर भइल तू बाबा जनक रिखि के तोर हरेला गियान रे।
इहे बचनिया बाबा अगवाँ तू बोलित मरिती जहर बिख खाइ रे ॥७॥
बाउर भइलू तू बेटी सीता देई के तोरा हरेला गियान रे।
जे कुछ लिखेला बेटी तोहरे लिलरवा से कइसे मेटल जाइ रे ॥८॥
जब बरिअतिया अवधपुर अइली माता सुरुज माथ नावें रे।
पुतवा पतोहिया नयन भरि देखलों धन धन भाग हमार रे ॥६॥
मिलहू न सखिया रे मिलहु सहेलरि मिलहु सकल रनवास रे।
जस जस माई मोरी अरती उतारइँ राम नयन ढुरे आँसु रे ॥१०॥
किया तोरे राम जनक गरिअवले किया तोर दायज थोर रे।
किया तोरे राम सीता नाहीं सूनरि समुझि नयन ढूरे आँसु रे ॥११॥
नाही मोरी माता जनक गरिअवले नाहीं मोरा दायज थोर रे।
नाहीं मोरी माता सीता असूनर बात एक गुनि ढुरे आँसु रे ॥१२॥
सोने से सिंधोरवाँ माई सीता के बिअहलों दायज मिलल तीन लोक रे।
लछिमी सीता रानी मोरे घरे अइली हमरा लिखल बन बास रे ॥१३॥

सोने के पीढ़े पर राम ने स्नान कर लिया है। वे अपने लम्बे बालों को झटक झटक कर सुखा रहे हैं। अरी मा कौशल्या देवी, तुम निकल क्यों नहीं आतीं! आकर राम की आरती उतारो ॥१॥

कौशल्या कहती हैं, मैं राम की आरती क्या उतारूँ? आज मेरा मन बहुत ही उदास है। हाय! आज की रात मैं कैसे बिताऊँगी? आज राम ससुराल जा रहे हैं ॥२॥

राम कहते हैं, हे मा, खिन्न मन न हो धूमिल चित्त मत करो और न उदास हो। आज की रात तो मैं जनक के द्वार पर बिताऊँगा और कल तुम्हारी सेवा में हाजिर होऊँगा ॥३॥

राम राजा जब विवाह करने को चले गये तब माता ने सूर्य देवता को माथा नवाया और विनती की, हे भगवान जो राम विवाह करके कुशल कुशल घर लौट आवेंगे तो मैं आपको दूध की धार अर्घ्य दूँगी। ॥४॥

ब्याह हो गया। सिर में सिन्दूर पड़ गया। सीता हाथ जोड़ खड़ी हुई

जाता है) ओवरी (कोहवर = वह निश्चित घर जहाँ वेदी के बाद अन्य शुभ कर्म्म हुआ करते हैं। स्त्रियाँ बच्चा भी यहीं जनती हैं। विवाह में वहू भी पहले चौठारी तक वहीं रखी जाती है) में रखो ड्योढ़ी पर थानो जनानखाने से बाहर निकलने वाले घर म भाई से मिलो और आँगन मे भौजाई से भेट करो सास ने कहा।

रानी ने कहा, मेरे भाई लहँगा और कुसुम रंग की सारी लाये हैं और भावज चोली तथा चौक पर पहनने की चूँदर लायी हैं।"

हँस हँस कर रानी ने मायके के कपड़े पहने। फिर वह सूर्य्य को मनाने लगी, हे सूर्य्य नारायण मेरे पिता के परिवार की लता फूले फले जिन्होंने आज मेरा मान रख लिया।

इस गीत की टिप्पणी में प० रामनरेशजी त्रिपाठी ने लिखा है "इस गीत में भाई से रूठी हुई बहन के मन का चढ़ाव उतार ऐसा चित्रित किया गया है कि क्या कोई महाकवि वैसा कर सकेगा ?" मैं भी पडित जी की बातों का समर्थन करता हूँ।

(३२)

सोने के पिढवा रे राम नहइलनि झट के ले लामी हो केस रे।
निकलि न आवहु माई कोसिला देई राम के आरती उतारु रे ॥१॥
का हम राम क आरती उतारो मन मोर बहुत उदास रे।
आजुक रतिया में कइसे बितइबों राम चलेले ससुरार रे ॥२॥
जनि माई ऊमिल जनि माई धूमिल जनि मन करहु उदास रे।
आजुक रतिया जनक के दुअरवा काल्ह होइबों दास तोहार रे ॥३॥
जब राजा राम विआहन चलले माता सूरुज नावे माथ रे।
राम विअहि जब घरवा लवटि हे तोहें देबों दुधवा के धार रे ॥४॥
भइल बिआह परल सिर सेनुर हाथ जोरि सीता ठाढ रे।
अइसन असीस दीह मोरे बाबा बिलसों अजोधिया के राज रे ॥५॥
दुधवा नहावो बेटी पुतवन फरिह कोखियन झालर लागु रे।
बरह बरिस राम बन के सिधरिहें तोहरा के रावन हरि लेइ रे ॥६॥

वाउर भइल तू बाबा जनक रिखि के तोर हरेला गियान रे।
इहे वचनिया बाबा अगवों तू वोलित मरिती जहर विख खाइ रे ॥७॥
वाउर भइलू तू बेटी सीता देई के तोरा हरेला गियान रे।
जे कुछ लिखेला बेटी तोहरे लिलरवा से कइसे मेटल जाइ रे ॥८॥
जब वरिअतिया अवधपुर अइली माता सुरुज माथ नावें रे।
पुतवा पतोहिया नयन भरि देखलों धन धन भाग हमार रे ॥९॥
मिलहू न सखिया रे मिलहु सहेलरि मिलहु सकल रनवास रे।
जस जस माई मोरी अरती उतारइँ राम नयन ढुरे आँसु रे ॥१०॥
किया तोरे राम जनक गरिअवले किया तोर दायज थोर रे।
किया तोरे राम सीता नाहीं सूनरि समुझि नयन ढूरे आँसु रे ॥११॥
नाही मोरी माता जनक गरिअवले नाहीं मोरा दायज थोर रे।
नाहीं मोरी माता सीता असूतर बात एक गुनि ढुरे आँसु रे ॥१२॥
सोने से सिंधोरवा माई सीता के बिअहलों दायज मिलल तीन लोक रे।
लछिमी सीता रानी मोरे घरे अइली हमरा लिखल बन वास रे ॥१३॥

सोने के पीढ़े पर राम ने स्नान कर लिया है। वे अपने लम्बे बालों को झटक झटक कर सुखा रहे हैं। अरी मा कौशल्या देवी, तुम निकल क्यों नहीं आतीं! आकर राम की आरती उतारो ॥१॥

कौशल्या कहती हैं, मैं राम की आरती क्या उतारूँ? आज मेरा मन बहुत ही उदास है। हाय! आज की रात मैं कैसे बिताऊँगी? आज राम ससुराल जा रहे हैं ॥२॥

राम कहते हैं, हे मा, खिन्न मन न हो धूमिल चित्त मत करो और न उदास हो। आज की रात तो मैं जनक के द्वार पर बिताऊँगा और कल तुम्हारी सेवा में हाजिर होऊँगा ॥३॥

राम राजा जब विवाह करने को चले गये तब माता ने सूर्य देवता को माथा नवाया और विनती की, हे भगवान जो राम विवाह करके कुशल कुशल घर लौट आवेंगे तो मैं आपको दूध की धार अर्घ्य दूँगी। ॥४॥

ब्याह हो गया। सिर में सिन्दूर पड़ गया। सीता हाथ जोड़ खड़ी हुई

और अपने पिता जनक से प्रार्थना करने लगीं—हे पिता मुझे ऐसा आशीर्वाद दो कि मैं अयोध्या का राज सुख पूर्वक भोगूँ ॥५॥

जनक ने कहा, हे बेटी, तुम दूध से नहाओ, पुत्र से फलो, और तुम बहुत सन्तान वाली बनो। पर बारह वर्षों के लिये राम बन जायगे और वहाँ रावण तुमको हर ले जायगा। ॥६॥

सीता ने कहा, पिता राजर्षि जनक! तुम बावले हुए हो क्या? तुम्हारा ज्ञान किसने हर लिया है? तुम यही बात पहले कहते तो मैं विष खाकर मर जाती व्याह न करती। ॥७॥

जनक ने कहा, बेटी सीता! तुम बावली हो गई है क्या? तुम्हारा ज्ञान किसी ने हर लिया? अरी बेटी, जो कुछ तेरे भाग्य में लिखा है वह कैसे मेटा जा सकता है। ॥८॥

जब बारात अयोध्या में सकुशल लौट आई तब कौशल्या ने सूर्य को सिर नवाया और कहा, मैंने आँख भर कर अपने पुत्र और पुत्र वधू को देखा, मेरा भाग्य धन्य है। ॥९॥

रनवास में सखियाँ बातें करती हैं हे सखियों आओ मिल लें, हे सहेलरि रनवास की स्त्रियो जाओ। देखो जैसे माता कौशल्या आरती उतार रही हैं वैसे वैसे राम के नेत्र मे आँसू निकल रहे हैं। ॥१०॥

कौशल्या ने पूछा, हे बेटा, तुमको जनक ने क्या गाली दी है? या तुम्हें दहेज कम मिला है? या तुम्हारी सीता बहू सुन्दरी नहीं हैं? आँसू क्यों गिर रहे हैं ॥११॥

राम ने कहा, हे मा, न तो जनक ने मुझे गाली दी, न दहेज ही मुझे कम मिला और न सीता ही कुरूपा है। एक बात याद करके आखों से आँसू गिरते हैं। ॥१२॥

सीता का व्याह तो आनन्द में सोने के सिघोरे में रखे सिन्दूर से हो गया। मुझे तीनो लोक दहेज में मिले। और लक्ष्मी रुपिणी सीता रानी मेरे घर आई, पर मेरे भाग्य में बनवास लिखा है।

(३३)

केथुअन छाई ला अरइल खरइल केथुअन छाई ला वरेज हो ।
केथुअन छाई ला इहे गजओवरि भँवरा पइठि मननाइ हो ॥१॥
सरवन छाई ला अरइल खरइल पनवन छाई ला वरजे हो ।
वेतवन छाई ला इहे गज ओवरि भँवरा पइठि मननाइ हो ॥२॥
तँहवई पंइठ सूतेलनि दुलरू कवन दुलहा पावेले कवन देइ रानि हो ।
मोहि तो से पूछीला ससुर जी के धेरिया हो काहे तोरे वदन
मलीन हो ॥३।
माई तोंहार प्रभु मारे गरिआवे वहिनी वोलेली विरहो वोल हो ।
लहुरा देवरा मारेला लाली छुरिया वोही गुने वदन मलीन हो ॥४॥
माई के वेचवों धनी हाट वजरिया वहिनी विदेसिया के हाथ हो ।
भइया के मारों धनी रतुली कमनियाँ हम तुहू वेलसव राज हो ॥५॥
माई तोहार प्रभु जी हाथे पछेलवा हो वहिनी तोहार सिर पाग हो ।
भइया तोहार साहेव दहिनी वहिया हम तरवा केरि धरि हो ॥६॥

अरइल खरइल दही मथने का घर और गोशाला किसमे छाया गया है ? वरेज किससे छाया गया है । यह गजओवरि (कोहवर=घर विशेष जहां सोहाग रात मनायी जाती है) किससे छाई गयी है, जिसमें भ्रमर प्रवेश करके गुंजार कर रहा है ?

अरइल खरइल खर (सरपत) से छाया गया है बरेज (पान जहाँ लगता है) पान से छाया गया है । और गज ओवरी (कोहवर) वेति से छाई गयी है जिसमें भ्रमर पैठ कर मनमना रहा है ॥२॥

उस ओवरी में प्रवेश कर के दुलारे अमुक राम शयन कर रहे हैं । और उनके साथ वे अमुक देवी हैं। वे अमुक राम पूछ रहे हैं—हे मेरे ससुर जी की कन्या, मैं तुमसे पूछता हूँ कि तुम्हारा मुख मलीन क्यों है ? ॥३॥

पत्नी ने कहा, प्रभु तुम्हारी मा मारती और गाली देती है। बहन विरह की बोली बोलती है । छोटा देवर लाल छड़ी से मारता है । इसी से मेरा मुख उदास है । ॥४॥

पति ने कहा, हे धनी, मैं माता को हाट बाजार में बेच दूँगा। बहिन को विदेशी को दे दूँगा। भाई को लाल कमान से मारूँगा और तुम्हारे साथ राज सुख भोगूँगा। ॥५॥

स्त्री ने कहा, हे प्रियतम मा तो तुम्हारे हाथ की मगन है। बहन तुम्हारे सिर की पगड़ी है। और भाई तो हे मेरे स्वामी! आप की दाहिनी भुजा हैं। मैं तुम्हारे पैरों की धूल हूँ ॥६॥

उत्तेजित पति को बहू ने नम्रता पूर्वक नीति की बात समझा कर शान्त किया।

पूरबी गीत

(१)

मोरा राम दूनू भैया से वनवा गइलनि ना ॥
दूनू भैया से वनवा गइलनि०॥
भोरही के भूखल होइहन, चलत चलत पग दूखत होइहन,
सूखल होइ हैं ना दूनों राम जी के ओठवा ॥१॥
मोरा दूनो भैया ०॥
अवध नगरिया से गइले, निपटे सपनवा भइले ना,
मोरा राम दूनो भइया से वनवा गइले ना ॥२॥
मोरा दूनो भैया ०॥
सुरुजा के किरिनि लगले लाल कुम्भि लाइल होइ हैं,
जागल होइहैं ना मोरा राम दूनो भैया जागल होइहैं ना ॥३॥
मोरा दूनो भैया ०॥
सूतल होइहैं छवना वे विछवना दूनो भइया से थाकल होइहे ना,
मोरा वनवा के तपसिया से वनवा गइले ना ॥४॥
कहत महेन्दर रोअति माता कोसिला रानी से अजहू अइलेन ना
मोरा कोखिया के बलकवा से वनवा गइले ना ॥५॥
राम दूनो भैया०॥

कौशल्या बिलख कर कह रही हैं।

हे राम ! मेरे दोनों भाई वन गये ? हा राम ! मेरे दोनों भाई वन गये ? वे सबेरे ही से अब तक भूखे होंगे। चलते चलते उनके पैर दुख गये होंगे। हा ! राम के दोनों होठ भूख प्यास और थकान से सूखे होंगे ॥१॥

मेरे लाल सूर्य किरणों के लगने से हाय, कुम्हला गये होंगे। हा, अब वे उठे होंगे ? दोनों भाई सोकर उठे होंगे ? ॥२॥

वे दोनों बालक बिना बिछावन के कहीं रात में सो लिये होंगे। हा, वे दोनों भाई अब थक गये होंगे वे वन के दोनों तपस्वी अब थक गये होंगे ? वे वन चले गये। ॥३॥

महेन्द्र कहते हैं कि कौशल्या रानी रोती हैं और कहती हैं, अरे ! आज भी मेरी कोख के दोनों पुत्र जो एक दिन में लौटने को कहकर वन गये थे नहीं लौटे। ॥४॥

क्या मा कौशल्या का यह विलाप पाठक के हृदय को अधिक नहीं तो उतनी ही तीव्रता से नहीं मथ देता, जितनी तीव्रता से 'तुलसी' 'हरि औध' और 'सूर' की कौशल्या' और 'यशोदा' के विलाप को सुन कर वे आर्द्र हो जाते हैं ? पाठक ! विचारें और समझें। कवि भाव को छोड़ कर रस से हट कर क्षण मात्र भी दूसरी ओर नहीं गया। यही खूबी है। करुणा कौशल्या के कंठ में बैठकर स्वतः आ रही है। पुत्र की ममता रखने वाली हमारी सीधी सादी माताओं की विचार धारा ठीक इसी रूप में बहती है।

(२)

हे रघुनन्दन असुर निकन्दन कब लेबो मोर खबरिया राम।
रवना हरले हमे लिहले जाला नगरिया लंका राम।
रथवा चढ़ाई अकास उड़वले सूझत नाहीं डगरिया राम ॥१॥
जनकपुर नगर नइहर छूटले छूटले अवध नगरिया राम।
ससुरा के सुख कुछऊ ना जनलों हो गइलीं वन के अहेरिया राम ॥२॥
जनक राय अस बपवा हमरो पुरुष राम धनु धरिया राम।
हाय रघुनन्दन असुर निकन्दन कब लेब मोर खबरिया राम ॥३॥

हे असुर निकन्दन मेरी खबर कब लोगे। मुझे रावण हर करके लंका नगरी लिये जा रहा है। रथ पर चढ़ा कर आकाश में रथ उड़ा भागा। मुझे कोई भी पथ नहीं दिखाई दे रहा है ॥१॥

मेरा मयका जनक पुर छूट गया और छूट गई अयोध्या नगरी भी। मैंने ससुराल का सुख कुछ नहीं जाना। केवल वन का शिकार बन गई ॥२॥

मेरे जनक राजा ऐसे पिता हैं। और धनुष धारी राम ऐसे पुरुष हैं। पर हाय, असुरों को सहारने वाले राम! तुम मेरी खबर कब लोगे ॥३॥

(३)

हमरा से छोटी छोटी भइली लरकोरिया से हाय रे सवलियो लाल, हमरी
वयसवा बीतल जाय ॥१॥ से हाय रे०॥

बाबा निरमोहिया गवनवा ना दीहले, से हाय रे सँवलियो लाल, विरहा
सहल ना जाय ॥२॥ से हाय रे० ॥

बाट के बटोहिआ रामा, तूही मोरा भइया, से हाय रे सँवलियो लाल,
हरी से सनेसवा कहिओ जाय ॥३॥ से हाय रे०॥

आधी आधी रतिया, रामा बोलेला पपीहरा, से हाय रे सँवलियो लाल,
कोइलरि के बोलिया ना सोहाय ॥४॥ से हाय रे०॥

अइसने समैया राजा सुधि बिसरवले, से हाय रे सँवलियो लाल,
रहि रहि जिया घहराय ॥५॥ से हाय रे ०॥

कहत महेन्दर कागा उचरहु अँगनवाँ से हाय रे सँवलियो लाल,
कबले कन्हइया मिलिहें आय ॥६॥ से हाय रे ॥

विरहिणी माय के बैठी बैठी वसन्त ऋतु में ससुराल की चिन्ता कर रही है।

हम से छोटी अवस्था वाली लरकोरी (पुत्रवती) हो गई। हाय रे सवँलिया लाल! पर मेरी उमर ऐसी ही बीती चली जा रही है ॥१॥

मेरे निरमोही पिता ने (दूसरा पाठ है बाबा हाठ कइले = बाबा ने हठ किया) मेरा गवन नही किये। सो हाय रे सँवलिया लाल! मुझसे यह विरह नहीं सहा जाता है ॥२॥

हे मार्ग से चलने वाले पथिक ! तुम्ही मेरे भाई हो। हाय रे सँवलिया लाल ! तुम मेरा सन्देशा मेरे हरी से जाकर कहना कि आधी आधी रात यहाँ पपीहा बोलता है, और हाय रे सँवलिया लाल। तुम ध्यान नहीं देते। उस पर कोयल की यह बोली और नहीं सही जाती है। हाय रे सँवलियालाल, तुम ध्यान क्यों नहीं देते ? सो ऐसे वसंत ऋतु के समय में मेरे राजा ने मेरी सुधि बिसरा दी है। मेरा हृदय रह रह कर घहर उठता है—दुःख से गरज उठता है। हाय रे सँवलिया ! ध्यान क्यों नहीं देते ? ॥३,४,५॥

महेन्द्र कहते हैं कि विरहिणी काग को सम्बोधन करके कह रही है कि हे काग ! तुम मेरे आगन में उचरो (बोलो) तो। मेरे कन्हैया कब तक मुझसे आ मिलेंगे।

विरहिणी का कितना जीता जागता स्वाभाविक हृदय उद्‌गार है। जब पुरबी राग में पचम स्वर में पानी बरसते समय यह गाया जाता है तो सुनने वाले का हृदय एक बार तो अवश्य हिल उठता है।

'महेन्द्र' मिश्र छपरा जिले के मिश्रवलिया ग्राम, पोष्ट जलालपुर के निवासी हैं। आपकी जाली नोट बनाने के अपराध में एक बार सजा हो गयी थी। आपके रचे अनेक गीत छपरा शाहाबाद, और गोरखपुर, गया, बलिया आदि जिलों में गाये जाते हैं। आप आज भी जीवित हैं। रचना करते हैं कि नहीं ज्ञात नहीं पर आप हैं बड़े रसिक। आपकी कई पुस्तकें भी प्रकाशित हुई थीं। प्रस्तुत गीत उनके प्रकाशित 'महेंद्र मङ्गल' (प्रथम भाग) से सकलित है। दिहात में रडिया तो प्रायः उन्हीं की गीत कुछ दिनोतक गाती रही थीं।

(४)

कुछु दिना नैहरा खेलहू ना पवलों हो वाला जोरी से, सैया मागे ला
गवनवा हो वाला जोरी से ॥१॥

बभना निगोरा मोरा बाड़ा दुख देला हो वाला जोरी से, धरेला सगुनवा
हो वाला जोरी से ॥२॥

लाली लाली डोलिया रे सबुजी ओहरवा हो वाला जोरी से, सैयाँ ले
आवे अँगनवा हो वाला जोरी से ॥३॥

नाहीं मोरा लूर ढग एको गहनवा हो बाला जोरी से, सैयाँ देखि हे
जोबनवा हो बाला जोरी से ॥४॥
मिलि लेहु मिलि लेहु सग के सहेलिया हो बाला जोरी से, फेरू होइहे
ना मिलनवा हो बाला जोरी से ॥५॥
कहत 'महेन्द्र' कोई माने ना कहनवा हो बाला जोरी से, सैयाँ ले
चलले गवनवा हो बाला जोरी से ॥६॥

इस गीत का अर्थ ईश्वर पक्ष और शृङ्गार दोनों में लगाया जा सकता है ईश्वर पक्ष बहुत सुन्दर उतरता है।

मैं कुछ दिन नैहर में खेलने भी न पाई कि सैयों बरजोरी से मेरा गवना करने को कहने लगे। हाय बरजोरी गवना मागने लगे ॥१॥

निगोड़ा ब्राह्मण मुझे बड़ा दुख देता है। वह बल पूर्वक मेरे गवन का सगुन रखता है। हाय मेरे गवन की साइत बरजोरी से धरता है ॥२॥

लाल लाल डोली है। उस पर सब्ज रग का ओहार लगा है। बरजोरी से सैयाँ मेरे आँगन में लाकर रखता है। हाय बलपूर्व वह डोली मेरे आँगन में रखता है ॥३॥

मेरे पास न कोई लूर ढंग है किसी का न ज्ञान है न रहन सहन की तमीज ही है और न कोई आभूषण ही मेरे पास हैं। हाय बरजोरी से (बल पूर्वक) सैंया मेरे जोबनों को देखेगा। हाय बलपूर्वक सैयां मेरे जोबनो को निरेखेगा ॥४॥

हे संग की सहेली! तुम सब मुझसे मिल लो तुम सब किसी तरह मुझसे मिल लो। अब मेरा फिर यहाँ आना नहीं होगा। हाय बलपूर्वक मैं जा रही हूँ मैं फिर यहाँ नहीं आऊँगी। ॥५॥

'महेन्द्र' कहते हैं कि विरहिणी यह कहती चली ही गई कि मेरा कहना कोई नहीं मानता। बलपूर्वक सैया मेरा गवना करके ले चले। कोई मेरा कहा नहीं सुनता नहीं सुनता। सैया बरजोरी से मुझे ले ही चले। ॥६॥

कितना सरस और ज्ञानमय यह गीत है। भक्त और रसिया दोनों इसको एक समान गा गा कर और ईश्वर तथा प्रेयसी के प्रति अपने २ स्वभावा-

नुसार अर्थ लगा लगा कर अपने अपने उमगों मे डूबने उतराने लगने हैं। महेंद्र मिश्र जी की अधिकाश रचनायें ऐसी ही सरस है। पर खेद है कि किसी गुणग्राही ने उनको पुस्तकाकार रूप मे आज तक एक जगह एकत्र नहीं किया। विहार की कितनी निधियों इसी तरह रोशनी में आये बिना ही नष्ट हो गयीं। यही सबसे बड़े खेद की बात है। हिंदी लेखकों के अग्रज इस ओर ध्यान दें, प्रकाशक समझें कि जिस मातृ भाषा की दी हुई रोटी उन्हें मिलती हे उसके सपूतों को इस तरह अजाने मर जाने का सबसे बड़ा दायित्व उन्हीं पर है। माधुरी ने 'पढ़ीस' अंक निकाल कर 'पढ़ीस' को हिंदी संसार के सामने ला दिया है। अवधी, बुंदेली, भोजपुरी, मैथिली, नागरी आदि के सैकड़ों 'पढ़ीस' वे जाने कब और कहाँ मर मिटे।

(५)

आरे मोरा दूनो रे बलकवा आजु बनवा गइले ना। आजु बनवा० ॥
कोसिला सुमितरा रानी झँखेली अगनवा कि सुनवा भइले ना मोरा कचन के
अगनवा कि सुनवा भइले ना ॥१॥ आजु बनवा०
जनक कुमारी सीता अति सुकुमारी हो की सँगवा गइली ना तजि के अवध
नगरिया कि सगवा गइली ना ॥२॥
कठिन कठोर केकई लेलू बरदनवा की दुलमवा भइले ना हमरा राजा
जिअनवा कि दुलमवा भइले ना ॥३॥ आजु बनवा० ॥

अरे! मेरे दोनों बालक आज बन गये। कौशल्या और सुमित्रा रानी झंख रही है और कह रही है कि हमारा सोने का आगन आज सूना हो गया ॥१॥

जनक कन्या सीता जी अति सुकुमारी है, वह भी उनके सङ्ग अवध नगरी त्याग कर चली गयीं। हाय आज मेरे दोनों बालक बन चले गये ॥२॥

अरी कैकेयी! तू कितनी कठोर हो। तूने ऐसा वरदान लिया कि हमारे पति का जीना असम्भव हो गया। हाय! आज हमारे दोनों बालक बन चले गये ॥३॥

(६)

अरे मोरा वंशीवाला कान्हा मधुबनवा गइले ना।
मोरा सॉवली सुरतिया भुलाई रे दीहले ना ॥१॥
ओही मधुबनवा में कूबरी सवतिया लोभाई रे गइले ना।
ओही कूबरी के सँगवा लोभाई रे गइले ना ॥२॥
ओही मधुबनवा से उधो जी लवटले, से लेइरे अइले ना मोरा जोगिया
के पतिया ॥३॥ मोरा वंशी वाला० ॥

अरे मेरे वंशी वाले कान्ह मधुबन गये। वे हमारी सॉवली सूरति को भूल गये ॥१॥

उसी मधुबन में कूबरी सवति रहती है। वे कान्ह उसी कूबरी के पर लुभा गये। अरे वे उसी कूबरी के पर लुभा गये ॥२॥

उसी मधुबन से ऊधो जी आये हैं। वही मेरे योगी का पत्र ले आये हैं ॥३॥

मेरे वंशी वाले कान्ह मधुबन गये।

कजरी

(१)

आहो बावाँ नयन मोर फरके आजु घर बालम अइहें ना ॥ आहो बावाँ०॥
सोने के थरियवा में जेवना परोसलों जेवना जेइहें ना ॥
झाझर गेड़ुवा गंगाजल पानी पनिया पीहें ना ॥१॥ आहो बावाँ०॥
पाँच पाँच पनवा के बिरवा लगवलों बिरवा चभिहें ना ॥
फूल नेवारी के सेज डसावलों सेजिया सोइहें ना ॥२॥

अरे मेरी बाईं आँख आज फड़क रही है। आज मेरे बालम घर आवेंगे। मैंने सोने की थाल में जेवनार परोसा है वे जेवनार जेवेंगे। झँझरीदार गेड़ुये में गंगाजल रखा है। उसे वे पीएंगे ॥१॥

पाँच पाँच पत्ते के बीरे लगाई हूँ। उसे वे खायँगे। नेवारी पुष्प की

सेज बिछाई हूँ उस पर प्रियतम सोवेंगे ॥२॥ अरे आज मेरी बाईं आँख फड़क रही है प्रियतम आवेंगे ।

(२)

सखी हो स्याम नहीं घर आये पानी बरसन लागे ना ॥
बादल गरजे बिजुली चमके जियरा धड़के ना ॥१॥ सखी हो० ॥
सोने के थरिया में जेवना परोसलों जेवना भींजे ना ।
झर झर गेड़ुआ गगा जल पानी पनिया भीजे ना ॥२॥ सखी हो०॥
लौंगा में डोभि डोभि बिरवा लगवलों बिरवा भीजे ना ।
फूल नेवारी के सेज डसवलों सेजिया तवायें ना ॥३॥ सखी हो०॥

अर्थ सरल है ।

(३)

राजा हो बड़ा कड़ा जल बरीसे नोकरी जाइब कइसे ना ॥
गोड़ में जूता हाथ में छाता मुखे रुमलिया ना ।
जानी हो धीरे धीरे चलि जइबों साहेब तलब कटिहैं ना ॥१॥
सोने के थारी में जेवना परोसलों जेवना जेइल ना ।
झाँझर गेड़ुआ गगा जल पानी पनिया पील ना ॥२॥ राजा हो०॥
लौंगा में डोभि डोभि बिरवा लगवलों बिरवा चाभिल ना ।
फूल नेवारी के सेज डसवलीं सेजिया सोइल ना ॥३॥ राजा हो०॥

हे राजा ! बहुत तेज पानी बरस रहा है । तुम नौकरी पर इसमें कैसे जाओगे ? पूछ रही है आगत पतिका अपने परम प्यारे पति से ।

गरीब नौकर पति उदास होकर अपनी मजबूरी दिखाते हुये कहता है, हे प्यारी ! गोड़ में जूता पहन लूँगा, हाथ में छाता ले लूँगा और मुख पर रूमाल रखकर धीरे धीरे किसी तरह नौकरी पर चला जाऊँगा । न जाने मेरे साहब तलब काट लेगा । (जान पड़ता है पति किसी अंग्रेज का खानसामा या क्लर्क था) ॥१॥

उदास होकर आगत पतिका ने कहा, "अच्छा प्रियतम ! तुम जाओ; पर सोने की थाली में जो जेवनार परोस चुकी हूँ उसे खालो । झाँझर गेड़ुआ

मे जो शीतल गंगाजल रख चुकी हूँ उसे पीलो । और लौंग से खील खील कर जो पान का बीरा लगा चुकी हूँ उसे स्थिर मे खालो । और नेवारी पुष्प की जो सेज डसा चुकी हूँ उस पर थोड़ा आराम कर लो तब जाना ॥२,३॥"

पाठक देखे पत्नी ने किस युक्ति से पति को बरसते जल में काम पर जाने से तब तक के लिये बिलमा रखा जब तक उसके जुटाये हुये सामानों का वह उपभोग नहीं करता । घाघ ने इन्हीं कष्टों को देखकर नौकरी की निंदा करते हुए कहा है.—

उत्तम खेती, मध्यम बान निरघिन सेवा भीख निदान ॥

(४)

हरि हरि कहाँ बदे तुम रात कहाँ रहि जाल ए हरी ॥
सोने के थारी में जेवना परोसलों हरि हरि जेवना लिये हम ठाढि कहाँ
रहि जाल ए हरी ॥१॥
झाँझर गेड़ुआ गंगा जल पानी, हरि हरि पनिया लिये हम ठाढि कहाँ
रहि जाल ये हरी ॥२॥
लौंगा में डोभि डोभि बिरवा लगवलों हरि हरि बिरवा लिये हम ठाढि कहाँ
रहि जाल ये हरी ॥३॥
फूल नेवारी क सेजिया डसवलों, हरि हरि सेजिया लिये हम ठाढि कहाँ
रहि जाल ए हरी ॥४॥

हे हरि ! हे हरि ! तुम रात में कहाँ मिलने के लिये मुझसे वादा करते हो और आप कहाँ रह जाते हो । पर कीया अपने बेवफा नायक को उलाहना सुना रही है ।

सोने की थाली मे मैं जेवनार परोसती हूँ और जेवनार लिये लिये खड़ी रह जाती हूँ , पर तुम आते नहीं । कहाँ रह जाते हो ? ॥१॥

झाँझर गेड़ुए मे शीतल गंगाजल भरती हूँ । हे हरी, हे हरी, तुम्हारी प्रतीक्षा में पानी लिये मैं खड़ी रह जाती हूँ । पर तुम कहाँ रह जाते हो कि आते नहीं ? ॥२॥

"लौंग से खील खील कर मैं पान का बीरा लगाती हूँ और बीरा लेकर

तुम्हारी प्रतीक्षा में खड़ी रहती हूँ। पर तुम कहाँ रह जाते हो?" ॥३॥

नेवारी पुष्प की सेज डसाती हूँ और तुम्हारी प्रतीक्षा में जगी रहती हूं। पर तुम कहाँ रह जाते हो कि आते नहीं ॥४॥

(५)

सखी हो आवेला अँधेरी घटा कारी कारी ना ॥
दादुर मोर पपीहा बोले डारी डारी ना ॥ सखी०॥
सोने के थारी में जेवना परोसलों जेवना जेवे ना ॥१॥ सखी हो आवे०॥
झाझर गेड़ुआ गगा जल पानी पनिया पीये ना ॥
पाँचहि पात के बीरा लगवलों बिरवा चाभे ना ॥
फूल नेवारी के सेज बिछवलों सेजिया सोवे ना ॥२॥ सखी हो आवे०॥

विरहिणी काली काली घटा देखकर और अपने विदेशी निर्मोही पति को तथा उसकी प्रतीक्षा में अपनी की हुई तैयारियों को बिसूर बिसूर कर सखी से हृदय को वेदना कह रही है। सचमुच कौन विरहिणी ऐसी होगी जो बरसात में ऐसी चिंता न करती हो।

(६)

एहि पार गगा राम ओहो पार यमुना, हरि हरि बिचवा में नैया डुबि डुबि रहि जाले रे हरी ॥१॥
एहि पार बोले सुगवा ओही पार मैना, हरि हरि बिचवा मे कोइलि कुहुँकि कुहूँकि रहि जाले रे हरी ॥२॥
एहि पार बाजे तबला राम ओही पार सारँगी, हरि हरि बिचवा मे रंडी थिरिक थिरिक रहि जाले रे हरी ॥३॥

वह पत्नी जिसका पति बरसात में वेश्या के साथ रम रहा है विलाप कर करके कह रही है।

हे राम, इस पार तो गगा बहती हैं और उस पार यमुना। अर्थात एक ओर तो धर्म है जो गंगा की तरह मुझे पवित्र बनाये रखने के लिये चारों ओर समाज के रूप में पहरा दे रहा है और दूसरी ओर मनकी पाप मयी वासना

है जो काली यमुना की तरह मन्द गति से पर हर समय मुझे विचलित करने पर तुली है। इन दोनों के बीच हे मेरे हरि मेरी जीवन नैया डूब डूब कर रह जाती है ॥१॥

हे राम, इस पार तो तोता हरि नाम सुना रहा है और उस पार मैना पाप का पाठ पढ़ा रही है। और इन दोनों के बीच कोमल फूक फूक कर जगा रही है ॥२॥

हे राम, इस पार तबला बजता है और उस पार सारंगी बजती है और बीच में रंडी थिरक थिरक प्रियतम के सामने नाच रही है ॥३॥

एक अपढ़ ग्राम कवियित्री के मुख से विरहिणी की इतनी सार गर्भित उक्ति सुनकर पाठक क्या कह सकते हैं कि ग्रामगीत में काव्यकला का निरा अभाव ही है ?

(७)

हरि हरि बाबा के सगरवा मोरवा बोले रे हरी ॥
मोरवा के बोलिया सुनि बिहरे मोर करेजवा, हरि हरि कइ देहू बाबा
मोर गवनवा रे हरी ॥१॥ हरि०॥
अगहन दिन बेटी दिन रे कुदिनवा, हरि हरि आवे देहू जेठ बइसखवा
रे हरी ॥ हरि कइ देवों तोहरो गवनवा रे हरी ॥२॥ हरि हरि बाबा० ॥
हरि हरि भैया के सगरवा मोरवा बोले रे हरी ॥
मोरवा के बोलिया सुनि बिहरे मोर करेजवा राम, हरि हरि कइ देहू भैया
मोर गवनवा रे हरी ॥३॥ हरि हरि०॥
अगहन दिन बहिनी दिन रे कुदिनवा, हरि हरि आवे देहू जेठ बइसखवा
रे हरी ॥ हरी कइ देवो तोहरी गवनवाँ रे हरी ॥४॥ हरि हरि०॥

अर्थ सरल है।

(८)

हरि हरि रउरा चलबि परदेश जिअबि हम कइसे ए हरी ॥
धनी हो सबुर कर सन्तोख बजर कर छाती रे हरी ॥१॥
चम्पा फूलि रही चारु पारि बेइलि सारी रात ए हरी ॥

दिनवा जे बीते हरि सखिया सलेहरि, रतियाँ सैंया रउरी सोच जीअवि हम कइसे ए हरी ॥२॥

मचिया बइठल तुहूँ सासु हो बड़इतिन, सासु हरि मोरे गइले विदेस जीअवि हम कइसे रे हरी ॥३॥

धनी हो सबुर कर सन्तोख बजर कर छाती रे हरि ॥

विदेश जाते हुए पति से पत्नी कह रही है। हे हरि ! आप तो परदेश चले पर मैं कैसे जीऊँगी ? ॥

पति ने कहा, हे धनी ! सब्र करना और सन्तोष करना और वज्र की छाती करके जीती रहना।

पत्नी ने कहा, चम्पा चारों ओर फूल रहा है। सारी रात बेला फूलेगा। हे हरि ! दिन तो सखी सहेलरि के साथ बीत जायगा पर रात को आपका स्मरण होगा। हे हरी, मैं कैसे जीऊँगी ?

पति चला गया। बहू सास के पास जाकर पूछती है, हे मचिया पर बैठी हुई बड़ी सास ! बताओ, मेरे स्वामी तो परदेश गये। मैं अब कैसे जीऊँगी ?

सास ने कहा, हे बहू ! तुम शब्र करो, सन्तोष करो और वज्र की छाती बना कर विरह कष्ट झेलती रहो।

विरहिणी को कितने कड़े उपदेश का पालन करना है।

रोपनी और निराई के गीत

(१)

अपने ओसरे रे कुसुमा झारे लम्बी केसिया रे ना।
रामा तुरुक नजरिया पड़ि गइले रे ना ॥१॥
धाउ तुहूँ नयका रे धाउ तुहूँ पयका रे ना।
रामा जैसिंह क करि ले आवउ रे ना ॥२॥
जौ तुहूँ जैसिंह राज पाट चाहउ रे ना ॥
जैसिंह अपनी बहिनि हमका ब्याहउ रे ना ॥३॥

अतना वचन सुनि घरवा लवटेलनि रे ना ।
जेसिह गोड़े मूड़े तनिलनि चदरिया रे ना ॥४॥
वइठि जगावलहि कुसुमा वहिनिया रे ना ।
भइया तोरा धरमवा नाहीं जइहें रे ना ॥५॥
ऊठहु भइया रे करहु दतुइनिया रे ना ॥
भइया तोर पति राखें भगवनवाँ रे ना ॥६॥
जो तुहूँ मिरजा रे हमहि लोभानेउ रे ना ।
मिर्जा बाबा के गँउवाँ भुइयाँ बकसहु रे ना ॥७॥
हँसि हँसि मिरजा गँउवाँ भुइयाँ बकसे रे ना ।
रामा रोइ रोइ विलमे कुसुमा के बाबा रे ना ॥८॥
जो तुहूँ मिरजा रे हमहीं लुभानेउ रे ना ।
मिरजा काका जोगे हथिया वेसाहो रे ना ॥९॥
हँसि हँसि मिरजा रे हथिया वेसाहेले रे ना ।
रामा रोइ रोइ चढे कुसुमा के काका रे ना ॥१०॥
जौं तुहूँ मिरजा रे हमहि लोभानेउ रे ना ॥
मिरजा भैया जोगे घोड़वा वेसाहे रे ना ॥११॥
हँसि हँसि मिरजा रे घोड़वा वेसाहे रे ना ।
रामा रोइ रोइ चढे कुसुमा के भइया रे ना ॥१२॥
जौं तुहूँ मिरजा रे हमहिं लुभानेउ रे ना ।
मिरजा तिरिया जोगे गहना गढावउ रे ना ॥१३॥
हँसि हँसि मिरजा गहना गढ़ावइँ रे ना ।
रामा रोइ रोइ पहिरै कुसुमी के भउजी रे ना ॥१४॥
जौं तुहूँ मिरजा रे हमहिं लोभानेउ रे ना ।
मिरजा चेरिया जोगे चुनरी रँगावउ रे ना ॥१५॥
हँसि हँसि मिरजा रे चुनरी रँगावइँ रे ना ।
रामा रोइ रोइ पहिरे कुसुमा के चेरिया रे ना ॥१६॥
एक कोस गइली दूसर कोस गइली रे ना ।

रामा तीसरे में लागी पिअसिया रे ना ॥१७॥
घरही में कुइयाँ खोनइबों मोरी धनिया रे ना ।
धनिया पिअहु गेड़ुअवा ठढा पानी रे ना ॥१८॥
तोही सगरवा पनिया निति उठि पीअबों रे ना ।
मिरजा बाबा क सगरवा दुर्लभ होइहैं रे ना ॥१९॥
एक घोंट पीअली दूसर घोंट पीअली रे ना ।
रामा तिसरे में भइली सरबोरवा रे ना ॥२०॥

अपने ओसारे में कुसुमी अपने लम्बे केश झार रही थी । उस पर एक तुर्क की दृष्टि पड़ी ॥१॥

तुर्क ने अपने नायक और सिपाही से कहा, कि दौड़कर जाओ और जैसिंह को पकड़ लाओ ॥२॥

जैसिंह पकड़ लाये गये और उसने उससे कहा, जैसिंह यदि तुम राज पाट चाहते हो तो अपनी बहन को मेरे साथ ब्याह दो ॥३॥

यह बचन सुनकर जयसिंह घर लौट आये और शोक के मारे सिर से पैर तक चादर ओढ़कर पड रहे ॥४॥

कुसुमी भाई के पास बैठ कर उसे जगाने लगी—हे, भाई, उठो तुम्हारा धर्म नहीं जायगा विश्वास रखो । हे भाई ! उठो मुँह हाथ धोओ । दातुन करो । तुम्हारी लाज भगवान रखेंगे । ॥५,६॥

कुसुमी ने मिरजा से कहा, हे मिरजा ! यदि तुम मुझ पर मोहित हुए हो तो मेरे बाबा को गाँव और भूमि दो ॥७॥

मिरजा ने हँस हँस कर कुसुमा के पिता को गाँव और भूमि दिया । और कुसुमा के बाबा ने रो रो कर उसे ग्रहण किया ॥८॥

कुसुमी ने मिरजा से कहा, हे मिरजा, यदि तुम मुझ पर मोहित हो तो मेरे काका को हाथी खरीद दो ॥९॥

मिरजा ने प्रसन्न मन से कुसुमा के काका के लिये हाथी खरीद दिया और कुसुमा का काका रोता हुआ हाथी पर चढ़ा ॥१०॥

कुसुमी ने मिरजा से कहा, हे मिरजा, यदि तुम मुझपर लुभाये हो तो

मेरे भाई के लिये घोड़ा खरीद दो ॥११॥

मिरजा ने हँस हँस कर उसके भाई के लिये घोड़ा खरीद दिया और कुसुमी का भाई रोता हुआ उस पर चढ़ा ॥१२॥

कुसुमी ने कहा, हे मिरजा ! जो तुम मुझ पर मुग्ध हुए हो तो स्त्री के योग्य गहना बनवाओ ॥१३॥

मिरजा ने प्रसन्न मन से गहना गढ़ा दिया। कुसुमी की भौजाई ने रो रो कर उस गहना को पहना ॥१४॥

कुसुमी ने कहा, हे मिरजा ! जो तुम मुझ पर मोहित हो तो मेरी दासी के लिये चूनरी रँगा दो ॥१५॥

मिरजा ने चूनरी रँगा दी जिसे रोती हुई दासी ने पहना ॥१६॥

कुसुमी मिरजा के साथ एक कोस गयी। दो कोस गयी। तीसरे कोस में उसे प्यास लगी ॥१७॥

मिरजा ने कहा, अरी मेरी कामिनी ! घर ही में मैं तेरे लिये कुआँ खोदवा दूँगा। तुम सुराही का ठंडा पानी पीना ॥१८॥

कुसुमी ने कहा, हे मिरजा ! तुम्हारे कुएँ का पानी तो मैं नित्य पीऊँगी। पर यह मेरे पिता का खुदाया हुआ सागर मुझे दुर्लभ हो जायगा ॥१९॥

कुसुमी सागर में पानी पीने गयी। उसने एक घूँट पानी पीया। दो घूँट पानी पिया। तीसरे घूँट के साथ वह सागर के अथाह जल में कूद कर नीचे डूब गयी ॥२०॥

इस गीत की नायिका कुसुमी का त्याग वैसी ही ऐतिहासिक घटना है जैसी कि कितने सतियों के त्याग के ज्वलन्त उदाहरणों से भारत के इतिहास के पन्ने भरे हैं। इसकी समालोचना लिखते समय प० रामनरेश त्रिपाठी जी ने लिखा है :—'घटना सत्य जान पड़ती है। क्योंकि युक्त प्रान्त और बिहार दोनों प्रान्तों में इस घटना को लेकर गीत रचे गये हैं। खेत निराते समय अब भी मजदूरिने इस गीत को गा गा कर भगवती कुसुमा के सतीत्व रक्षा की महिमा हिन्दूकन्याओं को सुनाया करती हैं।'

त्रिपाठी जी की बातें सत्य हैं। आगे वे लिखते हैं कि यही गीत बिहार

में आटा पीसते समय इस प्रकार गाया जाता है :—

(२)

आठहिं काठ केरि नैया रे नैया, ईंगुरे ढरल चारो पलवा हूरे जी ॥
तेहि घाटे उतरेला मिरिजा सहेबवा, जेहि घाटे भगवती नहाले हूरे जी ॥१॥
पनिया भरनि पनिभरनि बिटियवा, केकर बहिनी करे असननिया हूरे जी ॥
गाँव केर गौआ होरिल सिंह रजवा; उन्हकर बहिनी करे असननिया
हूरे जी ॥२॥
धाव तुहू नउआ, धाव चपरसिया; होरिल सिंह के पकरि ले आवहु रे जी ।
पनिया भरति पनिहारिन बिटियवा, होरिल सिंह मकनिया कहाँ वाड़े
हूरे जी ॥३॥
उत्तर मुहें उतराहुत उनकर, दुअरा चननवा के गछिया हू रे जी ॥
होरिल सिंह मुसुक चढ़ाव हू रे जी ॥
(जब रे) होरिल सिंह गइले मिरजा पसवा,
नइ-नइ करेले सलमिया हू रे जी ॥
लेहु न होरिल सिंह डाल भर सोनवा, भगवनि बहिनिया मोहि बकसहु रे जी ॥
आगि लगहु मिरिजा डाल भर सोनवा, मोरे कुले भगवति जामेली हू रे जी ॥
घरवा से निकसीं अँगना ठाढ भइलीं, अगना ठाढी भउजी रोवेली हू रे जी ॥
आगि लागहु भगवति तोहरी सुरतिया; तोहरा कारन सामी बान्हल हू रे जी ॥
लेहु ना भउजी घर गिहिथनवा, होरिल छोड़ावन हम जाइबि हूरे जी ॥
जो तूहूँ मिरजा हमरा से लोभल, होरिल सिंह के मुसुक छोड़ावहु रे जी ॥
जो तुहूँ मिरजा हमरा से लोभल; हमरा जोगे चूनरी रँगावहु रे जी ॥
जो तूहूँ मिरजा हमरा से लोभल, हमरा जोगे गहना गढावहु रे जी ॥
जो तूहूँ मिरजा हमरा से लोभल, हमरा जोगे डँड़िया फनावहु रे जी ॥
हँसि हँसि मिरजा गहना गढवले; रोइ रोइ पेन्हे बेटी-भगवति हू रे जी ॥
हँसि हँसि मिरजा डँड़िया फनवले, रोइ रोइ चढे बेटी भगवति हू रे जी ॥
एक कोस गइली, दूसर कोस गइली, लागि गइली मधुरी पिअसिया हू रे जी ॥

गोड़ तोरा लागीला अगिला कहरवा, बून एक पनिया पीआवहु रे जी ॥
मिरिजा गडुअवे पनिया पीअहु रे जी ॥
तोरा गड़ुअवे मिरिजा नित उठि पीअवों, बाबा के सगरवा दुरलभ भइले
हू रे जी ॥
एक चिरुआ पीअली, दूसर चिरुआ पीअली, तिसरे गइली सरग्रोग्वा हू रे जी ॥
रोवेला मिरिजवा मुड़वा ढटावाला, मोर बुधि छुरे छोटी भगवति हू रे जी ॥
रोइ रोइ मिरिजा रे जलिया लगावेले, बाझि गइल घोंघवा सेवरवा हू रे जी ॥
हँसि हँसि होरिल सिंह जलिया लगावेले, बाझि गइली भगवति बहिनिया हू रे जी ॥
हँसेले होरिल सिंह मुँहे खाइ पनवा, तीन कुल राखे भगवति बहिनी हू रे जी ॥

इस गीत को बिहार का गीत बताते हुये पं० रामनरेश त्रिपाठी अपने ग्रामगीत में लिखते हैं.—'यह गीत युक्त प्रान्त के (पूर्व लिखित न० १ गीत 'अपने ओसारे कुसुमा झारे लम्बी केसिया रे') गीत से कुछ अधिक विस्तार पूर्वक है। पर मूल घटना में अन्तर नहीं है। हाँ, बिहार के गीत की अंतिम पंक्तियाँ युक्तप्रान्त के गीत में नहीं हैं, जिनके बिना रस की पूर्णता नहीं होती थी। कुसुमा या भगवती ऐसी बहन पाकर जैसिंह या होरिल सिंह ऐसे भाई को पान खाकर हर्षित होना ही चाहिये।

यह गीत अंग्रेजों को इतना पसंद आया कि लाइट आफ एसिया के रचयिता, अंगरेजी के प्रसिद्ध कवि सर एडविन आर्नाल्ड ने इसका अंग्रेजी पद्य में अनुवाद कर डाला जिसे सन् १९१८ में, हिंदी भाषा के परम प्रेमी सर जार्ज ए ग्रियर्सन ने इंगलैण्ड के स्कूल आफ ओरिएन्टल स्टडीज में एक व्याख्यान में गाकर सुनाया था।

त्रिपाठी जी ने इन दोनों गीतों के बाद इसी भाव के चार गीत और दिये हैं, जिनमें एक को फैजाबाद जिले से दूसरे को बलिया जिले से प्राप्त गीत वे कहते हैं, और शेष दो को बिहार ही में गाये जाने वाले गीत वे मानते हैं। चारों ये और दो ये इन छः गीतों को मैंने ठीक उसी रूप में उद्धृत किया है जिस रूप में वे 'ग्रामगीत' में छपे हैं। इससे फैजाबाद के टाँडा तहसील की भोजपुरी बलिया की भोजपुरी तथा बिहार के शाहाबाद आदि जिलों की भोजपुरी का

रूप एक पण्डित द्वारा सग्रहीत गीतों में पाठक को देखने को मिलेगा। त्रिपाठी जी ने यदि इन गीतों के साथ 'भोजपुरी' का नाम रखा होता तो अति उत्तम था। पर शायद उनको यह ज्ञात न था कि फैजाबाद में भी भोजपुरी बोली जाती हो, इससे और इससे कि उनका सग्रह भाषा के क्रम से नहीं हुआ था, 'भोजपुरी' न रखने में उनका कोई दोष नहीं कहा जा सकता।

इन विभिन्न स्थानों की भोजपुरी को देखकर पाठक समझ जायगे कि इनमे भेद का एक तरह से अभाव है।

(८)

फैज़ाबाद जिला में वही नं० १, २, गीत इस प्रकार गाया जाता है.—

देहु न मैया मोरी ककही कटोरिया हो ना।
मैया बाबा के सगरवा मुँड़वा मींजी हो ना।
मुँडवइ मींजि कुसुमी सुखवै लगलीं हो ना।
आइ गइल मिरजा लसकरिया हो ना।
केकर है कुसुमी बारी दुलारी हो ना।
काके सगरवा मुड़वा मींजउ हो ना॥
गगा क हैं हम बारी दुलारी हो ना।
मिरजा जीउधन सगरवा मुँड़वा मींजी हो ना॥
एतना वचन मिरजा सुनवो न कैलै हो ना॥
मिरजा जीउधन कै छेकैला दुवरिया हो ना।
लेउ न जिउधन डाल भर सोनवा हो ना।
जिउधन अपनी बिटियवा मोहि देहू हो ना॥
का करौं मिरजा डाल भर सोनवा हो ना।
मिरजा हमरी कुसमी मरि गइल हो ना॥
इतना वचन मिरजा सुनवो न कैलै हो ना।
मिरजा गगा जिउधन नावैं हथकड़िया हो ना॥
लोहे के टटरवा मिरजा दनियाँ दिअउलै हो ना।
नकियन लिदिया डुसावैं हो ना।

देहु न भौजी अपनी चदरिया हो ना।
भउजी बिरना सँसति देखि आई हो ना॥
अगिया लगावों कुसुमी तोरी सुन्दरइया हो ना।
कुसुमी तोरे कारन हरि मोरे बन्दल हो ना।
दस सखि अगवाँ दस सखि पछुवाँ हो ना।
बिचवा में कुसुमी बिटियवा हो ना॥
मुँहवाँ पटुकवा देके हँसला मिरजवा हो ना।
अरे दूनों कुलवा बोरैले कुसुमिया हो ना॥
जो मिरजा चाहा (चाह) तू हमके हो ना।
मिरजा बाबा भैया हथिया बेसाहौ हो ना॥
हँसि हँसि मिरजा हथिया बेसाहैं हो ना।
रोइ-रोइ चढ़ै जिवधन बपवा हो ना॥
जो तू मिरजा हमहिं लोभइला हो ना।
मिरजा हमरे जोगे कपड़ा बेसाहौ हो ना॥
हँसि हँसि मिरजा गहना कपड़ा बेसाहैं हो ना॥
रोइ रोइ पहिरैले कुसमिया हो ना॥
हँसि हँसि मिरजा डँड़िया बेसाहैं हो ना।
रोइ रोइ चढ़ैले कुसमिया हो ना॥
एक वन गइलें दूसर बन गइलें हो ना।
तीसरे में बाबा के सगरवा हो ना॥
पइयाँ तोरे लागैलों (लागोला) कहरा बढइता हो ना।
कहरा बाबा के सगरवा पानी पीयब हो ना
बाबा सगरवाँ पानीं अबइल ढबइल हो ना।
हमरे सगरवा निरमल पनियाँ हो ना॥
तोहर सगरवा नित उठि पीयबि हो ना।
बाबा सगरवा दुरलभ होई हो ना॥
एक घूँट पीअली दूसर घूँट पीअली हो ना।

तीसरे में जाली तर बोरवाँ हो ना ॥
रोइ रोइ मिरजा जलिया नवावैं हो ना।
बाझल आवै घोघिला सेवरिया हो ना।
मुँहवाँ पटुका दै के रोवैला मिरजवा हो ना।
अरे दूनौं कुलवा बोरैले कुसुमिया हो ना ॥
हँसि हँसि जिउधन जलिया नवावै हो ना।
वाझल आवै कुसुमी बिटियवा हो ना ॥
मुँहवां पटुकवा दै कै हँसलै जिउधन हो ना।
दूनौं कुलवा राखैले बेटी कुसुमी हो ना ॥

यही गीत बलिया जिले में इस प्रकार गाया जाता है:—

देहु न मैया रे कँगही कटोरिया हो ना।
बाबा के सगरवा मुड़वा मींजब हो ना ॥
अपने सगरवा मुड़वा जो मींजै।
घोड़वा कुदावै मिरजा रजवा हो ना ॥
घोड़वा कुदावत परिगै नजरिया हो ना।
केकरी तिरियवा मुड़वा मींजै हो ना ॥
घोड़वा घुमावै वोहि घोड़ सरिया।
बाबा का पकरि मँगावै हो ना ॥
अपनी कुसुमा मोहि बिआहौ हो ना।
कैसे मैं बिहाहौं अपनी कुसुमिया ॥
तू तो तुरुक हम बाम्हन हो ना।
एतना वचन सुनि मिरजा रजवा ॥
बाबा के डारै हथकड़िया हो ना।
अगिया लगावो बेटी तोरी सुन्दरइया ॥
बाबा के चढ़लि हथकड़िया हो ना।
देहुन मैया रे अपनी चदरिया।
बाबा के ससतिया देखि आवों हो ना ॥

रोइ रोइ भोजमन जाल छोड़ावें।
बाझी आये चटकी चुनरिया हो राम ॥
दूसर जलवा छोड़ावे भोजमन।
बाझी आये अग कै अँगियवा हो राम ॥
तीसर जलवा छोड़ावे भोजमन।
बाझी आये घोंघिया सेवरिया हो राम ॥
हँसि हँसि मोरा भैया जलवा छोड़ाये।
बाझी आये मरली कुसुमिया हो राम ॥
मुँहवा पटुका दै रोवै भोजमन।
भल छल किहेउ वारी कुसुमी हो राम ॥
हँसि हँसि बाबा लोथिया उठावै।
भल पति राखेउ घेरिया कुसुमी हो राम ॥
मुँहवा रुमलिया देइ के हँसै भैया।
भल पति राखेउ बहिनी कुसुमी हो राम ॥

इसमें कन्या का नाम तो कुसुमी है पर उसको बलात हरण करने वाला भोजमन या भोजमल कोई हिंदू ही है।

अंत में त्रिपाठी जी ने लिखा है—'बिहार में यह गीत एक प्रकार से और गाया जाता है। उसकी प्रारम्भ की पंक्तियों से गीत में वर्णित घटना के समय का भी पता लगता है।' जैसे:—

(५)

पूरब पछिमवाँ से अइले रे फिरगिया।
दानापुर में बारिक उठावल रे की ॥
बरिक उठवलस खिरकी कटवलस।
चारो ओर पलटन बसवलस रे की ॥
उहो कोटे मिरजा रे झिझरी खेलत हैं।
जाही कोटे भगवति नहाइल रे की ॥

नजर परत मिरजा बोलले सहेबवा से
'होरिल सिंह क पकरि मंगावहु रे की ॥

इत्यादि! आगे की कथा वैसी ही है, जैसी भगवती के गीत में वर्णित है। जान पड़ता है जब पहले पहल अंग्रेज दानापुर में आये और उन्होंने अपनी छावनी बना डाली उस समय ऐसी कोई घटना अवश्य हुई है जिसकी चर्चा प्रान्त भर में गीतों द्वारा व्याप्त हो गयी।

(६)

ऊँची अटारी उरेही चितसारी हो ना,
राम! किन धना पुतरी उरे हे हो ना ॥१॥
लहुरी पतोहिया पूता वोरी भवहिया हो ना,
रामा उन धन पुतरी उरेहे हो ना ॥२॥
एतना बचन जब सुने राजा जेठवा हो ना,
रामा गोड़े मुड़े ताने ले दुपटवा हो ना ॥३॥
उठहु ना पूता मोरे हाथ मुँह धोवउ हो ना,
रामा खाइ लेहु दुधवा आ भतवा होना ॥४॥
कइसे के मइया मोरी हाथ मुँह धोंई हो ना,
मैया लहूरी पतोहिया मनवा वसली हो ना ॥५॥
लहूरी पतोहिया पूता भवहि हो तोहार,
रामा ऊ त तिलगवा के जोइया हो ना ॥६॥
ले आव छोटकी ढालि तरुवरिया हो ना,
छोटका भइया क खवरिया हम जाइवि हो ना ॥७॥
लेइ लेहु जेठ ढ़ालि तरुवरिया हो ना।
जेठ हम त बानी राम रसोइया हो ना ॥८॥
एक वन गइले दूसर वन गइले हो ना,
रामा तीसरे में भइया के फउजिया हो ना ॥९॥
सोवहु न भैया मोरे सुख के निर्दरिया हो ना,
भइया तोहरा पहरवा हम देवइ हो ना ॥१०॥

डोले लगली जुड़ली बेअरिया हो ना,
रामा आइ गइली सुख के निदरिया हो ना ॥११॥
रामा हने लागे भैया के करेजवा हो ना,
जेठ सगे भैया मारि घरे लवटे हो ना ॥१२॥
अगने कि भितरा मैया ग्राड़ी छोटका हों ना,
रामा खोलि देहु चनन केवरिया हो ना ॥१३॥
कहवाँ मारेल जेठ कहवाँ ढकेलेउ हो ना,
जेठ कहवाँ के चील्ह मेड़राली हो ना ॥१४॥
ऊचवहिं मरलीं खलवहि ढकेललीं हो ना,
रामा सरगे चिल्हरिया मेड़राली हो ना ॥१५॥
तोहरा के छाड़ि जेठ न अउर के होइब हो ना,
जेठ हरिजी के लोथिआ मगाव हो ना ॥१६॥
तोहरा के छाड़ि जेठ न अउर के होइब हो ना,
जेठ चनना चइलिया चिरावउ हो ना ॥१७॥
तोहरा के छाड़ि जेठ न अउर के होइब हो ना,
जेठ नगर से घीउआ मँगावउ हो ना ॥१८॥
तोहरा के छाड़ि जेठ न अउर के होइब हो ना ।
जेठ रचि रचि चितवा सजावउ हो ना ॥१९॥
रामा जो हम होईं सतवती हो ना ।
मोरे अँचरा भभकि उठे अगिया हो ना ॥२॥
बरे लगली लकड़ी भसम भइली छोटका हो ना ।
रामा जेठवा मले दूनो हथवा हो ना ॥२१॥
जो हम जनिती छोटका अस छल करबू हो ना,
रामा काहे मरितेउँ सग भइयवा हो ना ॥२२॥
रामा काहे मरितेउँ सग भइयवा हो ना ।
रामा काहे तूरितेउँ दहिनी बहियाँ हो ना ॥२३॥

ऊँची अटारी पर चित्रशाला सुंदर चित्रों से सुशोभित है । पुत्र ने माता

से पूछा—हे मा ! यह सुंदर चित्र किसने बनाया ? ॥१॥

माता ने कहा—बेटा, मेरी छोटी पतोह, जो तुम्हारी भ्रातृ वधू होती है, उसने इसे बनाया है। ॥२॥

पुत्र ने जब यह सुना तब सिर से पैर तक चादर ओढ़ कर सो रहा ॥३॥

माँ ने कहा—हे बेटा, उठो; हाथ मुँह धोकर दूध भात खा लो। ॥४॥

पुत्र ने कहा; हे माँ ! मै कैसे मुह हाथ धोऊँ ? तुम्हारी छोटी पतोह मेरे मन में बस गई है ॥५॥

माँ ने कहा, बेटा वह तो तुम्हारी भ्रातृवधू है। उसे छूना ही पाप है। फिर वह तिलंगा की स्त्री है। ॥६॥

जेठ ने कहा, हे छोटी बहू। ढाल तलवार लाओ। मैं छोटे भाई की खबर लेने जाऊँगा। ॥७॥

छोटी बहू ने कहा, हे जेठ ! ढाल तलवार ले लो। मैं रसोई में रसोई बना रही हूँ। ॥८॥

जेठ एक वन गया। दूसरा वन पार किया। तीसरे वन में उसके भाई की फौज थी ॥९॥

उसने अपने छोटे भाई से कहा, हे भाई ! रात हुई तुम सुख की नींद सोओ। मै तुम्हारा पहरा दे दूंगा। ॥१०॥

जेठ भाई पहरा देने लगा। ठंढी हवा बहने लगी। छोटे भाई को सुख की नींद आ गयी ॥११॥

अब जेठ भाई ने छोटे भाई के कलेजे में तलवार घँसा दिया। और अपने छोटे भाई को मार कर घर लौटा ॥१२॥

घर पहुँच कर उसने कहा, हे मां, छोटका आंगन में है कि भीतर कोठरी में ? चन्दन का केवाड़ खोल तो दो ॥१३॥

छोटका ने कहा, हे जेठ ! तुमने मेरे पति को कहाँ मारा और कहाँ फेका और बताओ कि कहाँ चील उन पर मँडरा रही हैं ॥१४॥

जेठ ने कहा, मैंने उन्हे ऊँचे से मारा और नीचे ढकेल दिया। तथा उसकी लाश पर आकाश की चील मंडरा रही है ॥१५॥

डोले लगली जुड़ली बेश्ररिया हो ना,
रामा श्राइ गइली सुख के निदरिया हो ना ॥११॥
रामा हने लागे भैया के करेजवा हो ना,
जेठ सगे भैया मारि घरे लवटे हो ना ॥१२॥
श्रगने कि भितरा मैया बाड़ी छोटका हों ना,
रामा खोलि देहु चनन केवरिया हो ना ॥१३॥
कहवाँ मारेल जेठ कहवाँ ढकेलेउ हो ना,
जेठ कहवाँ के चीलह मेड़राली हो ना ॥१४॥
ऊचवहिं मरलीं खलवहि ढकेललीं हो ना,
रामा सरगे चिल्हरिया मेड़राली हो ना ॥१५॥
तोहरा के छाड़ि जेठ न श्रउर के होइब हो ना,
जेठ हरिजी के लोथिश्रा मगाव हो ना ॥१६॥
तोहरा के छाड़ि जेठ न श्रउर के होइब हो ना,
जेठ चनना चइलिया चिरावउ हो ना ॥१७॥
तोहरा के छाड़ि जेठ न श्रउर के होइब हो ना,
जेठ नगर से घीउश्रा मँगावउ हो ना ॥१८॥
तोहरा के छाड़ि जेठ न श्रउर के होइब हो ना ।
जेठ रचि रचि चितवा सजावउ हो ना ॥१९॥
रामा जो हम होईं सतवती हो ना ।
मोरे श्रँचरा भभकि उठे श्रगिया हो ना ॥२॥
बरे लगली लकड़ी भसम भइली छोटका हो ना ।
रामा जेठवा मले दूनो हथवा हो ना ॥२१॥
जो हम जनिती छोटका श्रस छल करबू हो ना,
रामा काहे मरितेउँ सग भइयवा हो ना ॥२२॥
रामा काहे मरितेउँ सग भइयवा हो ना ।
रामा काहे तूरितेउँ दहिनी बहियाँ हो ना ॥२३॥

ऊँची श्रटारी पर चित्रशाला सुंदर चित्रों से सुशोभित है । पुत्र ने माता

(८)

हमरा ववैया जी के सात वेटवना रे ना ।
रामा सातो के चन्दा वहिनिया रे ना ॥१॥
रामा सातो भैया चलले पर देसवा रे ना ।
रामा चन्दा वहिनी लगली गोहनवाँ रे ना ॥२॥
फिरि जाहु फिरि जाहु चदा वहिनियाँ रे ना ॥
वहिनी तोहें लाइव चनरहरवा रे ना ॥३॥
वरहे वरिसवा प लवटे सातो भैया रे ना ।
रामा ठाढ़ भइले चन्दा मोहरवा रे ना ॥४॥
भीतर वाड़ू कि वाहारा वहिनिया रे ना ॥
रामा थामि लीतिउ चनरहरवा रे ना ॥५॥
मोरा पिछुअरवा पंडित भैया मितवा रे ना ।
भैया चन्दा के सोध गवनवा रे ना ॥६॥
रामा आजु एकादसिया वीहान दोआदसिया रे ना ॥
रामा तेरस के वनेला गवनवा रे ना ॥७॥
पहिले पहिल चन्दा अइली गवनवा रे ना ।
रामा उन कर ससुर मागे पनिया रे ना ॥८॥
पनिया उड़ेरइत झलके चनरहरवा रे ना ।
चन्दा कहाँ पवलू चनरहरवा रे ना ॥९॥
हमरे ववैया जी क सात वेटवना रे ना ।
वावा उहे देले चनरहरवा रे ना ॥१०॥
पहिले पहिल चन्दा अइली गवनवा रे ना ।
उनकर जेठवा मागे जूड़ पनिया रे ना ॥११॥
पनिया उड़ेरइत झलके चनरहरवा रे ना ।
चन्दा कहाँ पवलू चनरहरवा रे ना ॥१२॥
हमरे ववैया जी के सात वेटवना रे ना ।
जेठऊ उहे देले चनरहरवा रे ना ॥१३॥

छोटी बहू ने कहा, हे जेठ जी ! मैं तुमको छोड़कर दूसरे किसी की नहीं होऊँगी। तुम मेरे प्राण नाथ की लाश को मगा दो ॥१६॥

हे जेठ ! मैं तुमको छोड़ दूसरे किसी की नहीं होऊँगी। तुम चन्दन की लकड़ी चिरवा दो। शहर से घी मगाओ और अच्छी तरह से चिता सजवा दो। ॥१७, १८, १९॥

जेठ ने सब प्रबन्ध छोटी बहू से आश्वासन पाकर कर दिया। छोटी बहू चिता समीप जाकर बोली, हे भगवान ! जो मैं अपने पति की सतवन्ती स्त्री होऊँ, तो मेरे अचल से अग्नि भभक उठे ॥२०॥

आग भभक उठी। लकड़ी जलने लगी। छोटका उसमें जल कर भस्म हो गयी। जेठ दोनों हाथ मलने लगा ॥२१॥

उसने पछता कर कहा, हे छोटी बहू यदि मैं जानता कि तुम ऐसा छल करोगी तो मैं अपना सगा भाई क्यों मारता ? मैं अपने ही हाथ अपनी दाहिनी भुजा क्यों तोड़ता ॥२२॥

इस आशय का गीत पहले आ चुका है। त्रिपाठी जी के ग्राम गीत में भी जाँत के गीत में न० २७ वाँ जो मगही भाषा में है इसी आशय का गीत है। जान पड़ता है ऐसी घटनाये बहुत घटीं हैं तभी अनेक गीत रचे गये। यह भी सम्भव हो सकता है कि एक ही घटना के आधार पर सब गीत रचे गये हों।

(७)

जो मैं होतिउँ बन के कोइलिया,
बने रे बने रहितिउँ हो ना ॥
मोरा हरि जइते अहेरिया,
त सबद सुनइतेउँ हो ना ॥

यदि मैं बन की कोयल होती, तो मैं बन में ही रहती। मेरे प्राण नाथ जब शिकार करने जाते तो मैं उनको अपना शब्द सुनाती।

उस विरहिणी को, जिसका स्वामी सदा शिकार ही खेला करता है, कितनी सुन्दर कामना है।

रामा अगिनि होवहु जूड़ पनिया रे ना ॥२७॥
जैसे चन्दा डलली करहिया में हथवा रे ना।
रामा तसहीं अगिनी भइली पनिया रे ना ॥२८॥
मुहवाँ में रुमलिया देके रोवे ओकर समिया रे ना।
रामा मोर सती चलली नइहरवा रे ना ॥२९॥
रामा मुहवाँ रुमलिया देइ हँसे सातो भइया रे ना।
रामा बहिनी जोगे डँड़िया फनावहु रे ना ॥३०॥
एक वन गइली दूसर वन गइली रे ना।
रामा तीसरे में मिली वन तपसिन रे ना ॥३१॥
बहियाँ पकरि समुझाव वन तपसिन रे ना।
बेटी सामी मन घर ना गुनहिया रे ना ॥३२॥
चन्दा खड़ी खड़ी सामी के निरखे रे ना।
सामी ढहर ढहर लोरवा ढारेले रे ना ॥३३॥
सामी अस कइ कहल मोर मन बिलगवल रे ना।
सामी तबहू त सैया बिनु तिवई के रहगित जे ना ॥३४॥

मेरे पिता जी के सात बेटे हैं। सातो की एक बहन चन्दा है। सातो भाई परदेश चले। चन्दा भी उनके पीछे पीछे चली। भाइयों ने समझा कर कहा, हे चन्दा बहन, तुम घर लौट जाओ। हम तुम्हारे लिये चन्द्रहार ले आवेंगे। ॥१,२,३,॥

बारह वर्ष बाद सातो भाई लौटे चन्दा के द्वार पर खड़े होकर बोले, बहन घर में हो कि बाहर? चन्द्रहार थाम लो ॥४, ५॥

भाइयों के घर के पीछे एक ज्योतिषी रहते थे। भाइयों ने उन्हें बुला कर कहा, हे मित्र, चन्दा के गौने की साइत शोध दो ॥६॥

ज्योतिषी ने कहा, आज एकादशी है। कल द्वादशी है। परसों त्रयोदशी की साइत है ॥७॥

चन्दा गौने आई पहले पहल उसके श्वसुर ने उससे पानी माँगा। पानी ढारते समय उसके चन्द्रहार की झलक देखकर श्वसुर ने पूछा चन्दा!

पहिले पहिल चन्दा अइलीं गवनवा रे ना।
उन कर समिया माँगे जूड़ पनिया रे ना ॥१४॥
पनिया उड़ेरइत झलके चनरहरवा रे ना।
बहुअरि कहाँ पवल चनरहरवा रे ना ॥१५॥
हमरे बवैया जी के सात बेटवना रे ना।
सामी उहे देले चनरहरवा रे ना ॥१६॥
वेहू ना माने चन्दा के बतिया रे ना।
रामा चन्दा से मागे किरिअवा रे ना ॥१७॥
मोरे पिछुअरवा लोहार भइया मितवा रे ना।
भइया धरम करहिया गढ़ि देवहु रे ना ॥१८॥
मोरे पिछुअरवा तेली भइया मितवा रे ना।
भइया करुवहिं तेल पेरि देवहु रे ना ॥१९॥
मोरा पिछुअरवा बढ़ैया भइया मितवा रे ना।
भइया चनना चइलिया चीरि देवहु रे ना ॥२०॥
नइहरा क साथी मोरा भइया क सुगवा रे ना।
भइया जाइ कह भइया आगे हलिया रे ना ॥२१॥
ऊँचे ऊँचे बइठे मोरा ससुरा के लोगवा रे ना।
रामा खलवाँ बइठे भइया बावा रे ना ॥२२॥
बड़ बड़ पाग बान्हि ससुरा के लोगवा रे ना।
रामा भइया बावा बान्हि अँगवछिया रे ना ॥२३॥
रामा तेहि नीचे खदके करहिया रे ना।
रामा तेहि तर ठाढ़ि सतवन्ती रे ना ॥२४॥
जो चन्दा बहिनी तू सत के ठहरबू रे ना।
बहिनी तोरे जोगे डँड़िया फनइबो रे ना ॥२५॥
जो चन्दा बहिनी तू काँच उतरबू रे ना।
बहिनी जीअत खंदका गड़इबों रे ना ॥२६॥
जो हम होईं सामी सत के तिरिअवा रे ना।

जीते ही गड्ढा खुदा कर गाड़ देंगे ॥२६॥

चंदा ने स्वामी को सम्बोधन करके धीर वाणी में कहा, हे स्वामी ! यदि मैं आपकी सत्य की स्त्री होऊँ तो यह आग (खौलता तेल) शीतल जल के समान हो जाय ॥२७॥

इस वाक्य के साथ चन्दा ने ज्योंही खौलते कड़ाही में हाथ डाला वैसे ही खौलता हुआ तेल जल समान शीतल हो गया ॥२८॥

(इस दृश्य को देखते ही) स्वामी मुख पर रूमाल देकर रोने लगा और कहने लगा कि हाय, मेरी सती स्त्री अब मुझको छोड़ कर चली जायेगी ॥२६॥

इस विजय को देख कर सातों भाई जिनके माथा ऊँचे हो गये थे, और जो मुख पर रूमाल रखे हँस रहे थे अपनी बहन के लिये सुन्दर पालकी ठीक करके उसे ले चले ॥३०॥

चन्दा एक बन में गयी। दूसरे बन को पार किया। तीसरे बन में उसे बन की तपस्विनी मिली। उन्होंने चन्दा की बाँह पकड़ कर उसे समझाते हुए कहा कि हे बेटी ! अपने स्वामी का अपराध अपने मन में न रखो ॥३१,३२॥

इस वाक्य को सुनकर चन्दा खड़ी हो गयी। वह वहीं खड़ी खड़ी एक टक अपने स्वामी को निहारने लगी। और उधर स्वामी चुप काठ मारा सा खड़ा खड़ा दोनों आँखों से आँसू गिराता रहा ॥३३॥

चन्दा ने कहा, हे स्वामी ! तुमने मुझे इस तरह दुःख दिया कि मेरा मन तुमसे विलग हो गया। पर तब भी हे स्वामी, बिना पति के स्त्री का निर्वाह नहीं है (रहगित = रहाइस = रहने का कोई ठिकाना) ॥३४॥

इस गीत में करुण रस की पुष्टि कितने सुन्दर और सफल रूप से की गयी है। इसके अन्तिम दो चरणों को पढ़कर कौन सहृदय ऐसा होगा जिसकी आँखें भर न आयें। स्त्री के दयनीय और परवश जीवन का दृश्य भी इस अन्तिम वाक्य से कितने सुन्दर रूप में व्यक्त किया गया है—'सामी बस कइ डहल मोर मन बिलगवल रे ना। सामी तबहूँ त सैंयां बिनु तिवई के रहगित जे ना ॥'

तुमको यह चन्द्रहार कहाँ मिला ॥८,६॥

चन्दा ने कहा मेरे पिता के सात पुत्र हैं। उन्होंने मुझे यह चन्द्रहार दिया है ॥१०॥

११, से १५ तक के पद्यों में चंदा के जेठ और पति ने भी पानी मांगा है और पानी ढारते समय हार देखकर चंदा से वैसे ही प्रश्न किये गये हैं और चंदा ने वही एक उत्तर दिया है ॥

किसी ने चन्दा की बात का विश्वास नहीं किया। सबने (उसके सतीत्व पर शंका करके और यह सोचकर कि किसी परपुरुष ने उसे चन्द्रहार दिया है) उससे शपथ लेना निश्चय किया ॥१७॥

चंदा शपथ देने पर तैयार हुई। उसने कहा, हे मेरे पिछवारे रहनेवाले मेरे मित्र लोहार, तुम धर्म की कड़ाही मेरे लिये बना दो ॥१८॥

हे मेरे पिछवारे रहने वाले बढ़ई भाई मित्र, तुम चन्दन की लकड़ी मेरे लिये चीर दो ॥१९॥

हे मेरे पिछवारे रहने वाले मेरे भाई, मित्र तेली, मेरे लिये कड़ुआ तेल पेर दो ॥२०॥

और हे मेरे नैहर के साथी सुआ ! हे भाई, तुम जाकर हमारे भाइयों से (इस शपथ का) हाल कहो ॥२१॥

शपथ का सब ठीक हो गया। ऊँचे ऊँचे स्थानों पर तो मेरे ससुराल के सब लोग बैठे और नीचे नीचे स्थान पर मेरे भाई और बाप बैठे ॥२२॥

ससुराल के लोग तो बड़े बड़े पाग बाँधे थे और मेरे बाप और भाई सिर पर केवल अँगौछा ही लपेटे थे ॥२३॥

हे राम, उस सभा के बीच में कड़ाही चढ़ी हुई थी। और उसी के पास सती चन्दा खड़ी थी ॥२४॥

भाइयों ने बीच सभा में बहन को सम्बोधन करके कहा, हे बहन चंदा ! जो तुम सत की साबित होओगी तो हम तुमको तुम्हारे योग्य पालकी पर चढ़ाकर यहाँ से ले चलेंगे ॥२५॥

पर हे चन्दा बहन, अगर तुम कच्ची साबित हुई तो हम तुम को यहीं

जीते ही गड्ढा खुदा कर गाड़ देंगे ॥२६॥

चंदा ने स्वामी को सम्बोधन करके धीर वाणी में कहा, हे स्वामी ! यदि मैं आपकी सत्य की स्त्री होऊँ तो यह आग (खौलता तेल) शीतल जल के समान हो जाय ॥२७॥

इस वाक्य के साथ चन्दा ने ज्योंही खौलते कड़ाही में हाथ डाला वैसे ही खौलता हुआ तेल जल समान शीतल हो गया ॥२८॥

(इस दृश्य को देखते ही) स्वामी मुख पर रूमाल देकर रोने लगा और कहने लगा कि हाय, मेरी सती स्त्री अब मुझको छोड़ कर चली जायेगी ॥२६॥

इस विजय को देख कर सातो भाई जिनके माथा ऊँचे हो गये थे, और जो मुख पर रूमाल रखे हँस रहे थे अपनी बहन के लिये सुन्दर पालकी ठीक करके उसे ले चले ॥३०॥

चन्दा एक वन में गयी। दूसरे वन को पार किया। तीसरे वन में उसे वन की तपस्विनी मिली। उन्होंने चन्दा की बाँह पकड़ कर उसे समझाते हुए कहा कि हे बेटी ! अपने स्वामी का अपराध अपने मन में न रखो ॥३१,३२॥

इस वाक्य को सुनकर चन्दा खड़ी हो गयी। वह वहीं खड़ी खड़ी एक टक अपने स्वामी को निहारने लगी। और उधर स्वामी चुप काठ मारा सा खड़ा खड़ा दोनों आँखों से आँसू गिराता रहा ॥३३॥

चन्दा ने कहा, हे स्वामी ! तुमने मुझे इस तरह दुःख दिया कि मेरा मन तुमसे विलग हो गया। पर तब भी हे स्वामी, बिना पति के स्त्री का निर्वाह नहीं है (रहगित = रहाइस = रहने का कोई ठिकाना) ॥३४॥

इस गीत में करुण रस की पुष्टि कितने सुन्दर और सफल रूप से की गयी है। इसके अन्तिम दो चरणों को पढ़कर कौन सहृदय ऐसा होगा जिसकी आँखें भर न आयें। स्त्री के दयनीय और परवश जीवन का दृश्य भी इस अन्तिम वाक्य से कितने सुन्दर रूप में व्यक्त किया गया है—'सामी अस कइ डहल मोर मन विलगवल रे ना। सामी तबहूँ त मैंयां बिनु तिवई के रहगित जे ना॥'

(९)

एक वेरिया अइत भइया हमरो रे देसवा हो ना ।
भइया वहिनी क देखि सुनि जइतेउ हो ना ॥१॥
तोहरा त देसवाँ बहिनी ढोंक ढँकुलिया हो ना ।
वहिनी रहिया में बाघ बघिनिया हो ना ॥२॥
भइया हथवा में लोह तरुवरिया हो ना ।
भइया का करीहें वाघ बघिनिया हो ना ॥३॥
आवत देखों मैं दुइ रे सिपहिया हो ना ।
रामा एक के गोर एक साँवर हो ना ॥४॥
गोरकू त हवें मोरी मइया के पुतवा हो ना ।
रामा सँवरू ननद जी के भइया हो ना ॥५॥
मचियहिं वइठेली सासु वढइतिन हो ना ।
सासू काई रे वनाई जेंवनरवा हो ना ॥६॥
कोठिलहिं बहुअरि सरेली कोदइया हो ना ॥
वहुअरि मेड़वा मसउढा क सगवा हो ना ॥७॥
अगिया लगावों सासू सरली कोदइया हो ना ।
रामा वजर परे मसुढ़े के सगवा हो ना ॥८॥
अटवा जे चालि चालि सुचुई पकवली हो ना ।
वहुअरि खोंटि लिहली पलकी के सगवा हो ना ॥९॥
वहुअरि रीन्हि लेली मुँगिया के दलिया हो ना ।
वहुअरि राम सरल चउरा क भतवा हो ना ॥१०॥
सोने क थरिअवा में जेवना परोसली हो ना ।
रामा ऊपरा से तातल घीव धारवा हो ना ॥११॥
। । जेंवहिं [illegible] सार बहनोइया हो ना ।
। सारवा [illegible] अँसुइया हो ना ॥१२॥
[illegible] समु [illegible] क कलेउआ हो ना ।
[illegible] के [illegible] बोझिया हो ना ॥१३॥

ना हम समझी भाई मइया के कलेउआ हो ना।
भाई नहीं बहुअरि मीठी बोलिया हो ना ॥१४॥
चन्दा सुरुज अस बहिनी सँकल्प्यों हो ना।
बहिनी जरि जरि भइली कोइलिया हो ना ॥१५॥
बइठहुना भैया मोरे मलिनी ओसरवाँ हो ना।
भइया मोरा दुख कहो मालिन बीटिया हो ना ॥१६॥
कई मन कूटों भैया कई मन पीसीला हो ना।
भइया कइरे मन रीन्हिला रसोइयाँ हो ना ॥१७॥
सासू खाँची भर बसना मँजावे ली हो ना।
सासू पनिया पताल से भरावे ली हो ना ॥१८॥
सब के खिआवौं भैया सब के पिआवौं हो ना।
भैया बाँचि जाली पिछली टिकरिया हो ना ॥१९॥
भैया ओहू मेंसे नँनद कलेउआ हो ना।
भैया ओहू में से गोरू चरवहवा हो ना ॥२०॥
भैया ओहू में से कुकुरो बिलरिया हो ना।
भैया ओहू में से देवरा कलेउवा हो ना ॥२१॥
पहिरों मैं भइया मोरे सब कर उतरवा हो ना।
भइया सरी गली फटही लुगरिया हो ना ॥२२॥
भइया ओहू मे से ननदी ओढनिया हो ना।
भैया ओहू में से देवरा क भगवा हो ना ॥२३॥
लोहवा जरे जइसे लोहरा दुकनिया हो ना।
तोरी बहिनी जरे ससुरिया हो ना ॥२४॥
ई दुख जनि कहो भइया भउजी क अगवाँ हो ना।
भउजी दुइ चारि घरे कहो अइहें हो ना ॥२५॥
ई दुःख जनि कहि भइया माई के अगवाँ हो ना।
माई छतिया विहरि मरि जइहें हो ना ॥२६॥
ई दुखवा मति कहो चाची के अगवाँ हो ना।

(१)

एक वेरिया अइत भइया हमरो रे देसवा हो ना ।
भइया वहिनी क देखि सुनि जइतेउ हो ना ॥१॥
तोहरा त देसवाँ वहिनी ढाँक ढँकुलिया हो ना ।
वहिनी रहिया में वाघ वघिनिया हो ना ॥२॥
भइया हथवा में लोह तरुवरिया हो ना ।
भइया का करीहैं वाघ वघिनिया हो ना ॥३॥
आवत देखों मैं दुइ रे सिपहिया हो ना।
रामा एक के गोर एक साँवर हो ना ॥४॥
गोरकू त हवें मोरी मइया के पुतवा हो ना ।
रामा सँवरू ननद जी के भइया हो ना ॥५॥
मचियहिं वइठेली सासु वढइतिन हो ना ।
सासू काई रे बनाईं जेंवनरवा हो ना ॥६॥
कोठिलहिं वहुअरि धरेली कोदइया हो ना ॥
वहुअरि मेड़वा मसउढा क सगवा हो ना ॥७॥
अगिया लगावों सासू सरली कोदइया हो ना ।
रामा वजर परे मसुढे के सगवा हो ना ॥८॥
अटवा जे चालि चालि छुचुई पकवली हो ना ।
बहुअरि खोंटि लिहली पलकी के सगवा हो ना ॥९॥
वहुअरि रीन्हि लेली मुँगिया के दलिया हो ना ।
वहुअरि राम सरल चउरा क भतवा हो ना ॥१०॥
सोने क थरिअवा में जेवना परोसली हो ना ।
रामा ऊपरा से तातल घीव धारवा हो ना ॥११॥
रामा जेंवहि वइठेले सार वहनोइया हो ना ।
रामा सारवा के ढूरेला अँसुइया हो ना ॥१२॥
की भइया समुझल माई क कलेउआ हो ना ।
भइया भउजी के कीरे मीठी वोलिया हो ना ॥१३॥

ना हम समझी भाई भइया के कलेउआ हो ना।
भाई नहीं बहुआरि मीठी बोलिया हो ना ॥१४॥
चन्दा सुरुज अस बहिनी सँकल्प्यों हो ना।
बहिनी जरि जरि भइली कोइलिया हो ना ॥१५॥
बइठहुना भैया मोरे मलिनी ओसरवाँ हो ना।
भइया मोरा दुख कही मालिन बीटिया हो ना ॥१६॥
कई मन कूटों भैया कई मन पीसीला हो ना।
भइया कइरे मन रीन्हिँला रसोइयाँ हो ना ॥१७॥
सासू खाँची भर बसना मँजावे ली हो ना।
सासू पनिया पताल से भरावे ली हो ना ॥१८॥
सब के खिआवौं भैया सब के पिआवौं हो ना।
भैया बाँचि जाली पिछली टिकरिया हो ना ॥१९॥
भैया ओहू मेंसे नँनद कलेउआ हो ना।
भैया ओहू में से गोरू चरवहवा हो ना ॥२०॥
भैया ओहू में से कुकुरो बिलरिया हो ना।
भैया ओहू में से देवरा कलेउवा हो ना ॥२१॥
पहिरों मैं भइया मोरे सब कर उतरवा हो ना।
भइया सरी गली फटही लुगरिया हो ना ॥२२॥
भइया ओहू में से ननदी ओढनिया हो ना।
भैया ओहू में से देवरा क भगवा हो ना ॥२३॥
लोहवा जरे जइसे लोहरा दुकनिया हो ना।
तोरी बहिनी जरे ससुरिया हो ना ॥२४॥
ई दुख जनि कहो भइया भउजी क अगवाँ हो ना।
भउजी दुइ चारि घरे कहो अइहें हो ना ॥२५॥
ई दुःख जनि कहि भइया माई के अगवाँ हो ना।
माई छतिया बिहरि मरि जइहें हो ना ॥२६॥
ई दुखवा मति कहो चाची के अगवाँ हो ना।

चाची झगड़ा लइँया ठेना मरिहें हो ना ॥२७॥
ई दुख भइया जनि कहो बाबा के अगवाँ हो ना।
सभवा बइठि बाबा रोइहें हो ना ॥२८॥
ई दुख जनि कहो भइया बहिनी के अगवाँ हो ना।
बहिनी हाल सुनि ससुरा ना जाई हो ना ॥२९॥
ई दुखवा कहहे भइया अगुआ के अगवाँ हो ना।
भइया जे मोरी कइलन अगुवइया हो ना ॥३०॥
ई दुख कहीह भइया बभना के अगवा हो ना।
भइया जे मोर लगन विचरते हो ना ॥३१॥
ई दुख तू भइया मन ही में गोइह हो ना।
भइया करम लिखल तस भोगबि हो ना ॥३२॥
सब दुख बँधिह भइया अपनी मोटरिया हो ना।
भइया नदिया में दीह बहवाई हो ना ॥३३॥
सभवा बइठल बाबा चितवैं हो ना।
आरे पूतवा आवें धिअवा आवें हो ना ॥३४॥
जइसे उमड़े बाबा जमुना के पनिया हो ना।
बाबा ओइसे रोवे मोर बहिनियाँ हो ना ॥३५॥
जाँघ तोर थाके बेटा बहियाँ घुन लागे हो ना।
बेटा रोवत बहिनियाँ छाड़ि अइल हो ना ॥३६॥
आहो राम रसोइया धनिया चितवे हो ना।
आरे, सैयाँ त अइले ननदी अइली हो ना ॥३७॥
आवहु सैया जेंव जेवनरवा हो ना।
सैया कहहु ननद कुसलतिया हो ना ॥३८॥
जइसे रे धनिया उगेली अँजोरिया हो ना।
धनिया तइसे उगे बहिनी के भगिया हो ना ॥३९॥
आरे, मचियहिं बइठली माई चितवै होना।
आहो, पुतवा त अइले धिया अईली हो ना ॥४०॥

रोई रोई माई हलिया पूछेली हो ना ।
पुता रोई रोई कहें कुसलतिया हो ना ॥४१॥
सुखवा का कहों मैया दुख का कहों हो ना ।
मइया वहिनी लिलरवे दुख लिखल हो ना ॥४२॥
जो जनितों मैया अगुआ छल करीहें हो ना ।
अपनहि घूमि घर खोजितों हो ना ॥४३॥

बहन ने अपने भाई से कहा था—हे भाई, एक बार मेरे घर आते और अपनी बहन को देख सुन जाते । ॥१॥

इस पर भाई ने कहा था हे बहन, तुम्हारे देश में तो ढाक के बड़े बड़े जंगल हैं । रास्ते में बाघ बाघिन घूमा करती हैं । मैं कैसे आऊँगा ॥२॥

बहन ने उत्तर दिया था हे भाई हाथ में तुम ढाल तलवार ले लेना । बाघ बाघिन क्या करेंगे ? ॥३॥

अपने घर पर बहन थी । उसने देखा कि दो सिपाही चले आ रहे हैं—उनमें से एक तो गोरा रंग का है और दूसरा साँवला रंग का । उसने मनमें कहा, अरे ! वह जो गोरे रंग के हैं वे हमारी माता जी के पुत्र मेरे भाई हैं और जो सावले हैं वे मेरी ननदजी के भाई मेरे स्वामी हैं ॥४,५॥

वह सास के पास गयी, जो घर की पुरखिन थी और मचिया पर बैठी हुई थी । उसने पूछा, सास जी, क्या जेवनार बनाऊँ ॥६॥

सास ने कहा, बहू ! कोठिला में रखा रखा कोदो सड़ रहा है ! उसको निकाल लो और खेत की मेंड़ पर बथुआ के साग जमे हैं उनको उखाड़ लाओ । वही कोदो का भात और बथुआ का साग बनाओ ॥७॥

बहू ने खीझकर कहा, सास ! तुम्हारे सड़े कोदो में मैं आग लगा दूँगी । तुम्हारे बथुआ के साग पर वज्र गिरे ॥८॥

उसने मैदा चालकर और गूँथ कर पूरी पकाई । पालकी के साग खोंट कर भाजी बनाया और मूँग की दाल और राम सरल चावल का भात सिझाया । सोने की थारी में जेवनार सजाया और ऊपर से तब घी प्रचुर मात्रा में दिया । ॥९, १०, ११॥

साले और बहनोई दोनों भोजन करने बैठे। साले की आँखों में को देखकर आँसू उतरा आये ॥१२॥

बहनोई ने पूछा, हे भाई! तुम्हें मा के हाथ का कलेवा स्मर हो आया या अपनी पत्नी की मीठी मीठी बातें याद आ गयीं कि तुम्हारी में आँसू उतर आये?॥१३॥

साले ने कहा, हे भाई, न तो मुझे मा के हाथ का कलेवा का स्मरण हुआ और न अपनी स्त्री की मीठी बातें याद पड़ीं। मेरे सामने तो यही है कि चाँद और सूर्य की ऐसी मैंने तुम्हें अपनी बहन को संकल्प किया था वैसी बहन, हाय, आज देख रहा हूँ कि मारे दुख और कष्ट के तुम्हारे कोयल ऐसी काली हो गई ॥१४, १५॥

बहन ने कहा, हे भाई! उस मालिन के ओसारे में जाकर बैठो मा की बेटी मेरे दुःख का हाल तुम से सब कहेगी ॥१६॥

मुझे कितने मन कूटने पड़ते हैं और कितने मन पीसने पड़ते हैं। हे मेरे भाई मुझे कितने मन रसोई में पकाना पड़ता है यह सब वह बताये ॥१७॥

हे भाई! सास मुझसे एक भरी टोकरी बर्तन नित्य साफ कराती है गहरे कुएँ से पानी भराती है ॥१८॥

उस पर, हे भाई, सब किसी को मुझे ही खिलाना पड़ता है। भी मुझी को देना पड़ता है। इसमें सब खाना समाप्त हो जाता है। मेरे केवल रोटी बनाते समय की पिछली रोटी की छोटी टिक्की बच रहती है। उ से भी सास का हुक्म होता है कि ननद के कलेवा के लिये रखा जाय गोरू के चरवाहे के लिये बनाना होगा। और हे भाई, उसी में से कुत्ता वि को भी देना पड़ता है। और बचाना पड़ता है देवर जी के कलेवा के ॥१९,२०, २१॥

बहन ने फिर कहा, हे मेरे भाई, मुझे सब की उतारी हुई स पहनने को मिलती हैं। हे भाई सड़ी, फटी गली हुई लूगरी मेरी स होती है। फिर उस लूगरी में से भी ननद के लिये सास ओढ़नी निकाल त

है। फिर ऊपर से देवर जी के लिये भगवा भी निकाला जाता है और तब जो लूगरी बचती है वही मुझे पहनने को मिलती है ॥२२, २३॥

इस दुःख गाथा को सुन कर भाई ने रोते हुए कहा, हाय! जिस प्रकार लोहा लुहार की दुकान पर जलाया जाता है वैसे ही मेरी चाँद और सूर्य ऐसी बहन अपनी ससुराल मे जलायी जा रही है। ॥२४॥

बहन ने धीर होकर कहा, हे भाई, तुम मेरे इन दुःखों को मेरी भावज जी के सामने न कहना। वह तुरत इसे दो चार घरों में बिना सुनाये न रहेगी ॥२५॥

हे भाई, मेरे इन कष्टों को माताजी के सामने न कहना। उनकी छाती फट जायगी। वे इन्हें सुन कर मर जायँगी। ॥२६॥

हे मेरे भाई, इन कष्टों को मेरी चाची जी के सामने न कहना। वे लड़ाई झगड़ा के समय इनका उल्लेख का ताना करेंगी ॥२७॥

हे मेरे भाई, इस कष्ट को मेरे पिता जी के सामने भी न कहना। वे खुली सभा में बैठ कर रोने लगेंगे ॥२८॥

हे मेरे भाई, इस दुःख को मेरी छोटी बहन के सामने भी न कहना वह इस हाल को सुनकर ससुराल जाने से इनकार कर देगी ॥२९॥

परन्तु हे मेरे भाई, तुम इस दुःख को अगुआ के सामने जिसने मेरी शादी ठीक करायी, अवश्य कहना। ॥३०॥

हे भाई! इस दुःख को तुम ब्राह्मण देवता के सामने अवश्य कहना जिन्होंने मेरा गनना विचारा था। और यह विवाह सुखमय कहा था। ॥३१॥ \५०\

हे भाई, यह दुःख तुम अपने हृदय में ही रख लेना। मेरे भाग्य मे जैसा लिखा होगा वैसा मै भोगूंगी ॥३२॥

हे भाई, इन सब दुःख की बातों को तुम गठरी मे बाँधकर नदी में बहा देना। नदी के उस पार न ले जाना ॥३३॥

कितनी स्वाभाविक और मार्मिक बातें है। कितनी सची नित्य की होने वाली, कितनी चुभती हुई शैली में, वेदना का वर्णन किया गया है।

इन सब दुःखों को वह गठरी बाँधकर नदी में बहा दे उस पार न ले जाय।' यह कथन बहन के मर्मस्थल से निकले हैं। इससे अधिक वह कुछ नहीं कह सकती थी। भाई के लिये उलाहना है नैहर वालों के लिये भी शुभ कामना है, दुःख से तड़पती हुई मरती हुई आत्मा के मिलगने की भी भावना है, और स्त्री हृदय की सहनशीलता की पराकाष्टा को व्यक्त करने की मूक वेदना भी इसी में है। कौन पाठक ऐसा होगा जो इसको पढ़कर किताब बन्द कर चार आंसू न गिरा दे? पाठक यहां तक तो बहन की बातें सुन चुके। अब उस भाई की बातें सुने जिसका हृदय इतना कठोर था कि बहन की इतनी बातें सुनकर भी व्यय के भय से उसकी विदाई न करा चल पड़ा॥

सभा में बैठा बैठा पिता देखता है और अकेले पुत्र को आते देख कर पूछता है—अरे, पुत्र, अकेले आ रहे हो? कन्या नहीं आ रही है! क्या बात है?॥२४॥

पुत्र ने कहा, हे पिता जी, जिस तरह से यमुना नदी उमड़ती है उसी तरह से बहन आने के लिये रो रही थी॥२५॥

पर क्यों नहीं लाया यह कहने की उसे हिम्मत कहाँ। पर पिता समझ गया कि व्यय के भय से पुत्र ने उसकी कन्या की विदाई नहीं करायी। उसने दीर्घ निस्वास के साथ कहा हे बेटा तुम्हारे पाँव थक कर बेकार हो गये, तुम्हारी भुजाओं में घुन लग गया। तुम अपनी रोती हुई बहन को लाये नहीं, छोड़ दिये॥२६॥

फिर वहाँ से भाई चला तो पत्नी से भेट हुई। पत्नी रसोई बनाती हुई देखती है और कहती है, अरे, मेरे स्वामी तो आ रहे हैं। ननद नहीं आती। मन में प्रसन्न हो कर कहती है, हे स्वामी! आओ जेवनार करो। ननद का कुशल मंगल कहो॥२७,२८॥

स्वामी कहता है, हे धनी! जिस प्रकार चाँदनी रात में उगती है उसी तरह मेरी बहन वहाँ प्रसन्न है उसका भाग्य उगा हुआ है॥२९॥

पर वहाँ से जब भाई मा के पास आता है तब उसकी अवस्था कुछ बदलती है।

मचिया पर बैठी हुई मा देखती है और कहती है, अरे ! मेरा बछुआ तो आ रहा है, पर बछुई (कन्या) नहीं आ रही है। वह रोने लगी और रो रो कर अपनी कन्या का हाल पूछने लगी।

यहां भाई विचलित हो उठा। वह बाप से शाप पा चुका था। अब यहा मा से भी शाप पाने के भय से वह डर उठा। उसे रुलाई आ गयी।

वह रो रो कर बहन का सच्चा हाल सब दुख बताने लगा। अन्त मे उसने कहा, हे मा ! मैं बहन का दुख क्या कहूं और सुख क्या कहूं ? बहन के भाग्य में केवल दुःख ही दुःख लिखा है। हे मा, अगर मै पहले यह जानता कि अगुआ (विवाह ठीक करने वाला) इस तरह से छल करेगा तो मैं खुद ही घूम कर घर ठीक किये होता ॥४०,४२॥

इस गीत का दूसरा रूपान्तर प्रतापगढ़ और सुलतानपुर जिले की ग्रामीण भाषा मे 'ग्राम गीत' में पं० राम नरेश त्रिपाठी जी ने दिया है। उस गीत में केवल ३६ चरण है। पर इस भोजपुरी गीत मे ४२ चरण है। पहले त्रिपाठी जी के गीत की अतिम पंक्तियों में करुणा रस कुछ फीका पड़ गया है पर इस भोजपुरी गीत में करुणा का प्रवाह वैसा ही अन्त तक बहता गया है। त्रिपाठी जी द्वारा सकलित गीत मे भाई की माता से मुलाकात नहीं होती पर इसमें माता से मिला कर ग्रामीण कवियित्री के करुणा रस को अन्त तक निभाया है। ऐसे भेद पूर्व के भी कई गीतों में आ गये है जिनको त्रिपाठी जी ने स्वयं स्वीकार किया है कि बिहार (भोजपुरी) गीत में जो चरण अधिक पढ़ गये हैं उससे उसका रस और पुष्ट हुआ है। इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि गीत की मूल रचना भोजपुरी में हुई। दूसरी भाषाओं में रूपान्तर होते समय ही कुछ चरण छूट गये हों या जिससे पण्डित जी को गीत प्राप्त हुआ हो उसे वे चरण भूल गये हों।

गीत की टिप्पणी में मैं अपनी ओर से पूर्व कथन के अलावे यही कहना चाहता हूँ कि इस गीत ऐसा स्वाभाविक चित्रण मुझे इस संग्रह ही क्या अन्य कविताओं में, भी शायद ही कहीं मिला हो। करुणा रस की ऐसी पुष्टि और बहन की दुर्दशा का जीता जागता रूप संस्कृत भाषा में

भी किसी कवि ने शायद नहीं कहा है। अपनी बातें अधिक न कह कर मैं त्रिपाठी जी की ही टिप्पणी को उद्धृत कर देना अधिक उचित समझता हूँ जिससे मैं सहमत हूँ।

"इस गीत में कितनी मर्म व्यथा भरी है। कितनी अन्तपीड़ा व्याप्त है !! पढ़कर ही आँखों में आँसू आ जाते हैं। लहराती हुई पूर्वी हवा में, धान का खेत निराते समय (बिहार में खेत में लावना लगाते समय)—मुख्य कर चमारिनों—के ऊँचे कण्ठ से यह गीत सुनकर मन की दशा अवर्णनीय हो जाती है।"

"इस गीत में अत्युक्ति का एक भी शब्द नहीं है। गाँवों में कितने ही घरों की ऐसी ही दशा है। कितने घरों में बहुओं को वर्णनातीत दुःख है। खाने का कष्ट, पहनने का कष्ट, व्यंग्य और ताने का कष्ट, मारपीट का कष्ट कहाँ तक गिनायें, बहुएँ बेचारी मूक पशु की भाँति सब सहती रहती है। पुरुष इतने कष्ट कभी नहीं सह सकता।"

"इस गीत में कष्टों का जो वर्णन है उसके सिवा दो बातें विशेष महत्व पूर्ण हैं। एक तो बहू का अपने मायके के लिये विशेष ध्यान। वह भाई से कहती है कि मेरे कष्टों को भावज से न कहना, नहीं तो वह दो चार घरों में बाँट आयगी। मा, बहन और बाबा से भी कुछ कहने को रोकती है। उसकी शिकायत तो अगुआ से है, जिन्होंने इस घर में लाकर उसे दुःख में डाला।"

"दूसरे बहू की सहनशीलता। बहू ने भाई से कहा कि मेरा दुःख किसी से न कहना। नदी के उस पार मेरे कष्टों की कथा न ले जाना। मैं अपने पूर्व कर्मों का फल भोग रही हूँ। मैं अब तो इस घर में बँध ही गयी हूँ, जैसे होगा निबाहूँगी। उसका अन्तिम वाक्य सहन शीलता की पराकाष्ठा दिखलाता है।"

फिर आगे त्रिपाठी जीने कहा है 'यह गीत किसने बनाया ? क्या किसी अक्षर और मात्रा गिनने वाले कवि ने ? या पिङ्गल और अलकार के किसी उद्भट विद्वान ने ? नहीं, यह प्राकृतिक रचना है। यह हाहाकार स्त्री कण्ठ से आप ही आप फूट निकला है। दुखिया बेचारियों की पुकार जब किसी ने न

सुनी, तब उनके हृदय की वेदना हलकी करने के लिये, कविता देवी ने उन पर दया करके, स्वयं यह गीत गाया है।

"न जाने कितने दिनों से विवाह के स्वार्थी दलालों—अगुवा और ब्राह्मणों के विरुद्ध स्त्रियाँ तो—खतियानों गली कूचों में पूरे जोर से चिल्ला रही हैं, पर पुरुषों ने क्या ध्यान दिया? स्त्रियों के इस हाहाकार को किसी ने सुना?"

"आश्चर्य की बात तो यह है कि जब पड़ोस में एक अबला नारी भीषण यातना से चिल्ला रही थी तब हमारे हिन्दी के कवि पुंगव कुच और कपोल के वर्णन के लिये अनार, बेल, गुलाब और कचौड़ी के पर्याय वाची शब्द ढूँढ़ रहे थे, या किसी अभिसारिका को भौंरों की भीड़ में छिपाये किसी विषयी के पास लिये जा रहे थे। कवि की बधिरता से व्यग्र होकर स्त्रियों ने अपनी वेदना अपने आप ही कह डाली है।"

सरस्वती में यह गीत पढ़कर कितने ही सहृदय लोग रो उठे थे। गीत की टिप्पणी बड़ी हो गयी। पाठक क्षमा करेंगे पर यह भी थोड़ी ही है।

(१०)

अमवा महुइया घनि पेड़ से हो रे बीचे राह परी।
रामा तेहि तर ठाढ़ि एक तिवई मन में बिरोग भरी ॥१॥
पूछे लागे बाट के बटोहिया अकेली धनि काहे रे खड़ी।
भैया, चलि जाहु बाट के बटोहिया हमे तोहँ कारे परी ॥२॥
की रे तोहि सासु ससुर दुख की नइहर दूरि बसे ॥३॥
भैया, नाहीं मोरे सासु ससुर दुख नाहि नइहर दूरि बसे ॥३॥
भैया, मोरे बालम परदेस मन मे बिरोग भरी।
बहिनी, तोहरा बलमु परदेस तोहि कछू कहि के गये ॥४॥
भैया, देइ गइले कुपवन तेल हरपवन सेनूर हो।
भैया, देइ गइले चनन चरखवा उठाइ गजओबरि हो ॥५॥
भैया, देइ गइले अपनी किरिअवा सत जनि छोड़ेउ हो।
भैया, चुके लगले कुपवन तेल हरपवन सेनूर हो ॥६॥

भैया, घुने लगले चनन चरखवा ढहइ गजओबरि हो।
भैया, बीते लगली मोरि उमिरिया हरीजी नाहीं अइलनि हो ॥७॥

आम और महुए के घने पेड़ों के बीच में राह निकली है। उस राह पर एक स्त्री खड़ी है जिसके मन में वियोग भरा हुआ है ॥१॥

मार्ग जाते पथिक उससे पूछने लगे—हे धनी तुम अकेली यहाँ क्यों खड़ी हो ? पर स्त्री ने कहा, हे पथ के पथिक ! भैया ! तुम अपने मार्ग चले जाओ। तुमको मेरी चिन्ता क्या पड़ी है ? ॥२॥

पथिक ने कहा, नहीं बताओ। क्या तुम्हारा मायका यहाँ से बहुत दूरी पर है और तुमको यहाँ सास, स्वसुर सता रहे हैं ? स्त्री ने कहा, हे भाई ! मुझे सास ससुर का कोई दुःख नहीं न मेरा नइहर ही दूर है। हे भाई ! मेरा बालम विदेश गया हुआ है वही मेरे मन में वियोग सता रहा है। पथिक ने कहा, हे बहन ! तुम्हारा स्वामी विदेश जाते समय तुमसे कुछ कह कर नहीं गया ? ॥३,४॥

स्त्री ने कहा, हे भैया ! मेरे स्वामी जाते समय मुझे कुप्पी में तेल और सिधौरे में सिन्दूर भर कर दे गये थे। और दे गये थे चन्दन का चरखा तथा बना गये थे रहने के लिये एक सुन्दर कोठरी। और फिर ऊपर से सत बनाये रखने के लिये अपना सौगन्द देते गये थे। सो हे भाई ! कुप्पी का तेल समाप्त होने लगा, सिंधौरे का सिन्दूर समाप्त होने पर आया, चन्दन का चरखा भी घूनने लगा, और रहने की कोठरी भी ढहने लगी, साथ ही मेरी उमर भी बीतने लगी, पर मेरे प्राणनाथ आज तक नहीं आये ॥

कितना सुन्दर चित्रण है। आद्योन्त कहीं भी कृत्रिमता नहीं। वाक्य कितने सरल, करुण और सच्चे भाव को व्यक्त करने वाले हैं। दृश्य कितना संक्षेप में दिहात के शान्त सुन्दर पवित्र वातावरण का स्मरण दिलाने वाला है। विरहिणी के मन की दशा तथा विरह-यापन-विधि कितने संक्षेप में और कितने सच्चे रूप से कहलायी गयी है। इस वर्णन में काव्य की कृत्रिम-कला का, वाह्याडम्बर का कहीं भी आश्रय नहीं लिया गया है। स्वाभाविक बातें हीं, भावनायें ही उसके पास इतनी हैं कि उनको इतने कम स्थान में रखने से

कवियित्री को अवकाश नहीं। जब कवि के पास भावनाओं की कमी होती है तब उसे अलंकार आदि की आड़ में उक्ति बढ़ानी पड़ती है, पर यहाँ तो कवियित्री को इतनी बातें कहनी है कि उसे इधर उधर सोचने को फुरसत कहाँ? दृश्य वर्णन, विरहिणी की अवस्था का वर्णन, उसका प्रथम वियोग, पति का उपदेश, विरह अवधि बिताने का साधन, और एक युग तक जीवन पवित्रता पूर्वक निभा ले आना और अन्त में पति के नहीं आने पर निराशा जनित दुःख का इजहार, वह भी बिना किसी उलाहना और विकार के, एक उस अपरिचित पथिक से जो उसके दुःख को मनुष्य होने के नाते अपनी बहन समझ कर पवित्र भाव से जानना चाहता है और विरहिणी को पथिक को भाई मानकर उससे मन के भाव निर्मल भाव से कहने में जरा भी संकोच नहीं होता—इत्यादि कितनी बातें इतने कम स्थान में इस तरह चित्रण करनी है कि रस फीका न पड़े—कितना कठिन काम है। पर इसको कवियित्री ने कितने सुन्दर तरह से निभाया है और रस को किस कोमलता और सफलता से पुष्ट किया है यह पाठक विचारें। इस गीत को यदि हम 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' का विशेषण न देंगे तो किसको देंगे?

(११)

कवनी कि जुनिया तेलिन घनिया आरे लगावे आरे कवनी जुनिया ना,
कोइलरि सबद सुनावे कि कवनी जुनिया ना ॥१॥
आधी आधी रतिया तेलिन घनिया लगावे कि पिछिली जुनिया ना,
कोइलरि सबद सुनावे कि पिछिली रतिया ना ॥२॥
कोइलरि के सबदिया सुनि जागे साँवर गोरिया बढनिया लेइ के ना,
सुन्नरि अँगना बहारें बढ़निया लेइ के ना ॥३॥
अँगना बहारि सुन्नरि घुरवा फेंकि आवें घइलवा लेइ के ना ॥
सुन्नरि चलली सागर पनियाँ घइलवा लेइ के ना ॥४॥
घइला जे भरि भरि धना घइली कररवा कि जोहे लगली ना,
परदेसी जी के बटिया कि जोहे लगली ना ॥५॥

किस समय तेलिन घानी डालती है। और किस बेला में कोयल शब्द

सुनाती है ? आधीरात को तेलिन घानी लगाती है। और पिछली रात में कोयल शब्द सुनाती है ॥ १,२॥

कोयल का शब्द सुनकर सुन्दरी जागती है और झाड़ू लेकर आगन बहारती है ॥३॥

आगन बहार कर सुन्दरी घूर उठा बाहर फेंक आती है और घड़ा लेकर सुन्दरी तालाब पर पानी भरने जाती है ॥४॥

घड़ा भर भर कर स्त्री ने करार पर रखा और अपने परदेशी स्वामी की बाट जोहने लगी ॥५॥

इस गीत की टिप्पणी में त्रिपाठी जी लिखते हैं :—

परदेशी पति की बाट जोहने में कितना सुख है, कितनी मिठास है, यह लिखकर बताया नहीं जा सकता। कल्पना की सीमा से यह बहुत दूर है। यह अनुभव की वस्तु है। जिसका कोई प्रियतम है और वह दूर देश में है, वही इस सुख का अधिकारी है।' वास्तविक प्रेम वास्तविक सुख जो मिलन में है उससे कहीं अधिक सुख अल्प काल के विरह में है। कहा भी है:—

'दुःख बराबर सुख नहीं जो थोरे दिन होय।

अथवा

'जो मजा इन्तजार में देखा वह न वस्ले यार में देखा !

(१२)

आरे पिया कौड़ी के लोभी फिर घर के ॥ आरे पिया० ॥
बेरिहिं बेर तोहि बिनवों हो नयका हमहू गोहन लिये जाव ॥१॥
गठिया जोरि तोरा अरधी लदइबों कि डेरवा प भोजना बनावँ ॥२॥
ऊपरा से छोड़बइ घीउआ के धरवा कि अचरन झलब बयारि ॥३॥
जो धना होतिउ बेइलिया क फुलवा रखितों पगरिया के पेंच ॥४॥
तू धनी बाड़ू बारी रे बयसिया कि हसिहैं सथवा क लोग ॥५॥
बेरिया क बेरि तोहि बरजों नयकवा उतर पनिजिया जनि जाहु ॥६॥
उतर क पनिया जहर बिख महुरा लागे करेजवा में घाव ॥७॥
पनिया पिअत सामी जो मरि जइब हम धनि होइबों अनाथ ॥८॥

दँतवा तुराइ पिया कोठवा उठइवों छतियन बजर केवार ॥६॥
ई दूनों नैना बिच हटिया लगइवों घरहीं करहु रोजिगार ॥१०॥
अमली बँवरि कइ कोल्हुआ रे नयका बेल बबुर कई जाठि ॥११॥
जठिया के उपरा ढेकुली पिहीके ओइसे पिहीके जिया मोर ॥१२॥
आधी आधी राति पिया लादेल बरधिया कि छतिया कुहके ला मोर॥१३॥
चुटकी काटि छोटी ननदी जगावे भइया बनिजिया कइ जाय ॥१४॥
जेकरि ऊँच नजरिया रे नयका ओ कुलवन्ती जोय ॥१५॥
ते कइसे जइहे बनिज बिदेसवाँ घरहीं सवाई होय ॥१६॥
आरे पिया कौड़ी के लोभी फिर घर के ॥

बनजारे की नवागता चतुर वधू अपने पति को समझा रही है। हे पैसे के लोभी मेरे प्राणनाथ ! घर लौट आवो। विदेश मत जाओ। हे नायक ! मैं तुमसे बार बार विनती करती हूं कि मुझे भी अपने साथ लेते चलो। मैं तुम्हारी बरधी पर लदने वाले बोरों की गाँठ बाँध बाँध कर उन्हें बैल पर लदाऊँगी और डेरा पर तुम्हारा सुन्दर भोजन बनाऊँगी। सारे समय में (गरम गरम) घी की धार डालकर अचल से हवा करके (तुम्हे खिलाऊँगी) ॥ १, २, ३॥

इस आग्रह के उत्तर में पति ने कहा, हे प्यारी ! जो तू बेले का फूल होती तो मैं तुझे अपनी पगड़ी की पेंच में खोंस लेता। (और साथ देश विदेश लेता फिरता)। पर तुम कम उम्र की सुन्दरी हो; तुमको साथ ले जाने से सभी सङ्गी साथी हँसेंगे। ॥४,५॥

इस उत्तर से विवश होकर स्त्री ने दूसरी तरह से समझाना शुरू किया। हे नायक ! मैं तुमसे बार बार बरजती चली आ रही हूँ कि तुम उत्तर देश तिजारत करने न जाओ। उत्तर का पानी विष के समान है। सीधे कलेजा पर लग जाता है। यदि इस पानी को पीने से तुम्हारी मृत्यु हो जायगी तो हे स्वामी ! मैं अनाथ हो जाऊँगी। ॥६, ७, ८॥

(इस लिये हे प्रियतम ! बिनती है कि तुम यहीं रहो) मैं अपने दाँत तुड़वा कर तुम्हारे लिये कोठा पटाऊँगी। और उसमें अपने वक्षस्थल के

वज्र किवाड़ लगवा दूँगी। अर्थात् मैं तुमको अपने हृदय रूपी कोठी में जिसकी छत दाँतों से पटी है और जिसके दरवाजे वज्र से मजबूत मेरे वक्षस्थल के बने हैं, सुख पूर्वक रखूँगी। यानी मैं तुम्हें अपने हृदय में स्थान दूँगी। और तुम्हारे मन के रोजगार करने के लिये मैं इन दोनों आँखों में (भावभंगियों की) बाजार लगाऊँगी तुम इसी हाट में घर पर बैठे बैठे (भाव भंगी का क्रय विक्रय करके) रोजगार करना अर्थात् अपना मन बहलाना ॥९, १०॥

हे नायक! (रही पेट की बात सो उनके लिये हम) इमली की बँवरि (गाँठ) की कोल्हू बनायेंगे और उसमें बेल या बबुर की जाठ लगायेंगे और उस जाठ के ऊपर कोल्हू चलते समय जब ढेकुल (टेढ़ी लकड़ी) चिहकने की आवाज करेगी तब मेरा हृदय भी मारे सुख के उसी तरह चिहकने लगेगा। अर्थात् मैं गाने लगूँगी ॥११, १२, १३॥

परन्तु पैसे के लोभी बनिज ने पत्नी की इन सुकुमार प्रार्थनाओं के ऊपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। आधी रात को उसने बरधी पर लादने के लिये बोरा कसना शुरू किया। मेरी छाती कूड़कने अर्थात धिहरने लगी ॥१३॥

तब छोटी ननद ने धीरे चुटकी काट कर मुझे जगाया और कहा कि भैया व्यापार करने जारहे हैं ॥१४॥

(इस पर स्त्री ने तीसरी युक्ति से काम लिया, और वह उक्ति ऐसी थी कि कोई ना नहीं कर सकता था) कहा, हे नायक! जिसकी दृष्टि (अर्थात् लक्ष्य) ऊँची है, जिसको कुलीन सती स्त्री मिली है। वह विदेश में जाकर घूम घूम क्यों व्यापार करता है। उसके लिये तो घर में ही व्यापार से, ईश्वर की कृपा से अच्छी दृष्टि होने के कारण, उसको एक का सवाई लाभ हुआ करेगा। इस लिये हे पैसे के लोभी प्रियतम घर लौट आओ (विदेश न जाओ) (यहीं अच्छी नीयत करके, ऊँची भावना बनाकर व्यापार करो तुम्हें सर्वथ नफा होगा।) ॥१५, १६॥

इस गीत में कितना सुन्दर काव्य है। इस भाव को बहुतों ने बहुत तरह से कहा है पर इस नवागता वैश्य वधू ने सबको मात कर दिया है।

देखिये कबीर ने कहा था—

आओ प्यारे मोहना, पलक बीच मुदि लेहुँ।
ना मैं देखउँ तोहि को, ना कोइ देखन देहुँ॥

उसका जवाब इस वैश्यवधू ने कैसा सुन्दर कहा है—

उँतवा तूरि पिया कोठा उठइयों, छतिअन बजर केवार।
ई दूनो नैना बिच हटिया लगइयों घरही करहु रोजगार॥

आँख के बीच प्रियतम को मूँद रखने से वह निष्क्रिय हो जाता। हमेशा का कामकाजी बनिक बेकार बैठ कर दुख अनुभव करता। इसलिये अपने मुख रूपी शहर में ही कोठा अटारी उठाकर आँखों के बीच बाजार लगाना और उसमें पति से रोजगार करवाने की उक्ति कितनी सुन्दर अनोखी और स्त्री भाव के अनुरूप है।

फिर पेट के लिए आधी रात में कोल्हू चलाने का नायिका का प्रस्ताव कितना सुन्दर है। उस समय भी वह रस ही लूटती है। 'जठिआ के उपरौं ढेकुली पिहीके ओइसे पिहीके जिया मोर।'

(१३)

आजुक गइल भँवरा कहिया लवटब, कतिक दिना रे,
जोहबि तोरी बटिया कतिक दिना रे ॥१॥
गनत गनत मोरी अँगुरी खिअइली कि चितवत रे,
नैना ढुरे अँसुआ कि चितवत रे ॥२॥
एक बन गइलों दूसर बन गइलों कि तिसरे बने रे,
मिले गोरू चरवहवा कि तिसरे बने रे ॥३॥
गोरू चरवहवा तुहीं मोर भइया कतहूँ देखेउ रे,
मोरा भँवरा बिदेसिया कतहूँ देखेउ रे ॥४॥

हे भँवरा! आज के गये तुम फिर कब लौटोगे। मैं कब तक, कितने दिनों तक तुम्हारी बाट जोहती रहूँगी? ॥१॥

अरे, दिन गिनते गिनते मेरी उँगुलियाँ घिस गयीं और मार्ग देखते

(६)

गढ पर परेला रे हिंडोलवा सब सखि झूलन जाँय ।
हम धनि ठाढि जगत पर ॥१॥
बाट बटोहिया तुहूँ मोरे भइया पियवा से कहित बुझाय ।
गढ पर परेला हिंडोला० ॥२॥
बाट बटोहिया रे तूहूँ मोरा भइया धनिया ने कहिह बुझाय।
सखि सँग झूलिहे हिंड़ोलवा जोबना के रखिहें छिपाय।
आइब हमहू छवे मास ॥३॥

किले पर हिंडोला पड़ा है। सब सखियाँ झूलने जा रही हैं। पर मैं झूलने न जाकर कुएँ की जगत पर खड़ी खड़ी देख रही हूँ ॥१॥

हे राह चलने वाले ! तुम मेरे भाई हो। मेरे पति से समझा कर कहना कि गढ़ पर हिंडोला लगा है। सब सखी झूलने जाती हैं। पर तुम्हारी स्त्री इनारे की जगत पर खड़ी खड़ी देखा करती है।

पति ने बटोही से कहा, 'हे बाट के बटोही ! तुम मेरे भी भाई हो। मेरी स्त्री से समझा कर कहना कि वह सखियों के साथ झूला झूलेगी पर अपने यौवन छिपा कर रखेगी। मैं आज के छठे मास अवश्य आऊँगा ॥३॥

(७)

असों के सवनवा सैंया घरे रहु, घरे रहु ननदी के भाय ॥असों०॥
सावन गरजे ले बिजुली चमके ले, छतिया दरद उठे मोर ॥
अइसे उमँग रितु बरखा बरिसे, निरमोही दरदियो ना बूझ ॥असों०॥

हे मेरे स्वामी ! हे मेरी ननद जी के भाई !! इस वर्ष के सावन में तुम विदेश न जाओ। घर ही पर रहो। सावन के मेह गरज रहे हैं। बिजली चमक रही है। मेरी छाती में दर्द उठ रहा है। ऐसी उमग की ऋतु में वर्षा हो रही है और तुम मेरे दर्द को समझते तक नहीं हो ॥

(८)

माई तलवा में कुहुँके मोर ॥
माई जेठवा भइअवा मति पठएउ हो सावन निअराय ;

माई सार वहनोइया होइहें एक सावन निअराय ॥१॥
माई वभना क पूतवा जनि भेजिह सावन निअराय।
माई पोथिया बाँचत बाझि जाई सावन निअराय ॥२॥
माई लहुरा भइयवा मोहि पठयेउ सावन निअराय।
माई रोइ गाइ विदवा करइहें सावन निअराय ॥३॥

स्त्री मायके आने के लिये मा के पास सन्देश भेज रही है। हे मा! यहाँ ताल में मोर बोलने लगा। सावन निकट आ रहा है। मुझे बुलाने के लिये जेठे भाई को मत भेजना। वे सार बहनोई दोनों मिलकर एक हो जायँगे। मेरी बिदाई रुक जायगी ॥१॥

मा, ब्राह्मण के पुत्र को मुझे ले आने के लिये न भेजना। वह पोथी बाचने लगेगा और बझ जायगा। मुझे नहीं ले आयेगा। सावन निकट आ रहा है ॥२॥

हे मा! मेरे छोटे भाई को भेजना। वह रो गाकर विदा करा लेगा ॥३॥

(६)

घेरि घेरि आवे पिया! कारी रे वदरिया, दैवा बरसे हो वड़े वड़े बूँन।
वदरिया वैरिन हो ॥१॥
सब कोइ भीजेला अपना भवनवाँ मोरा पिया हो भींजे परदेस;
वदरिया वैरिन हो ॥२॥
दुलहिन हो रानी चिठि लिखि भेजे, घर वहुरहु हो ननद जी के भाय।
वदरिया वैरिन हो ॥३॥

विरहिणी कहती है। हे प्रियतम! काली घटा घिर घिर कर फिर फिर आ उमड़ती है। और मेघ बड़े बड़े बूँद बरसने लगे हैं। ये बादल मेरे लिये शत्रु बन गये हैं ॥१॥

सब लोग अपने अपने घर इस पहले पावस में भीग रहे हैं, पर मेरे प्रियतम कहीं विदेश में भीग रहे हैं। हाय बादल शत्रु हो गये ॥२॥

दुलहिन रानी ऐसे समय में पत्र पर पत्र लिख लिख कर भेज रही हैं

कि हे ननद के भाई अब घर चले आओ। ये बादल मेरे लिये शत्रु हो रहे हैं ॥३॥

(१०)

सावन घन गरजे।
केने से घटा ओनइके, केने बरिसे गँभीर।
हमार बलमू विदेसिया, भींजत होइहें कवने देस ॥
सावन घन गरजे ॥१॥
जा रे घरे हिंगुआ न महँके, जिरवा के कवन बघार।
जे रे घरे सासु दरुनियाँ, बहुवा क कवन सिंगार ॥
सावन घन गरजे ॥२॥
खस केरा बँगला छवइतिउँ, चउमुख रखितिउँ दुवार।
हरि लेके सोइतिउँ अँटरिया, झोंकवन आवत बयार ॥
सावन घन गरजे ॥३॥
अतलस लहँगा पहिरितिउँ, चुनरी बरनि न जाय।
झमकि के चढ़ितिउँ अँटरिया, चौमुख दियरा बराय ॥
सावन घन गरजे ॥४॥

सावन में घटा गरज रही है। किस ओर से घटा उमड़ती आ रही है और किस ओर गंभीर होकर बरस रही है, मेरे विदेशी पति किस देश में भीग रहे होंगे। यह सावन में मेघ गरज रहा है ॥१॥

जिस घर में हींग की महक तक नहीं, वहाँ जीरे का बघार कब मिलेगा। जिस घर में कर्कशा सास है उस घर में बहू का शृंगार कहाँ सम्भव है। सावन में मेघ गरज रहा है ॥२॥

यदि मेरे पति घर होते तो मैं खस का बँगला छवाती और उसमें चारों ओर दरवाजा रखती। हवा के झोंके आते और मैं अपने हरि को लेकर अटारी पर सोती। सावन में, हाय, मेघ गरज रहे हैं ॥३॥

मैं अतलस का लहँगा पहनती और चूनर ऐसी पहनती जिसका वर्णन

नहीं हो सकता । चार मुख वाला दीपक जलाकर मैं छमकती हुई अटारी पर चढ़ती ॥४॥

पावस में यह कितना सुन्दर विरह विरहिणी कह रही है ।

(११)

बुँदिअनि भींजे मोरी सारी, मैं कइसे आऊँ बालमा ॥१॥
एक त मेह झमाझम वरिसे, दूजे पवन झकझोर ॥२॥
आवउँ त भीजे सुरँग चुनरिया, नाहित छुटत सनेह ॥३॥
नाहीं डर बहुअरि भीजे क चुनरिया, डर बाड़े छुटे क सनेह ॥४॥
नेहवा से चुनरी होइ मोरी बहुअरि, चुनरी से जुटी ना सनेह ॥५॥

हे प्रियतम ! मैं तुम्हारे पास कैसे आऊँ ? मेरी यह साड़ी बूंदों से भीग जायगी । एक ओर तो झमाझम मेह बरस रहा है दूसरी ओर झकझोर झकझोर कर हवा चल रही है । यदि ऐसे समय में आती हूँ तो मेरी रंगीन चूंदर भीग जाती है और यदि नहीं आती तो तुम्हारा स्नेह छूटता है ॥१,२,३॥

पति ने कहा, हे बहू चूनर भीगने का डर नहीं, स्नेह छूटने ही का डर है । स्नेह से चूनर पुनः हो जायगी । पर चूनर से प्रेम नहीं प्राप्त होगा ॥४,५॥

(१२)

मोरी धानी चुनरिया अतर गम के, धनी बारी उमिरिया नइहर तरसे ॥१॥
सोने के थारी में जेवना परोसलों, मोरा जेवन वाला विदेस तर से ॥२॥
झँझरे गेडुवा गगा जल पानी, मोरा पीअन वाला विदेस तरसे ॥३॥
लवंग इ लाची के बिरवा लगवलों; मोरा चाभन वाला विदेस तरसे ॥४॥
कलिया मैं चुनि चुनि सेज लगवलों, मोरा सूतन वाला विदेस तरसे ॥५॥

धानी रङ्ग की मेरी चादर में इत्र महक रहा है । पर मैं बाला नैहर में तरस रही हूँ ॥१॥

मैं सोने की थाली में भोजन तो परोसती हूँ, पर उसका उपभोग करने वाला विदेश में तरस रहा है ॥२॥

झझरीदार गेडुआ में गंगा का जल रखती हूँ, पर उसका पीने वाला

विदेश में तरस रहा है ॥३॥

लवंग इलायची का सुन्दर बीड़ा जोड़ती हूँ, पर उसका चाभने वाला विदेश में तरस रहा है ॥४॥

कली चुन चुन कर फूलों की सेज बिछाती हूँ पर उस पर सोने वाला मेरा प्रियतम विदेश में तरस रहा है ॥५॥

(१३)

आरे सावन मेंहदी रोपायउँ रे लागे भादों में दुइ दुइ पात।

सैंया मोरा आरे छाये रे बिदेसवा, सींचों में नयना निचोरि ॥१॥

मैंने सावन में मेंहदी लगायी। भादों में उसमें दो दो पत्ते निकल आये। मेरे प्रियतम परदेश में हैं। मैं आंखें निचोर निचोर कर उस प्रेम-मेंहदी को सींच रही हूँ जो पावस में बढ़ती हुई चली जा रही है।

मार्ग चलते समय के गीत

(१)

रघुबर सँग जाइबि हम ना अवध में रहबइ।

जौं रघुबर रथ चढ़ि जइहैं हम भुइयें चलि जाइबि। हम ना अवध० ॥

जौं रघुबर हो बन फल खइहैं, हम फोकली बिनि खाइबि। हम ना० ॥१॥

जौं रघुबर के पात बिछइहैं, हम भुइयाँ परि जाइबि ॥ हम ना० ॥२॥

अर्थ सरल है।

(२)

पूछत भरत राम कहाँ माई।

जब से छुटली अजोधिआ नगरी हमरा उदासी आई ॥

घरे गलियाँ औ हाट बाट में परजा रोवत पाई ॥१॥

राम बिनू मोर सूनी अजोधिया लखन बिनू ठकुराई।

सिया बिना मेरो मदिल सूनो रोइ पछार भरत भाई खाई ॥२॥

भरत पूछ रहे हैं—हे माँ राम कहाँ हैं? जब से मेरी अयोध्या छूटी तब से उदासी सदा छाई रही। यहाँ घर घर, गली गली और हाट बाट सर्वत्र प्रजा को मैंने रोते हुये ही पाया ॥१॥

हाय ! राम के बिना मेरी अयोध्या, लछमण के बिना मेरी ठकुराई और सीता के बिना मेरा घर, सूने हो गये यह कह कर और रोकर भरत पछाड़ खाकर गिर पड़े ॥२॥

(३)

बिगड़ी प्रभु नाथ ! तोहे बिनु हमरी ॥
नइहरे में जो वीरन होते उनहूं के करितों आस ॥१॥
ससुरो में जो देवर होतनि उनहू के करितों आस ॥२॥
दुअरा पर एको रुखओ जो होखिते तो हम होइतों ठाढ़ ॥३॥
बिगडी प्रभु० ॥

विधवा अनाथ होकर रो रही है :—

हे स्वामी ! तुम्हारे विना मेरी सब प्रकार से बिगड़ गई। नैहर में कोई भाई होता तो उसकी भी आशा करती। ससुराल में कोई देवर होता तो उसकी भी आशा कर सकती थी। और इस घर के दरवाजे पर एक वृक्ष भी होता तो उसके नीचे ही खडी होती ॥१,२,३,॥

सचमुच विधवा का रुदन बड़ा ही मार्मिक है। अंतिम पंक्ति तो हृदय को हिलाये बिना नहीं रहती।

(४)

वन के चलले दूनो भाई, कोई समुझावत नाहीं।
भीतर रोवे मातु कोसिला दुअरे भरत जी भाई ॥१॥ कोई समु०॥
आगे आगे राम चलतु हैं पीछवा लछिमन भाई।
तेकरा पीछे सीता सुन्नरि सोभा वरनि न जाई ॥२॥ कोई० ॥
भूखि लगे भोजन कहाँ पइहें, पिआस लगे कहाँ पानी।
नीदि लगे डासन कहाँ मिलिहें, कुस काँकर गड़ि जाई ॥३॥ कोई० ॥
रिमझिम रिमझिम मेह वरिसे ले पवन वहे पुरवाई।
कवने विरिछ तरे भीजत होइहें रामलखन दूनो भाई ॥४॥

हा ! दोनों भाई वन को जा रहे हैं उन्हें कोई समझाता नहीं। भीतर कौशल्या माता रो रही हैं और बाहर भरत जी भाई रो रहे हैं ॥१॥

आगे आगे राम जा रहे हैं उनके पीछे लघमण। इन दोनों के पीछे सीता सुन्दरी जा रही है जिनकी शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता ॥३॥

हा, भूख लगने पर इन्हें भोजन कहाँ मिलेगा और प्यास लगने पर वे पानी कहाँ पावेंगी। नींद की दशा में उनको बिछावन कहाँ मिलेगा? (कोमल) शरीर में कुश कंटक गड़ जायँगे।

रिमझिम रिमझिम करके मेघ बरस रहा है। पूर्वा हवा वेग से चल रही है। हा! दोनों भाई किस वृक्ष के नीचे भीग रहे होंगे ॥४॥

(५)

ऊँचहि घरवा के ऊँची रे अटरिया,
ते चढ़ि बइठेली रूपा देई झारे लामी लामी केस ॥१॥
का तुहू रूपा बेटी झारे लामी केसिया,
तोरा सामी जूझेले गइया रे गोहारि ॥२॥
हाथ केरी ककही हाथहि रहि गइली,
माथा के सेनुरवा दैवा हरले रे जाइ ॥३॥
सभवा बइठल तुहूँ बाबा हो हमार।
बीता एक जगहिया बाबा हमरा के देत ॥४॥
बीता एक जगहिया रुपवा तोहि बलिहार,
लेइ आउ कयथवा रुपवा लेहु ना नपाइ ॥५॥
मचियहि बइठलि अमा तू मइया हो हमारि,
लहरा पटोरवा देहु हमरा के दान ॥६॥
लहरा पटोरवा रूपा तोरे बलिहार,
लेइ आउ बजजवा रुपवा लेहु ना फराय ॥७॥
पसवा खेलत तुहूँ भैया हो हमार,
चनन चइलिया देहु हमरा के दान ॥८॥
चनन चइलिया रुपवा तोरे बलिहार,
लेइ आउ बढ़इया रुपवा लेहु ना चिराय ॥९॥
भँडरा पइसलि तुहूँ भउजी हो हमार,

अवध सिन्होरवा भउजी हमके द दान ॥१०॥
पूरुब के चॅनवा पछिम कइसे जात,
भउजी के सिन्होरवा ननद नाहीं दान ॥११॥
एक त बेटी पातरि दूसर सुकुवारि,
कइसे कइसे सहवू बेटी अगिनी क आँचि ॥१२॥
तोहरा लेखे अम्मा आहो अगिनी के आँचि,
हमरा लेखे अँचिया वा सितली बतास ॥१३॥

ऊँचे घर की ऊँची अटारी है जिस पर बैठकर रूपादेवी अपने लम्बे केश झार रही है ॥१॥

हे रूपा बेटी ! तुम अब बाल क्यों झार रही हो ? तुम्हारे पति गाय की रक्षा करने में मारे गये ॥२॥

रूपा के हाथ की कघी हाथ ही में रह गयी। उसके माथे का सिंदूर भगवान हरण किये चले जा रहे हैं ॥३॥

सभा में बैठे हुये हे मेरे पिता, मुझे एक बिता भूमि दान दो ॥४॥

हे बेटी रूपा ? तुम पर एक बीता भूमि अर्पण है। कायस्थ बुलाकर नपा लो ॥५॥

मचिया पर बैठी हुई हे अम्मा तू हमारी माता हो। हमें एक रेशमी धोती दो ॥६॥

हे बेटी रूपा ! रेशमी धोती तुम पर अर्पण है। बजाज बुलवा कर फड़वा लो ॥७॥

हे पासा खेलते हुये मेरे भाई मुझे थोड़ी सी चन्दन की चैली प्रदान करो ॥८॥

हे रूपा बहन ! चन्दन की चैली तुम पर अर्पण है। बढ़ई बुलाकर चंदन की चैली चिरा लो ॥९॥

भडार में घुसी हुई हे मेरी भावज ! मुझे अवध का सिन्होरा प्रदान करो ॥१०॥

पूरब का चन्द्रमा पश्चिम को कैसे जा सकता है ? भौजी का

सिन्होरा ननद को कैसे दिया जायगा ?

हे बेटी, एक तो तुम ऐसे ही पतले अंग की हो दूसरे सुकुमार हो। आग की आँच कैसे सहोगी ? ॥१२॥

हे मा ! तुम्हारे लिये आग की आँच आँच है। मेरे लिये तो वह शीतल वायु है ॥१३॥

कहना नहीं होगा कि रूपादेवी सती हो गई। उसके मायके में पति निधन की सूचना मिली और वहीं वह सती हुई।

(६)

सुधिया न लेले राजा हमरी सुरति के ॥
अपने त जाइ के विदेसवा में छवले,
पतिओ ना लिखे राजा हमरे इ मन के ॥१॥
जो सुधि आवे राजा तुमरी सुरति के,
अँसुवा बहे जइसे नदिया सवन के ॥२॥

अर्थ सरल है।

(७)

तमुआ गिरवल कहाँ जइब हो कहाँ लगिहें ठेकान।
काहे लगवल बबुरवा हो लगइत तू आम।
अमिरित करीत भोजनवा हो भजित हरि नाम ॥१॥
प्रेम बाग ना बउरे हो प्रेम न हाट बिकाय।
बिना प्रेम क मनुआ हो जइसे अन्हरिया राति ॥२॥
प्रेम नगर के हटिया हो हीरा रतन बिकाय।
चतुर चतुर सउदा कइले हो मूरख पछताय ॥३॥

हे बालम ! तुमने हमारी सुधि नहीं ली ॥

तुम स्वयं तो जाकर विदेश में पड़े हो। मेरे मन का हाल जानने के लिये तुमने पत्र भी न भेजा ॥१॥

हे राजा ! तुम्हारी याद आते ही मेरी आँखों से आँसू की धारा ऐसी बहने लगती है, जैसे सावन में नदी बहती है ॥२॥

हे प्रिय ! तुमने संसार में अपने गार्हस्थ्य जीवन का तम्बू गिराया। अब कहाँ जाओगे ? तुम्हारा ठिकाना कहाँ लगेगा ?

ऐसी बात थी तो तुमने बबूल क्यों लगाया ! अर्थात् गृहस्थी का जीवन क्यों बसाया ? आम की बाग लगाते अर्थात् परोपकार मय जीवन बिताते और अमृत ऐसा फल खाते और राम का नाम भजते ?

हे प्रिय ! प्रेम के बौर बाग में नहीं आते। प्रेम बाजार में भी नहीं बिकता। बिना प्रेम का मनुष्य अँधेरी रात की तरह है। प्रेम के बाजार में हीरा रत्न बिकते हैं। चतुर चतुर लोग जो प्रेम के पारखी हैं सौदा कर लेते हैं। मूर्ख जो प्रेम के पारखी नहीं है पछताया करते हैं ॥२,३॥

स्त्री अपने पति को समझा रही है कि जब तुमने गार्हस्थ्य जीवन का तम्बू इस संसार में खड़ा कर दिया अर्थात् मुझसे विवाह करके गृहस्थी जमा चुके तब तुम्हें प्रेम करके ही अपना जीवन सार्थक करना चाहिये। इस जीवन में भी प्रेम के द्वारा तुम रत्न प्राप्त कर सकते हो।

(८)

मैं न लड़ी थी बलमा चले गये हो।
रँग महल मे दस दरवजवा, ना जानी खिरिकिया खुली थी ॥१॥
पाँचो जानी मोरी रान्ह परोसिन तुम से बलमु कछु कहियो न गये हो।
मै न लड़ी थी बलमा चले गये हो ॥२॥

मैने लड़ाई झगड़ा नहीं किया था, पर प्रियतम (मेरी आत्मा) चले गये।

इस रंग महल में (शरीर में) दस दरवाजे हैं, (दस इन्द्रिय रूपी द्वार हैं) मुझे नहीं मालूम कि कौन सी खिड़की खुली थी जिससे प्रियतम चले गये।

अरी पाँच सहेलिनो ! (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ) तुम मेरी पड़ोसिन हो क्या जाते समय प्रियतम ने कुछ तुमसे कहा नहीं ?

विविध गीत

(१)

अमवा मोजरि गइले महुआ टपकि गइले,
केकरा से पठवों सनेस ॥
रे निरमोहिया छाड़ दे नोकरिया०॥१॥
मोरा पिछुअरवा भीखम भइया कयथवा,
लिखि देहु एकहि चिठिया ॥ रे निरमोहिया० ॥२॥
केथिये में करवों कोरा रे कगजवा,
केथिये में करवों मसीनिया ॥ रे निरमोहिया० ॥३॥
अँचरा त फारि फारि कोरा रे कगजवा,
नैन कजरवा मसीनिया ॥ रे निरमोहिया० ॥४॥
आरे पासे लिखिहो सर रे सनेसवा,
बीचे ठैयाँ बरहो बिरोग ॥ रे निरमोहिया० ॥५॥
बाट ऐ बटोहिया तूहूँ मोरा भइया,
हमरो सनेसवा लेले जइह ॥ रे निरमोहिया० ॥६॥
हमरो सनेसवा बलमुआ से कहिह,
तोर धनी बिरहे बेआकुल ॥ रे निरमोहिया० ॥७॥
तोहरा बलमुआ के चिन्हलों ना जनलों,
केकरा से कहवों सनेस ॥ रे निरमोहिया० ॥८॥
ठीक दुपहरिया नवाब कचहरिया,
ताहि बीचे बइठे सामी मोर ॥ रे निरमोहिया० ॥९॥
हथवा बढाई सामी चिठिया लिहलनि—
बचलनि पाती धनी लिखेले बियोग ॥ रे निरमोहिया छाड़० ॥१०

आम में बौर आगये। महुआ टपक गये। हा! मैं प्रियतम के पास किसके हाथ सन्देश भेजूँ? प्रोषित पतिका वसन्त ऋतु में कह रही है। हे! निर्मोही! तू नौकरी छोड़ दे ॥१॥

मेरे पिछवारे भीखम नाम का कायस्थ रहता है। ऐ भीखम ! एक चिट्ठी मेरे लिये लिख दो। हे निर्मोही नौकरी छोड़ दो ॥२॥

कायस्थ ने पूछा—अरी स्त्री ! मैं किस चीज का कागज बनाऊँ ? किस चीज की स्याही बनाऊं ? (मेरे पास तो कुछ नहीं।) ॥३॥

स्त्री ने तुरन्त अपना अञ्चल फाड़कर और भीगी आँखों से काजल ले कर कायस्थ को देते हुये कहा—अञ्चल फाड़ करके तो तुम कोरा कागज बनाओ। और मेरी इन आखों के इस अञ्जन की स्याही तैयार करो और लिखो। रे निर्मोही नौकरी छोड़ दे ॥४॥

ऊपर नीचे तो तुम यहाँ का समाचार और मेरा सन्देशा लिखना पर बीच स्थान में मेरे बारहों वियोग (वर्ष के बारह मासों के वियोग की अनुभूति) लिखना। रे निर्मोही तू नौकरी छोड़ दे ॥५॥

हे बाट से जाने वाले बटोही तुम मेरे भाई हो। तुम मेरा सन्देश मेरे प्रियतम के पास लेते जाना। उससे कहना कि रे निर्मोही नौकरी छोड़ दे और मेरा यह भी सन्देश बालम से सुनाना कि तुम्हारी स्त्री विरह से व्याकुल हो रही है। तुम निर्मोही नौकरी छोड़ दो ॥६,७॥

पथिक ने कहा —मैंने तुम्हारे पति को न कभी देखा न उसके सम्बन्ध में कुछ सुना ही किससे मैं तुम्हारा सन्देश कहूँगा कि रे निर्मोही नौकरी छोड़ दे ॥८॥

विरहिणी ने तुरन्त उत्तर दिया। पता तो उसे कुछ ज्ञात नहीं था। नाम भी अपने मुख से ले नहीं सकती थी (हिन्दू प्रथानुसार स्त्री पति का नाम शिष्य गुरु का नाम नहीं लेता) उसने संकेत बता दिया—ठीक दोपहर को वहाँ के नवाब की कचहरी के बीच में मेरे स्वामी बैठते हैं। वहीं उनको पत्र दे देना। और कहना कि रे निर्मोही नौकरी छोड़ दे ॥९॥

पति ने हाथ बढ़ा कर पत्र लिया। उसे पढ़ा। और कहा पत्र में स्त्री ने अपना वियोग लिखा है ॥१०॥

इस गीत को हफ़ फ़ेजर ने फाकलोर फ्राम ईस्टर्न गोरखपूर शीर्षक से जी० ए० ग्रियर्सन साहब के सम्पादकत्व में इण्डियन एन्टीक्वीटी में प्रकाशित किया था।

(२)

चैतार (विहागड़ा)

मानल सैयाँ रुसि गइलनि बौरी कोइलि हो तोरी बोलियन ॥
(ए, री,) आधी रात अगली पहर राति पिछली कोइल
हो तोरी बोलियन मानल सैयां०

री पगली कोयल ! मेरा प्रसन्न हुआ पति भी तुम्हारी बोली सुन रूठ गया। अर्थात् अभी जो उसको मैंने किसी तरह सन्तुष्ट कर सयोग लिये आकर्षित किया था सो वह फिर तेरी बोली सुन कर रूठ गया।

(३)

ननदी सैंया नाहीं अइले ॥
अमवा मोजरि गइले लगले टिकोरवा डाल पात
झुकि मतवरवा ॥ ननद सैंया० ॥१॥
चोलिया से जोबना बहर भइलन ननदी कइसे
करि के छिपावों ॥ ननदी सैंया० ॥२॥

हे ननद मेरे स्वामी नहीं आये। वसन्त ऋतु आई भी और बीत भ चली। देखो न बौर आ गये। टिकोरे (छोटे फल) भी निकल आये। उसब डालों के झरे हुए पत्ते भी निकल आये। अब आम वृक्ष डाल पात से लह लह कर मारे आनन्द के मतवाला हो रहा है। हे ननद सैयां आज तक नहीं आये॥१।

कचुकी से मेरे कुच बाहर हो रहे हैं। मैं इन्हें कैसे छिपा कर रखूँ। हे ननद ! स्वामी नहीं आये ॥२॥

कितना सुन्दर मादक और करुण यह चैतार है। इसी भाव को लेकर 'बिदेसिया गाना' में एक सुन्दर पंक्ति मुझको सुनने को मिली। इसके बाद के चरण नहीं मिल सके। वह पक्तियाँ हैं—

अमवा मोजरि गइले लगले टिकोरवा
से दिन पर दिन पियराय रे बिदेसिया।

विरहिणी कह रही है—अरे विदेशी तुम नहीं आये। यहाँ आम में मंजरी लग गयी। फिर उसमें टिकोरे भी लग गये। हा अब वे टिकोरे (छोटे फल) धूप

और जलाभाव से सूख कर पीले पड़ रहे हैं। (हा वैसे ही मैं भी विरह ताप से तुम्हारे प्रेम जल के अभाव में सूख सूख कर पीली पड़ रही हूँ। इसी छन्द में बाबू रघुवीर शरण जी ने कई पुस्तिकाये' राष्ट्र भाव को लेकर 'बटोहिया' 'परदेसिया' इत्यादि लिखी हैं। बटोहिया की पंक्ति है —

भारत सुभूमि भैया भरत के देसवा से मेरो प्रान बसे हिम खोह
रे विदेसिया।
एक ओर घेरे रामा हिम कोतवलवा से तीनि ओर सिन्धु
घहराय रे बटोहिया ॥

पाठक इस गीत में देखेंगे कि मोजरि (मंजरी) संज्ञा को यहाँ क्रिया बनाया गया है मजरी आने के अर्थ में।

भिखारी ठाकुर की रचना

भिखारी ठाकुर जाति के नाई शाहाबाद जिले में कुतुबपुर धुसरिया गाँव के रहने वाले हैं। अब इस गाँव के गंगा की बाढ़ से कट जाने से कुछ जमीन तो शाहाबाद में रह गयी है और कुछ सारन में पड़ी है। ये अपढ़ हैं पर बड़े प्रतिभा के कवि हैं। इनका भिखारिया नाम सारे भोजपुरी प्रान्त में प्रसिद्ध है। इनकी बीसों रचनाये हैं जो प्रकाशित भी हो चुकी हैं। वे खुद प्रकाशित कर बेच लेते हैं। १० वर्ष पूर्व एक बार मुझे वे करीब आधी दर्जन पुस्तकें 'बेटी वियोग' 'भिखारी बहार' आदि दे गये थे। जो सब मेरे स्कूल में विगत अगस्त के आन्दोलन में अंग्रेज सिपाहियों द्वारा आग लगा दिये जाने के कारण जल गयीं। कुछ गीत मेरे भोजपुरी भाषा और उसका साहित्य सौन्दर्य नाम लेख में उद्धृत थे वे ही मुझे इस समय मिल सके जो यहाँ उद्धृत हैं। भिखारी ठाकुर ने अपने परिचय में भी अनेक छन्द कहा है उनमें से चन्द यहाँ उद्धृत हैं—केवल कवि की जानकारी के हेतु गीत तो बाद में दिये ही जायँगे।

भिखारी बहार में वे लिखते हैं—

नाम भिखारी काम भिखारी, रूप भिखारी मोर।
ठाट पलान मकान भिखारी, भइल चहूँ दिस सोर ॥

इसके माथे पर मौर है। शरीर पर जामा है। भिखारी ठाकुर कहते हैं कि यह दुलहा साक्षात भगवान द्वारा ही बनाया गया है॥

(६)

भइ गइली काल हम, पुरुब में कवन कसूर करली बाबू जी ॥
जेहि लागि आजु हम दुनिया में भइलीं कम,
वर देखि घर ना सोहात बाटे बाबू जी ॥
सिकुरल चाम जइसे सुखल चुचेला आमसुहवा
फटलका लेदरवा हटे बाबू जी ॥
आँखि से सूझत कम हर दम घोंचत दम
मथवा के बारवा चँवरवा हटे बाबू जी ॥
मुँहवा में दाँत नाहीं गाले मुँहे लार चूए बोलली
पर भीतर सड़ल बदबू बाबू जी ॥
पति कर देखि गति पागल भइल मति रोइ रोइ
करीला विहान मोर बाबू जी ॥
पयदा भइली जग फयदा मिलल इहे छतिया
मे जरत बा मसाल मोर बाबू जी ॥
हुकुर हुकुर छाती करत बाटे दिनराती अधजीव
दुलहा पसन कइल बाबू जी ॥
घड़ी घड़ी होत झड़ी लीक से भरल बा नरी
नरक बिगत दिन बीती मोर बाबू जी ॥
पति के बुढाई देखि मन के गइल सोखी धनवा
भइल कलपनवा हो बाबू ॥
रोअत बानी सिर धुनि इहे छछनल सुनि बेटी
मति बेचे दीह केहू के हो बाबू जी ॥
कहत भिखारी त खरारी के इआदि करके फेनि
मति करीह अइसन काम मोर बाबू जी ॥
रतिया के छतिया में बत्तिया जरेला मोरा,

अगुआ अलम तुरि दिहलसि ए बावू जी ॥
अइसन दुखवा जे मुख से कहात नाहीं जानत बाटे
हिरदय हमार मोरे बावू जी ॥
विपति सेवत बानी हमरा का परेसानी वेटी नाहीं
जमली सतुरवा हो बावू जी ॥
हरिहर नाथ जी का चरन में नाके माथ करत
भिखारी परचार मोर बावू जी ॥
जाति के हजाम मोर कुतुबपुर ह मोकाम छपरा
से तीन मील दिअरा में बावू जी ॥
पुरुब का कोना घर गंगा के किनारे पर, जाति
पेसा बाटे बिद्या नाहीं बानी बावू जी ॥१॥

हे पिता जी मैंने आपका पूर्व जन्म में कौन सा ऐसा अपराध किया कि इस जन्म में मैं आपको काल के समान हो गयी।

धुन पूर्वी

श्री भिखारी ठाकुर कृत 'बड़ा बिदेसिया नाटक' से
'प्यारी विलाप बटोही से'

(१)

पिया मोर गइले परदेस ए बटोही भइया।
राति नाहिं नींद दिन तनी ना चयनवाँ ए बटोही भइया ॥
सहतानी बहुत कलेस ए बटोही भइया।
रोअत रोअत हम भइलीं पगलीनियाँ ए बटोही भइया ॥
एको नाहीं भेजले सनेस ए बटोही भइया।
नाहक जवानी हमें दिहले विधाता ए बटोही भइया ॥
कुछु दिन में पाके लागी केस ए बटोही भइया।
कहत भिखारी तोहरा गोड़वा क लउड़िया ए बटोही भइया।
करीह तू पिया के उपदेश ए बटोही भइया ॥

(२)

प्यारी वचन बटोही से

× × ×

हमरा बलमुजी के बड़ी बड़ी अँखिया से,
चोखे चोखे बाड़े नयना कोर रे बटोहिया।
ओठवा त बाड़े जइसे कतरल पनवा से।
नकिया सुगनवा के ठोर रे बटोहिया।
दँतवा ऊ सोभे जइसे चमके बिजुलिया से,
मोछियन भँवरा गुँजारे रे बटोहिया।
मथवा में सोभे रामा टेढी कारी टोपिया से,
रोरी बुना सोभे ला लिलार रे बटोहिया।

(३)

बटोही वार्ता विदेशी से

× × ×

पछिम के हई हम बारे रे बटोहिया,
पुरुब करीले रोजगार रे बिदेसिया।
तोरी धनी बाड़ी रामा, अँगवा के पातर से,
लचकेली छतिया के भार रे बिदेसिया।
केसिया त बाड़े जइसे लोटे रे नगिनियाँ से,
सेनुरा से भरल लिलार रे बिदेसिया॥
अँखिया त हउवे जइसे अमवा के फँकिया से,
गलवा सोहेला गुलेनार रे बिदेसिया।
बोलिया त बाड़ी जइसे कुहूँके कोइलिया से,
सुनि हिया फाटेला हमार रे बिदेसिया।
मुँहवा त हउवे जइसे कमल के फुलवा से,
तोहिं बिनु गइले कुम्हिलाई रे बिदेसिया।
अइसन तिरिअवा के सुधि बिसरवले से।

तोहरा के हवे धिरीकार रे बिदेसिया ॥

यह गीत और इसके पूर्व वाले गीत में नायक नायिका का कितना सुन्दर और जीवित वर्णन हुआ है। भिखारी ठाकुर अपढ़ ग्रामीण कवि हैं। फिर भी उनकी शब्द योजना और वर्णन की प्रौढ़ता तथा उपमा और प्रसाद गुण की सुन्दरता किसी भी शिक्षित कवि से कम नहीं कही जायगी। रस परिपाक में तो वे इतने सफल हैं कि कुछ दिनों तक इस नाटक के ड्रामें भी खेले जाने की पुलिस द्वारा मनाही थी। कितनी नव युवतियाँ इस नाटक से प्रभावित होकर लोक लाज तक त्याग देने पर उद्यत हो जाती थीं।

(४)

प्यारी विलाप

× × ×

पिया पिया कहिले सखिया पिया नाहीं रे हितवा, गइले विदेसवा।
हो गइले विदेसिया सइयाँ भेजे ना रे सनेसवा।
सँगही के सखिया सब भइलीं लरकोरिया, विहरे ला छतिया।
हो विहरेला छतिया मोरा तलफे जोवनवां॥
पिया पिया कहत रामा पीअर भइलीं विदेसिया,
पिया नाहीं अइले कासे कहवि दिल के वतिया॥
मोरा लेखे नइहर सखिया वसे जमुरजवा।
लहरे करेजवा हो लहरे करेजवा देखि सइयवा के रे भवनवाँ॥
सवके वलमुआ सजनी अइलें रे भवनवा।
छवले विदेसवा हो छवले विदेसवा रामा पापी मोर वलमुआ॥
एक मन करे रामा होइतीं रे जोगिनियाँ!
धुइया रमइतों रे छाड़ि सइया के भवनवाँ॥
कहे नाथ सरन मोरा हियरा धरे ना धिरिजवा मिलिते,
वलमुआ हो मिलिते वलमुआ वाड़े राजा के नोकरिया॥

यह नाथ सरन कवि भी भिखारी नाटक मण्डली के शायद कवि हैं तभी यह गीत बड़ा विदेशिया नाटक सम्मिलित है।

(५)

प्यारी विलाप

× × +

सइया मोरे रहिते त धइ बान्हि मरिते से।
केकरा से कही कर जोरि रे विदेसिया ॥
सावन भदउआ के निसि अँधिअरिया से।
सोइ गइले टोलवा परोस रे विदेसिया ॥
हमरो अभागिन के फुटले करमवा से,
सहि नाहीं जाला ई कलेस रे विदेसिया ॥
पइतीं कटरिया आपन जिया हतितीं से,
मेटि जइते बरहो विरोग रे विदेसिया ॥

नायिका का यह विलाप उस समय का है जब रात्रि में उसका पति विदेश से आकर घर का द्वार खोलना चाहता है और नायिका उसे चोर डाकू समझ कर मारे भय के अपने प्रियतम को स्मरण कर के रोती है और आत्म हत्या करना चाहती है।

(६)

श्री भिखारी ठाकुर कृत "बड़ी प्यारी सुन्दरी वियोग" यानी "परदेसिया" नामक पुस्तिका से जिसका सन् १९३२ ई० में ८००० प्रतियों चौथा संस्करण गोरखपुर प्रिंटिङ्ग प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित हो चुका था। इधर कितने संस्करण छपे लेखक को ज्ञात नहीं। आज भी इस पुस्तिका की लोक प्रियता वैसी ही बनी है।

रङ्ग महल बइठल सोचे प्यारी धनिया से।
विरह सतावे जिया बीच परदेसिया ॥
गवना कराइ छयला हमें छाड़ि दीहले से,
अपने गइले परदेस परदेसिया ॥
चढ़ली जवनियाँ बएरन भइली हमरी से ॥
मदन सतावे जिय माहि परदेसिया ॥

मदन विरह जिया भइले मतवलवा से,
के हो मोरा हरिहें दरद परदेसिया ॥
घेरी त आवे रामा, कारि हो वदरिया से,
विजुली चमके घन वीच परदेसिया ॥
विजुली चमक जिया सनक समइले से,
केहू ना हमरो सग साथ परदेसिया ॥
मोरवा के वोलिया सुनत छतिया धड़के से,
पपिहा त करेला पुकार् परदेसिया ॥
केकरा से मेजों रामा प्रेम के पतिया से,
केकरा से सर ई सनेस परदेसिया ॥
जव सुधि आवे सइयाँ तोहरी सुरतिया से,
लहरे करेजवा हमार परदेसिया ॥
स्रवन त चाहे राजा तोरी कुसलतिया से,
नयनवाँ दरसवा तोहार परदेसिया ॥
तोहरा कारन राजा खकिया रमइहों से,
धरिहों जोगिनिया के मेस परदेसिया ॥
कवले लवटिहई पापी मोर वलमुआ से,
मोरे विरहनियाँ के भाग परदेसिया ॥
हमरी त सुधि राजा तुहउ ँ विसरउले से,
सवति भइली तोहे पिआरी परदेसिया ॥
हाय रे वेदरदी ! दरदिया नाहीं आवे तोही,
पत्थर की छतिया तोहार परदेसिया ॥
दिनवां त वीते तोरी इन्तजरिया से,
रतियाँ नयनवा ना नींद परदेसिया ॥
घरी राति गइलो राम पिछली पहरवा से,
लहरे करेजवा हमार परदेसिया ॥
अमवा वउरि गइले लागल सरि सइया से,

दिन दिन होला तइयार परदेसिया ॥
एक दिन अइहें राजा जुलुमी बयरिया से,
डार पात जइहें रे नसाइ परदेसिया ॥
बगिया भइलि तइयार निरमोहिया से,
प्रेम जल बिनु कुम्भिलाय परदेसिया ॥
सुखतीं चहत इहे प्रेम के जे बिरवा से,
रहि जाई मन पछताइ परदेसिया ॥
फुलवा त खिलले गुलबवा कि कलिया से,
जात रहल अजब बहार परदेसिया ॥
अइली सुरति पिया चढलीं अटरिया से,
चितईला नयना उठाइ परदेसिया ॥
कतहूँ ना देखीला पिआरे के सुरतिया से,
गिरिला पछरवा मैं खाय परदेसिया ॥
कछु देर माहिं मोर जियरा सचेत भइले,
भइलीं खिरिकिया पर ठाड़ परदेसिया ॥

प्रस्तुत गीत भी भिखारी ठाकुर की ही रचना है। इसमें विरहिणी का कितना करुण और सजीव चित्रण किया गया है यह गीत भी गाये जाते समय श्रोता को मोह लेता है। प्रकृति वर्णन भी कम सुन्दर नहीं है। इस गीत की लोक प्रियता भोजपुरी भापियों में कितनी है यह इस पुस्तक के उपर्युक्त कथित संस्करण सख्या से पता चलता है।

(७)

बटोही वचन परदेशी से

जात तो रहलीं मैं पतरी डगरिया से, कलपे खिरिकिया प ठाढ बिरहिनियाँ।
नयन टपकि परले हमरी चदरिया से, चितई ला नयना उठाय परदेसिया ॥
अँगवा के पतरी त हई प्यारी धनिया, कि देखते बटोहिया जिया जात परदेसिया।
गलवा त हउए जइसे खिलेला गुलबवा से अखिया मिरिगवा के नाई परदेसिया ॥
बोलिया तबोले जइसे सबद कोइलिया से, ले ली ऊ त करेजवा निकासि परदेसिया।

टिकुली त साटे उहे रस ही बेंदुलिया से, इँगुरा त देले ऊ लिलार परदेसिया॥
मथवा पर देले ऊ त माथ के बेंदुलिया से, नकिया झुलनिया झोंकेदार परदेसिया।
अइसन तिरिअवा के तूहो तजि दीहल से, तेकर गजववा के धार परदेसिया॥
मुँहवा त हवे प्यारी कँवल के फुलवा से, तोहरे विना गइले कुम्हलाइ परदेसिया।
हाय, निरमोहिया फटे ना तोरो छतिया से, सुनत वियोगवा के बात परदेसिया
एतना वचन राजा सुनही ना पवले मे, गिरेले मुरुछवा ऊ खाई परदेसिया॥

ब्रज भाषा के शिक्षित कविश्रों के दूती श्रौर दूतों के अनेक सम्वादों को पाठक सुन चुके हैं। इस अपढ़ ग्रामीण कवि दूत का सम्वाद भी आज पढ़ ही लिये। क्या आप कह सकते हैं कि इस दूत ने विरहिणी का सम्वाद सुनाने में अपेक्षाकृत कोई भूल की ? विरहिणी का रूप कितनी सुन्दर सूक्तियों में उसने परदेशी नायक के सामने चित्रित किया कि वह सुनते ही मारे शोक के मूर्छित हो गया। तभी तो भोजपुरी में विरहिणी का यह विरह विलाप इतना लोक-प्रिय बना।

पूर्वी (नाथ सरन कवि कृत)

(८)

चढ़ली जवनिया हमरी विरहा सतावेले से,
नाहीं रे अइले ना अलगरजी रे बलमुआ से नाहीं० ॥
गोरे गोरे वहिया में हरी हरी चूरियाँ से,
माटी कइले ना मोरा अलख जोबनवा से मा० ॥
नाहीं० ॥
झिनवाँ के सारी मोरा रेसम के चोलिया,
गरदवा कइले ना मोरा पापी रे बलमुआ गरदवा० ॥ नाहीं०
अवहीं उमिरि मोरा वारी से जवनिया,
जुलुमवाँ कइले ना गइले पिया परदेसवा जुलमवा० ॥ नाहीं
कहे नाथ सरन पियारी हियरा धरु धिरिजवा,
गजब रे कइले ना कइ गइले रे बहनवा गजब० ॥ नाहीं० ।

(९)

पूर्वी विहाग

(जगरनाथ कविकृत)

सत्याग्रह में नाम लिखाई, सइयाँ जेहल छवले जाई, रजऊ कइसे होइहें ना,
ओही जेहल के कोठरिया रजऊ कइसे होइहें ना ॥ टेक॥
गोड़वा मे वेड़िया हाथ पड़लीं हथकड़िया, रजऊ कइसे चलिहें ना,
वोझा गोडवा में जनाई, रजऊ कइसे चलिहें ना ॥
घरवाँ त सइयाँ कुछ, करते नाहीं रहले अटवा कइसे पिसिहें ना,
भारी जेहल के चकरिया उहवाँ कइसे पिसिहें ना ॥
घर के जेवनवाँ उनका नीक नाहीं लागे, उहवाँ कइसे खइहें ना,
जव के रोटिया घास सगवा उहवाँ कइसे जेइहें ना ॥
मखमल पर सुतले उनका निंदिया ना आवे, उँहवाँ कइसे सुतिहें ना,
सइयाँ कमरा के सेजरिया उँहवाँ कइसे सुतिहें ना ॥
जगरनाथ बुद्धू सत्याग्रह में नाम लिखइहें जेहल उनहू जइहें ना,
भारतमाता के करनवाँ जेहल उनहू जइहें ना ॥
रजऊ कइसे होइहें ना ओही जेहल के कोठरिया, रजऊ कइसे होइहें ना० ॥

इसी तरह अनेकानेक सामयिक विषयों को लेकर भोजपुरी कवि लिखा करते हैं। उनमें रीति कवियों की तरह अपनी लेखनी को किसी एक खास विषय (यानी शृंगार और आध्यात्म) तक ही सीमित रखने की परिपाटी नहीं है। इससे भोजपुरी कवि की विचार स्वतन्त्रता तथा उसके विषय ग्रहण का व्यापक दृष्टिकोण प्रमाणित होता है। और नीचे के यह गीत 'पूर्वी का पीताम्बर' उर्फ 'पूर्वी भडार नामक' प्रकाशित पुस्तिका से संग्रहीत है जो मेवालाल एण्ड कपनी बनारस कचौड़ी गली द्वारा प्रकाशित है।

(१०)

गवना लिआके हमके घरे बइठाके हो छयलऊ।
अपने सिधरल बिदेस हो छयलऊ ॥ टेक।

जोहीला हम रहिया अइसन भइल निरमोहिया हो छयलऊ।
तरसे ला जियरा हमेस हो छयलऊ ॥ अपने सिधरल० ॥
हमके भूलइल कवना सवतीन पर लोभइल हो छयलऊ।
एको नाहीं भेजेल सनेस हो छयलऊ! ॥अपने० ॥
तोहरे करनवाँ रजऊ! तजबइ परनवाँ हो छयलऊ।
जियरा पड़ल वा अनेस हो छयलऊ! ॥ अपने० ॥
मोट कइके नजरिया तेजि के गइल सेजरिया हो छयलऊ!
लटिअइले मथवा के केस हो छयलऊ! ॥अपने०॥
जगरनाथ बुद्धू अइसन भइले निरमोहिया हो छयलऊ!
दे गइले कठिन कलेस हो छयलऊ! ॥अपने० ॥

ग्रामीण विरहिणी का कितना सुदर और स्वाभाविक विलाप है। सावन की चलती पुरवाई में जब खेत की मेड़ पर खड़ा खड़ा कृषक आकाश के बादलों को देखकर अपनी प्रेयसी को विसूर विसूर कर अपनी हृदय व्यथा को इस गीत के द्वारा पञ्चम तान में अलापता है तो सुनने वाले के मन की क्या दशा होती है यह वही समझ सकता है जिसने स्वय उसे कभी सुना है।

पूर्वी दोहावली

(११)

खोजे सखियाँ सब बिलखाई, पूछे ग्वालिन से हरखाई।
हरिजी कहवाँ हो गइले ना ॥ टेक ॥

दोहा

हम विरहिन के तजि के स्याम, गइले कवनी ओर।
स्याम के सूरति विसरति नाहीं, हाय ऊ गइले छोर ॥१॥
कहाँ लोभाई हो गइले ना, देख गइया के चरवइया
कहा लोभाई हो गइले ना, सूनर बँसिया के बजवइया।
हरिजी कहवाँ हो गइले ना ॥

(९)

पूर्वी विहाग

(जगरनाथ कविकृत)

सत्याग्रह में नाम लिखाई, सइयाँ जेहल छनले जाइ, रजऊ कइसे होइहें :
ओही जेहल के कोठरिया रजऊ कइसे होइहें ना ॥ टेक॥
गोड़वा में वेड़िया हाथ पड़ली हथकड़िया, रजऊ कइसे चलिहें ना,
वोझा गोडवा मे जनाई, रजऊ कइसे चलिहें ना ॥
घरवाँ त सइयाँ कुछ, करते नाहीं रहले अटवा कइसे पिसिहें ना,
भारी जेहल के चकरिया उहवाँ कइसे पिसिहें ना ॥
घर के जेवनवाँ उनका नीक नाहीं लागे, उहवाँ कइसे खइहें ना,
जव के रोटिया घास सगवा उहवाँ कइसे जेइहें ना ॥
मखमल पर सुतले उनका निदिया ना आवे, उँहवाँ कइसे सुतिहें ना,
सइयाँ कमरा के सेजरिया उँहवाँ कइसे सुतिहें ना ॥
जगरनाथ वुद्ध सत्याग्रह में नाम लिखइहें जेहल उनहू जइहें ना,
भारतमाता के करनवाँ जेहल उनहू जइहें ना ॥
रजऊ कइसे होइहें ना ओही जेहल के कोठरिया, रजऊ कइसे होइहें ना०

इसी तरह अनेकानेक सामयिक विषयों को लेकर भोजपुरी कवि लिर करते हैं। उनमें रीति कवियों की तरह अपनी लेखनी को किसी एक खास विप (यानी शृंगार और आध्यात्म) तक ही सीमित रखने की परिपाटी नहीं है इससे भोजपुरी कवि की विचार स्वतन्त्रता तथा उसके विषय ग्रहण का व्याप दृष्टिकोण प्रमाणित होता है। और नीचे के यह गीत 'पूर्वा का पीताम्बर' उ 'पूर्वी भंडार नामक' प्रकाशित पुस्तिका से संग्रहीत है जो मेवालाल एण्ड कपन बनारस कचौड़ी गली द्वारा प्रकाशित है।

(१०)

गवना लिआके हमके घरे बइठाके हो छयलऊ।
अपने सिधरल बिदेस हो छयलऊ ॥ टेक।

जोहीला हम रहिया अइसन भइल निरमोहिया हो छ्यलऊ।
तरसे ला जियरा हमेस हो छ्यलऊ ॥ अपने विधरल० ॥
हमके भूलइल कवना सवतीन पर लोभइल हो छ्यलऊ।
एको नाहीं भेजेल सनेस हो छ्यलऊ ! ॥अपने० ॥
तोहरे करनवाँ रजऊ ! तजवइ परनवाँ हो छ्यलऊ।
जियरा पड़ल बा अनेस हो छ्यलऊ ! ॥ अपने० ॥
मोट कइके नजरिया तेजि के गइल सेजरिया हो छ्यलऊ !
लटिअइले मथवा के केस हो छ्यलऊ ! ॥अपने०॥
जगरनाथ बुद्धू अइसन भइले निरमोहिया हो छ्यलऊ !
दे गइले कठिन कलेस हो छ्यलऊ ! ॥अपने० ॥

ग्रामीण विरहिणी का कितना सुंदर और स्वाभाविक विलाप है। सावन की चलती पुरवाई में जब खेत की मेड़ पर खड़ा खड़ा कृषक आकाश के बादलों को देखकर अपनी प्रेयसी को बिसूर बिसूर कर अपनी हृदय व्यथा को इस गीत के द्वारा पञ्चम तान में अलापता है तो सुनने वाले के मन की क्या दशा होती है यह वही समझ सकता है जिसने स्वयं उसे कभी सुना है।

पूर्वी दोहावली

(११)

खोजे सखियाँ सब बिलखाई, पूछे ग्वालिन से हरखाई।
हरिजी कहवाँ हो गइले ना ॥ टेक ॥

दोहा

हम विरहिन के तजि के स्याम, गइलें कवनी ओर।
स्याम के सूरति बिसरति नाहीं, हाय ऊ गइले छोर ॥१॥
कहाँ लोभाई हो गइले ना, देख गइया के चरवइया
कहा लोभाई हो गइले ना, सूनर बँसिया के बजवइया।
हरिजी कहवाँ हो गइले ना ॥

दोहा

मथुरा अवर विन्दावन खोजली, नाहीं मिले मुरार ।
बिन मोहन के पड़त चैन ना, अइसन हाल हमार ॥२॥
जा के कहवाँ भुलइले ना, अइसन होकर के निरदइया ।
जाके कहवाँ भुलइले ना । सूनर बँसिया के बजवइया ॥
हरिजी कहवाँ गइले ना० ॥

दोहा

जब से प्रभु जी तजि के गइले, तब से लागत उदास ।
कहाँ भुलइले अइलें नाहीं, जोहीलाँ उनके आस ॥
अवहीं नाहीं हो अइलें ना हमरे दहिया के जेंवइया ।
अवहीं नाहीं हो अइलें ना । सूनर बँसिया० ॥
कइलीं कवन तकसीर स्याम जी, गइलीं नाता तोड़ ।
बालेपन से प्रीति लगाके, चललीं अकेले छोड़ ॥
अवहीं नाहीं हो अइले ना कहत जगरनाथ कँधइया
अवहीं नाहीं हो अइले ना । सूनर बँसिया० ॥

(१२)

जबसे बलमुआ गइले एकली पतिया ना भेजलें ।
पिया लोभाई गइले ना, कवनी सवतिन के सेजरिया पिया
लोभाई गइले ना० ॥

दोहा

जब सइयाँ छोड़ि के गइलें, भेजले नाहीं सनेस ।
कामदेव तन जोर करत बा दे गइले कठिन कलेस ॥
सइयाँ वेदरदी भइले ना, हमरी लिहले ना खबरिया ।
सइयाँ वेदरदी भइले ना ॥

दोहा

तड़प तड़प के रहीं सेज पर, लागे भयावनि रात ।
जोवन जोर करत बिनु सइयाँ, ई दुख सहल न जात ॥

केहू विलमाई लिहलें ना गइले बँगले नगरिया
केहू विलमाई लिहलें ना ॥

दोहा

अपने पिया परदेस सिधरले, छाड़ि अकेले नार।
पिया रमले सवतिन घर जाके, हमके दीहले विसार ॥
पिया वीसारी गइले ना वइठल जोही ला डगरिया
पिया विसारी गइले ना ॥

दोहा

दिल के अरमनवा दिल में रहि गइले, करी हम कवन उपाय।
गम के रतिया कटति नाही काटे, सोचि सोचि जियरा जाय ॥
पिया खुवारी कइले ना लिहलें हमसे फेरि नजरिया।
पिया विसारी गइले ना ॥

दोहा

सहवान उस्ताद हमारा, दिया ज्ञान बतलाय।
जगरनाथ बुद्धू का मिसरा, सुन मन खुस हो जाय ॥
आज सुनाई गइले ना गाके सुन्दर तरज पुरुविया आज सुनाई गइले ना ॥

(१३)

सोरहो सिंगार कइके सूतली सेजरिया, सपनवाँ एक ना
राम, देखीं अजगुतवा सपनवाँ एक ना।
पूरुव देसवा में सइयाँ मोर वन्हइले से पड़ि हो गइली ना
रामा हाथ में हथकड़िया से पड़ि हो गइली ना ॥
तेजलों सिंगार सब धइलों अभरनवाँ से का रे होइहें ना
हमरा सइयाँ के हवलिया से का रे होइहें ना ॥
छोड़लों हम सुग्गा साड़ी कढलो में कँगना से फेकि हो दिहली ना
अपना नाके के झुलनियाँ से फेंकि हो दीहली ना।
कहे श्री किसुन तिवारी सुनि हो लेवू गोरिया से केहो मेटिहें ना
रामा ब्रह्मा के लिखनियाँ से के हो मेटिइहें ना ॥

विद्यापति ठाकुर की रचनायें

(१)

पिया मोर बालक हम तरुनी,
कवन तप चुकलों भइलों जननी।
पहिर लेल सखि इक दछिनक चीर,
पिया के देखत मोर दगध सरीर।
पिया लेलों गोद कइ चललीं बजार,
हटिया के लोग पुछे के लागु तोहार॥
नाहीं मोरा देवर नाही छोट भाइ,
पुरुब लिखल हउएँ सामी हमार॥

यह गीत कविता कौमुदी भाग १ में दिया हुआ है बाल-विवाह का कितना सुन्दर व्यंग है।

भजन

कबीर की रचना

(१)

अइली गवनवा के सारी उमिरि अबहीं मोरी बारी। टेक।
साज समाज पिया ले अइले अवरू कहरिया चारी।
बम्हना बेदरदी अँचरा पकरि के जोरत गठिया हमारी॥
सखी सब गावत गारी॥
बिधि गति बाम कछु समुझि परत ना बएरी भइलि महतारी।
रोइ रोइ अँखियाँ मोर पोंछति घरवाँ से देत निकारी॥
भइलों सब के हम भारी॥
गवन करा के पिया लेइ चलले, इत उत बाट निहारी॥
छूटत गाँव नगर से नाता, छूटत महल अटारी॥
करम गति टरत ना टारी॥
नदिया किनारे बलमु मोर रसिया, दीन्ह घुँघुट पट टारी।

थर थराय तन काँपन लगले केहू ना देखे हमारी ॥
पिया लइ अइले गोहारी ॥
कहें कबीर सुनो भाई साधो यह पद लेहु विचारी।
अब के गवना बहुरि नहि अवना करि लेहु भेंट अकवारी ॥
एक बेर मिलि ले पियारी ॥

(२)

पावल सतनाम गरे के हरवा ।
साँकर खटोलना रहनि हमरी दुबरे दुबरे पाँच कहरवा ।
ताला कुँजी हमें गुरु दीहलीं जब चाहों तब खोलों केवरवा ॥
प्रेम प्रीति के चुनरी हमारी जब चाहों तब नाचो सहरवा ।
कहे कबीर सुनो भाई साधो बहुरि न अइबे एही नगरवा ॥

(३)

कइसे दिन कटिहैं, जतन बताये जइओ ।
एहि पार गंगा ओहि पार यमुना,
बिचवा मड़इया हमरा के छवाये जइओ ॥
अँचरा फारि के कागद बनाइनि,
अपनी सुरतिया हियरा लिखाये जइओ ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
बहियाँ पकरि के रहिया बताये जइओ ॥

धर्मदास कृत

(४)

मितऊ मड़इया सूनी करि गइलो ॥
अपने बलमु परदेस निकसि गइलो,
हमरा के कछुओ ना गुन देइ गइलो ॥
जोगिन बनिके मैं बन बन ढूढ़ों,
हमरा के बिरह वियोग देइ गइलो ॥
सँग के सखी सब पार उतरि गइलो,

विद्यापति ठाकुर की रचनायें

(१)

पिया मोर बालक हम तरुनी,
कवन तप चुकलों भइलों जननी।
पहिर लेल सखि इक दछिनक चीर,
पिया के देखत मोर दगध सरीर।
पिया लेलों गोद कइ चललों बजार,
हटिया के लोग पुछे के लागु तोहार॥
नाहीं मोरा देवर नाही छोट भाइ,
पुरुब लिखल हउएँ सामी हमार॥

यह गीत कविता कौमुदी भाग १ में दिया हुआ है बाल-विवाह का कितना सुन्दर व्यंग है।

भजन

कबीर की रचना

(१)

अइली गवनवा के सारी उमिरि अबहीं मोरी बारी। टेक।
साज समाज पिया ले अइले अवरू कहरिया चारी।
बम्हना बेदरदी अँचरा पकरि के जोरत गठिया हमारी॥
सखी सब गावत गारी॥
बिधि गति बाम कछु समुझि परत ना बएरी भइलि महतारी।
रोइ रोइ अँखियाँ मोर पोंछति घरवाँ से देत निकारी॥
भइलीं सब के हम भारी॥
गवन करा के पिया लेइ चलले, इत उत बाट निहारी॥
छूटत गाँव नगर से नाता, छूटत महल अटारी॥
करम गति टरत ना टारी॥
नदिया किनारे बलमु मोर रसिया, दीन्ह घुँघुट पट टारी।

थर थराय तन काँपन लगले केहू ना देखे हमारी ॥
पिया लइ अइले गोहारी ॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो यह पद लेहु विचारी ।
अब के गवना बहुरि नहि अवना करि लेहु भेंट अकबारी ॥
एक बेर मिलि ले पियारी ॥

(२)

पावल सतनाम गरे के हरवा ।
साँकर खटोलना रहनि हमरी दुबरे दुबरे पाँच कहरवा ।
ताला कुँजी हमें गुरु दीहलीं जब चाहों तब खोलों केवरवा ॥
प्रेम प्रीति के चुनरी हमारी जब चाहों तब नाचो सहरवा ।
कहे कबीर सुनो भाई साधो बहुरि न अइबे एही नगरवा ॥

(३)

कइसे दिन कटिहैं, जतन बताये जइओ ।
एहि पार गंगा ओहि पार यमुना,
बिचवा मड़इया हमरा के छवाये जइओ ॥
अँचरा फारि के कागद बनाइनि,
अपनी सुरतिया हियरा लिखाये जइओ ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
बहियाँ पकरि के रहिया बताये जइओ ॥

धर्मदास कृत

(४)

मितऊ मड़इया सूनी करि गइलो ॥
अपने बलमु परदेस निकसि गइलो,
हमरा के कछुओ ना गुन देइ गइलो ॥
जोगिन बनिके मैं बन बन ढूढ़ों,
हमरा के बिरह वियोग देइ गइलो ॥
सँग के सखी सब पार उतरि गइलो,

हम धनि ठाढ़ अकेली रहि गइली ॥
धरमदास यह अरज करतु हैं,
सार सबद सुमिरन देइ गइलो ॥

धर्मदास जी कबीर के शिष्य और जाति के कसौंधन बनिया थे। ये बान्धव गढ़ के बड़े भारी महाजन थे। सन् १५७५ ई० में कबीर साहब के परम धाम को सिधारने पर उनकी गद्दी इन्हें मिली। धर्मदास जी के गीत भी कबीर दास जी के गीतों की तरह प्रारम्भ में प्राय: सभी भोजपुरी में आगन्तु रचे गये थे। बाद के हिन्दी भाषी विद्वानों ने उन्हें हिन्दी या ब्रज भाषा का रूप देकर उन्हें हिन्दी का बना डाला। या उन्होंने हिन्दी और भोजपुरी दोनों भाषाओं में रचना की। पहली दशा में हिन्दी के विद्वानों पर—कोई अपहरण का दोष नहीं लगा सकता। भोजपुरी का ज्ञान न होने के कारण ही उन्हें उन शब्दों का पाठ वैसा शायद रखना पड़ा हो जैसा कि हिन्दी में उनका रूप सहज हो सकता था। पर जहाँ 'ल' प्रत्यय से क्रिया का प्रयोग इस तरह से हुआ कि उसका रूपान्तर उसी मात्रा में होना नितान्त कठिन था। वहाँ बाध्य हो उन लोगों को भोजपुरी शब्दों का वही रूप छोड़ देना पड़ा जैसा वे पहले थे। जैसे उदाहरण के लिये इसी गीत को प० राम नरेश जी त्रिपाठी अपनी कविता कौमुदी में देते समय 'गइलों' को गइली, 'मदइया' को मड़ैया, निकरि को 'निकरि', 'होइ' को है, 'विरह विरोग' को 'विरह वैराग', सग के सखी, संग की सखी, गइलों 'को गैलीं, 'देइ' को 'है', आदि पाठ लिखा है। साधारण उदाहरण है। ऐसे उदाहरण अनेक है।

(५)

मोरा पिया वसे कवने देस हो।
अपने पिया के ढूढन हम निकसी केहू ना कहत सनेस हो ॥
पिया कारन हम भइलीं बावरी, धइलीं जोगिनिया के भेस हो।
ब्रह्मा विसुन महेस ना जाने का जाने सारद सेस हो ॥
धनि जे अगम अगोचर पवलन हम सब सहत कलेस हो।
उहाँ के हाल कबीर गुरु जनले आवत जात हमेस हो ॥

इस गीत में भी पाठ के सम्बन्ध में वही भूले पं० रामनरेश जी त्रिपाठी
ो है जो पूर्व के गीत में की थीं। जैसे 'पवलन' को 'पइलन' 'जनले'
ानै, 'के' को कै' 'घइली' या 'घरों' को 'घरयों' 'भइलीं' को 'भई हैं', वसे
से पाठ देकर हिन्दी के अनुकूल बना दिया है।

(६)

साहब चितवो हमरी ओर ॥ टेक ॥
हम चितई तुम चितओ नाहीं, तोहरो हृदय कठोर।
अवरन के तो अवर भरोसा, हमें भरोसा तोर ॥
सुखमनि सेज बिछायो गगन मे नित उठि करों निहोर।
धरमदास बिनवें कर जोरी, साहेब कविरा बदी छोर।

कबीर साहब ने हिन्दी या ब्रजभाषा वालों के अपने गीत के अर्थ को
मझने की इस कठिनाई को समझा था, पर [illegible] अपनी मातृ भाषा
जपुरी में ही अपनी रचना की और इन शब्दों में उसको पश्चिमी देश के
ासियों के लिये दुर्बोध स्वीकार किया था—

बोली हमरो पुरुब की, हमें लखे नहि कोय।
हमको तो सोई लखे, धुर पूरब का होय ॥

नी उनकी भाषा इतनी ठेठ भोजपुरी थी कि पूरब वाले (भोजपुरी ही)
से समझ सकते थे दूसरे नहीं।

बात यह थी कि उस समय काव्य के लिये संस्कृत प्राकृत और पाली
ादि के बाद दूसरी उन्नत भाषा नहीं थी। और उन भाषाओं में काव्य करना
न काव्य नहीं होता। इसी से प्रायः अधिक सन्त कवियों ने अपनी मातृ
ाषाओं में ही रचना की है जो आगे चल कर अन्य भाषा भाषी भक्तों द्वारा
िन्दी, ब्रज भाषा पञ्जाबी आदि अनेक बोलियों के उन शब्दों से भर दी गई
ो उनके मूल रूप और अर्थ को कायम रखते हुए आसानी से बदल दिये जा
के। यही कारण है कि एक ही गीत के अनेक पाठों को हम देखते हैं और एक
ी गीत में कई भाषाओं के शब्दों के रूप भी दृष्टिगोचर होते हैं कबीर और
रमदास जी के तो कितने ऐसे गीत हैं जिनमें आद्योपान्त भोजपुरी के शब्द रहने

पर भी केवल एक दो क्रिया या सम्बन्ध कारक का रूप ब्रज भाषा का कर के उसे ब्रजभाषा का कर दिया गया है।

जग जीवन साहब कृत भजन

ये चन्देल राजपूत थे। बाराबंकी जिला का सरदहा गाँव जो सरजू तीर पर बसा है वहीं के ये रहने वाले थे। ये धरनीदास के समकालीन थे। इनके चलाये सम्प्रदाय को 'सत्तनामी' सम्प्रदाय कहते हैं। इनकी रचनायें अवधी में भी बहुत हैं।

(७)

जोगिया भगिया खवावल, बउराना फिरों दिवानो।
अइसन जोगिया के बलि बलि जइहों जिन्ह मोहि दरस दिखावल।
ना करमे ना मुख से पिआवे नयनन सुरति मिलावल॥
काह कहों कहि आवत नाहीं जिन्हकर भाग तिन पावल॥
जगजीवन दास निरखि छवि देखले जोगिया मूरति मन भावल॥

(८)

चरनन में लागि रहिहों री॥ टेक॥
अवरू रूप सब तिरथ बतावे, जल नहिं पइठ नहइहों री।
रहिहों बइठि नयन से निरखत, अनत न कतहूँ जइहों री॥
तोहरे से मन लाई रहिहों, अवर नाहीं मन अनिहों री।
जगजीवन के सत गुरु समरथ, निरमल नाम गहि रहिहों री॥

(९)

चलु चढ़ीं अटरिया धाइ री।
महल में टहल करे ना पाई, करीं कवन उपाई री॥
इहा त बएरी बहुते हमरी, तिन से कुछु ना बसाई री।
पाँच पचीसल निसि दिन सतावे, राखलइन अरुझाई री॥
साईं के निकट बइठि सुख बिलसवि, जोति से जोति मिलाई री।
जग जीवन दास अपनाय लेहु वे, नाही त जीव डेराई री॥